CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५१

कबीर काव्य कोश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर काव्य कोश

१८६०६

डॉ० वासुदेव सिंह
हिन्दी विभाग
काशी विद्यापीठ
वाराणसी

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

© डॉ० वासुदेव सिंह

*

प्रथम संस्करण : सन् १९८७ ई०
मूल्य : एक सौ पचीस रुपया

*

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
विशालाक्षी भवन
चौक, वाराणसी-२२१००१

*

मुद्रक
सन्तोषकुमार उपाध्याय
नया संसार प्रेस
भदैनी, वाराणसी-२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुक्रम

		पृष्ठ
१.	उपोद्घात	५–९
२.	संकेत-विवृति	११–१३
३.	सामान्य शब्द	१–३४७
४.	पारिभाषिक एवं प्रतीकात्मक शब्द	३४८–४१६
५.	संख्यावाची शब्द	४१७–४३२
६.	सन्दर्भ और अन्तर्कथाएँ	४३३–४५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपोद्घात

कबीर की भाषा की शक्ति और क्षमता का परिचय उनके शब्द-भाण्डार से मिलता है। उनका शब्द-ज्ञान असीम था। तत्कालीन प्रचलित ब्रज, अवधी; खड़ी बोली, बुंदेली, राजस्थानी, भोजपुरी आदि बोलियों के अतिरिक्त पंजाबी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं तथा अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषाओं के लोक-प्रचलित शब्द उनके काव्य में अनायास और स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने शब्दों का चयन जीवन के विस्तृत क्षेत्र से किया था। वस्तुतः शब्द-निर्माण का सबसे बड़ा कारखाना भारतीय गाँव रहे हैं, जहाँ विभिन्न वर्गों, व्यवसायों तथा जातियों के अधिकांश लोग रहते हैं। कबीर ने शब्दों को इसी विशाल जन-जीवन से लिया था। उनके द्वारा प्रयुक्त ऐसे बहुसंख्यक शब्द अब खड़ी बोली में प्रचलित नहीं रह गए हैं। खड़ी बोली का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि उसमें बनावटी और जीवन से विलग शब्द गढ़कर लिए जाते हैं। किन्तु वह लोक-जीवन से दूर होती जा रही है। कबीर ने लोहार, कुम्हार, बढ़ई, जुलाहा, कलवार, कृषक आदि के जीवन और व्यवसाय से जिन शब्दों को लिया है, उनमें से अधिकांश अब अप्रचलित हो गए हैं। कुछ शब्द तो इतने व्यंजक और अर्थ-गाम्भीर्य-सम्पन्न हैं कि उनके पर्याय खड़ी बोली में खोजना बहुत कठिन हैं।

कबीर में ऐसे देशज शब्दों की भरमार है जिनकी न केवल व्युत्पत्ति खोजना दुष्कर है अपितु विद्वानों और टीकाकारों द्वारा प्रायः उनके गलत अर्थ भी दिए गए हैं। ऐसे कुछ शब्द हैं—कछावौ (धारण कराओ), करकम (झगड़ा), कालर (नोनी मिट्टी), खाँखरि (खोपड़ी), खाँगि (पशुओं का रोग); गहेजुआ (छछुंदर); कजौड़ी (समूह); चिंगवा (नली), चुहाड़ा (भंगी), टीडार (बाल्टी), पटम (देखावा), भभूका (लपट), बेढ़ई (एक प्रकार की रोटी या कचौड़ी जिसके भीतर पोस्ता का दाना अथवा पीठी और अन्य गरम मसाले भरे जाते हैं), लाहनि (वह पदार्थ जिसमें खमीर उठाकर मदिरा बनाई जाती है), लोकंदे (वधू के साथ जाने वाली स्त्रियाँ), ढीकुली (कुएँ से पानी खींचने वाला यंत्र), पारी (हाथी का पैर बाँधने वाला रस्सा), नरी (ढरकी के भीतर की नली जिस पर तार लपेटा रहता है), मरोरिया (दो तागों को आपस में जोड़ने की क्रिया जिसमें गाँठ का प्रयोग नहीं होता, केवल दोनों सिरों को मिलाकर मरोड़ देते हैं) आदि।

कबीर के समय तक अरबी-फारसी भाषा का भी प्रयोग काफी बढ़ गया था। अरबी मुस्लिम शासकों की धर्म-भाषा थी और फारसी राजभाषा। इसलिए मुस्लिम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शासन में इन दोनों भाषाओं का प्रचार खूब बढ़ गया था। हिन्दी के सभी भक्त-कवियों—सूर, तुलसी आदि-ने भी इन भाषाओं के शब्दों का काफी मात्रा में प्रयोग किया है। कबीर में भी ऐसे शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, जो उस समय तक जन-जीवन में घुलमिल गए थे। कबीर में एक विशेषता और पाई जाती है। उन्होंने जब 'अवधू' को सम्बोधित किया है तो प्रायः नाथयोगियों की शब्दावली का प्रयोग किया है, जब हिन्दू विधि-विधानों का खण्डन किया है तब संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है और जब मुल्ला-मौलवी को फटकारा है तब फारसी-अरबी शब्दों का सहारा लिया है। इससे कथन में स्वाभाविकता आ ही गयी है, साथ ही इससे कबीर के असीम शब्द-ज्ञान तथा सटीक शब्द प्रयोग का भी प्रमाण मिल जाता है। उनके द्वारा प्रयुक्त अरबी-फारसी के कतिपय शब्दों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

फारसी—करद (कटार), करिगह (करघा), कंदूरी (खाना खाने का कपड़ा), असरारा (हठपूर्वक), इफतरा (आरोप), कारकुन (प्रबन्धकर्त्ता), चेजारा (कारीगर); दरगह (दरबार), दरवेसा (फकीर, साधु), दरीचै (झरोखा), दस्तगीरि (मददगार), दीदार (दर्शन), पाकंपाक (पवित्रों में पवित्र)।

अरबी—कसद (शक्तिशाली), ख़ता (अपराध); जुलुम (अत्याचार); तष्टा (तसला); तदबीर (उपाय); नजरि (दृष्टि); नफर (नौकर), नबी (दूत), निसाफ (न्याय), मजलिस (सभा); मिसकीन (दीन); सदके (न्यौछावर जाना)।

उनका एक पद ऐसा भी मिलता है जिसे देखकर लगता है कि यह अरबी-फारसी में ही रचा गया है। पद इस प्रकार है—

बंदे खोज दिल हर रोज नाँ फिरु परेसानी माँहि।
यह जु दुनिया सिहरु मेला कोई दस्तगोरी नांहि॥
बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ।
टुक दम करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ॥
दरोगु पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबरु बादु बकाहिं।
हक साँच खालिक खलक म्यानैं स्याम मूरति नांहि॥
असमांन म्यांनै लहंग दरिया गुसल करदः बूद।
करि फिकिर दाइम लाइ चसमैं जहाँ तहाँ मौजूद॥
अल्लाह पाकंपाक है सक करउ जे दूसर कोइ।
कबीर करम करीम का यहु करै जांनै सोइ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस एक ही पद में बंदे, दस्तगीरी, दम, दरोगु, बादु, असमान, दरिया, करदः बूद, चसमै, पाकंपाक आदि फारसी के शब्दों तथा सिहरु, कतेब, इफतरा, फिकरु, करारी, हजूर, हक, खालिक, खलक, दाइम, अल्लाह, सक, करम, करीम आदि अरबी शब्दों का प्रयोग कबीर के असाधारण शब्द-ज्ञान का परिचायक है।

अरबी-फारसी के शब्दों के साथ ही संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग कबीर की बहुज्ञता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। ऐसे कुछ शब्द हैं—उतंग (उत्तुंग), उदक (जल), उपाधि (अवच्छेदक सीमाएँ), कपाट (द्वार), कलत्र (स्त्री); कीर (तोता), जलनिधि (सागर), तत्तुमसी (तत् त्वम् असि), नन्दन (पुत्र), नभ (आकाश); पारधी (शिकारी), पारन (व्रत के बाद का भोजन), पावक (अग्नि), पिपीलिका (चींटी), पुरन्दर (इन्द्र) आदि। यही नहीं, कबीर ने संस्कृत के कतिपय ऐसे विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है जिनका अर्थ करने में बड़े-बड़े विद्वानों एवं टीकाकारों को भी भ्रान्तियाँ हुई हैं। ऐसा एक शब्द है—अनल (मन उनमन उस अंड ज्यों, अनल अकासां जोइ)। इसका अर्थ प्रायः सभी टीकाकारों ने 'अग्नि' किया है। किन्तु 'अग्नि' से यहाँ कोई संगति नहीं बैठती। यहां 'अनल' का तात्पर्य एक ऐसी चिड़िया से है जो सदा आकाश में उड़ा करती है और वहीं अंडे देती है। इसका अंडा पृथ्वी पर गिरने से पहले पककर फूट जाता है और बच्चा अंडे से निकलकर उड़ता हुआ अपने माँ-बाप से जा मिलता है। इसी प्रकार एक अन्य प्रयोग है—प्रगटे पवन पानी औ छाया। 'छाया' शब्द का प्रायः अर्थ किया गया है—प्रतिबिम्ब, अंधकार आदि। वस्तुतः यह संस्कृत का शब्द है, जिसका यहाँ अर्थ है तेज—(दे० अमर कोष, पृ० ४२४—'छाया' का अर्थ—सूर्य प्रिया कान्तिः प्रतिबिम्ब मनातपः)। इसके अतिरिक्त कबीर ने एक ही शब्द का संदर्भ-विशेष में भिन्न-भिन्न अर्थों में ही प्रयोग किया है, जैसे 'गुन' शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं यथा—रहस्य (पद २५३-१) रस्सी या डोरी (सा० सब (४०) १-१), परिणाम, पदार्थ (र० ४०-३), लाभ, प्रभाव, (र० ११-८), परमतत्व (सब ५०-८), कीर्तन-भजन, त्रिगुणात्मक बंधन (सा० सुमि० (२) २८-१, सब० ५०-६)। इसी प्रकार 'गुरु' शब्द का प्रयोग चार अर्थों में किया गया है—भेद या रहस्य (पद ३४०-८); मस्तूल (कहरा (३) १-२६); सद्गुरु (पद ३११-५); महान् पुरुष (र० ४-१); 'पल्लौ' शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त है—विस्तार (हिंडोला (८) १-१४), पत्ता (बिरहुली (७) १), अँगुली (वसंत (४) ८-१), 'वारा' के चार अर्थ मिलते हैं—जला दिया (सब० ८-७); बालक (विप्र० (२) २६), बारम्बार (सब० १५४-१), विलम्ब (र० १३-१०), 'सबद' छः अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—दुर्वचन (सा० कुसब० (३६) १-२), दीक्षा (र० ३७-६); आकाश का गुण (सब० १८४-४), उपदेश (सा० मन० (१३) १८-२), अनाहत नाद (सा०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब० (४०) १-१), आप्तवचन (सा० ३१-१०)। कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं, जिन्हें कबीर ने संस्कृत से भी लिया है और अरबी-फारसी से भी, जैसे—करम (अ०) = दया (सब० १८१-१०) तथा संस्कृत कर्म० (सब० ४-१), कुल (अ०) = समस्त (र० ८-७), संस्कृत 'कुटुम्ब' परिवार (सा० चिता० (१२) ४५-१), 'खसम' फारसी = स्वामी या पति (र० ५२-२) तथा संस्कृत (ख+सम), अकाश के समान या निर्गुण ब्रह्म (र० ५-८)। कबीर के इस शब्द-ज्ञान को देखकर कौन कह सकता है कि वह अपढ़ थे ?

उनके काव्य को सर्वाधिक दुरूह बनाने वाले शब्द हैं—पारिभाषिक एवं प्रतीकात्मक। कबीर ने अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन अनेक साधना-सम्प्रदायों से शब्दों को ग्रहण किया है। ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्द हैं, जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में नए-नए अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। इस अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया में कबीर और आगे बढ़ गए हैं और कहीं-कहीं पर प्राचीन शब्दों का सर्वथा नए अर्थों में प्रयोग किया है। यही स्थिति प्रतीकात्मक शब्दों की है। एक ही शब्द अनेक प्रतीकों के लिए आया है, जैसे 'अलख', माया (र० २६-७) के लिए भी है और ब्रह्म (सा० पर० (५) १५-२) के लिए भी। 'कँवल' छः प्रतीकों के लिए प्रयुक्त है—प्राणशक्ति का चक्र (सा० पर० (५) ४०-१), हृदयस्थ आत्मा (सा० पर० (५) ५-२), प्रभु या ईश्वर (सब० १०६-१), सहस्रार चक्र (सा० लैं० (१०) २-२); हृदय (पद ३२२-३), 'तरवर' छः प्रतीकों के लिए आया है—शरीर (सब० ११६-३), ब्रह्म (सा० सजी० (४७) ७-१), सुषुम्ना नाड़ी (सब० १२-३), प्रकृति या माया (सब० ३७-३); सहजावस्था (सा० सजी० (४७) ६-१), संसार (सब० ८८-१), 'जल' छः का प्रतीक है—मानसरोवर (सा० पर० (५) ४६-१); ब्रह्म (सब० १०७-१), शुद्ध हृदय (सब० ३२-४); अमृत (सा० पर० (५) ३६-१), विषयासक्त मानस (सा० भ्रम० वि० (४) ६-२) आनंदसागर (सब० ३२-७), प्राण (पद ३२२-३)।

इस प्रकार कबीर के काव्य में विभिन्न भाषाओं और बोलियों के शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग उनके पाठक के समक्ष अनेक प्रकार की समस्या पैदा कर देते हैं और प्रायः उनका अर्थ करने में भ्रान्तियाँ हुई हैं। इसी असुविधा को दूर करने के प्रयोजन से यह 'कबीर काव्य कोश' तैयार किया गया है। यतः कबीर में सामान्य शब्दों के साथ ही पारिभाषिक एवं प्रतीकात्मक शब्दों का भी बाहुल्य है और ऐसे शब्द अर्थ की गम्भीर समस्या पैदा करते हैं, अतः पारिभाषिक एवं प्रतीकात्मक शब्दों को अलग से विस्तृत अर्थ के साथ दिया गया है। कबीर में संख्यावाची शब्द भी बहुत हैं। इनके प्रयोग में उन्होंने प्रायः संकेतात्मक पद्धति का सहारा लिया है। अतः संख्यावाची शब्दों को भी अलग करके प्रस्तुत किया गया है। कबीर को भारतीय सांस्कृतिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परम्परा का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने पौराणिक-ऐतिहासिक सन्दर्भों का विपुल मात्रा में प्रयोग किया है। कोश के अंत में ऐसे संदर्भों का विस्तृत परिचय भी दे दिया गया है। इससे प्रस्तुत कोश की सार्थकता एवं महत्ता बढ़ गई है।

प्रस्तुत कोश में संदर्भ 'कबीर वाङ्मय'-खण्ड १. रमैनी, खण्ड २. सबद तथा खण्ड ३. साखी (डॉ० जयदेव सिंह—डॉ० वासुदेव सिंह) से दिये गए हैं। 'सबद' के लिए सबद व पद दोनों का प्रयोग किया गया है।

कोश के कार्ड तैयार करने में मेरे प्रिय शिष्य डॉ० रामजीत यादव और श्री नरेन्द्र कुमार सिंह तथा मेरी सुपुत्री कु० श्रद्धा सिंह और सुपुत्र आयुष्मान् हिमांशुशेखर सिंह ने बड़ी लगन एवं तत्परता से कार्य किया है। उनके मंगलमय भविष्य तथा साहित्यिक अभिरुचि के विकास के लिए मेरी शुभ कामनाएँ। कोश को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में श्री पं० शिवशंकर मिश्र का अपूर्व सहयोग रहा है। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। विश्वविद्यालय प्रकाशन के संचालक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी का मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने बड़े मनोयोग से इसे सुरुचिपूर्ण रूप में प्रकाशित करने की उदारता दिखाई है।

नवम्बर, १९८७ वासुदेव सिंह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकेत-विवृति

अ०—अरबी
अनु०—अनुनासिक
अव्य०—अव्यय
कह०—कहरा
क्रि०—क्रिया
क्रि० वि०—क्रिया विशेषण
चांच०—चांचर
ज्ञान० चौं०—ज्ञान चौंतीसा
दे०—देखिए
[दे०]—देशज
[देश०]—देशज
पु०—पुंल्लिग
प्र०—प्रतीकात्मक
प्रत्य०—प्रत्यय
प्रा०—प्राकृत
फा०—फारसी
बी०—बीजक
भाव०—भाववाचक संज्ञा
यौ०—यौगिक
र०—रमैनी
वसं०—वसंत
वि०—विशेषण
विप्र०—विप्रमतीसी
सं०—संस्कृत
सब०—सबद
सर्व०—सर्वनाम
सा० अपा०—साखी अपारिष को अंग
सा० अबि०—साखी अबिहड़ को अंग
सा० असा०—साखी असाधु को अंग
सा० उपज०—साखी उपजणि को अंग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० उपदे०—साखी उपदेश को अंग
सा० कथ० वि० कर०—साखी कथनी बिना करनी को अंग
सा० कर० वि० कथ०—साखी करनी बिना कथनी को अंग
सा० कस्तू०—साखी कस्तूरिया को अंग
सा० कामी० न०—साखी कामी नर को अंग
सा० काल०—साखी काल को अंग
सा० कुसं०—साखी कुसंगति को अंग
सा० कुस०—साखी कुसबद को अंग
सा० गु०—साखी गुरुदेव को अंग
सा० गु० सि० हे०—साखी गुरु सिष हेरा को अंग
सा० ग्या० वि०—साखी ग्यान विरह को अंग
सा० चाँण०—साखी चाँणक को अंग
सा० चि० क०—साखी चित कपटी को अंग
सा० चि०—साखी चितावणी को अंग
सा० जर०—साखी जरणाँ को अंग
सा० जी० मृ०—साखी जीवत मृतक को अंग
सा० दया नि०—साखी दया निरवैरता को अंग
सा० निगु०—साखी निगुणाँ को अंग
स० निन्द्या०—साखी निन्द्या को अंग
सा० निह० पति०—साखी निहकर्मी पतिव्रता को अंग
सा० पर०—साखी परचा को अंग
सा० पारि०—साखी पारिष को अंग
सा० पी० पि०—साखी पीव पिछाँणन को अंग
सा० वि०—साखी बिरह को अंग
सा० विर्क०—साखी विर्कताई को अंग
सा० बी—साखी बीनती को अंग
सा० वेली०—साखी वेली को अंग
सा० वेसा०—साखी बेसास को अंग
सा० भेष०—स.खी भेष को अंग
सा० भ्रम वि०—साखी भ्रम विधौंसण को अंग
सा० भेष०—साखी भेष को अंग
सा० मधि०—साखी मधि को अंग
सा० मन०—साखी मन को अंग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० माया०—साखी माया को अंग
सा० रस०—साखी रस को अंग
सा० लाँबि०—साखी लाँबि को अंग
सा० लै०—साखी लै को अंग
सा० विचा०—साखी विचार को अंग
सा० संग०—साखी संगति को अंग
सा० सजी०—साखी सजीवनि को अंग
सा० सब०—साखी सबद को अंग
सा० सम्र०—साखी सम्रथाई को अंग
सा० सह०—साखी सहज को अंग
सा० साँच०—साखी साँच को अंग
सा० साधु०—साखी साधु को अंग
सा० साधु० म०—साखी साधु महिमा को अंग
सा० साधु० सा०—साखी साधु साषीभूत को अंग
सा० सार०—साखी सारग्राही को अंग
सा० साषी०—साखी साषीभूत को अंग
सा० सुंद०—साखी सुन्दरि को अंग
सा० सुमि०—साखी सुमिरन को अंग
सा० सू०—साखी सूरातन को अंग
सा० सू० ज०—साखी सूषिम जनम को अंग
सा० सू० मा०—साखी सूषिम मारग को अंग
सा० हे० प्री०—साखी हेतु प्रीति को अंग
सा० हैरा०—साखी हैरान को अंग
स्त्री०—स्त्रीलिंग
हिंडो०—हिंडोला
हि०—हिन्दी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर काव्य कोश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर काव्य कोश

अंकमाल—पु०[सं०] आलिंगन, अँकवार। ~**अंकमाल** दै भेटिए, माँनौ मिले गोपाल। →सा० साधु० म० (३०) ६-२।

अंकुस—संज्ञा पु०[सं०अंकुश] बंधन, रोक। ~अब न कोइ तेरे **अंकुस** लावै। →पद २७७-२।

अंग—पु० [सं०] लक्षण। ~विषया सों न्यारा रहै, संतनि का **अंग** एह। →सा० साध० सा० (२६) १-२।

अंगिया—क्रि०[सं० अंगी(कार)] स्वीकार किया। ~दोजख तौ हम **अंगिया** यहु डर नाहीं मुज्झ। →सा० निह० पति० (११) ७-१।

अँगीठ—पु० [सं० अग्नि = आग + स्थ = ठहरना] आग रखने का बर्तन, अँगीठी। ~जे सिर, राखौं आपनाँ तौ पर सिरिज **अँगीठ**। →सा०मन० (१३) ६-२।

अँचवन—संज्ञा पु० [सं० आचमन] जल। ~छूतिहि जेवन छूतिहि **अँचवन**, छूतिहि जग उपजाया। →सब० १६६-७।

अँचवै—क्रि० [सं० आचमन] आचमन करता है, पीता है। ~बाझ पियालै अंम्रित **अँचवै**, नदी नीर भरि राखै। →सब० ३२-१३।

अँचवै—क्रि० [सं० आचमन] आचमन करते हैं, पीते हैं। ~तजि अमृत बिख काहे को **अँचवै**, गाँठी बाँधिन खोटा। →सब० १८८-५।

अँजुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलि] दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया गया गड्ढा। ~तन धन जीवन **अँजुरी** कौ पानी, जात न लागै बार। →पद २०३-५।

अंड—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मांड; विश्व। ~एकै **अंड** सकल चौरासी, भर्म भुला संसारा। →पद २६१-३।

अंड—पु० [सं०] बीज। ~एक **अंड** ओंकार ते, सब जग भयो पसार। →र० २७-८।

अण्ड—पु० [सं०] अण्डज। ~प्रगटे **अण्ड** पिण्ड ब्रह्मण्डा; प्रिथिमी प्रगट कीन्ह नौ खण्डा। →र० ३-४।

अंतर—पु० [सं०] अंतस्, भीतर, हृदय। ~जीव रूप यक **अन्तर**-वासा; **अन्तर** ज्योति कीन्ह परगासा। →र० १-१।

अंतर—पु० [सं०] मध्य। ~तन मन सौंपां पीव कौं, (तब) **अंतर** रही न रेख। →सा० सू० (४५) ३७-२।

अंतर—पु० [सं०] हृदय। ~जे राचे बेहद्द सौं, तिन सौं **अंतर** खोलि। →सा० चि० (१२) ५०-२।

अंतर—पु० [सं०] हृदय के भीतर। ~जदि विषै पियारी प्रीति सौं, तब **अन्तर** हरि नाँहि। जब **अन्तर** हरि जी बसै, तब विषया सों चित नाँहि। →सा०साध०सा० (२६) १३-१-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंतर—क्रि० वि० [सं०] भीतर ।~कबीर **अन्तर** प्रगट्यो, बिरह अग्नि को पुंज । →सा० बि० (३) १-२ ।

अंतर-ज्योति—स्त्री० [सं०] भीतरी प्रकाश, चैतन्य । ~**अन्तर-ज्योति** सब्द यक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी । →र० २-१ ।

अंतरा—पु० [सं० अन्तर] अन्तर, भेद । ~हरि बिचि घालै **अन्तरा**, माया बड़ी बिसास । →सा० (१६) ५-२ ।

अंतरि—क्रि० वि० [सं० अन्तर] भीतर । ~रतन प्रवालै परम जोंति, ता **अंतरि-अंतरि** लागे मोति । →पद २३४-४ ।

अंतरि—पु० [सं० अंतः] हृदय में, भीतर; प्राचीन हिन्दी का अधिकरण कारक का प्रयोग । ~पिंजर प्रेम प्रकासिया, **अंतरि** भया उजास । →सा० पर० (५) ४-१ ।

अंतरि—पु० [सं० अंतः] हृदय में । ~**अन्तरि** कँवल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहँ होइ । →सा० पर० (५) ७-१ ।

अंतरिछ—पु० [सं० अन्तरिक्ष] आकाश । ~जाकी पुरी **अंतरिछ** छाई, सो हरिचन्द देखल नहिं जाई । →र० ५५-५ ।

अँदेसा—पु० [फ़ा०] संशय; सन्देह । ~जाने जिव कँह परा **अँदेसा**, झूठहिं आय के कहैं सँदेसा । →र० ४३-४, सा० विन० (५६) ४-२, सा० सू० मा० (१४) ४-११ ।

अँदेसौ—स्त्री० [फ़ा०] आशंका, चिन्ता । ~**अँदेसौ** नहिं भाजिसी, संदेसौ कहियाँ । →सा० वि० (३) ६-१ ।

अंदेह—संज्ञा पु० [फ़ा० अन्देशः] चिन्ता, शंका । ~सब कोइ कहै तुम्हारी नारी मोकौं यह **अन्देह** रे । सब० १८६-३ ।

अँदोह—पु० [फ़ा०] अवसाद, दुःख । ~जिहि घरि जिता बधावना, तिहि घरि तिता **अँदोह** । →सा० मा० (१६) २८-२ ।

अंध कूप—वि० पु० [सं०] अंधा कुआँ, जिसमें कुछ दिखाई न पड़े । ~भूलि परे जीव अधिक डेराई, रजनी **अंध कूप** होय आई । →र० १६-४ ।

अँधला—वि० [सं० अंध] अंधा, नेत्र-हीन । ~जाका गुरु भी **अँधला**; चेला खरा निरंध । →सा०गु०(१) १५-१ ।

अंन—पु० [सं० अन्न] अनाज, दाने । ~**अंन** पान जहाँ जरै, तहाँ तैं अनल न चखियौ । →सा० वेसा० (३५) १-४ ।

अंबर—संज्ञा पु० [सं०] आकाश ।~ **अंबर** मद्धे दीसै तारा; कौन चतुर ऐसा चितरनहारा ।→सब० ७४-३ ।

अंबराँउँ—पु० [सं० आम्रराजि] आम का बगीचा ।~चन्दन की कुटकी भली, नाँ बँबूर **अंबराँउँ** । →सा० साधु म० (३०) १-१ ।

अँबली—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रबेलि] आम्रवेलि ।~आंब चढ़ी **अँबली** रे **अँबली** बबूर चढ़ी नगवेली रे। →पद २५५-३ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अँमी—पु० [सं० अमृत] अमृत।~राँम नाँम सींचा **अँमी**, फल लागा विस्वास। →सा० बेसा० (३५) १६-२।

अइलीं—क्रि०[भोज०] आये।~हम चलि **अइलीं** तुहरे सरना, कतहुँ न देखौं हरि के चरना। →सब० १६-५।

अउंध—वि० [सं० अधः] उलटा।~जब दस मास **अउंध** मुख होते सो दिन काहे भूले। →सब० १७६-२।

अऊत—त्रि० [सं०अ + हि०पूत] पुत्ररहित, निस्संतान। ~राँम सुमिरि निरभै हुआ, सब जग गया **अऊत**। →सा० साधु म० (३०) ७-२।

अकथ—वि० [सं०] अनिर्वचनीय, अकथनीय।~कहै कबीर यह **अकथ** कथा है, कहताँ कही न जाई। →सब० १७-५, पद २५१-७, सब० १-१।

अकथ—वि० [सं०] विचित्र।~नर को ढाढ़स देखहु आई, कछु **अकथ** कथा है भाई। →सब० १५५-१।

अकथा—वि० [सं० अ + कथ्] अकथनीय, अनिर्वचनीय।~मौर के माथे दुलहा दीन्हा, **अकथा** जोरि कहाता। → सब० ३६-२।

अकन—पु० [सं० अंकन] चिह्न।~कारे मूंड कौ एक न छांड़्यौ, अजहूँ **अकन** कुंवारी। →सब० २६-४।

अकरम—संज्ञा पु० [सं० अकर्म] निषिद्ध कर्म।~धरम कथै जहँ जीव बधै तहँ, **अकरम** करे मोरे भाई। → सब० १६५-५।

अकरम—पु० [सं० अ + कर्म] निष्काम। ~**अकरम** करै करम को धावै, पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै। →र० ५६-३।

अकल—वि० [सं०] अखण्ड, पूर्ण।~ अविगत **अकल** अनूपम देखा, कहताँ कहा न जाई। →सब० १३-७; पद २१२-३, पद ३२१-२।

अकल—वि० [सं०] १. कला अथवा अंश से रहित, निरवयव। २. सर्जन शक्ति की पूर्व अवस्था, निर्गुण।~अबरन एक **अकल** अबिनासी; घटि घटि आप रहै। →पद २८०-२।

अकल—वि० [सं०] असीम, निराकार; अखण्ड।~**अकल** निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि करैं अनंदा। →सब० १४३-८।

अकलप—वि० [अ + सं० कल्प] निर्विकल्प, विकल्परहित।~मैमंता अविगत रता, **अकलप** आसा जीति। → सा० रस० (६) ६-२।

अकहुआ—वि० [हि० अ + कहना + उआ (प्रत्य०)] कहने में न आने वाला, अनिर्वाच्य।~जाकर नाम **अकहुआ** रे भाई, ताकर काह रमैनी गाई। →र० ५१-१।

अकाज—पु० [सं० अकार्य] अहित, हानि। ~साँचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै **अकाज**। →सा० साँच० (२२) ५-२।

अकाज—संज्ञा पु० [सं० अ + हि० काज] हानि, कुगति।~ताकर जो कछु होय **अकाज**, ताहि दोस नहि साहेब लाज। →वसंत (४) ११-७।

अकाज—पु० [सं० अकार्य] कार्य न होना;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नुकसान या अहित ।~कबीर सूतां क्या करै, सूताँ होइ **अकाज** । →सा० सुमि० (२) १५-१ ।

अकारथ—क्रि० वि० [सं० अकार्यार्थ] निष्फल, निष्प्रयोजन ।~छूँछा परे **अकारथ** जाई, कहहिं कबीर चित चेतहु भाई । →र० ५६-४, सब० ७०-१० ।

अकासैं—संज्ञा पु० [सं० आकाश] चिदाकाश ।~बिनु पंखै उड़ि जाइ **अकासैं**, जीवहि मरन न सूझै । →पद १६६-१० ।

अकिल—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल] बुद्धि, समझ ।~जैसे मदपी गांठि अरथ दै, घरहु कै **अकिल** गवाँई हो । →कह० (३) ६-३ ।

अकिलि—संज्ञा स्त्री०[अ० अक्ल] बुद्धि । ~गुर परसादि **अकिलि** भई अवरैं, नातरु था बेगांनां । →पद २१६-२ ।

अक्खिर—पु० [सं० अक्षर] अक्षर ।~बावन **अक्खिर** सोधि करि, ररै ममै चित लाइ । →सा० कथ० वि० क० (१६) २-२, सब० ११३-५ ।

अक्षय—वि० [सं०] अविनाशी ।~इन्द्री बिनु भोग स्वाद जिभ्या बिनु, **अक्षय** पिंड बिहूना । →पद २७०-४ ।

अखंडधार—वि० [सं० अखण्ड + हिं० धार] लगातार, निरन्तर ।~बरसै अगिन **अखंडधार**, बन हरियर भौ अठारह भार । →वसंत (४) १-२ ।

अखंडित—वि० [सं० अखण्ड से] पूर्ण । ~पहिले भूले ब्रह्म **अखंडित**, झाँई आपुहि मानी । →पद २६४-२ ।

अखै—वि० [सं० अक्षय] अविनाशी, अमर ।~खसमहिं छोड़ि छिमा होय रहई, होय न खीन **अखै** पद लहई । →ज्ञान० चौं० (१) ६ ।

अगनि—सं० स्त्री० [सं० अग्नि] आग । ~इला पिंगला भाठी कीन्हीं, ब्रह्म **अगनि** परजारी । →पद २०१-३ ।

अगम—वि० [अ + √गम्] जहाँ किसी की पहुँच न हो ।~एक नाम है **अगम** गँभीरा, तहवाँ स्थिर दास कबीरा । →र० ३४-५ ।

अगम—वि० [सं०] बुद्धि से परे ।~**अगम** द्रुगम गढ़ि रचिऔ बास, जामहि जोति करै परगास । →सब० ४३-३ ।

अगम—वि० [सं० अगम्य] अजेय, असाध्य (कर्म) ।~**अगम** दुर्गम गढ़ देउँ छुड़ाई, औरौ बात सुनहु कछु आई । →र० ५८-२ ।

अगम—वि० [सं०] जहाँ जाया न जा सके; पहुँच के बाहर ।~**अगम** अगोचर गमि नहीं, जहाँ जगमगै जोति । →सा० परचा० (५) ४-१ ।

अगम—वि०[सं०] १. अगम्य, २. निर्गुण । ~**अगम** काटि गम कियहु हो रमैया राम । →बेलि० (६) १-१७ ।

अगम—वि० [सं० अगम्य] दुर्गम, कठिन । ~**अगम** निगम गढ़ रचि ले अवास, तहवाँ जोति करै परकास । →सब० १४०-३ ।

अगम—वि० [सं० अगम्य] पहुँच के बाहर । ~कहै कबीर **अगम** किया गम रांम रंग रंगी । →पद ३२८-१० ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अगमन—क्रि० वि० [सं० अग्रम्] पहले से ही। ~कल्हि गड़ै जो कांटवा, **अगमन** कस न खुराइ। →सा० उपज० (५०) १-२।

अगमन—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] पहले ही, आगे ही। ~छेव परे केहु अंत न पावा, कहँहि कबीर **अगमन** गोह-रावा। →ज्ञान चौं० (१) ७०।

अगमपुर—यौ० [हिं०] जहाँ सभी लोग नहीं पहुँच सकते, सिद्धावस्था। ~मन मारि **अगमपुर** लीया, चित्र-गुप्त परे डेरा किया। →पद २०५-७।

अगर—संज्ञा पु० [सं० अगुरु] एक प्रकार की लकड़ी; जो सुगन्धित होती है, धूप। ~चोवा चंदन **अगर** पान, घर घर सुम्रिति होय पुरान।→वसंत (४) ११-२।

अगह—वि० [सं० अग्राह्य] जो पकड़ा न जा सके। ~पेड़ विकट है महा सिलहला **अगह** गहा नहिं जावै। → पद १७८-३।

अगाध—वि० [सं०] अथाह, अपार, असीम, अनंत। ~ओ **अगाध** ए का कहैं; भारी अचरज होइ। →सा० हैरा० (६) १-२।

अगारी—संज्ञा पु० [सं० आगार से] हृदय। ~मूँदे मदन काटि कर्म कस्मल, संतत चुवत **अगारी**।→पद ३०३-४।

अगाह—वि० [सं० अगाध] अथाह। ~अद्भुत अगम **अगाह** रचो है, ई सभ सोभा तेरे। →सब० ६४-१८।

अगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] ज्ञाना-ग्नि। ~बरसै **अगिन** अखंडधार, बन हरियर भौ अठारह भार।→वसंत (४) १-२।

अगुवन—पु० [सं० अग्र से] आगे, सामने। ~पढ़िकै सास्त्र जीव वध करई, मूड़ काटि **अगुवन** के धरई। →र० ३१-४।

अगोचर—वि० [सं०] इंद्रियों की पहुँच से परे, इन्द्रियातीत।~अगम **अगोचर** गमि नहीं; जहाँ जगमगै जोति। → परचा० (५) ४-१, सब० ४३-८।

अगोचर—वि० [सं०] १. जो प्रत्यक्ष नहीं है। २. परमतत्व; जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे है।~अँधियारे दीपक चहिऐ, तब वस्तु **अगोचर** लहिऐ। →पद ३३६-५।

अग्या– संज्ञा स्त्री०[सं० आज्ञा] आदेश। ~चाँद सूरज दोउ झूलहि उनहु न **अग्या** भेव। →हिंडो० (८) ३-४।

अघ—संज्ञा पु० [सं०] पाप। ~जुगन-जुगन की त्रिखा बुझांनीं करम भरम **अघ** ब्याधि टरै। →पद २४६-७।

अघटि—पु० [सं० अवघट] विकट मार्ग। ~**अघटि** चले सो नगरि पहूँते, बाट चले ते लूटे। →पद २५-३।

अघाइ—क्रि० वि० [प्रा० अग्घाण] जी-भरकर, संतुष्ट होकर। ~राँम नाँम करि बोंहड़ा, बोहौ बीज **अघाइ**। →सा० वेसा० (३५) ४-१।

अघाई—क्रि० [प्रा० अग्घाण] तृप्त होती है।~एतिक गइया खाय बढ़ायो; गइया तहुँ न **अघाई**। →पद २०६-८, पद २०१-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अघट्ट—वि० [अ + हि० घटना (कम होना)] न घटने वाली, कम न होने वाली, छोटी न होने वाली ।~दीपक दीया तेल भरि, बाती दई **अघट्ट**। →सा० गु० (१) १२-१ ।

अचंभा—संज्ञा पु० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुव] आश्चर्य । ~एक **अचंभा** ऐसा भया । →सब० ४७-१, सा० हैरा० (६) २-२, सा० जी० मृ० (४१) ४-२, सब० ४८-१ ।

अचंभौ—वि०-दे० 'अचंभा' ।

अचरज –पु० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य । ~ओ अगाध ए का कहैं, भारी **अचरज** होइ । →सा० हैरा० (६) १-२, पद २५०-३, सा० उपज० (५०) ३-२ ।

अचारज—वि० [सं० आचार्य] आचार्य । ~सुकदेव **अचारज** दु:ख कै कारनि, गरभ सौं माया त्यागी हो । →सब० १३८-४ ।

अचारा—संज्ञा पु० [सं०आचार] आचार । ~हरि हर ब्रह्मा नहिं सिव सक्ती, तीर्थउ नाहि **अचारा** । → सब० १६६-७ ।

अचिंत—वि० [सं० अ + चिन्त] निश्चिन्त, चिन्ता रहित ।~चिंता छांड़ि **अचिंत** रहु, साँई है समरत्थ । →सा० बेसा० (३५) ६-१ ।

अचिंता—वि०[सं०अ + चिन्ता]निश्चिन्त, बेखबर ।~काल **अचिंता** झड़पसी, ज्यौं तीतर कौं वाज । →सा० का० (४६) ६-२ ।

अचेत —बि० [सं०] बेसुध ।~ग्याँन **अचेत** फिरैं नर लोई, ताथैं जनम जनम डहकाए । →पद ३३१-२ ।

अचेत —वि० [सं०] बेहोश, अज्ञानी ।~ माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरैं **अचेत** । →सा० भेष० (२४) ४-१ ।

अचेत—पु० [सं०] अज्ञान ।~कहँ लगि कहौं अचेतहि गैऊ, चेत **अचेत** झगर एक भैऊ । →र० ४७-६ ।

अचेतहि– क्रि० वि० [सं० अ + चेत] अज्ञानवश ।~कहँ लगि कहौं **अचेतहि** गैऊ, चेत अचेत झगर एक भैऊ। →र० ४७-६ ।

अछत – क्रि० वि० [सं० √अस् (हि० क्रि० अछना)] रहते हुए । ~जीव **अछत** जाँमैं मरैं, सूषिम लखैं न कोइ ।→सा० सू० ज० (१५) २-२, पद ३०५-६, कह० (३) १-२०, पद २५१-४ ।

अछता—१. पु० [सं० अक्षत] जो क्षत न हो, अखण्ड आत्मा । २. क्रि० वि० [सं०√अस् (हि० क्रि० अछना)] विद्यमान, रहते हुए ।~लोभ बड़ाई कारनैं, **अछता** मूल न खोइ । → चिता० (१२) ४१-२ ।

अछता—क्रि०-दे० 'अछत' ।

अछते – क्रि० वि०-दे० 'अछत' । ~बिन नैनन के सब जग देखै, लोचन **अछते** अंधा । →पद २५-७ ।

अछलों—क्रि० [सं०√अस्] था । ~तब मैं **अछलों** मन वैरागी, तजलों कुटुम राम रट लागीं । →सब० १६-२, सब० १६६-५ ।

अछित—वि० [सं० अक्षत] विद्यमान (शाश्वत) ।~जीव **अछित** जोबन गया, किछु किया न नीका । → सब० ६६-७ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अजंच—वि० [सं० अयाची] जिसे याचना की आवश्यकता न हो, सम्पन्न।~कबीर जाचन जाइ था, आगे मिला **अजंच**। →सा० उपज० (५०) १२-१।

अजगूता—भाव० [सं० अयुक्त] आश्चर्य। ~आई करगी भौ **अजगूता**, जन्म जन्म जम पहिरे बूता। →र० १०-२।

अजब—वि० [अ०] अद्‌भुत, विलक्षण। ~तेहि ऊपर कछु **अजब** तमासा, मारो है जम किल्ली। →सब० ६४-१६, पद ३२७-१।

अजर—वि० [सं०] नित्य नवीन।~रस गगन गुफा मैं **अजर** झरै। →पद २४६-१।

अजर—वि० [सं०] जो वृद्ध न हो।~**अजर** अमर एक बिरिछ निरंजन डारा। →पद ३१६-३।

अजरामर—वि० [सं०] अजर और अमर।~मरनैं पहिले जो मरै, तौं कलि **अजरामर** होइ। →सा० जी० मृ० (४१) ८-२।

अजहुँ—अव्य० [सं० अद्य+हुँ] आज भी।~पढ़ै वेद औ करै बड़ाई, संसै गांठि **अजहुँ** नहिं जाई। →र० ३१-३।

अजराइल—वि० [सं० अजर] जीर्ण न होने वाला, टिकाऊ।~ऐसैं जो **अजराइल** मारै, मस्तकि आवै भाग रे। →सब० ११८-४।

अजान—पु० [सं० अज्ञान] अज्ञान, न जानना।~जो यह एक न जानियाँ, तौ सबही जान **अजान**। →सा० निह० पति० (११) ८-२।

अटपट—वि० [प्रा० अट्टपट्ट] विचित्र, जटिल, गूढ़।~**अटपट** कुंभरा करै कुंभरैया, चमरा गाँव न बाँचै हो। →कह० (३) २-२।

अटल—वि० [सं०] स्थिर।~रही लटापटि जुटि जेहि माहीं, होंहि **अटल** ते कतहूं न जाहीं। →ज्ञान० चौं० (१) २६।

अठसठि—वि० [सं० अष्टषष्टि; प्रा० अट्ठसट्ठि] अड़सठ, बहुसंख्यक। ~तूँबी **अठसठि** तीरथ न्हाई, कडुवापन तऊ न जाई। →सब० ७६-४।

अठारह भार—[मुहा०] सम्पूर्ण वनस्पति।~बरसै अगिन अखंडधार, वन हरियर भौ **अठारह भार**। वसंत (४) १-२।

अड़बंद—संज्ञा पु० [हि० √अड़+संबंध] कौपीन। ~द्वापर मैं हंम **अड़बंद** पहिरा, कलउ फिर्यौ नौ खंडा। →सब० ६३-६।

अढ़ाई—वि०[सं० अर्द्धद्वितीय, प्रा० अड्ढाइय] दो और आधा। ~गजैं न मनिऐ तौलि न तुलिऐ पहजन सेर **अढ़ाई**। →पद २७१-५।

अढ़ाई—संज्ञा पु० [हि०] ढाई गुना। ~जाके देव वेद पछराखा, ताके होत **अढ़ाई** हो। →कहरा (३) ४-४।

अतीत—वि० [सं०] न्यारा, अलग, परे। ~कला **अतीत** आदि निधि निरमल; ताको सदा बिचारत रहिए। →पद ३०५-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतीत—पु० [सं०] विषयातीत, इन्द्रिया-तीत, साधु। ~कबीर भेष **अतीत** का, करतूति करै अपराध। →सा० असा० (२७) १-१।

अतीत—पु० [सं०] त्रिगुणातीत, वासना-तीत, विरक्त।~करहिं लराई मति के मंदा, ई **अतीत** की तरकस बंदा। →र० ६६-६।

अतीत—क्रि० वि० [सं०] कालातीत। ~सबद **अतीत** अनाहद राता, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी रे।→पद ३०-२।

अतीत—वि० [सं०] पृथक्, परे, अलग। ~गुन **अतीत** जस निरगुन आप, भरम जेवरी जग कियौ सांप।→सब० ५०-८।

अतीति—वि० [सं० अति + ईति] आगे चला गया हुआ, द्वन्द्वातीत, द्वन्द्व से परे। ~राम अर्मलि माता रहै, जीवन मुकुति **अतीति**। →सा० रस० (६) ६-२।

अथई—क्रि० [सं० अस्त] अस्त हो गया, नष्ट हो गया। ~वोछी मति चंदा गो **अथई**, त्रिकुटी संगम स्वामी बसई। →र० १३-६।

अथिर—वि० [सं० अस्थिर] अस्थिर, चंचल। ~काची काया मन **अथिर**, थिर थिर करम करंत। →सा० काल० (४६) ३०-१।

अदग—वि० (सं० अ + फ़ा० दाग़) बिना दाग के, निष्कलंक।~काजर वाकी रेख है, **अदग** गया नहिं कोय। →चाँच० (५) १-२३।

अदबुद—वि० [सं० अद्भुत्] विलक्षण, अलौकिक।~सोभा **अदबुद** रूप की, महिमा बरनि न जाय। चाँच० (५) १-३।

अदबुध—वि० [अद् + सं० बुध] अज्ञानी, मूर्ख। ~दिना सात लौं बाकी सही, बुध **अदबुध** अचरज का कही।→र० ७२-३।

अदया—स्त्री० [सं० अ + दया] दया के बिना, अकृपा। ~**अदया** अल्लह राम की, कुरलै कौनी कूष।→सा० चिता० (१२) ४७-१।

अदल—संज्ञा पु० [अ०] न्याय, शासन। ~सासु ननद मिलि **अदल** चलाई, मादरिया ग्रिह बैठी आई। →सब० १५१-२।

अदिष्ट—पु० [सं० अदृष्ट] कर्मों का वह फल जो देखा नहीं जा सकता, भाग्य। ~कहै कबीरा दूरि कर, आतम **अदिष्ट** काल।→सा०सू०ज० (१५) १-२।

अदिष्टि—वि० [सं० अदृष्ट] जिसे देखा न जा सके, अदृष्ट, ब्रह्म।~देखत जो नहिं देखिया, **अदिष्टि** कहावै सोय। →र० ८-८।

अद्बुद—वि० [सं० अद्भुत] आश्चर्यजनक, विचित्र। ~**अद्बुद** पंथ बरनि नहिं जाई, भूले राम भूलि दुनियाई। →र० १८-१, र० ४-३।

अधकूचा—वि० [सं० अर्द्ध + हिं० कच्चा] अधकचरा, अपरिपक्व, अधूरा। ~ताकर हाल होय **अधकूचा**, छव दरसन मँह जैनि बिगूचा। →र० ३०-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधधर—क्रि० वि० [सं० अधोधः] बीच में ही। ~भौजलि **अधधर** थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत अपार। → सब० ७३-६।

अधधर—क्रि० वि० [सं० अधोधः] एक दम नीचे। ~भेरैं चढ़े सो **अधधर** डूबे, निराधार भए पारं। →सब० २५-२।

अधर—सं० पु० [हि०] बीच में। ~ रपटि पांव गिरि परे **अधर** तैं आइ परे भुइं मांहीं। →सब० १७८-६।

अधर—सं० पु० [सं० अ + √धृ] बिना आधार के, शून्य स्थान। ~बिनु जिभ्या गावै गुन रसाल, बिनु चरनन चालै **अधर** चाल। →पद २२५-३।

अधारा—पु० [सं० आधार] सहारा, आलम्बन। ~बरिसै तपै अखंडित धारा, रैनि भयावन किछू न **अधारा**। →र० १६-६।

अधिकार—भाव० [सं०] अधिकता से। ~ऊँचा कुल कै कारनैं, बंस बढ़ा **अधिकार**। →सा० निगु० (५५) ११-१।

अधीरा—वि० [सं० अधीर] व्याकुल। ~बिरहिनी फिरै है नाथ **अधीरा**। →सब० १६४-१।

अनंगु—सं० पु० [सं० अनङ्ग] कामदेव। ~बपु बारी **अनंगु** भिरगा रुचि रुचि सर मेलै। →सब० १००-२।

अनंत—पु० [सं०] ब्रह्म। ~तरवर एक **अनंत** मूरति, सुरताँ लेहु पिछानी। →सब० १२-३।

अनँत—वि० [सं० अनंत] अपार, असीम, जिसका कोई आदि-अंत नहीं है अर्थात् काल से परे। ~सतगुरु की महिमा **अनँत**, अनँत किया उपगार। →सा० गुरु० (१) ३-१।

अनँवासी—पु० [सं० अनुवासन] नया, अप्रयुक्त बर्तन। ~तानैं बानैं पड़ी **अनँवासी**, सूत कहै बुनि गाढ़ी। →सब० ३०-६।

अन—सं० पु० [सं० अन्न] अनाज, खाद्य पदार्थ। ~**अन** को त्यागैं मन नहिं हटकैं, पारन करैं सगोती। →पद ३०४-४।

अनआया—भाव० [अन + हि० आना] न आने के बराबर। ~आया **अनआया** भया, जे बहु राता संसार। →सा० चिता० (१२) २६-१।

अनकीया—क्रि० [सं० अन + हि० करना] बिना किए हुए। ~कबीर किया कछु होत नहिं, **अनकीया** सब होइ। →सा० सम्र० (३८) २-१।

अनख—संज्ञा पु० [हि०] दुःख, झंझट। ~को अब **अनख** सहै प्रतिदिन को, नाहिन रहनि हमारो। →सब० १८८-२।

अनगायाँ - वि० [सं०अन + गान] भगवान् का गुणगान न करने वाला। ~गाया तिन पाया नहीं, **अनगायाँ** तै दूरि। → सा० बेसा० (३५) २१-१।

अनचिन्ता—वि० [अन + सं० चिन्ता] जो नहीं सोचा गया है। ~**अनचिन्ता** हरि जी करै, जो तोहि चिंति न होइ। →सा० बेसा० (३५) ६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनचिन्ह—वि० [हिं०] अपरिचित, बिना पहचान का। ~**अनचिन्ह** रहेउ न कियेहु चिन्हारी; सो कैसे पहिचानै हो। →कह० (३) १-१५।

अनजाने—वि० [हिं०] अज्ञानी। ~जान पुरुषवा मोर अहार, **अनजाने** पर करौं सिंगार। →वसं० (४) ४-४।

अनत—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र] अन्यत्र, दूसरी जगह। ~मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि **अनत** न जाहिं। →सा० पर० (५) ३६-२, सब० १६-३, पद ३४१-१, पद ३१७-१०, र० १५-२, र० ६४-५।

अनते—क्रि० वि०-दे० 'अनत'।

अनतैं—क्रि० वि०-दे० 'अनत'।

अनबनि—वि० [हिं० अनबन] भिन्न-भिन्न। ~काया बिगुरचनि **अनबनि** बाटी, कोई जारै कोइ गाड़ै माटी। →पद २२१-२।

अनबोला—वि० [सं०अन+हिं० बोलना] मौन। ~गावनहारा कबहुँ न गावै, **अनबोला** नित गावै। →पद ३२-६।

अनबोले—वि० [सं० अन्+बोलना] बिना बोले हुए। ~**अनबोले** ते कैसक बनिहै, सब्दहिं कोइ न विचारै। →पद ३००-२।

अनबोवै—वि० [अन+सं० वपन] बिना बोया हुआ। ~**अनबोवै** लुनता नहीं, बोवै लुनता होइ। →सा० उप० (३४) २-२।

अनब्यावर—वि० [हिं०] बिना बिआई हुई। ~आँगन बेलि अकास फल; **अनब्यावर** का दूध। →सा० बेली० (५८) ४-१।

अनभेदू—वि० [हिं०] रहस्य न जानने वाला। ~बहुतक लोग चढ़े **अनभेदू** देखा देखी गहि बांहीं। →सब० १७८-५।

अनभै—वि० [सं० अन्+भय] भय-रहित। ~पाषँड भरम कपाट खोलि कै, **अनभै** कथा सुनाई। →पद २६५-४; पद ३०५-१, पद २१२-५, सब० १५३-६, सब० ६१-९।

अनभै—पु० [सं० अनुभव] अनुभव। ~झूठी **अनभै** बिस्तरी; सब थोथी बाई। →सब० १-६।

अनभौ—पु० [सं० अनुभव] आत्मानुभव। ~**अनभौ** भाव न दरसै, जियत न आप लखाय। →र० ३१-६।

अनरते—वि [सं०] जिसमें प्रेम नहीं हैं। ~**अनरते** सुख सोवना, रातै नींद न आइ। →सा० साध० (२९) ५-१।

अनल—पु० [सं०] अग्नि, जठराग्नि। ~अंन पान जहाँ जरै, तहाँ तैं **अनल** न चखियौ। →सा०बेसा० (३५) १-४।

अनल—पु० [सं०] अग्नि। ~तहिया होत पिंड नहिं वासू, ना धर धरनि न **अनल** अकासू। →र० ७-४, कह० (३) ११-८।

अनल—पु० [सं० अनलपक्ष] वह चिड़िया जो सदा आकाश में उड़ा करती है और वहीं अंडे देती है। इसका अंडा पृथ्वी पर गिरने से पहले पककर फूट जाता है और बच्चा अंडे से निकलकर उड़ता हुआ अपने माँ-बाप से जा मिलता है। ~मन उनमन उस अंड ज्यों, **अनल** अकासाँ जोइ। →

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० मन० (१३) ६-२, सा० मधि० (३१) ३-१, सा० मन० (१३) ६-२ ।

अनवां—क्रि० [सं०√नी] लाने पर ।~ पठएँ न जाउँ **अनवां** नहिं आऊँ सहजि रहूँ दुनियाई हो । →पद २३७-५ ।

अनहद—वि० [सं० अनाहत] बिना चोट की (ध्वनि) । कबीर वाणी में 'अनहद' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(क) अनाहत नाद के अर्थ में और (ख) अनहद अर्थात् जिसका कोई हद नहीं या असीम के अर्थ में । यहाँ 'अनहद' शब्द का प्रयोग अनाहत नाद के अर्थ में हुआ है । जब आन्तरिक शक्ति का जागरण होता है, तब साधक के भीतर नाना प्रकार की ध्वनियाँ बिना किसी आघात के सुनाई देने लगती हैं । यही अनाहत नाद है । ~**अनहद** अनुभव की करि आसा, देखहु यह विपरीत तमासा । →र० १६-१, र० ५-३, सब० १६१-७ ।

अनिक—वि० [सं० अनेक] अनेक, अत्यधिक । ~**अनिक** जतन करि राखिऐ, फिरि फिरि लपटाई ।→सब० ६६-६, सब० १५६-१२ ।

अनिन—वि० [सं० अनन्य] अनन्य, अद्वितीय । ~**अनिन** कथा तनि आचरी हिरदै त्रिभुवन राइ । →सा० पर० (५) २६-२ ।

अनियाले—वि० [सं० अणि + हि० आरा (प्रत्य०)] नुकीला, तीक्ष्ण । ~राम भगति **अनियाले** तीर । →पद २६२-१ ।

अनी—स्त्री० [सं० अणि] नोंक, अग्रभाग । ~**अनी** सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास । →सा०कुस० (३६) १-१ ।

अनी—[सं० अणि] भाले की नोक । ~भाई रे **अनी** लड़ै सोई सूरा । →पद २०५-१ ।

अनी—[सं० अणि] किनारा, सीमा । ~बेलड़िया द्वै **अनी** पहूँती गगन पहूँती सैली । →पद २५३-३ ।

अनुभौ—पु० [सं० अनुभव] अनुभव; स्वानुभूति । ~कबीर जुलाहा भया पारखी, **अनुभौ** उतरचा पार । →सा० पर० (५) ४७-२ ।

अनूप—वि० [सं० अनुपम] अतुलनीय, बेजोड़, अद्वितीय । भाई रे अद्भुत रूप **अनूप** कथा है । कहौं तो को पतियाई । → पद २०४-१, सब० ११-३, सब० १६७-२ ।

अनूपा—वि०-दे० 'अनूप' ।

अनूपु—वि०-दे० 'अनूप' ।

अपनपौ—पु० [हि०अपना + पौ (प्रत्य०)] आत्मस्वरूप । ~पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा, आपु **अपनपौ** जान न भेदा । →र० ३५-१ ।

अपनैं—पु० [सं० आत्मन्] आत्मस्वरूप । ~**अपनैं** बिचारि असवारी कीजै । →सब० ३-१ ।

अपरचै—पु० [सं० अपरिचय] लक्ष्य का पूर्ण परिचय न होना । ~देखा देखी पाकड़ै, जाइ **अपरचै** छूटि । →सा० संग० (२६) १-१ ।

अपरबल—वि० [अ + सं० प्रबल] प्रबल, शक्तिशाली, तेज । ~पांनीं मांहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परजली, भई **अपरबल** आगि । →सा० ज्ञान वि० (४) ६-१ ।

अपवादहिं—संज्ञा पु० [सं० अपवाद] निन्दा में ।~पर निंदा पर धन पर दारा, पर **अपवादहि** सूरा । →सब० ६८-५ ।

अपसर—वि० [अप + फ़ा० सर] नीच, बुरा । ~सर **अपसर** समझै नहीं, पेट भरन सौं काज । →सा० साषी० (२६) ७-२ ।

अपाना—संज्ञा पु० [सं० आत्म] आत्म-स्वरूप ।~तेरे घट में ही ठग पूर हैं, मति खोवहु **अपाना**→सब० १३५-२ ।

अपार—वि० [सं०] असंख्य । ~भौजलि अधधर थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत **अपार** । →सब० ७३-६ ।

अपारा—वि० [सं० अपार] अनन्त । ~थोरी भगति वहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलैं **अपारा** । → सब० १४७-३ ।

अपारिष—वि० [सं० अ + परीक्षण] भगवद्भक्ति रूपी रत्न को सामने पाकर भी उसके परख की क्षमता न रखने वाला । →[(४८) सा० अपारिष०] ।

अपिण्डी—पु० [सं० अ + पिण्ड + ई (प्रत्य०)] अशरीरी, आत्मा ।~बसै **अपिण्डी** पिण्ड मैं, ता गति लखै न कोइ । →सा० हैरा० (६) २-१ ।

अपुनपौ—पु० [सं०आत्म + पौ (प्रत्य०)] आत्मस्वरूप । ~**अपुनपौ** आपुहि बिसरचो । →सब० ५-१ ।

अपूठा—क्रि० वि० [सं० आ + पृष्ठि] पीछे की ओर । ~ताकू केरे सूत ज्यों, उलटि **अपूठा** आंनि । →सा० मन० (१३) १-२ ।

अबध—पु० [सं० अवधि] १. अवकाश या बीच में । २. वि० [सं० अवध्य] अविनाश्य । ~धरती अरु असमान बिचि, दोइ तूँबड़ा **अबध** । →सा० मधि० (३१) ११-१ ।

अबरन—वि० [सं० अ + वर्ण्य] अवर्ण-नीय ।

अबरन—वि० [सं० अ + वर्ण] जिसका कोई रंग-रूप नहीं है । ~**अबरन** कौं क्या बरनिये, मोपैं बरनि न जाइ । **अबरन** बरनै बाहिरा, करि करि थका उपाइ । →सा० सम्र० (३८) ६-१, २, सब० १४०-६ ।

अबरन—वि० [सं० अवर्ण] बिना रंग का । ~**अबरन** बरन स्यांम नहिं पीत, हाहू जाइ न गावै गीत । → सब० ४३-५; पद २८०-२, विप्रम० (२) २८ ।

अबरन—वि० [सं० अवर्ण] असुन्दर ।~**अबरन** बरन कछू नहिं वाके, खाद्य अखाद्यै खाई । → पद २०६-१० ।

अबिरथा—क्रि० वि० [सं० वृथा] निर-र्थक । ~माया कारनि बिद्या बेचहु जनमु **अबिरथा** जाई । →सब० १६४-८ ।

अबिहड़—वि० [सं० अ + विघट] अखण्ड, अनश्वर, अवियुक्त । ~आदि मध्य अरु अंत लौं, **अबिहड़** सदा अभंग । →सा० अबि० (५६) ३-१ ।

अबुझा—वि० [सं० अबुद्ध] अविवेकी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~**अबुझा** लोग कहाँ लौं बूझै, बूझन-हार विचारो। →पद २५२-२।

अबूझ—वि० [सं० अबोध] ज्ञानहीन, मूर्ख, अज्ञानी। ~कोनैं परा न छूटिहै, सुनु रे जीव अबूझ। →सा० सूरा० (४५) २-१, वसंत (४) १२-३।

अबूझी—वि० [सं० अ+बोध्य] अज्ञेय, अबोध्य, [पु०] ब्रह्म।~मैं रे **अबूझी** बूझिया, पूरी पड़ी बलाइ। →सा० साध० सा० (२६) ६-२।

अबेध—वि० [सं० अवेध्य] जो बेधा या छेदा न जा सके। ~लौके रतन **अबेध** अमोलिक, नहिं गाहक नहिं साँई। →पद २६५-२।

अबोलै—क्रि० [सं० अ+हि० बोलना] विना बातचीत के। ~नारी पुरुष बसै इक संगा, दिन दिन जाइ **अबोलै**। →पद २५१-५।

अभंग—वि० [सं०] अटूट, लगातार। ~आदि मध्य अरु अंत लौं, अविहड़ सदा **अभंग**। →सा० अवि० (५६) ३-१।

अभाग—पु० [सं० अभाग्य] अभाग्य, दुर्भाग्य। ~अपने गुन को औगुन कहहू, यहि **अभाग** जे तुम न विचारहु। →र० ६५-१, सा० कामी० (२०) २१-२।

अभिअंतर—क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर] भीतर। ~लुभुकी लुभुकि चरै **अभिअंतर** खात करेजा काढ़ी। →पद ३१३-४, सब० ४३-८, सब० १४०-६, पद २२४-७, पद ३३५-३।

अभिअंतर—क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर] आन्तरिक विवेक। ~देखहु कुमति केर परगासा, भए **अभिअंतर** किरतिम दासा। →विप्र० (३) १५।

अभिअंतरा—क्रि० वि०-दे० 'अभिअंतर'।

अभिअंतरि—क्रि० वि०-दे० 'अभिअंतर'।

अभिमाना—भाव० [सं० अभिमान] सर्वतः मान वैठना, यह समझना कि मैं जीव हूँ, शरीर हूँ, प्राण हूँ। ~कुल **अभिमाना** खोइ कै; जियत मुवा नहिं होय। →र० ८-७।

अभै—वि० [सं० अभय] निर्भय, भय-रहित। ~कहै कबीर सुनौ हो अवधू, मैं **अभै** निरंतरि पाया। →सब० ६३-८।

अमड़ेंगे—क्रि० [हि० अमर से] अमर हो जाएँगे, प्रतिष्ठित हो जाएँगे। ~पहुँचैंगे तब कहैंगे **अमड़ेंगे** उस ठाँइ। →सा० जरणाँ (८) ५-१।

अमर—संज्ञा पु० [सं०] देव लोक। ~जेहि जल जीव सीव की बासा, जो जल धरती **अमर** परगासा। →सब १०७-३।

अमरापुर—पु० [सं० अमरपुर] अमृतत्व। ~हरि चरनौं चित राखिए, तौ **अमरापुर** होइ। →सा० भेष० (२४) ६-२।

अमल—पु० [अ०] रूढ़कर्म, लोकाचार। ~नबी हबीबी के जो कामा, जहँ लै **अमल** सो सबै हरामा। →र० ४८-५।

अमल--सं० पु० [अ०] शासन। ~जोति सरूपी हाकिमा जिन **अमल** पसारा। →पद ३१६-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमलि—पु० [अ०] नशे में। ~राम **अमलि** माता रहै, जीवन मुकुति अतीति। →सा० रस० (६) ६-२, सा० विर्क० (३७) ८-२।

अमलिन--वि० [सं०] स्वच्छ। ~**अमलिन** मलिन घाम नहिं छाँहाँ, दिवस न राति नहीं हैं ताहाँ। →सब० १४०-१३।

अमली—वि० [अ०] व्यसनी। ~**अमली** लोग खुमारी तृष्ना; कहुँ संतोष न पावै। →पद २०७-३।

अमहल--वि० [हि० अ + महल] वह महल जिसका कोई आश्रय नहीं है, सर्वाधिष्ठान। ~कहँ लौं गनौं अनंत कोटि लौं, **अमहल** महल दिवाना। →पद ३०३-८।

अमहल—संज्ञा पु० [सं० अ (प्रत्य०) + महल (अ०)] जो वास्तविक घर नहीं है। ~गुरु की कही करत नहिं कोई; **अमहल** महल दिवाना।→सब० ६४-२।

अमावस—संज्ञा स्त्री० [सं० अमावस्या] कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि। इस रात्रि को सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हैं। ~नित्त **अमावस** नित संक्रांत, नित नित नवग्रह बैठे पाँत। →सब० १९५-४, सब० १४४-४।

अमित—वि० [सं०] अपरिमित; अनंत, अनगिनत। ~स्वाद **अमित** कछु बरनि न जाई, कै चरित्र सो ताहि समाई। →र० ८२-३, र० २५-३।

अमीं—पु० [सं० अमृत] अमृत। ~कामी **अमीं** न भावई बिख ही कौं ले सोधि। →सा० कामी० (२०) १९-१, सा० विचा० (३३) ७-२, सब० ३८-२।

अमीता—संज्ञा पु० [सं० अमित्र] अनुराग न रखने वाला, शत्रु। ~आँन देव की पूजा कीन्हीं हरि सें रहा **अमीता** रे। →पद २९३-५।

अमीरस—संज्ञा पु० [सं०अमृतरस] अमृत-रस। ~नीझर झरै **अमीरस** निकसै इहि मद रावल छाका। →पद ३४४-७।

अमृत—वि० [सं०] १. जो मृत नहीं है अर्थात् अमर। २. जो दूसरों को अमर कर देता है। ~कबीर राम रिझाइ लै, मुखि **अमृत** गुण गाइ। →सा० सुमि० (२) ३१-१।

अमोल—वि० [सं० अमूल्य] बहुमूल्य, कीमती। ~बस नाहीं गोपाल सौं, बिनसै रतन **अमोल**। →सा० दया-नि० (५१) १-२, बेलि० (६) १-२०, पद २९५-२।

अमोलिक—वि०-दे० 'अमोल'।

अम्बर—पु० [सं०] आकाश।~**अम्बर** कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल। →सा० बिर० (३) २-१।

अम्रित बेली—यौ० [सं० अमृतवेलि] सहस्रार से टपकने वाला अमर रस। ~**अम्रित बेली** छिन छिन पीवै, कहैं कबीर सो जुग जुग जीवै। →सब० १२५-५।

अयान—पु० [सं० अज्ञान] अज्ञान। ~विमलख करै नैन नहिं सूझा, भया **अयान** तब कछुवो न बूझा। →र० ६३-४।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयाँनाँ—संज्ञा पु० [सं० अज्ञान से] अज्ञानी । ~पाखंड करि करि जगत भुलाँनाँ, नाँहिन राँम **अयाँनाँ** । →पद ३०८-६ ।

अयांनां—वि० पु०-दे० 'अयाना' ।

अयाना—वि० पु० [सं० अज्ञान] अज्ञानी, अनभिज्ञ, मूर्ख । ~घर का सुत जो होय **अयाना**, ताके सँग न जाहिं सयाना ।→र० २६-५, सब० ८५-६, सब० १६-४, र० २२-२, सब० १०२-६, पद २०८-३, सब० १७७-४, सब० २-३ ।

अर—वि० [देश०] तेजयुक्त । ~**अर** इन्द्रादिक बर ब्रह्मादिक ते बाधिनि धरि खाया । →पद ३१३-७ ।

अरघा—संज्ञा पु० [सं० अर्घ्य] दूब, दधि, अक्षत, जल के द्वारा पूजा ।~**अरघा** दे लै चली सुआसिनि, चौके राँड़ भई संग साँई । →पद ३१२-६ ।

अरचा—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चा] अर्चना, पूजा । ~जप तप संजम पूजा **अरचा** जोतिग जग बौरांनां । →पद २०८-५ ।

अरथ—पु० [सं० अर्थ] प्रयोजन, अभि-प्राय, मनोरथ । ~पांडर पिंजर मन भँवर, **अरथ** अनूपम बास । →सा० बेसा० (३५) १६-१ ।

अरथ—संज्ञा पु० [सं० अर्थ] धन ।~जैसे मदपी गांठि **अरथ** दै, घरहु कै अकिल गँवाई हो । →कह० (३) ६-३ ।

अरध—वि० [सं० (अधः) अधर का विपर्यय] नीचे, मूलाधार चक्र । ~ **अरध** उरध विच लाइले अकास, सुन्नि मंडल महिं करि परगासु । → सब० ४३-११; सा० गुरु (१) ३१-१, सब० १४०-७, पद ३०३-३ ।

अरध उरध—यौ० [सं० अधःउर्ध्व] नीचे-ऊपर । ~**अरध उरध** दसहूँ दिसि जित तित, पूरि रहा राम राई । →पद ३२६-८ ।

अरध मुखि—वि० [सं० अधोमुख] नीचे मुख किए हुए । ~ते बिधना बागुल रचे, रहे **अरध मुखि** झूलि । →सा० चिता० (१२) २८-२ ।

अरध सरीरी—सं० स्त्री० [सं० अर्द्ध शरीरी] अर्द्धांगिनी । ~**अरध सरीरी** नारि न छूटै, ताते हिन्दू रहिए । →सब० ७६-६ ।

अरस परस—यौ० [हि०] अनुभूति । ~ बिनु देखें बिनु **अरस परस** बिनु नांम लिए का होई । →सब० १६८-७ ।

अरहट—पु० [सं० अरघट्ट] रहट, जल-पात्रों की वह माला जिससे कुएँ से पानी निकाला जाता है । ~माला पहर्याँ हरि मिलै, तौ **अरहट** कै गलि देख । →सा० भेष० (२४) ६-२, सब० १८६-६, सब० १४७-४ ।

अरुझाई—क्रि० [हि० उलझना] उलझना । ~र रा रारि रहा **अरुझाई**, राम कहे दुख दालिद जाई । →ज्ञान चौं० (१) ५७ ।

अरुझाना—क्रि० (हिं० उलझाना) बंधन । ~ कहैं कबीर इहै मन मांनां, कोधौं छूट कवन **अरुझाना** । →सब० १३१-५ ।

अरुझि सरुझि—यौ०[हि० उलझना, सुल-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झना] उलझता सुलझता रहता है। ~झ झा **अरुझि सरुझि** कत जान; हींडत ढूढ़त जाहि परान।→ज्ञान चौं० (१) १६।

अरूप—पु० [सं०] निराकार (ब्रह्म)। ~रूप **अरूप** जाय नहि बोली; हलुका गरुआ जाय न तोली। →र० ७७-३।

अर्थ—पु० [सं०] तत्व; भेद; रहस्य।~ गुनी अनगुनी **अर्थ** नहिं आया, बहुतक जने चीन्हि नहिं पाया। →र० ४-४।

अर्थ बिहूना—वि० [सं० अर्थविहीन] द्रव्य-धन आदि से रहित; दरिद्र। ~**अर्थ बिहूना** सँवरै नारी, परजा सँवरै पुहुमी झारी। →र० ६-५।

अर्थावै—क्रि० [हि०] अर्थ लगाना, भाव समझना। ~कहैं कबीर सुनो हो संतो, जो यह पद **अर्थावै**।→ सब० १५५-८।

अर्ध—अव्य० [सं० अधः] नीचे, प्राण वायु। ~ब्रह्म अगिनि कियो प्रगास, **अर्ध** उर्ध तहँ बहै बतास। →वसं० (४) २-३।

अर्ब—संज्ञा पु० [सं० अर्बुद] अरब, सौ करोड़। ~चिमिकि चिमिकि चिमकै दृग दुहु दिस, **अर्ब** रहा छिरिआई। →पद २६५-३।

अर्‌यो—क्रि० [सं० √अल्] अड़ गया। ~वैसे ही गज फटिक सिला पर दसनन आनि **अर्‌यो**। →सब० ५-४।

अलंकृत—वि० [सं०] सुंदर। ~फल **अलंकृत** बीज नहिं बोकला, सुख पंछी रस खायो। →सब० ८८-२।

अलख—वि० [सं० अलक्ष्य] जो दिखाई न दे (ब्रह्म)। ~**अलख** निरंजन लखै न कोई, जेहि बँधे बंधा सब कोई। →र० २२-१, पद २४६-५, सा० चाँण० (१७) १-१।

अलप—वि० [सं० अल्प] थोड़ा, क्षणिक। ~**अलप** सुख दुख आदि औ अंता, मन भुलान मैगर मैमंता। →र० २३-१; सा० बीन० (५६) ४-१, पद २६७-५।

अलपै—वि० [सं० अल्प] थोड़ा, क्षणिक, सांसारिक (सुख)। दे० 'अलप'। ~माया मोह बँधे सब लोई, **अलपै** लाभ मूल गो खोई। → र० ८४-२, ३०-६।

अलह—पु० [अ० अल्लाह] ईश्वर, प्रभु। ~साँचा एक **अलह** को नाम, जाको नैं नै करहु सलाम। →सब० ४०-५।

अलूझिया—क्रि० [सं० अवरुन्धन] उलझ गया। ~नौ मन सूत **अलूझिया**, कबीर घर घर बारि। →सा० विचा० (३३) ५-१।

अलेख—पु० [सं० अलक्ष्य] वह जिसे देखा न जा सके, अप्रत्यक्ष, निराकार। ~ लेख समानां **अलेख** मैं, यौं आपा माँहे आप। →सा० पर० (५) २३-२।

अलेष—पु० [सं० अलक्ष्य] ब्रह्म, परमात्मा। ~भरम करम सब दूरि करि, सबहीं माँहि **अलेष**। →सा० भेष० (२४) १८-२।

अलोप—वि० [अ+लोप] अव्यक्त।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~गन गंधर्व मुनि अंत न पाया, हरि **अलोप** जग धंधे लाया।→र० १६-२।

अल्लह—संज्ञा पु०[अ० अल्लाह] ईश्वर। दे० 'अल्लाह'।~**अल्लह** रांम जिऊँ तेरै नांइं।→सब० २३-१, पद २८१-३।

अल्लाह—संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर।~**अल्लाह** पाकंपाक है सक करउ जे दूसर होइ।→सब० १८१-६।

अवगुन—संज्ञा पु० [सं० अवगुण] दोष, अपराध, विकार, पाप।~खून करै मिसकीन कहावै, **अवगुन** रहै छिपाएँ। →सब० २३-४, पद ३३३-२।

अवधू—संज्ञा पु०[सं० अवधूत] गोरखपंथी योगी (जिसने अपने कल्मष को झकझोर कर फेंक दिया है)। ~**अवधू** ग्यान लहरि धुनि मांडी रे। →सब० ३०-१।

अवधू—संज्ञा पु०[सं०-अव + √भू + क्त] अवधूत, नाथयोगी, साधु। ~जिन **अवधू** गुरु ग्यान लखाया, ताकर मन तँहई लै धाया। →र० ८३-२, पद २५३-१।

अवर—वि० [सं० अपर] और, दूसरा, अन्य, भिन्न।~आतमरांम **अवर** नहिं दूजा।→सब० ६०-२, र० ५५-७, सब० ७-६।

अवलि— वि० [अ० अव्वल] सर्वप्रथम। ~अल्लह **अवलि** दीन कौ साहिब जोर नहीं फरमाया। → पद २२६-३।

अवलिया—संज्ञा पु० [अ० औलिया] साधक, संत।~सुर नर मुनि जति पीर **अवलिया**, मीरां पैदा कीन्हां रे। →सब० ८४-३।

अवास—संज्ञा पु० [सं० आवास] आवास, मेंहल, निवास।~कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि **अवास**। → सा० चिता० (१२) १०-१, सब० १४०-३।

अविगत—संज्ञा पु०[सं०]वह, जिसके विषय में कुछ जाना नहीं जा सकता, अनंत, अनिर्वचनीय, ब्रह्म। ~**अविगत** की गति काहु न जानी, एक जीभि कत कहउँ बखानी।→र० २-११।

अविगत—संज्ञा पु० [सं० अ + वि + गत] अज्ञेय, चैतन्य। ~पंच तत **अविगत** तैं उतपनां एकै किया निवासा। →सब० ६१-३।

अविगत—संज्ञा पु० [सं०] अगम्य, जहाँ तक किसी की पहुँच न हो, जो जाना नहीं जाता, परम प्रभु। ~मैमंता **अविगत** रता; अकलप आसा जीति। →सा० रस० (६) ६-१।

अविगत—संज्ञा पु० [सं०] जो जाना न जाय, अज्ञात, ब्रह्म। ~**अविगत** की गति का कहौं, जाके गाँव न ठाँव। →र० ७-६, सा० सू० मा० (१४) ५-२, सा० पर० (५) ४४-२।

अविगत—वि० [सं०] समझ के बाहर। ~सावज एक सकल संसारा, **अविगत** वाकी बाता।→पद ३१८-२।

अविचल—वि० [सं०] शाश्वत, अचल, अविनाशी।~कर्हाहं कबीर सब नारि के, **अविचल** पुरुष भतार। →र० २७-६।

अविनासी—वि०पुं०[सं० अ + विनाशिन्]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमर, देवता, शाश्वत । ~मरि गये ब्रह्मा नभ के वासी, सीव सहित मुए **अविनासी** ।→र० ५४-१ ।

अव्वलि—वि० [अ० अव्वल] श्रेष्ठ, सर्वप्रथम । ~**अव्वलि** अल्लह नूर उपाया कुदरति के सभ बंदे । →पद २८१-३ ।

अषंडित—वि० [सं० अखण्डित] पूर्ण । ~आतमलीन **अषंडित** रांमां; कहै कबीर हरि माँहि समाँनाँ । →पद २१२-६ ।

अषिर—पु० [सं० अक्षर] अक्षर । ~दोइ **आषिर** गुरु बाहिरा, बाँधा जमपुरि जाइ ।→सा० चाँण० (१७) ११-२ ।

अष्ट कवँल—संज्ञा पु० [सं० अष्ट कमल] सुरति कमल । ~ मेरु दंड पर डंक दीन्ह, **अष्ट कवँल** परजारि दीन्ह । →वसंत (४) २-२ ।

अष्षिरां—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षरों अर्थात् उपदेशों से । ~ जे बेधे गुरु **अष्षिरां**, तिनि संसा चुनिचुनि खद्ध । →सा० गु० (१) २२-२ ।

असंखि—वि० [सं० असंख्य] असंख्य । ~**असंखि** कोटि जाकै जमावली, रावन सैनां जिहि तैं छली ।→सब० १२८-१५ ।

अस—संज्ञा पु० [सं० अश्व] घोड़ा । ~**अस** बिनु पाखर गज बिनु गुड़िया, बिनु षंडै संग्रामहि जुड़िया । →सब० ११६-४ ।

असतुतिं—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] प्रशंसा । ~ **असतुति** निंदा दोउ विवरजित, तजहि मानु अभिमाना । →सब० १४६-३ ।

असथिर—वि० [सं० स्थिर] एकाग्र । ~भागा भर्म भया मन **असथिर**, निद्रा नेह नसाँना । →पद० ३०५-१५ ।

असथिरु—वि० [सं० स्थिर] स्थिर, समाहित । ~जोति मांहि मन **असथिरु** करै, कहै कबीर सो प्रानीं तरै । →सब० ४३-१८ ।

असनाँन—संज्ञा पु० [सं० स्नान] स्नान । ~ब्रह्मंडे से पिंडे जाँन, माँनसरोवर करि **असनाँन** । →सब० १४०-१५, पद २४५-४ ।

असमान—सं० पु० [फ़ा० आसमान] आकाश, गगन, अंतरिक्ष । ~धरती अरु **असमान** बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध । →सा० मधि (३१) ११-१; सब० ४०-३, सब० ५८-३ ।

असमाना—संज्ञा पु० [फ़ा० आसमान] सातवाँ आसमान, स्वर्ग । ~कहहिं कबीर खोजै **असमाना**, सो न मिला जिहि जाय गुमाना । →र० ३२-३ ।

असरारा—क्रि० वि० [फ़ा० इसरार] हठ; हठपूर्वक । ~मनमथ बिंद करै **असरारा**, अलपै बिंद खसै नहिं द्वारा । →र० ३०-६, सा० सुमि० (२) १६-१ ।

असराल—क्रि० वि० [अ० अस्रार] लगातार, बेरोक ।~सीस चरन कर कंपन लागें नैन नीरु **असराल** बहै । →पद २३३-७ ।

असवारा—संज्ञा पु० [फ़ा० सवार] सवार, सवारी करने वाला ।~कहत कबीर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भले **असवारा**, बेद कतेब तैं रहहि नियारा। →सब० ३-५।

असवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सवारी। ~अपनैं बिचारि **असवारी** कीजै। →सब० ३-१।

असाधा—वि० [सं० असाध्य] दुष्कर, कठिन, असाध्य। ~करत विचार ज़नम गौ खीसैं; ई तन रहल **असाधा**। →सब० १५७-८।

असार—वि० [सं०] तत्वरहित, निस्सार। ~ ई संसार **असार** को धंधा, अंतकाल कोइ नाहीं हो। →कहरा (३) ५-५।

असि—वि० [हिं०] अतिशय, अत्यधिक। ~माया माता माया पिता, **असि** माया अस्तरी सुता। →पद २२६-७।

असी—वि० [सं० अशीति] अस्सी (८०)। ~**असी** सहस पैगम्बर नाहीं, सहस अठासी मूनी। →सब० ३१-५।

असुर—संज्ञा पु० [सं०] राक्षस। ~सुर नर मुनिजन **असुर** सब, पड़े काल की पासि। →सा० का० (४६) २९-२।

असोस—वि० [सं० अशोष्य] जो सूखे नहीं। ~कबीर मन का बाहुला, ऊँड़ा बहै **असोस**। → सा० साषी० (५७) ३-१।

असौच—वि० [सं० अशौच] अपवित्र। ~करम **असौच** उचिष्टा खाहीं, मति भरिष्ट जम लोकहिं जाहीं। →विप्र० (२) ८।

अस्ट गगन—यौ० [सं० अष्ट गगन] सुरति कमल, सातवें चक्र के ऊपर। ~जंत्री जंत्र अनूपम बाजै, वाके **अस्ट गगन** मुख गाजै। → सब० १०९-१।

अस्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। ~माया माता माया पिता, असि माया **अस्तरी** सुता। →पद २२६-७।

अस्ति—वि० [सं०] सत्य। ~कहैं कबीर जो सपने जागै, निरअस्ति **अस्ति** न होय। →र० ८४-११।

अस्थूल—वि० [सं०] सूक्ष्म शरीर। ~थूल **अस्थूल** पवन नहिं पावक, रबि ससि धरनि न धीरा। →सब० १६९-२।

अस्थूल—वि० [अ + सं० स्थूल] सूक्ष्म, अचिन्त्य, अव्यक्त। ~जेहि राखेहु अनुमान कै, सो थूल नहीं **अस्थूल**। →र० ७५-११, सा० सजी० (४७) २-२।

अहंमेउ—संज्ञा पु० [सं० अहं + एव] अहंकार, अहंता। ~ करम करत बंधे **अहंमेउ**, मिलि पाथर की करहीं सेउ। → सब० १०१-५, पद ३१०-४।

अह—संज्ञा पु० [सं०] दिन। ~**अह** निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै द्रुलभ जोग। →सा० सुमि० (२) २८-२।

अहई—स० क्रि० [सं०√अस्] है। ~क्रितिया सूत्त लोक एक **अहई**, लाख पचास कै आयू कहई। → र० ५७ १।

अहटि—क्रि० [सं० आहत] दुखित होकर। ~जे दिढ़ ग्यान न ऊपजै, तौ **अहटि** मरै जनि कोइ रे। → सब० ९७-१०।

अहनिसि--क्रि० वि० [सं० अहर्निशि]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिन रात (रात दिन)।~**अहनिसि** केवल रांम नांम कहिए। → सब० २४-२, पद २६७-७, पद ३४६-३।

अहमक—वि० [अ०] अज्ञानी, मूर्ख, बेवकूफ।~झूठहि झूठा मिलि रहा, **अहमक** खेहा खाय।→र० १४-१४, पद २१०-१।

अहरखि—संज्ञा स्त्री० १. [अरबी हिर्स का विकृत रूप-अहरसि] लोभ, लिप्सा। २. [सं० अहर्ष] दुःख, चिंता। ~ मन रे **अहरखि** बाद न कीजै। → पद २१६-१।

अहरन—संज्ञा स्त्री० [सं० आ+धरण] निहाई। ~घन **अहरन** बिच लोह ज्यौं, घनी सहै सिरि चोट।→सा० चिता० (१२) ५१-२।

अहला—संज्ञा पु० [सं० आहरण] अहरा, जलती हुई कंडों की आग। ~ए सबही **अहला** गया, जबहिं कहा कछु देह।→सा० बेसा० (३५) १४-२।

अहला गया—मुहा० भाड़ में गया, भस्म हो गया। ~ए सबही **अहला गया**, जबहिं कहा कछु देह।→सा० बेसा० (३५) १४-२।

अहलाद—संज्ञा पु० [सं० आह्लाद] प्रसन्नता। ~काँमी लज्जा ना करै, मन माँही **अहलाद**। → सा० कामी० (२०) २३-१।

अहार—संज्ञा पु० [सं० आहार] भोजन, शिकार।~जान पुरुषवा मोर **अहार**, अनजाने पर करौं सिंगार।→वसं० (४) ४।

अहुठा—वि० [सं० अध्युष्ट, प्रा० अध्युट्ठ] तीन और आधा, साढ़े तीन हाथ। ~ताना तनै को **अहुठा** लीन्हा, चरखी चारो वेदा।→सब० १२७-२।

अहेड़ी—संज्ञा पु० [सं० आखेट> अहेर+ई० (प्रत्य०)] शिकारी।~मिरतक उठा धनुक कर लीये, काल **अहेड़ी** भागा।→सब० १३-५।

अहेर—संज्ञा पु० [सं० आखेट] शिकार। ~मच्छ रूप माया भई, जबरहिं खेले **अहेर**।→र० ४६-५।

अहेरा—संज्ञा पु० [सं० आखेट] शिकार। ~सायर जरै सकल बन दाझै, मंछ **अहेरा** खेलै। →सब० ४४-६, पद ६५-१; पद ३२३-२, पद १६६-८, पद २४४-१।

अहेरी—संज्ञा पु० [हि० अहेर+ई] शिकारी, आखेटक।~आवत जात न लागै बारा, काल **अहेरी** साँझ सकारा। →र० ४३-२; वसं० (४) ७-६।

अहेरै—संज्ञा पु० दे० 'अहेरा'।

अहो—संज्ञा पु० [सं० अहन्] दिन।~ रच्यो हिंडोला **अहो** निसि चारि जुग चौमास। →हिंडो० (८) २-४।

आ

आँगन—पु० [सं० अङ्गण] आँगन।~ **आँगन** बेलि अकास फल, अनब्यावर का दूध।→सा० बेली० (५८) ४-१।

आंटी—संज्ञा स्त्री० [हि० अंटी] गाँठ, गिरह, ऐंठन।~आपा कौ **आंटी** नहिं निकसी करज बहुत सिरि लीन्हा। →पद ३१५-१२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आँता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अंतड़ी। ~पेट फारि जो देखिए रे भाई, आहि करेज न **आँता**। →पद ३१८-३।

आँथवै—क्रि० [सं० अस्त] अस्त होता है। ~जो ऊगै सो **आँथवै**, फूलै सो कुम्हिलाय। →सा० का० (४६) ११-१।

आँधी—वि० [सं० अंध से] अंधी। ~भाँड़ा भंजन करै सबहिं का, कछू न सूझै, **आँधी** रे। →सब० २७-२।

आँधी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध = अंधकार] अन्धड़, तेज हवा। ~संतौ भाई भाई ग्यांन की **आँधी** रे। →पद ३०२-१।

आंन—वि० [सं० अन्य] दूसरा। दे० 'आन'। ~ मांन सरोवर तट के बासी, रांम चरन चित **आंन** उदासी। →पद ३३४-३, सब० १२८-२, १८६-५, सब० १४-२, सा० सुंद० (५२) ३-१।

आंनि—क्रि० [सं० √नी से] लाकर। ~**आंनि** कीटक करत भ्रिग सो आपतैं रंगी। →पद ३२८-२।

आँनिया—क्रि० [आ + √नी] ले आया। ~दीपक पावक **आँनिया**, तेल भि आना संग। →सा० ग्यान वि० (४) १-१।

आंनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनी] नोंक। ~साधु सती अरु सूर का, **आंनी** ऊपर खेल। →सा०सूरा० (४५) ३२-२।

आँनी—क्रि० [सं० आ + √नी] लाई गई। ~जालन **आँनी** लाकड़ी, ऊठी कंपल मेलि। →सा० वेली० (५८) १-१।

आँनै—क्रि० [सं० आ० + √नी] लाना। ~आसा जीवन मरन की, मन मैं **आँनै** नाँहि। →सा० सूरा० (४५) १०-२।

आँवन जाँनी—स्त्री० [सं० आ√गम् + √गम्] आवागमन, जन्म-मरण। ~**आँवन जाँनी** मिटि गई; मन मनहि समाई। →सब० १-८।

आउ—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] उम्र। ~राम कहत लज्जा क्यूँ कीजै, पल पल **आउ** घटै तन छीजै। →सब० ११७-५।

आक—संज्ञा पु० [सं० अर्क] मदार। ~जिनि कुल दास न ऊपजै, सो कुल **आक** पलास। →सा० साधुम० (३०) ८-२, सा० बिर्क० (३७) २-२, सा० साधु० (२८) ७-१।

आकार—संज्ञा पु० [सं०] उपाधि, शरीर। ~गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु **आकार**। →सा० गुरु० (१) २६-१।

आकासाँ—संज्ञा पु० [सं० आकाश] अंतरिक्ष में, आकाश में। ~अनल **आकासाँ** घर किया; मद्धि निरन्तर बास। →सा० मधि० (३१) ३-१।

आकुल—वि० [सं०] व्यग्र। ~ छह दरसन पाषंड छ्यानबे **आकुल** किनहुँ न जांनां। →पद २०८-४।

आखर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षर, शब्द। ~एकै **आखर** पीव का, पढ़ै सो पंडित होइ। →सा० कथ० वि० कर० (१६) ४-२।

आखै—क्रि० [सं० आख्यान] बोलै। ~माया मिलै महोबंती, कूड़े **आखै**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बैन । →सा० गु० सि० हेरा० (४३) १०-१ ।

आगम—संज्ञा पु० [सं०] शास्त्र ।~अवरो **आगम** करै विचारा, ते नहिं सूझै वार न पारा । →र० २२-६ ।

आगम—संज्ञा पु० [सं०] तंत्रशास्त्र ।~**आगम** निगम एक करि जानाँ, ते मनवाँ मन माँहि समाना । →सब० ७-४ ।

आगम—संज्ञा पु० [सं०] आप्तवचनाश्रित, परम्परागत ज्ञान, वेदशास्त्र । ~जो तुम्ह पंडित **आगम** जानौं विद्या व्याकरनां ।→सब० १४२-३ ।

आगरी—वि० [सं० आकर] श्रेष्ठ, उत्तम ।~दोऊ कुल हम **आगरी**, जो हम झूलैं हिंडोल । →पद ३४२-८ ।

आगिला—वि० [सं० अग्र से] आगे का, पूर्व जन्म का ।~सिर फोरै सूझै नहीं, कोइ **आगिला** अभाग । →सा० कामी० न० (२०) २१-२ ।

आचरी—क्रि० [सं० आ+√चर्] संचरित हुई, क्रियाशील हुई ।~अनिन कथा तनि **आचरी**, हिरदै त्रिभुवन राइ । →सा० परचा० (५) २६-२ ।

आजुहि—क्रि० वि० [सं० अद्य+हि] आज ही ।~**आजुहि** काल्हि करंत रे; औसर जासी चालि । →सा० काल० (४६) ५-२ ।

आटा—संज्ञा पु० [प्रा० अट्ट] गेहूँ, जौ आदि का चूर्ण, पिसान । ~ह्वैसी **आटा** लोन ज्यौं, सोन सवां सरीर । →सा० चिता० (१२) ४८-२ ।

आटैं—संज्ञा पु० [प्रा० अट्ट] गेहूँ, जौ आदि अन्नों का पिसा हुआ रूप, पिसान । दे० 'आटा' । ~कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया **आटैं** लून । →सा० गुरु० (१) १४-१ ।

आड़ अटक—यौ० [हि०] विघ्न, बाधा । ~**आड़ अटक** मानै नहीं पौड़ै जलधारा । →पद ३४५-६ ।

आतम—संज्ञा पु० [सं० आत्मा] आत्मा, जीव । ~**आतम** मारि पखानहि पूजै, उनमें कछु नहिं ज्ञाना । →पद २६७-४ ।

आतम राँम—संज्ञा पु० [सं० आत्मा+राम] शुद्ध चैतन्य ।~हिंडोलना तहाँ झूलै **आतम राँम** । →पद ३४२-१ ।

आतम राम—संज्ञा पु० [हि० आतमाराम] जीव ।~**आतम राम** पलक में बिनसे, रुधिर कि नदी बहाई ।→पद २६६-४।

आतस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० आतश] अग्नि । ~आदि अन्त मन मध्य न होते, **आतस** पवन न पानी । →सब० ३१-६ ।

आतुर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्रता से, वेग से, जल्दी-जल्दी । ~अति **आतुर** ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद । →सा० गुरु० (१) १८-२ ।

आतुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यग्र, अधीर । ~अह निस **आतुर** दरसन कारनि, ऐसी ब्यापै मोहि । →पद ३४६-२ ।

आथि—क्रि० [सं० अस्त] अस्त हो जाना, समाप्त हो जाना । ~कबीर पढ़िबा दूरि करि, **आथि** पड़ा संसार । →सा० कथ० बि० क० (१६) ३-१ ।

आदति—संज्ञा स्त्री० [अ० आदत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वभाव, प्रकृति । ~ना हरि भजसि न **आदति** छूटी ।→सब० १६१-१ ।

आदम—संज्ञा पु० [अ०] मूल पुरुष । ~**आदम** ब्रह्मा कछु नहिं होते, नहीं धूप नहिं छाँही ।→सब० ३१-४ ।

आदम—संज्ञा पु० [अ०] सामी धर्मों के अनुसार मूल पुरुष । ~कहँ तब **आदम** कहँ तब हव्वा, कहँ तब पीर पैगम्बर हुवा । →सब० ४०-२, र० ४०-१, सब० १४१-६ ।

आदि—संज्ञा पु०[सं०] मूल तत्व।~ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला **आदि** बिचारि।→सा० पर० (५) ४५-२ ।

आदि—संज्ञा पु० [सं०] आत्मतत्व । ~**आदि** कौ उदेस जांनै तासु बेस बांनां । →पद ३४३-६ ।

आदी—संज्ञा पु० [सं० आदि] आदि । ~धरती अकास पवन नहिं पानीं नहिं तब **आदी** माया हो । →पद २८७-३ ।

आन—वि० [सं० अन्य] अन्य या दूसरे का ।~राम पियारा छांडि करि, करै **आन** का जाप । →सा० सुमि० (२) २२-१, सा० सार० (३२) १-१ ।

आना—क्रि० [सं० आ + √नी] लाया । ~ दीपक पावक आँनिया, तेलि भि **आना** संग । → सा० ग्या० बिर० (४) १-१ ।

आना—वि० [सं० अन्य] और, अन्य । ~मुख कछु और हिरदय कछु **आना**, सपनेहु काहु मोहि नहिं जाना ।→ र० ६७-३, पद २८४-२ ।

आनि—क्रि० [सं० आ + √नी] ले आकर ।~वैसे ही गज फटिक सिला पर, दसनन **आनि** अरचो । →सब० ५-४ ।

आनि—क्रि० [सं० आगमन] आकर । ~करम पटरिया वैठिकै को को न झूलै **आनि** । →हिंडो० (८) १-५, पद २१०-२ ।

आनी—क्रि० [सं०√नी] लाए । ~ संतो भक्ती सतगुर **आनी** । →पद ३०१-१ ।

आप— संज्ञा पु० [सं० आत्मन्]आत्मा।~ निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरि प्रगटा **आप** । →सा० पर० (५) ३०-२ ।

आप—भाव० [सं० आत्मन्] अहं, खुदी । ~लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै **आप** । → सा० पर० (५) २३-२ ।

आपन—भाव० [सं० आत्मन्] अपनापन, सच्ची स्थिति, आत्मस्वरूप ।~ लोभ मिठाई हाथ दे, **आपन** गया भुलाइ ।→सा० बिर० (३) ३१-१ ।

आपनपौ—सर्व० [सं० आत्मन्] अपने को । ~**आपनपौ** न सराहिए; और न कहिए रंक ।→सा० निन्द्या० (५४) ७-१ ।

आपा—पु० [सं० आत्मन्] आत्मतत्व । ~**आपा** पर जब चीन्हिया, (तब) उलटि समाना माहिं ।→सा० विचा० (३३) ३-२ ।

आपा—भाव० [हि० आप] अहं भाव । ~यहु मन पटकि पछाड़ि लै; सब आपा मिटि जाइ । →सा० सजी०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४७) ४-१, पद ३१५-२।

आपा—पु० [सं० आत्मा] १. वास्तविक आपा, आत्म स्वरूप। २. कृत्रिम अहं।~आपै मैं तब **आपा** निरखा, अपन मैं **आपा** सूझा। → सब० १३-१५।

आपा—भाव० [सं० आप्त] अहंता, खुदी। ~**आपा** मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार। →सा० गुरु० (१) २६-२।

आपा—पु० [सं० आत्मन्] आत्मा। ~लेख समानां अलेख मैं, यौं **आपा** माँहै आप। → सा० पर० (५) २३-२।

आपा—भाव० [सं० आत्मन्] अपना स्वरूप। ~कै बिरहिन कौं मीच दे, कै **आपा** दिखलाइ।→सा०बिर० (३) ३५-१।

आपि—सर्व० [सं० आत्मन्] स्वयं। ~**आपि** न बौरा रांम कियौ बउरा, सतिगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा।→ पद ३०६-४।

आपु—पु० [सं० आत्मन्] अहंभाव, आपा, जीवभाव। ~कबीरै सो धनु पाया, हरि भेटत **आपु** गँवाया। →सब० ८-१०।

आपुहिं—सर्व० [सं० आत्मन्] स्वयं। ~**आपुहिं** करता भया कुलाला, बहु विधि बासन गढ़ैं कुंभारा।→र० २६-१, सब० ५-१।

आपुहि—अव्य० [सं० आत्मन्] स्वयं, यहाँ तात्पर्य है—जीव ~आदि अंत उतपति प्रलै, **आपुहि** कै कै लीन्ह। →र० ४-७।

आपै—सर्व० [सं० आत्मन्] स्वयं, खुद। ~ग्याँनी मूल गँवाइया, **आपै** भये करता।→सा० का० न० (२०) २७-१, सा० जी०मृ० (४१) १-२।

आब—संज्ञा पु०[फ़ा०] पानी (ला० अ०) प्रतिष्ठा ! ~**आब** बे **आब** मुझे हरि को नाम, और सकल तजु कौने काम। →सब० ४०-१।

आब—संज्ञा पु०[फ़ा०] जल, नीर, मर्यादा। ~अँधा नर आसामुखी, यौं ही खोवै **आब**।→सा० भ्रमवि०(२३) ३-२।

आभ—संज्ञा पु०[सं० आप] पानी। ~ओसों प्यास न भाजई, जब लगि धसैं न **आभ**।→सा० सुमि० (२) २१-२।

आय—संज्ञा स्त्री०[सं०आयु] उम्र, जीवन काल। ~बाँध्यो बारि खटीक कै, ता पसु केतिक **आय**। →सा० का० (४६) २७-२।

आय—क्रि० [सं०√अस्] है। ~बहुत ध्यान कै जोहिया, नहिं तेहि सँख्या **आय**।→र० ७७-६।

आरतिवंत—वि० [सं० आर्त्त + वन्त (प्रत्यय)] दुःखी, पीड़ित।~देह छताँ तुम्ह मिलहु क्रुपा करि, **आरतिवंत** कबीर।→पद ३४६-८।

आरती—संज्ञा स्त्री० [सं० आरात्रिक] किसी मूर्ति के चतुर्दिक् दीपक घुमाना। ~ऐसी **आरती** त्रिभुवन तारै। → सब० ५६-१।

आरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० आदर्श] दर्पण, आइना, शीशा। ~हिरदा भीतरि **आरसी**, मुख देखा नहिं जाइ। → सा० मन० (१३) ८-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आरा—संज्ञा पु० [सं० अल्पा] लकड़ी चीरने की लोहे की एक दाँतेदार पट्टी। ~सिर ऊपरि **आरा** सहै, तऊ न दूजा होइ। →सा० संग० (२६) ४-२।

आराधैं—क्रि० [सं० आराधन] उपासना करते हैं। ~इक **आराधैं** सकति सीव, इक परदा दे दे बधैं जीव। →पद ३३२-५।

आलजाल—वि० [दे०] उलूल जलूल, व्यर्थ की बातें। ~मोकउं कहा पढ़वसि **आलजाल**, मेरी पटिया लिखि देहु स्री गोपाल। →सब० १५६-४।

आलम—संज्ञा पु० [अ०] जगत्, यहाँ तात्पर्य है जगत् में रहने वाले प्राणी। ~**आलम** दुनीं सबै फिरि खोजी हरि बिन सकल अयांनां। →पद २०८-३।

आलि—संज्ञा पु० [सं० आल] शृंगार, आल एक पौधा होता है, जिससे रंग बनता है। इसी से लाक्षणिक अर्थ 'शृंगार' आया है। ~कबीर मन्दिर आपनैं, नित उठि करती **आलि**। →सा० काल० (४६) १६-१।

आवटनां—पुं० [सं० आवर्त्त >प्रा० आवट्ट] उथल-पुथल, ऊहापोह। ~जा घट जान विजान है, तिहि घटि **आवटनां** घनां। →सा० साध० सा० (२६) ८-१।

आवन जानाँ—संज्ञा पु० [सं० आवागमन] पुनर्जन्म। ~कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया **आवन जानाँ**। →सब० १३-१८।

आशामुखी—वि० [सं० आशोन्मुख] आशोन्मुख। ~अँधा नर **आसामुखी**, यौं ही खोवै आब। →सा० भ्रमवि० (२३) ३-२।

आषर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षर। ~दूजा बनिज नहीं कछु बाषर, राँम नाम दोऊ तत **आषर**। →सब० १४-५।

आषौं—क्रि० [पं०] आख्यान करूँ, कहूँ। ~अब कै जे साँई मिलै, (तौ) सब दुख **आषौं** रोइ। →सा० निन्या० (५४) ६-१।

आस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] आशा, तादात्म्य। ~कबीर राँम सुवारथी, (जिनि) छाड़ी तन की **आस**। →सा० सूरा० (४५) ४०-१।

आस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] आशा, कामना। ~अविनासी मोहि ले चला, पुरई मेरी **आस**। →सा० उप० (५०) २-२।

आस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] आशा, तृष्णा। ~तीनि लोक यों आय के, छूटि न काहु कि **आस**। →र० ५३-६, पद ३२३-६, र० ७४-३, र० १७-८, सा० चाँण० (१७) ४-२, सा० माया० (१६) ५-१।

आस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] आशा, संभावना। ~अजहुँ बीज अंकूर है, फिर ऊगन की **आस**। →सा० बेली (५८) ६-२।

आस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] आशा, भरोसा। ~अब मेरे दूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी **आस**। →सा० वेसा० (३५) १७-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आसन—संज्ञा पु० [सं०] योग की मुद्रा। ~**आसन** उड़ये कौन बड़ाई, जैसे काग चील्ह मँड़राई। →र० ७१-३, सा० माया० (१६) २७-१।

आसहि पासा—क्रि० वि० [हि० आस + सं० पार्श्व] आस-पास, अगल-बगल, इधर-उधर, चारों ओर। ~चातिक जलहल **आसहि पासा**, मेघ न बरसै चलै उदासा। →र० ६५-४।

आसा—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] तृष्णा। ~कहैं कबीर छूटी सब **आसा**, मिल्यौं राम उपज्यौं बिसवासा। →सब० २१-६।

आसिक—संज्ञा पु० [अ० आशिक] आसक्त। ~जस बिनु ज्योति रूप बिनु **आसिक**, रत्न बिहूना रोवै। →पद २०४-४।

आसी—क्रि० [पं०] आ जाएगा। ~बालापन गयौ जोबन जासी, जरा मरन भौ संकट **आसी**। →सब० ११७-३।

आसु—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] तृष्णा, अभिलाष। ~होना है सो होंइहै मनहि न कीजै **आसु**। → पद २४५-३।

आहि—क्रि० [सं०√अस्] है। ~**आहि** कसाई छूरी हाथा, कैसहु आवै काटे माया। →र० १७-५, र० ६-१, ज्ञान चौं० (१) १५।

आहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] होम, हवन। ~प्रेत-कनक मुख अंतर बासा। आहुति सहित होम की आसा। → विप्र० (२) ५।

इ

इंछा—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] इच्छा। ~तिहि धेनु तैं **इंछा** पूगी, पाकरि खूँटै बाँधी रे। →सब० २७-५।

इक—वि० [सं० एक] एक। ~तिल **इक** घट मैं संचरै, सब तन कंचन होइ। → सा० रस० (६) ८-२।

इकठी—क्रि० वि० [सं० एकत्र] एकत्र। ~माया जोरि जोरि करै **इकठी**, हंम खैहैं लरिका ब्यौसाई। →सब० १२०-३।

इकताई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अद्वितीयता। ~ओढ़न हमरै एक पछेवरा लोक बोलैं **इकताई** हो। →पद २३७-६।

इकतार—वि० [सं० एक + तार] एक रस, अनवरत। ~कबीर हरि के नाव सौं, प्रीति रहै **इकतार**। →सा० उपदे० (३४) ८-१।

इच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभु की प्रथम शक्ति, महामाया। ~**इच्छा** रूप नारि अवतरी, तासु नाम गायत्री धरी। → र० १-२।

इत—सर्व० [सं० इतः] यह। ~**इत** पर घर उत घर, बनिजन आए हाट। →सा० चिता० (१२) ५७-१।

इत—क्रि० वि० [सं० इतः] इधर। ~इत के भये न उत के, चाले मूल गवाइ। → सा० चिता० (१२) २५-२।

इतबारा—संज्ञा पु० [अ० एतबार] विश्वास। ~सार सबद गहि बांचिहो मांनौ **इतबारा**। →पद ३१६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इफतरा—संज्ञा पु० [अ० इफ्तिरा] आरोप, लांछन । ~बेद कतेब **इफतरा** भाई दिल का फिकरु न जाइ । →सब० १८१-३ ।

इब—क्रि० वि० [हिं० अब] अब, इस समय ।~मीराँ मुझसूँ भिहर करि, **इब** मिलौं न काहू साथि । →सा० पर० (५) १६-२, सा० अपा० (४८) ३-२ ।

इवैं—सर्व० [सं० इदं] इसी में ।~माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि **इवैं** पडंत । →सा० गुरु० (१) २०-१ ।

इसो—वि० [सं० ईदृश] ऐसा । →यहु संसार **इसो** रे प्राणी, जैसी धूँवरि मेह । →पद २०३-४ ।

इहंई—क्रि० वि० [हिं० यहाँ ही] यहीं । ~दिल महिं खोजि, दिलै दिलि खोजहु, **इहंई** रहीमां रामां । →पद २३-१२ ।

ई

ईमान—संज्ञा पु०[अ०]चित्त की सद्वृत्ति। ~सो हिन्दू सो मूसलमांन, जिसका दुरुस रहै **ईमान** । →सब० ४१-४ ।

ई—सर्व० [हिं० यह] ।~ज जा **ई** तन जियतहिं जारो, जोवन जारि जुक्ति तन पारो ।→ज्ञान चौं०(१)१७ ।

ईद—संज्ञा स्त्री० [अ०] रमजान महीने के अंत में मुसलमानों द्वारा मनाया जाने वाला त्यौहार ।~जिन दुनिया में रची मसीद, झूठा रोजा झूठी **ईद** । →सब० ४०-४ ।

ईश्वर—संज्ञा पु० [सं०] शिव ।~**ईश्वर** गौरी पीवन लागे, राम तनीं मतवारी रे ।→सब० ८७-४ ।

ईस—पु० [सं० ईश] भगवान्, शंकर । ~पारबती को बांझ न कहिए, **ईस** न कहिए भिखारी ।→सब० ४-६ ।

ईसरी—संज्ञा पु०[सं०ईश्वर + ई(प्रत्यय)] ईश्वर की ।~दस अवतार **ईसरी** माया, कर्त्ता कै जिन पूजा । →पद २६२-२१ ।

उ

उक्ती—क्रि० [सं०] कहलाकर, मानकर । ~प्रगटे ब्रह्मा विष्नु सिव सक्ती, प्रथमहि भक्ति कीन्ह जिउ **उक्ती** । →र० ३-२ ।

उखारिया—क्रि० [हि० उखाड़ना] उखाड़ देती है, पृथक् कर देती है, अलग कर देती है ।~चींटी परबत **उखारिया**, लै राख्यौ चौड़े । →सब० ५१-५ ।

उखेला—क्रि० [सं० उल्लेख] उरेहा, बनाया ।~जिन्ह यह चित्र विचित्र **उखेला**, चित्र छोड़ि तैं चेतु चितेला । →ज्ञान चौं० (१) १४ ।

उघड़त—क्रि० [सं० उद्घाटन] खुलते । ~ताला कूँची कुलफ के लागे, **उघड़त** बार न होई । →पद २१८-४ ।

उघार—क्रि० [सं० उद्घाटित] खोल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखा है।~चन्द्रबदनि मृगलोचनि माया, बुंदका दियो **उघार**। → चाँचर (५) १-४।

उघारि—क्रि० [सं० उद्‌घाटित] खुली हुई।~सील साँच सरधा नहीं, इन्द्री अजहुँ **उघारि**। →सा० मन० (१३) १५-२।

उघारि—वि० [सं० उद्‌घाटित] नंगी। ~कपड़ा न पहिरै रहै **उघारि**, निरजिव सो धनि अति पियारि। → वसंत (४) ८-२।

उघारिया—क्रि० [सं० उद्‌घाटित] खोल दिया।~लोचन अनँत **उघारिया**, अनँत दिखावनहार। →सा० गु० (१) ३-२।

उघारी—क्रि० [सं० उद्‌घाटित] खोल दिया।~ममता मेरा क्या करै, प्रेम **उघारी** पौलि। →सा० पर० (५) ४८-१।

उघारै—क्रि० [सं० उद्‌घाटन] खुलना, उघड़ना।~अंगि **उघारै** लागिया, गई दवा सूँ फूँटि। →सा० गुरु० (१) ८-२।

उचरी—क्रि० [सं० उच्चारण] उच्चरित हुई। ~ निराधार अधार लै जानी, राम नाम लै **उचरी** बानी। → र० ७४-४।

उचरै—क्रि० [सं० उच्चारण] निकलती है, उच्चरित होती है। ~ जेहि मुख वेद गायत्री **उचरै**, जाके वचन संसार तरै। → पद २७६-२।

उचाए—क्रि० [हि० उठाना] बनाए हो, निर्मित किए हो।~गोबर कोट **उचाए** हो रमैया राम। → बेलि (६) २-७।

उचार—क्रि० [सं० उच्चारण] उच्चरित किया। ~ जब बसंत गहि राग लीन्ह, सतगुर सबद **उचार** दीन्ह। →सब० ११०-६।

उचारा—क्रि० [सं० उच्चारण] पाठ करेंगे।~सरीर सरोवर बेदी करिहौं ब्रह्मा बेद **उचारा**।→सब०१४६-५।

उचिष्टा—वि० [सं० उच्छिष्ट] जूठा। ~ करम असौच **उचिष्टा** खाहीं, मति भरिष्ट जम लोकहिं जाहीं। →विप्र० (२) ८।

उछकि—क्रि० [हि० उचकना] ऊबना, विलग होना। ~ दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ **उछकि** न जाई। →पद २०१-१०।

उजर—वि० [सं० उज्ज्वल] निर्मल। ~ऊपर **उजर** देखो बक अनुमान। → सब० ८५-३।

उजागर—वि० [सं० उज्जाग्रत] प्रसिद्ध, प्रकाशित। ~ सोई सुमेर उदात **उजागर**, जामैं धातु निवासा। → सब० ६६-७।

उजार—वि० [हि० उजड़ना] उजाड़; नष्ट।~दिया खताना किया पयाना, मन्दिर भया **उजार**।→र० ६६-५।

उजारा—पु० [सं० उज्ज्वल] उजाला, प्रकाश। ~चेत सुचेत चित्त होइ रहु, तौ लै परगासु **उजारा**।→सब० ११-६।

उजास—पु० [हि० उजाला+स] प्रकाश, उजाला, चमक। ~कौतुक दीठा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देह बिन, रवि ससि बिना **उजास**। →सा० पर० (५) २-१।

उजियारी—क्रि० [सं० उज्ज्वल] प्रकाशित किया। ~माई मैं दूनौ कुल **उजियारी**। → पद २२२-१।

उजियारी—संज्ञा पु० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। ~जौं कछु जुक्ति जानि परिजरै, घटही जोति **उजियारी** करै। → ज्ञान चौं० (१) १८, पद २४६-४।

उजियारो—संज्ञा पु० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश, ज्योति। ~षट चक्र बेधि कमल वेधि, जाय **उजियारो** कीन्हा। →सब० ६५-५।

उठाई—क्रि० [हिं० उठाना] बनवाई। ~सर्व सोन की लंक **उठाई**, चलत बार कछु संग न लाई। →र० ५५-४।

उत—सर्व० [दे०] वह। ~इत पर घर **उत** घर, बनिजन आरा हाट। →सा० चिता० (१२) ५७-१।

उत—क्रि० वि० [सं० ततः] उधर। ~इत के भये न **उत** के, चाले मूल गँवाइ। → सा० चिता० (१२) २५-२।

उतंग—वि० [सं० उत्तुंग] ऊँचा। ~हरि **उतंग** तुम जाति पतंगा, जमघर कियहु जीव को संगा। → र० ६५-६।

उतंग—संज्ञा पु० [सं० उत्तुंग] उत्तुंग, दीपशिखा। ~वै **उतंग** तुम जाति पतंगा, जम घर कियहु जीव को संगा। → र० ११-५।

उतपति—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] उत्पत्ति, जन्म, सृष्टि। ~**उतपति** परले देउँ देखाई, करहु राज सुख विलसहु जाई। →र० ५८-३, र० ३६-२, सब० ६०-७, पद ३०५-७, र० १३-१०।

उतपनां—क्रि० [सं० उत्पन्न] पैदा हुआ, उत्पन्न हुआ। ~माटी का पिंड सहज **उतपनां**, नाद अरु बिंद समाना। → सब० ५५-५, सब० ६१-३।

उतपाती—क्रि० [सं० उत्पत्ति] उत्पन्न किया। ~ तब नहिं होते कुल औ जाती, दोजख भिस्त कवन **उतपाती**। → र० ४०-४।

उतपाती—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] उत्पत्ति। ~कहँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहँ तब किरतम की **उतपाती**। → सब ४०-८।

उतपानी—क्रि० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न किया। ~तहिया होत पवन नहिं पानी, तहिया सिष्टि कौन **उतपानी**। → र० ७-१।

उतरानी—क्रि० [हिं० उतराना] पानी के ऊपर आना। ~खेवै सभै मर्म नहिं जानी, तहियो कहै रहै **उतरानी**। → र० ४५-६।

उतानैं—क्रि० वि० [सं० उत्तान] पीठ के बल लेटा हुआ। ~ **उतानैं** खटिया गड़िले मटिया, संगि न कछु लै जाइ। → सब० १०५-२।

उतावला—वि० [स० उद्+त्वर] त्वरित गति वाला। ~पवनाँ बेगि **उतावला**, सो दोस्त कबीरै कीन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

→ सा० मन० (१३) १२-२ ।

उथले—वि० [सं० उत्+स्थल] छिछला, कम गहरा । ~**उथले** रहहु परहु जनि गहिरे, मति हाथहु की खोवहु हो । →कहरा (३) १-२१ ।

उदक—संज्ञा पु० [सं०] जल । ~जिहि दैसंदर जग जलै, सो मेरे **उदक** समान । → सा० कुसब० (३६) ४-२, सब० ८३-५, सब० १७६-४; सब० १३-१३ ।

उदकि—संज्ञा पु० [सं० उदक] जल में । ~ज्यौं बिंबहि प्रतिबिंब समांनां **उदकि** कुम्भ बिगरांनां । → सब० १५३-६ ।

उदर—संज्ञा पु० [सं०] पेट । ~हिरनाकुस नख **उदर** बिदारा, तिनहुँ को काल न राखा । → सब० ६४-१०, पद २७६-४; कहरा (३) ६-४, पद ३४१-३, कहरा (३) ६-६ ।

उदरि—संज्ञा पु० [सं० उदर] पेट में । ~दस मास माता **उदरि** राखा, बहुरि लागी माया । → सब० १७५-४ ।

उदात—वि० [सं० उदात्त] विशद, बडा । ~सोई सुमेर **उदात** उजागर, जामैं धातु निवासा । → सब० ६६-७ ।

उदास—वि० [सं०] चिंतित । ~कहै कबीर हौं भया **उदास**, तीरथ बड़ा कि हरि का दास । → सब० १३३-५ ।

उदिक—संज्ञा पु० दे० 'उदक' ।

उदिक—पुं० [सं० उदक] जल, रज-वीर्य । ~जिनि नर हरि जठराहँ, **उदिक** थैं पिंड प्रकट कीयौ । →सा० बेसा० (३५) १-१ ।

उदिक थैं—संज्ञा पु० [सं० उदक] रज-वीर्य के द्वारा । ~जिनि नर हरि जठराहँ, **उदिक थैं** पिंड प्रकट कीयौ । →सा० बेसा० (३५) १-१ ।

उदेस—सं० पु० [सं० आदेश] उपदेश । ~आदि को **उदेस** जाँनै तासु बेस बांनां । →पद ३४३-६ ।

उदै—सं० पु० [सं० उदय] प्रकट, विकसित । ~पंच सुवटा आइ बैठे, **उदै** भई बनराइ । →सब० ४५-८ ।

उद्र—पु० [सं० उदर] पेट । ~इहि भाँति भयानक **उद्र** में **उद्र** न कबहूँ छंछरै । →सा० वेसा० (३५) १-५ ।

उधारन—वि० [सं० उद्धार] उद्धार करने वाली । ~रहहु ररा ममा की भाँति हो, सब संत **उधारन** चूनरी । →पद २४८-१ ।

उनई—क्रि० [सं० उन्नय] ऊपर आ गई, घिर गई, छा गई । ~**उनई** बदरिया परिगौं संझा, अगुआ भूले बनखंड मंझा । →र० १५-१ ।

उनमान—संज्ञा पु० [सं० अनुमान] अन्दाज, अनुमान । ~पारब्रह्म के तेज का, कैसा है **उनमान** । →सा० पर० (५) ३-१, सा० जर० (८) ४-१ ।

उनमांनां—वि० [हि० उन्मान] उन्मनी अवस्था में । ~कहै कबीर यहु गगन न बिनसै जौ धागा **उनमांनां** । →पद २६८-६ ।

उनयाँ—क्रि० [सं० उन्नमित] छा गया, घिर आया । ~बानी सलिल रांम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घन **उनयाँ**, बरिषै अंमृत धारा। →सब० ६७-३।

उपगार—संज्ञा पु० [सं० उपकार] उपकार। ~सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया **उपगार**। →सा० गु० (१) ३-१।

उपगारी—वि० [सं० उपकारिन] भलाई करने वाला, उपकार करने वाला। ~है कोई ऐसा पर **उपगारी** हरि सौं कहै सुनाइ रे। →सब० १८६-७, सा० सजी० (४७) ७-१।

उपचारा—संज्ञा पु० [सं०] विधान। ~पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, किरतम किन **उपचारा**। →सब० ३१-१२।

उपजणि—संज्ञा स्त्री०[सं० उद् + √पद्] भगवद्भक्ति की उत्पत्ति।→(५०) सा०, उपजणि०।

उपजत—क्रि० [हि० उपजना] उपजना, जन्म होना। ~जौ पै रसनां रामु न कहिबौ, तौ **उपजत** बिनसत भरमत रहिबौ। →सब० १३२-१।

उपजल—क्रि० [हि० उपजना] पैदा हुए। ~जेहि जल **उपजल** सकल सरीरा; सो जल भेद न जानु कबीरा। → सब० १०७-४।

उपजाया—क्रि० [हि० उपजाना] पैदा हुआ, बना। ~छूतिहि जेवन छूतिहि अँचवन, छूतिहि जग **उपजाया**। → सब० १६६-७।

उपजि—क्रि० [हि० उपजना] उत्पन्न होना। ~**उपजि** बिनाँ कछु समुझि न परई, बाँझ न जानै पीरा। → सब० १६४-२।

उपनौ—क्रि० [सं० उत् + √पद] उत्पन्न होना। ~ग्वाड़ा मांहैं आनंद **उपनौं**; खूँटै दोऊ बाँधी रे। →सब० २७-६।

उपाइ—क्रि० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न करके। ~डारी खाँड पटकि करि, अंतरि रोस **उपाइ**। →सा० विर० (३) ३२-१।

उपाई—क्रि० [सं० उत्पन्न] पैदा किया। ~कहै कबीर करम किस लागै झूठी संक **उपाई**। →सब० ६१-८।

उपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवच्छेदक सीमाएँ। ~सहज लछिन ले तजो **उपाधि**, आसन दिढ़ मुद्रा पुनि साधि। →सब० ५४-७।

उपाधि—स्त्री० [सं०] कष्ट, व्यथा; बाधा। ~तन महिं होती कोटि **उपाधि**, उलटि भई सुख-सहज समाधि। →सब० २०-३।

उपानें—क्रि० [सं० उत्पाद] उत्पन्न किया। ~जेते औरति मरद **उपानें**। सो सभ रूप तुम्हारा। →सब० २३-१३।

उपाने—क्रि० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न हुआ। ~रज बीरज सो मांस **उपाने**, मांस नपाक जो तुन खाई। →पद २१०-५।

उपानेउ—क्रि० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न हुए। ~जेहि जल नाद विंदु को भेदा, षट कर्म सहित **उपानेउ** वेदा। → सब० १०७-२।

उपाय—वि० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न। ~एक कनक अरु कामिनीं; विष फल किया **उपाय**। →सा० कामी० (२०) ११-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपाया—क्रि० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न किया, पैदा किया।~सुख क बिर्छ एक जगत **उपाया**; समुझि न परै विषै कछु माया। →र० ८२-१, सब० १३३-३, पद २६७-६, पद २८१-३।

उपाया—संज्ञा पु० [सं० उपाय] प्रयत्न। ~जग परबोधि होत नर खाली, करते उदर **उपाया**।→पद ३४१-३।

उपारिन— क्रि० [हि०] उखाड़ा।~सिसु-पाल की भुजा **उपारिन**, आपु भए हरि ठूँठा। →सब० ४-८।

उपारूँ—क्रि० [हिं० उपारना] उखाड़ लूँ।~दाँत **उपारूँ** पापिनी, जे संतों नियरे जाइ। →सा०माया० (१६) २१-२।

उबरंत—क्रि० [सं० उद्धारण] उबरता है, बचता है।~कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध **उबरंत**। →सा० गुरु० (१) २०-२।

उबरुहुगे— क्रि० [हि० उद्धार] उद्धार होगा।~सबै जीव सांई के प्यारे **उबरुहुगे** किस बोलै। →पद २३०-८।

उबरे—क्रि० [सं० उद्धार] उबर गए। ~कहै कबीर हमं राँम लगि **उबरे**, वेदु भरोसे पांडे डूबि मरहि। → सब० ८२-८।

उबरे— क्रि० [सं० उद्धार] बचे।~ कहहिं कवीर तेई जन **उबरे**, जेहि गुरु लिया जगाई। →पद २६१-६।

उबरै—क्रि० [सं० उद्धारण] उद्धार होता है।~कहत कबीर सुनहु रे सुवटा, **उबरै** हरि सरनाई।→पद ३२०-५।

उबहै—क्रि० [सं० उद्वहन] उलीचता है।~संगति छोड़ि करै असरारा, **उबहै** मोट नर्क कर धारा। →र० ४३-५।

उबाना—क्रि० [हि०] कपड़ा बुनने में राछ के बाहर सूत का रह जाना। यहाँ तात्पर्य है अलग रहना।~बै भरा तिहु लोकहि बाँधे, कोइ न रहत **उबाना**। →सब० १२७-६।

उभै— वि० [सं० उभय] दोनों।~आदि अनंत **उभै** पख निरमल, द्रिष्टि न देखा जाई। →पद ३०५-११।

उमँगे— क्रि० [सं० उमंग] उद्धार होना, निकलना।~दिन दिन जरै जलन के पाऊँ, डाढ़े जाय न **उमँगे** काऊ। → र० ५६-१।

उमेख—स्त्री० [सं० उन्मेष] लालसा, उमंग।~सती जरन कौं नीकसी, चितधरि एक **उमेख**। →सा० सूरा० (४५) ३७-१।

उमेषै—वि० [दे०] आश्चर्य चकित रह जाना।~ऐसा अद्भुत मेरे गुरु कथा, मैं रहा **उमेषै**। →सब० ५१-१।

उरग—संज्ञा पु० [सं०] सर्प।~जेहि जिव जानि परा जस लेखा, रजु को कहे **उरग** सम पेखा। →पद २८४-३।

उरझाई—क्रि० [हि० उलझाना] उलझा कर।~चरनन लागि करौं सेवकाई, प्रेम प्रीति राखौं **उरझाई**। →सब० ६-४।

उरझि—क्रि० [हि० उलझना] उलझ कर।~कहत सुनत सब दिन गए, **उरझि** न सुरझा मन। →सा० निगु० (५५) ६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उरझेरा—क्रि० [हि० उलझना] उलझता रहा। ~नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझै, जनमि जनमि **उरझेरा**। → सब० १३४-७।

उरझै—क्रि० [हि० उलझना] उलझ जाता है, फँसता है। ~जोति देखि पतंग **उरझै** पसु न पेखै आगि। → सब० १८७-५।

उरध—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊपर। ~अरध **उरध** ले भट्ठी रोपिनि, ब्रह्म अगिनि परजारी। →पद ३०३-३, सब० १४०-७, सा० बेसा० (३५) १-३।

उरध—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊपर, ब्रह्मरंध्र। ~अरध **उरध** बिच लाइले अकास, सुन्नि मंडल महिं करि परगासु। → सब० ४३-११।

उरध—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊपर, त्रिकुटी के ऊपर के चक्र। ~चौपड़ि माँडी चौहटे, अरध **उरध** बाजार। →सा० गु० (१) ३१-१।

उरलै—वि० [हि०] निराला। ~बिस्नु माया परगट किया **उरलै** ब्यौहारा। → पद ३१६-६।

उर्ध—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊपर। ~ब्रह्म अगिनि कियो प्रगास, अर्ध **उर्ध** तहँ बहै बतास। →बसंत (४) २-३।

उलंघा—क्रि० [सं० उल्लंघन] लाँघ कर, उपेक्षा कर। ~जोति बिना जगदीस की, जगत **उलंघा** जाइ। →सा० अपा० (४८) ४-२।

उलंघै—क्रि० [सं० उल्लंघन] लाँघ जाता है, पार कर जाता है। ~पंगुला मेर सुमेर **उलंघै**, त्रिभुवन मुकुता डोलै। →सब० २८-७।

उलटीले—क्रि० [दे०] उलट कर। ~**उलटीले** सकति सहारं, पैसीले गगन मझारं। →सब० १७१-५।

उसास—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्छ्वास] व्यथा की श्वास। ~अनी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ **उसास**। →सा० कुसब० (३६) १-१।

उहवाँ—क्रि० वि० [हि० वहाँ] वहाँ पर। ~धर्म कर्म कछु नाहीं **उहवाँ**, ना वहँ मंत्र न पूजा। →सब० १६६-४।

ऊ

ऊँ—सर्व० [हि० वह] वह। ~काया हांडी काठ की, ना **ऊँ** चढ़ै बहोरि। → सा० चिता० (१२) ३१-२, सब० १५४-२। दे० 'ऊ'।

ऊँकार—संज्ञा पु० [सं० ओंकार] परब्रह्म का सूचक ['ओं + (कार)] शब्द। ~ओ **ऊँकार** आदि जो जानै, लिखिकै मेटै ताहि सो मानै। →ज्ञान चौं० १-१।

ऊँड़ा—वि० [राज०] गहरा। ~कबीर मन का बाहुला, **ऊँड़ा** बहै असोस। →सा० साषीभू० (५७) ३-१, सा० असा० (२७) ३-२।

ऊँधेमुखि—यौ० [सं० अधःमुख] नीचे मुख कर के गर्भ में आना। ~जीवत तिस घरि जाइऐ, **ऊँधेमुखि** नहिं आवै। →सब० ५२-८।

ऊ—सर्व० [हि० वह] वह। ~थ था अति अथाह थाहो नहिं जाई, ई थिरि **ऊ** थिरि नाहिं रहाई। →ज्ञान चौं० (१) ३७-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊगा—क्रि० [सं० उद् + √गम्] उदित हुआ। ~कबीर कँवल प्रकासिया, **ऊगा** निर्मल सूर। →सा० पर० (५) ४३-१।

ऊगे—क्रि० [सं० उद्गमन] उदय होने पर।~देवलि देवलि धाहड़ी, देसी **ऊगे** सूरि। →सा० विर० (३) ४४-२।

ऊगै—क्रि० [सं० उद्गमन] उदय होता है।~जो **ऊगै** सो आँथवै, फूलै सो कुम्हिलाय। →सा० काल० (४६) ११-१।

ऊघड़ि—क्रि० [सं० उद्घाटित] उघड़ गए, खुल गए।~कबीर सुपनै रैनि कै, **ऊघड़ि** आए नैन। →सा० चिता० (१२) २२-१।

ऊचरै—क्रि० [सं० उच्चार] उच्चारण होना, कहना।~जिहि मुखि राम न **ऊचरै**, तिहि मुख फेरि कहाइ। सा० सुमि० (२) २३-२।

ऊचरै—क्रि० [सं० उच्चारण] उच्चरित होना।~जा मुखि राँम न **ऊचरै**, ताही तन की हाँनि। →सा० सार० (३२) २-२।

ऊचरै—क्रि० [सं० उच्चारण] उच्चारण करता है।~जोगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राँम नांम **ऊचरै**। → पद ३४६-९।

ऊचरै—क्रि० [सं० उच्चारण] बोलना, कहना।~दुरगा कोटि जाकै. मरदनु करै, ब्रह्मा कोटि वेद **ऊचरै**। → सब० १२८-४।

ऊजँड़—वि० [सं० उज्झ] उजड़ा हुआ, वीरान। ~राँम सनेही बाहिरा, **ऊजँड़** मेरे भाव। →सा० साधुम० (३०) २-२।

ऊजर—वि० [सं० उज्ज्वल] स्वच्छ, उज्ज्वल, सफेद। ~**ऊजर** भए न छूटिए, सुख नींदरी न सोइ। →सा० चिता० (१२) ५३-२, कहरा (३) ३-३, सा० मधि० (३१) ९-१।

ऊजल—वि० दे० 'ऊजर'।

ऊजला— वि० [सं० उज्ज्वल] शुभ्र, महान्।~धन मैली पिव **ऊजला**, लागि न सक्कौं पाइ। →सा० पर० (५) ३६-२।

ऊजू—क्रि० [अ० वज़ू] नमाज से पहले हाथ, पैर, मुँह धोना।~क्या **ऊजू** जप मंजन कीए, क्या मसीति सिरु-नाएँ। →सब० २३-५।

ऊजे—सर्व० [हि० वह + जो] वह जो। ~**ऊजे** सुनी जौनपुर धामा, झूंसी सुनि पीरन को नामा। →र० ४८-२।

ऊड़ि—क्रि० [ब्रज०] कूदकर, उछलकर। ~ऊचाँ चढ़ि असमान कूं, मेर ऊलंघे **ऊड़ि**। →सा० उपज० (५०) ४-१।

ऊड़ि—क्रि० [सं० उड्डयन] उड़ना। ~**ऊड़ि** पड़ै जब आँखि मैं, खरा दुहेला होइ। →सा० निन्द्या० (५४) ६-२।

ऊड़ै—क्रि० [दे०] उड़ जाना, मिट जाना।~जाके पूजे पाप न **ऊड़ै**, नाम सुमिरिनी भव मँह बूड़ै। → विप्र० (२) १६।

ऊतिम—वि० [सं० उत्तम] श्रेष्ठ।~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाबुल मेरा ब्याह करि वर ऊतिम लै आइ। → पद २३५-५।

ऊदै—वि० [सं० उदय से] उदित।~ अति आतुर **ऊदै** किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद। →सा० गुरु० (१) १८-२।

ऊध्यौ—वि० [सं० अधः] नीचे की ओर, औंधा।~ **ऊध्यौ** कूप घाट भयौ भारी, चली निरास पंच पनिहारी। →सब० १५०-३।

ऊनी—वि० [सं० ऊन + हिं० ई (प्रत्यय)] कम, न्यून।~कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, सकल सयानप **ऊनी** हो। → कहरा (३) ३-८।

ऊपजै—क्रि० [हिं०√उपज] उत्पन्न होता है।~मन परतीति न **ऊपजै**, जीव वेसास न होइ। →सा० चिता० (१२) ५५-२।

ऊबरा—क्रि० [सं० उद्वरण] उद्धार हो गया।~तिनका बपुरा **ऊबरा**, गलि पूरे कै लागि। →सा० ग्या० वि० (४) ७-२।

ऊबरे—क्रि० [हि० उबरना] उद्धार होना।~कहैं कबीर ते **ऊबरे**, निसि-दिन नामहि लेंय। →र० ६-७।

ऊबरे—क्रि० [हि० उबरना] बचे, उद्धार हुआ। ~विधि हरि हर नहिं **ऊबरे**, सुर नर मुनि केहि केर। → र० ४६-६।

ऊबरे—क्रि० [सं० उद्वारण] बच गए। ~ राँम सनेही **ऊबरे**, विषयी खाये झारि। →सा० कामी० नर० (२०) १-२।

ऊबरैं—क्रि० [सं० उद्वरण] बच जाता है।~आधा परधा **ऊबरैं**, चेति सकै तौ चेति। →सा० चिता० (१२) १५-२।

ऊबै—क्रि० [हिं०] ऊबना, व्याकुल होना। ~खन **ऊबै** खन डूबै खन औगाह। →सब्द० १६७-३।

ऊभर—वि० [हिं० उभरना] उभरा हुआ, खाली।~**ऊभर** था सो सूभर भरिया, त्रिसनां गागरि फूटी।→ सब० १५-३।

ऊभा—क्रि० [सं० ऊर्ध्व > प्रा० उब्भ] खड़ा है। ~ पंथी **ऊभा** पंथ सिरि, बगुचा बाँधा पूठि। → सा० काल (४६) २२-१।

ऊभा—क्रि० [सं० ऊर्ध्व, प्रा० उब्भ] उठा हुआ, खड़ा हुआ। ~ सबही **ऊभा** मेल्हि गया, राव रंक सुलतान। →सा० चिता० (१२) ५-२।

ऊभी—क्रि० [सं० ऊर्ध्व] खड़ी है। ~बछरा था सो मरि गया, **ऊभी** चाँम चटाइ। →सा० अपा० (४८) ५-२।

ऊभी—वि० [सं० उर्ध्वित, प्रा० उब्भिय] खड़ी हुई। ~ बिरहिनि **ऊभी** पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ। →सा० बिर० (३) ५-१, सा० मा० (१६) १०-१।

ऊलंघे—क्रि० [सं० उल्लंघन] लाँघ गया। ~ऊँचा चढ़ि असमान कूँ, मेर **ऊलंघे** ऊड़ि। →सा० उपज० (५०) ४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ए

ए—सर्व० [हि० ये] ये लोग (उपदेशक)। ~ओ अगाध **ए** का कहैं, भारी अचरज होइ। →सा० हैरा० (६) १-२।

एउ—सर्व० [हि० यह] यह। ~भूली मालिनी है **एउ**। →पद २११-१।

एक—वि० [सं०] अद्वितीय। ~अबरन **एक** अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै। →पद २८०-२।

एक आध—वि० [सं० एक+अर्द्ध] एक आध, कोई-कोई, बिरला। ~ कहै कबीर गुर ग्यान तैं, **एक आध** उबरंत। →सा० गु० (१) २०-२।

एकताई—संज्ञा स्त्री० [हि०] समानता, बराबरी। ~ ओढ़न मेरा एक पिछौरा, लोग बोलैं **एकताई** हो। →कहरा (३) १०-२।

एकमेक—वि० [सं०] एकरस, अद्वैत। ~**एकमेक** ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा राम। →सा० सह० (२१) ३-२।

एकसर—वि० [सं० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला। ~ दुखित सुखित होइ कुटुम्ब जेंवावै, मरण वेर **एकसर** दुःख पावै। →पद २५८-४।

एक सारा—वि० [सं० एक+प्रा० सरि =सदृश] एक समान। ~लपसी लौंग गनै **एक सारा**, पहिरि खाँड़ मुख फाँकै छारा। →र० ७१-६।

एकै—संज्ञा पु० [सं० एक] एक, परम तत्व। ~जो यह **एकै** जानिया, तौ जानां सब जान। →सा० निह० पति० (११) ८-१।

एतिक—वि० स्त्री० [सं० इयत्] इतनी। ~ **एतिक** लै गम कीहिस गइया, गइया अति हरहाई। → पद २०६-६।

एरंड—संज्ञा पु० [सं० एरण्ड] रेंड़। ~ **एरंड** रूख करै मलयागिरि, चहुँ दिसि फूटै बासा। →सब० २८-५।

एहि—सर्व० [सं० इह] इस। ~ओहु मारग पावै नहीं, भूलि परे **एहि** माँहि। →सा०सू०मा० (१४)१-२।

ऐंड़ौ—वि० [हिं० ऐंठा] टेढ़े चलना। ~ मन दस नाज टका दस गांठी, **ऐंड़ौ टेढ़ौ** जात। →सब० ७०-२।

ऐकत—संज्ञा पु० [सं० एकान्त] एकान्तवास। ~**ऐकत** छाँड़ि जाँहि घर घरनीं, तिन भी बहुत उपाया। → पद २६७-६।

ओ

ओ—सर्व० [हि० वह] वह। ~ओ अगाध ए का कहैं, भारी अचरज होइ। →सा० हैरा० (६) १-२।

ओइ—सर्व० [हिं० वे] वे। ~जैसे मेंडुक तैसे **ओइ** नर फिरि फिरि जोनीं आवै। →सब० १७७-६।

ओछी—वि० [सं० अवच] तुच्छ, क्षुद्र। ~पुन्नै पाए द्यौहड़े, **ओछी** ठौर न खोइ। → सा० चिता० (१२) ५६-२। सब० १८६-४, र० ८०-३।

ओछे—वि० [सं० तुच्छ>प्रा० उच्छ> हि० ओछा] खोटे, दुष्ट। ~पूरब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनम हम बाह्मन होते **ओछे** करम तप हीनां । →पद० २३१-५ ।

ओट—संज्ञा स्त्री० [सं० उट्] शरण, सहारा। अवलम्ब, आश्रय; आड़ । ~ कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाड़ै **ओट** । →सा० चिता० (१२) ५१-१, सा० सुमि० (२) १६-२, सा० साधु० (२८) १२-२, सा० सूरा० (४५) १६-१ ।

ओटा—संज्ञा स्त्री० [सं० उट्] आड़, ओट, भेद, पर्दा । ~घर घर साउज खेलै अहेरा, पारथ **ओटा** लेई । →पद ३२३-२, सब० १८८-६ ।

ओटे—संज्ञा स्त्री० [हिं०] व्यवधान, पर्दा, आवरण । ~ तिन कै **ओटे** राम हैं, परवत मेरे भाइ । → सा० कस्तू० (५३) ७-१ ।

ओढ़न—संज्ञा पु० [उपवेष्टन] ओढ़ने का वस्त्र, यहाँ तात्पर्य है—आश्रय । ~**ओढ़न** मेरा राम नाम, मैं रामहिं का बनिजारा हो । →कहरा (३) ४-१ ।

ओढ़न—संज्ञा पु० [सं० उपवेष्टन, प्रा० ओड्ढण] ओढ़ने का वस्त्र । ~ **ओढ़न** हमरै एक पछेवरा लोक बोलैं इकताई हो । →पद २३७-६, कहरा (३) १०-२ ।

ओपै—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओप्पा] दीप्ति, झलकता है । ~और सकल ए कूकरि सूकरि, सुंदरि नाउँ न **ओपै** । → सब० ६६-१० ।

ओपै—वि० [हिं०] उपयुक्त । ~ ए उपमाँ हरि किती एक **ओपै**; अनेक मेरु नख ऊपरि रोपै । →पद २८३-४ ।

ओरि—संज्ञा पु० [सं० अवार] अंत (तक)। ~ कबीर तासौं प्रीति करि; जो निरबाहै **ओरि** ।→सा० संग० (२६) ६-१, सा० उपदे० (३४) ७-१ ।

ओलै—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाते, आश्रय, सहारे । ~ कहै कबीर मेरौ मन मान्यौ राम प्रीति कै **ओलै** । → पद २५४-६ ।

ओषद—संज्ञा पु० दे० 'ओषध' ।

ओषदि—संज्ञा स्त्री० दे० 'ओषध' ।

ओषध—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] दवा । ~ इक तंत मंत **ओषध** बाँन, इक सकल सिध राखैं अपान । → सब० ६१-६, पद २६२-३; सा० चिता० (१२) ४०-२, सब० १४२-४ ।

ओसों—संज्ञा स्त्री० [सं० अवश्याय] ओस से । ~ **ओसों** प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ । → सा० सुमि० (२) २१-२ ।

ओहु—सर्व० [हिं० वह] वह । ~**ओहु** मारग पावै नहीं, भूलि परे एहि माँहि । → सा० सू मा० (१४) १-२ ।

औंधा—वि० [सं० अव + मूर्द्धा] उलटा, जिसका मुँह नीचे की ओर हो । ~ आकासे मुखि **औंधा** कुआँ पाताले पनिहारि । → सा० पर० (५) ४५-१ ।

औखधि—संज्ञा स्त्री० दे० 'ओषध' ।

औगह—वि० [सं० अगाध] अथाह । ~तहाँ कुसुंभ रंग जो पावै, **औगह**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गहि कै गँगन रहावै । →ज्ञान चौ० (१) ४ ।

औगाह—क्रि० [सं० अवगाहन] थाह लगाना । ~खन ऊबै खन डूबै खन **औगाह** ।→सब० १६७-३ ।

औगुन—संज्ञा पु० [सं० अवगुण] अवगुण, दोष । ~परनारी कै राचनैं; **औगुन** है गुन नाँहिं ।→सा० कामी० (२०) ५-१, र० ६५-१, सा० मन० (१३) ७-१; सा० सार० (३२) ३-१, सा० बी० (५६) ३-१ ।

औघट—वि० [सं० अव+घट या घट्ट] दुर्गम, विकट मार्ग । ~**औघट** घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रहा कबीर । →सा० मधि० (३१) ५-१, सा० पर० (५) २८-१, सा० पर० (५) ६-१; सब० १४४-६ ।

औंचिताह—वि० [सं० अव+चिंता] निश्चित, बेखबर । ~काल सचांनां नर चिड़ा, औझड़ **औंचिताह** । → सा० काल (४६) २-२ ।

औझड़—क्रि० वि० [सं० अव+हिं० झड़ना] लगातार, निरंतर । ~ काल सचांनां नर चिड़ा, **औझड़** औंचिताह । → सा० का० (४६) २-२ ।

औतरिया—क्रि० [सं० अवतरण] अवतरित होना, जन्म लेना । ~ कर्म तो सो जो भव **औतरिया**, कर्म तो सो निमाज को धरिया । → र० ३६-३ ।

और—वि० [सं० अपर] (इसके) अतिरिक्त कोई अन्य ।~कहै कबीरा संत हौ, अविगत की गति **और** ।→ सा० सू० मा० (१४) ५-२ ।

औरति—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्त्री ।~ जेते औरति मरद उपानें, सो सभ रूप तुम्हारा ।→सब० २३-१३ ।

औरनि—वि० [सं० अपर] अन्य सब कुछ ।~मैं सबहिन्ह महिं **औरनि** मैं हूँ सब । →पद २३७-१ ।

औरां—वि० [सं० अपर] अन्य (लोगों) को । ~ **औरां** कौं परमोधता; गया मुहरकाँ माँहिं । → सा० चाण० (१७) १३-२ ।

औलिया—संज्ञा पु० [अ०] संत, सिद्ध । ~सुर नर मुनि जति पीर **औलिया**, मीरा पैदा कीन्हा हो ।→कहरा (३) ८-३, पद २६७-५ ।

औलौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओलती] छप्पर का वह किनारा, जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है ।~**औलौती** का चढ़ा बरेडै जिनि पीया तिनि जांनां । →पद २१६-६ ।

औसर—संज्ञा पु० [सं० अवसर] उपयुक्त अवसर पर ।~मरते मरते जग मुवा, **औसर** मुवा न कोइ । →सा० जीवत मृ० (४१) ५-१ ।

औसर—संज्ञा पु० [सं० अवसर] अवसर, समय । ~ **औसर** चले बजाइ करि, है कोइ लावै फेरि । →सा० चिता० (१२) ३-२, पद २२४-६ ।

औसर लेवा—मुहा० बदला लेंगे । ~ अगिले जनम उन **औसर लेवा** । → पद २४२-६ ।

औसेरि—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसर]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिन्ता, बेचैनी, उचाट। ~ बहुतक दिन बिछुरें भए, तेरी **औसेरि** आवै मोहि रे।→सब० ९७-२।

क

कंक—संज्ञा पु० [सं०] सफेद चील अथवा क्रौंच पक्षी। ~ जासों हिरदा की कहूँ, सो फिरि माँड़ै **कंक**। → सा० गु० सि० हे० (४३) ६-२।

कंगुरै—संज्ञा पु० [फ़ा० कंगुर] शिखर, चोटी। ~ धड़ सूली सिर **कंगुरै**, तऊ न बिसारौं तुज्झ।→सा० सूरा० (४५) २९-२।

कंचन—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ण, सोना।~ बड़ छली रावन सो गौ बीती, लंका रहल **कंचन** की भीती।→र० ४७-२, र० ६४-१, सब० १४६-४, सब० १८४-५।

कंत—संज्ञा पु०[सं० कान्त] पति, स्वामी, परमात्मा, ईश्वर। ~सकति सुहाग कहौ क्यूँ पावै, अछता **कंत** बिरोधै। →पद २५१-४, पद ३१२-८, सा० बिर० (३) २९-१।

कंथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिथड़ा, फटा वस्त्र, गुदड़ी। ~परगट **कंथा** मांहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै।→सब० ३४-५।

कँदला—संज्ञा स्त्री० [सं० कंदरा] गुफा। ~कबिरा तेरो घर **कँदला** में, यह जगत भुलाना।→सब० ६४-१।

कंदा—संज्ञा पु० [सं० कंद] कंद, मूल। ~ग्रिह तजि वनखंडि जाइऐ, खनि खाइऐ **कंदा**।→सब० ६९-३।

कंदूरी—संज्ञा पु० [फ़ा०] खाना खाने का कपड़ा, दस्तरखान। ~बिसमिल तांमसु भरम **कंदूरी**, भखि लै पंचै होइ सबूरी। → सब० ७२-४।

कंद्रप—संज्ञा पु० [सं० कंदर्प] कामदेव। ~**कंद्रप** कोटि जाके लावन करै, घट घट भीतरि मनसा हरै।→सब० १२८-१७।

कंध—संज्ञा पु० [सं० स्कंध] कंधा, सहारा।~कंध न देइ मसखरी करई, कहु धौं कौनि भाँति निस्तरई। → र० ५६-२।

कंधि—संज्ञा पु० [सं० स्कंध] कंधे पर। ~**कंधि** काल सुखि कोइ न सोवै; राजा रंकु दोऊ मिलि रोवैं।→सब० १३२-२।

कंवला—संज्ञा स्त्री० [सं० कमला] लक्ष्मी। ~केसव कै **कंवला** होइ बैंठी, सिव के भवन भवांनी। →पद २२७-३, सब० १६२-४।

कँवला—संज्ञा पु० [सं० कमल] कमल। ~ है साधू संसार मैं **कँवला** जल मांहीं। → पद ३४५-१।

कंवलाकंत— संज्ञा पु० [कमलाकांत] विष्णु, ब्रह्म। ~द्वादस दल अभि-अंतर मंत, जहाँ पउढ़े श्री **कंवलाकंत**। → सब० ४३-१०।

कंसा—संज्ञा पु० [सं० कांम्य] काँसा, झाँझ। ~ **कंसा** नाद बजाइले, धुनि निमसिले कंसा। → सब० ५२-५।

कउवा—संज्ञा पु० [सं० काक] काग, कौआ। ~ **कउवा** कुबुधि निकट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहिं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै ।→पद० ३३४-५, पद २६६-४ ।

कच्छ—संज्ञा पु० [सं० कच्छप] कछुआ । ~ मच्छ **कच्छ** घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया । → सब० १७४-६ ।

कच्छ—संज्ञा पु० [सं० कच्छप] कच्छपावतार, कछुआ । ~ सूर्य चन्द्र तारागन नाहीं, मच्छ **कच्छ** नहिं दूनी । → सब० ३१-६, र० ७५-८, पद २६२-३ ।

कछ—संज्ञा पु० दे० 'कच्छ' ।

कछावौ—क्रि० [देश०] धारण कराओ । ~ जे मसि लागी सबै छुड़ावौ, अब मोहिं जनि बहु रूप **कछावौ** । →पद २८८-४ ।

कजरा—संज्ञा पु० [सं० कज्जल] अंजन, काजल । ~ नैन गैल मोर **कजरा** देत, बैस गैल पर पुरुष लेत । →वसन्त (४) ४-३ ।

कजौड़ा—संज्ञा पु०[देश०] समूह ।~फूस **कजौड़ा** दूरि करि, ज्यूँ बहुरि न लागै लाइ । सा० सूरा० (४५) ३६-२ ।

कटक—संज्ञा पु० [सं०] सेना, समूह । राम नाम जाना नहीं, पाल्यो **कटक** कुटुम्ब । → सा० चिता० (१२) ३३-१ ।

कटोरी—संज्ञा स्त्री०[हिं०] छोटा कटोरा, धातु का प्याला । ~ बैठे सभा संभु सनकादिक, तहँ फिरे अधर **कटोरी** । पद ३०३-६ ।

कठठाइ—क्रि० [हिं०] कड़ा हो जाता है । ~साकत सन का जेवड़ा, भींगा सूँ **कठठाइ** । →सा० चाँण० (१७) ११-१ ।

कड़ियाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिकारी] लगाम । ~ मुखि **कड़ियाली** कुमति की, कहन न देई राम । → सा० माया० (१६) ४-२ ।

कडुई—वि० [सं० कटु] कड़वाहट से युक्त, तिक्त स्वाद वाली । ~ कबीर **कडुई** बेलड़ी, कडुवा ही फल होइ । →सा० वेली० (५८) ५-१ ।

कत—अव्य० [सं० कुतः] कैसे, कहाँ, कहाँ से, किस प्रकार, किसको, क्यों, किसलिये, किसका । ~ बूँद समानी समुंद्र मैं, सो **कत** हेरी जाइ । → सा० लाँबि० (७) ३-२, सा० मन० (१३) २२-१, सब० १६४-५, पद ३४६-१, पद २४३-३, सा० बिर्क० (३७) ५-२ ।

कतरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] कैंची ।~हाथ सुमिरनीं पेट **कतरनी** पढ़ै भागवत गीता रे । → पद २६३-३ ।

कतेब—संज्ञा पु० [अ० किताब] कुरान । ~ बेद **कतेब** दीन अरु दुनियां, कौंन पुरिख कौंन नारी । →सब० ५५-२, सब० ३-५ ।

कतेब—संज्ञा पु० [अ० किताब] ग्रंथ, कुरान शरीफ । ~ काजी तैं कवन **कतेब** बखानीं । → सब० ७६-१ ।

कथनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कथन + हिं० ई (प्रत्य०)] मुख से ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें करना, उपदेश ।~**कथनी** कथी तो क्या भया, जौ करनीं नाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठहराइ । →सा० कर० बि० कथ० (१८) १-१ ।

कथसि—क्रि० [हिं० कहना] कहता है । ~तौ पंडित का **कथसि** गियांन । →सब० १३१-२ ।

कथि गया—क्रि०[सं० √कथ् + √गम्] कह गया । ~कबीर कहै मैं **कथि गया**, कथि गये ब्रह्म महेस । → सा० सुमि० (२) २-१ ।

कथीर—संज्ञा पु० [सं० कस्तीर>कत्थीर >कथीर] राँगा । ~ पहिले काच **कथीर** था, फिरता ठाँवै ठाँउ । → सा० उप० (५०) ८-२ ।

कथौ—क्रि० [हिं० कहना] गुणगान करो । ~निरगुन ब्रह्म **कथौ** रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधि मति पाई । →पद २४७-३ ।

कदली—संज्ञा पु० [सं०] केला ।~**कदली** सीप भुवंग मुख, एक बूँद तिहुँ भाइ । सा० कुसं० (२५) २-२ ।

कदे—अव्य० [सं० कदा] कब, कभी का, बहुत दिनों से । कभी, कभी भी । ~तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच **कदे** का खाइ । सा० सुमि० (२) १४-२, सा० विर्क० (३७) ४-१, सा० निह० पति० (११) १७-१, सा० कामी० (२०) २२-१, सा० कुसं० (२५) ३-२ ।

कनक—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ण, सम्पत्ति । ~ **कनक** काभिनी घोर पटोरा, संपति बहुत रहै दिन थोरा । →र० २१-४, पद २२८-५ ।

कनफूँका—संज्ञा पु० [हिं०] कान फूंक कर दीक्षा देने वाला योगी, गुरु । ~ सींगी रिखि और गुर **कनफूँका** बाधिनि सभै मरोरी । → पद ३१३-६ ।

कनयर—संज्ञा पु० [सं० कणेर] कनेर; कँदैल का वृक्ष । ~ जनम जनम जम अंतर बिरहुली, फल एक **कनयर** डार बिरहुली । → बिरहुली (७) १२ ।

कनराई—वि० [सं० काण] किनारे, वास्तविक मार्ग से हटकर । ~ हिन्दू तुरक दोऊ रह तूटी फूटी अरु **कनराई** । → पद ३२६-७ ।

कनिहार—संज्ञा पु० [सं० कर्णधार] नाविक, पतवार पकड़ने वाला । ~ नाद विंद की नाव री, राँम नाँम **कनिहार** । →पद ३४२-११ ।

कनीर—संज्ञा पु० [सं० कणेर] कनेर, एक पुष्प जिसका रंग लाल, पीला, सफेद होता है ।~जालूँ कली **कनीर** की, तन राता मन सेत ।→सा० चित्तक० (४२) १-१ ।

कपाट—संज्ञा पु० [सं०] किवाड़, दरवाजा, द्वार ।~काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म **कपाट** । →सा० भ्रमवि० (२३) २-१, ज्ञान चौं० (१) २५; पद २०२-१० ।

कपि—संज्ञा पु० [सं०] बंदर, हनुमान ।~ नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हो **कपि** को रूपा । →सब० ४-७, पद ३०३-५ ।

कफ—संज्ञा पु० [सं०] विकार !~औरै रस ह्वै है **कफ** गाता, हरि रस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिक अधिक सुखदाता। →सब० १४-४।

कबर—क्रि० वि० [क + बर (वार)] किस दिन; कब।~एक सबद कहि पीव का, **कबर** मिलैंगे आइ। → सा० बिर० (३) ५-२।

कबहुँक—क्रि० वि० [सं० कदा से] संभवतः कभी, न जाने कब।~ राति दिवस कै कूकनैं, **कबहुँक** लगै पुकार।→सा० सुमि० (२) १६-२।

कबाइ—संज्ञा पु० [अ० क़बा] चोंगा, एक लम्बा ढीला पहनावा।~एक दोस्त जो हम किया, जिस गलि लाल **कबाइ**। → सा० मन० (१३) ११-१।

कबीनैं—क्रि० [हि० करना] रचते-रचते। ~कवि **कबीनैं** कविता मूए, कापड़ी केदारै जाई। →पद २६०-५।

कबीर—वि० [फ़ा०] श्रेष्ठ, महान्। ~ जो कछु किया सो हरि किया, (तायैं) भया कबीर **कबीर**। → सा० सम्र० (३८) १-२, पद २३७-१०।

कबुलावै—क्रि० [अ०] स्वीकार करवाना, अनुयायी बनाना।~कहहिं कबीर एक सैयद कहावै, आपु सरीखे जग **कबुलावै**। →र० ४६-७।

कमंडल—संज्ञा पु० [सं० कमण्डलु] संन्यासियों का जलपात्र जो धातु, मिट्टी, तुमड़ी आदि का होता है। ~कया **कमंडल** भरि लिया, उज्ज्वल निर्मल नीर।→सा० लाँबि० (७) १-१।

कमांन—संज्ञा स्त्री० दे० 'कमान'।

कमाई—क्रि० [हि० कमाना] संवारना, तैयार करना।~कुम्भरा एक **कमाई** माटी बहु विधि बांनीं लाई। →पद २१६-३।

कमान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] धनुष। ~ सतगुरु शब्द **कमान** ले, बाहन लागे तीर। → सा० गुरु० (१) ६-१; सा० बिर०(३)१५-१, सब० ६३-५, पद ३०७-४।

कमाना—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमान] धनुष। ~ प्रेम बान एक सतगुरु दीन्हा, गाढ़ो तीर **कमाना** हो। → कहरा (३) २-१४।

कमाय—क्रि० [हि० काम] कमाया, अर्जित किया। ~ बरिया बीती बल गया, औरो बुरा **कमाय**। → सा० काल० (४६) २६-१।

कमोदनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] कुमुदिनी। ~ **कमोदनी** जलहरि बसै, चंदा बसै अकास। →सा० हेत प्री० (४४) १-१।

कया—संज्ञा स्त्री० [सं० काय] शरीर। ~**कया** कमंडल भरि लिया, उज्ज्वल निर्मल नीर। → सा० लाँबि० (७) १-१।

करंक—संज्ञा पु० [सं०] खोपड़ी, सिर की हड्डी, अस्थि, हड्डी। ~ लेखनि करौं **करंक** की, लिखि लिखि राम पठाउँ। → सा०बिर० (३) १२-२, सा० निन्द्या० (५४) ७-२।

करंत—क्रि० [हि० करना] करता है। ~काची काया मन अथिर, थिर थिर करम **करंत**। → सा० काल० (४६) ३०-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर—संज्ञा पु० [सं०] हाथ। ~वेद की पुत्री सुम्रिति भाई, सो जेंवरि **कर** लेतहि आई। →र० ३३-१, वसंत० (४) ८-१।

करक—संज्ञा स्त्री० [हि०] पीड़ा, कसक। ~लागी चोट सरीर मैं, **करक** कलेजे माँहि। → सा० सब० (४०) ५-२।

करकच—संज्ञा पु० [देश०] झगड़ा। ~ अढ़ाई में जे पाव घटै तौ **करकच** करै घरहाई। → पद २७१-६।

करछी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० करच्छु हिं० कलछी] वड़ा चम्मच।~जूठी **करछी** अन्न परोसा, जूठै जूठा खाया। → सब० ७१-६।

करज—सज्ञा पु० [अ० कर्ज] ऋण, उधार। ~ आपा कौ आंटी नहिं निकसी **करज** बहुत सिरि लीन्हा। पद० ३१५-१२।

करतब—संज्ञा पु० [सं० कर्त्तव्य] करतूत, करनी। ~ अपनैं अपनैं रस के लोभी, **करतब** न्यारे न्यारे। सब० ११३-३।

करता—संज्ञा पु० [सं० कर्त्ता] स्रष्टा, सृष्टिकर्ता, परमात्मा, करनेवाला। ~**करता** किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरुक की राह चलाई।→सब० ४०-७, सा० कामी० (२०) २७-१, सा० जरणा० (८) ४-१, सा० मन० (१३) १०-२, सा० वीन० (५६) ३-१, र० ६३-२, र० २६-१, पद ३२६-१०।

करतार—संज्ञा पु० [सं० कर्त्ता] कर्त्ता, ईश्वर, स्रष्टा। ~आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै **करतार**। → सा० गुरु० (१) २६-२, सा० अबि० (५६) ३-२।

करतारा—संज्ञा पु० [सं० कर्त्ता] ब्रह्मा। ~मुए कृस्न मुए **करतारा**, एक न मुवा जो सिरजनहारा। → सब० ८६-५।

करतूति—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्तृत्व] कार्य, कृति। ~कबीर भेष अतीत का, **करतूति** करै अपराध। → सा० असा० (२७) १-१।

करतूती—संज्ञा स्त्री० [सं०कर्तृत्व] कर्म। ~कर्म ते कर्म करै **करतूती**, वेद कितेव भयी सब रीती। → र० ३६-२।

करद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कारद] वड़ी छुरी या कटार। ~दिल तैं दीन बिसारिया, **करद** लई जब हाथि। →सा० साँच० (२२) ७-२।

करदः बूद—क्रि० [फ़ा०] किया (फारसी में 'करदन' धातु का सामान्य भूत-काल)। ~ असमांन म्यांनैं लहंग दरिया गुसल **करदः बूद**। सब० १८१-७।

करन—संज्ञा पु० [सं० कर्ण] कुंती का पुत्र, प्रसिद्ध दानी—कर्ण। ~कहै कबीर हरि के गुन गाया, कुन्ती **करन** कुँवारहिं जाया। → र० ८१-४।

करनीं—संज्ञा स्त्री० [सं०√कृ०] जीवन में, व्यवहार में, क्रिया-कलाप में ज्ञान को चरितार्थ करना। ~कथनी कथी तो क्या भया, जौ **करनीं** नाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठहराइ । →सा० करनी बि० कथ० (१८) १-१ ।

करनी—संज्ञा स्त्री०[हिं०] कर्म, साधना। ~**करनी** किया करम का नास, पावक माँहि पुहुप परकास।→सब० ४७-३ ।

करम—संज्ञा पु० [सं० कर्म] कर्म, पुण्य कर्म । सकाम कर्म, कर्मों का लेखा, कार्य ।~देखौ **करम** कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख । → सा० पर० (५) १२-२, सा० चिता० (१२) ४४-१, र० ५६-३, सब० ४-१, सा० वेसा० (३५) ७-१, सा० काल० (४६) ३०-१, हिंडोला (८) १-५, पद २७५-५ ।

करम—संज्ञा पु० [अ०] दया। ~कबीर **करम** करीम का यहु करै जांनै सोइ। →सब० १८१-१० ।

करम—संज्ञा पु० [सं० कर्म] प्रारब्ध कर्मों का । ~अपनो **करम** न मेटो जाई। →सब० ४-१ ।

करमियाँ—संज्ञा पु०[सं०कर्मकाण्डी] कर्म-काण्डी । ~ कबीर मूढ़क **करमियाँ**, नख सिख पाखर आहि । → सा० निगुणाँ० (५५) ५-१ ।

करमै—संज्ञा पु० [सं० कर्म] कर्मकाण्ड-यज्ञादि ।~**करमै** कै कै जग बौराया, सक्ति भक्ति लै बाँधिनि माया।→र० ४-२ ।

करवट—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्वट] बगल । ~ करवत भला न **करवट** तोरी, लागु गलै सुनु बिनती मोरी । →पद ३५०-३ ।

करवत—संज्ञा पु० [सं० करपत्र] वह आरा या चक्र जिसके नीचे लोग शुभ फल की आशा में प्राण देते थे । ~ **करवत** दै मोहि काहे कौं मारे । → पद ३५०-२, ३ ।

करवा—संज्ञा पु० [सं करक] टोंटीदार लोटा । ~कहै कबीर यह कलि है खोटी, जो रहै **करवा** सो निकसै टोटी। → पद २५८-५ ।

करवै—संज्ञा पु० [सं० करक] मिट्टी का टोंटीदार लोटा । ~ कांचै **करवै** रहै न पांनीं, हंस उड़ा काया कुम्हिलानी। →पद २७८-४ ।

करहा—संज्ञा पु० [सं० करभ] ऊँट ।~ न्यौति जियांऊँ अपनौ **करहा** छार मुनिस की दाढ़ी रे ।→पद २५५-८ ।

करां—संज्ञा पु० [सं० कर] हाथ । ~ पग बिनु निरति **करां** बिनु बाजा, जिभ्या हींनां गावै।→सब० ३७-५ ।

कराउँ—क्रि० [हिं० करना] करूँ । ~ जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोइ भेष **कराउँ** । → सा० बिर० (३) ४१-२ ।

करामाती—वि० [अ०-करामत + (ई)प्र०] आश्चर्यजनक क्रियाएँ दिखाने वाला। ~ काहू के वचनहि फुरे; काहू के **करामाती** ।→ सब० १३५-७ ।

करारै—संज्ञा पु० [सं० कराल] कगार, तट या किनारा।~ठाढ़ी माइ **करारै** टेरै, है कोई लावै गहि रे । →सब० ६७-२ ।

कराल—वि० [सं०] भयङ्कर ।~काल **कराल** निकटि नहिं आवै काम क्रोध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मद लोभ जरै । →पद २४६-६ ।

करिगह—संज्ञा पु० [फ़ा० कारगाह] करघा, काम करने का स्थान । ~ तीनि लोक एक **करिगह** कीन्हो, दिग-मग कीन्हों ताना ।→सब०१२७-१० ।

करीम—संज्ञा पु० [अ०] दयालु । ~ कबीर करम **करीम** का यहु करै जांनै सोइ । → स० १८१-१० ।

करीमाँ—संज्ञा पु० 'दे० करीमा' ।

करीमा—संज्ञा पु० [अ० करीम] कृपालु, ईश्वर । ~हमारे राँम रहीम **करीमा** केसो, अलह राँम सति सोई । →पद ३२६-१, सा० बेसा० (३५) ७-१ ।

करीला—संज्ञा पु० [अ० करीना] क्रम । ~पचूँ भइया भए सनमुखा, तब यहु पान **करीला** । →सब० १५४-६ ।

करेज—सं० पु० [सं० कालेय] कलेजा, दिल । ~ पेट फारि जो देखिए रे भाई, आहि **करेज** न आँता । →पद ३१८-३ ।

करोरा—संज्ञा पु० [सं० कोटि से] करोड़-पति, धनी । ~ घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गाँव पाय जस चले **करोरा** । →र० ६९-८ ।

करोरि—वि० [सं० कोटि] करोड़ों । ~नांगे हाथौं ते गए, जिनके लाख **करोरि** । → सा० चिता० (१२) ३७-२ ।

करोरि—वि० [सं० कोटि] सौ लाख । ~ लच्छ **करोरि** जोरि धन गाड़िनि, चलत डोलावल बांही हो । →कहरा (३) ५-२ ।

कर्मना—संज्ञा पु० [सं० कर्मणा] कर्म से; कर्म द्वारा ।~ मनसा वाचा **कर्मना**, कबीर सुमिरन सार ।→सा० सुमि० (२) ४-२ ।

कर्मा—संज्ञा पु० [सं० कर्म] करतूत; करनी । ~कहै कबीर सुनो हो पांडे, ई सब तुम्हरे **कर्मा** । → सब० १७४-११ ।

कलंक—संज्ञा पु० [सं०] लांछन, दोष । ~नित उठि **कलंक** लगावै सहनां । →सब० ५७-२ ।

कलंकी—संज्ञा पु० [सं० कल्कि] कल्कि अवतार । ~ वै करता नहिं भये **कलंकी**, नहीं कलिंहि गहि मारा । →पद २९२-१९ ।

कल—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्य] शान्ति, चैन, आराम । ~ हिन्दू तुरुक जैन औ जोगी, ये **कल** काहु न जाना । →सब० १६७-७ ।

कलउ—संज्ञा पु० [सं० कलि] कलियुग । ~ द्वापर मैं हम अड़बंद पहिरा, **कलउ** फिरचौ नौ खंडा । →सब० ६३-६ ।

कलतर—संज्ञा पु० [फ़ा० कलदार] मशीन से बना हुआ सिक्का । ~बड़ै बौहरै साँठो दीन्हौं, **कलतर** काढ़्यो खोटै । →पद २१७-३ ।

कलत्र—संज्ञा पु० [सं०] पत्नी । ~पुत्र **कलत्र** रहैं लौ लाए, जम्बुक नित्य रहैं मुंह बाए ।→र० ७८-४ ।

कलप—संज्ञा पु० [सं० कल्प] ब्रह्मा का एक दिन, १४ मन्वन्तर अर्थात् मानव के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष, काल का एक विभाग । ~ काल न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खाइ **कलप** नहिं ब्यापै, देही जुरा नहिं छीजै। →सब० ३२-२, सब० १३-२, हिंडोला (८) १-१६।

कलपै—क्रि० [सं० कल्पन] कलपना, तड़पना, बिलखना। ~ जाके हिरदै हरि वसै, सो नर **कलपै** काँइ। → सा० बेसा० (३५) १८-१।

कलमां—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'कलमा'।

कलमा—संज्ञा पु० [अ० कल्मह] वह वाक्य जो मुसलमानों के धर्म-विश्वास का मूल मन्त्र है—'ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसूलिल्लाह'। इसका तात्पर्य है—इसके सिवा दूसरा कोई पूजनीय नहीं है, मुहम्मद उनके भेजे हुए पैगंम्बर हैं। मुस्लिम धर्म का मूल मंत्र। ~ जिन **कलमा** कलि माँहि पढ़ाया, कुदरत खोजि तिनहु नहिं पाया। →र० ३६-१, सब० २४-३, २६-६, सब० १६८-३, पद २२६-५।

कलवारिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्यपाल] कलवार जाति की स्त्री, जो शराब बनाती और बेचती है। ~यह माया जैसे **कलवारिनि**, मद पियाइ र खै बौराई। →सब० १२०-५।

कलस—संज्ञा पु० [सं० कलश] कलश, चोटी, सिर, पात्र, घड़ा, मंदिरों के शिखर पर का कँगूरा। ~देवल बूड़ा **कलस** सों, पंखि तिसाई जाइ। → सा० रस (६) ७-२, सब० ११२-५, सा० रस० (६) १-१।

कला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोलह आध्यात्मिक कलाएँ। २. काल का एक अंश—१.६ मिनट। ~कला अतीत आदि निधि निरमल, ताको सदा बिचारत रहिए। → पद ३०५-२।

कलानिधि—संज्ञा पु० [सं०] गुणज्ञ। ~ राम मोहि सतगुर मिले अनेक **कला-निधि** परमतत्त सुखदाई। →पद २६५-१।

कलापी—संज्ञा पु० [सं० कलापिन्] मयूर पिच्छ धारण करने वाले जैन साधु। ~इक होंहि दीन एक देहिं दांन, इक करैं **कलापी** सुरा पांन। → सब० ६१-५।

कलार—संज्ञा पु० [सं० कल्यपाल] कलवार, शराब बनाने और बेचने वाला। ~ब्रह्म **कलार** चढ़ाइन भट्ठी, लै इन्द्री रस चाखै। →पद २०७-५।

कलाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्यपाली] कलवारिन, मदिरा बनाने और पिलाने वाली। ~एक बूँद भरि देइ रांम रस ज्यूँ मदु देइ **कलाली**। → पद ३४४-२।

कलित—संज्ञा स्त्री० [सं० कलत्र] स्त्री। ~कांसि कुडुंबा सुत **कलित**, दाझनि बारंबार। →सा० चाँण० (१७) २२-२।

कलिमा – संज्ञा पु० [अ० कलमः] वह वाक्य जो मुसलमानों के धर्म-विश्वास का मूल मंत्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह। दे० 'कलमा'। ~बंग निमाज **कलिमा** नहिं होते, रामहु नाहिं खोदाई। →सब० ३१-८।

कलीकाल—संज्ञा पु० [सं० कलि + काल]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलियुग। ~कलीकाल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ।→सा० उप० (३४) १-२।

कलेवा—संज्ञा पु० [सं० कल्यवर्त] जलपान, भोजन।~पार परोसिनि करौं **कलेवा**, संगहि बुधि महतारी। → पद २२२-५।

कलोर—संज्ञा पु० [सं० कल्लोल] आनन्द, क्रीड़ा।~सूखे सरवर उठै हिलोर, विनु जल चकवा करत **कलोर**। → सब० १५२-४।

कल्हि—क्रि० वि० [सं० कल्य] आने वाला दिन, कल।~**कल्हि** गड़ै जो कांटवा, अगमन कस न खुराइ। → सा० उपज० (५०) १-२।

कवँल—संज्ञा पु० [सं० कमल] कमल। ~**कवँल** जु फूला फूल बिनु, को निरखै निज दास। →सा० पर० (५) ५-२, सब० १३-३।

कवलाकंत—संज्ञा पु० [सं० कमलाकांत] लक्ष्मी के पति, विष्णु। ~चमकै बिजुरी तार अनंत, जहाँ प्रभू बैठे **कवलाकंत**। →सब० १४०-४।

कविलास—संज्ञा पु० [सं० कैलास] कैलास।~जाकै सूरिज कोटि करहिं परकास, कोटि महादेव गिरि **कविलास**। →सब० १२८-३।

कस—संज्ञा पु० [सं० कष] मदिरा में तीखापन लाने के लिए डाला गया पदार्थ।~त्रिसनां कांम क्रोध मद मतसर काटि काटि **कस** दीन्हां। →पद ३४४-४।

कसतै—क्रि० [हि० कसना] कसते, परखते, जाँचते।~सदा धर्म जाकै हिय बसई, राम कसौटी **कसतै** रहई। →र० ६४-४।

कसदम—वि० [अ०] शक्तिशाली।~खोटौ महतौ विकट बलाही, सिर **कसदम** का पारै। →सब० १०-७।

कसनि—संज्ञा स्त्री० [हि० कसना] जिससे कोई वस्तु बाँधी जाती है, बन्धन। ~नउ बहियाँ दस गोंनि आहि, **कसनि** बहत्तरि लागि ताहि। → पद २३६-४, बसंत (४) ३-३।

कसनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षण, हि० कसना] कसौटी, परीक्षा।~**कसनी** दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार। →सा० गुरु० (१) २८-२।

कसबी—संज्ञा पु० [अ० कस्ब] व्यवसायी। ~कोई फेरै माला कोई फेरे तसबी, देखौ रे लोगा दोनों **कसबी**। →पद ३८-३।

कसमलिन—संज्ञा पु० [सं० कश्मल] अपवित्रता, गंदगी। ~पनिया अंदर धरे न कोय, पौन गहै **कसमलिन** धोय। → वसंत (४) १-३।

कसाइयाँ—क्रि० [सं० कषाय] रक्त वर्ण की हो गई हैं। ~अँखियाँ प्रेम **कसाइयाँ**, लोग जानैं दुखड़ियाँ। → सा० बिर० (३) २५-२।

कसाई—संज्ञा पु० [अ० क़स्साब] बधिक। ~संतो पांडे निपुन **कसाई**। पद २६६-१, सब० १६४-६।

कसाव—वि० [सं० कषाय] कसैलापन। ~बहुत मोलि महँगे गुड़ पावा, लै **कसाव** रस राँम चुवावा। →सब० १०८-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कसौटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षपट्टिका] एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर रगड़ कर सोने की परख की जाती है। ~सदा धर्म जाकै हिय बसई, राम **कसौटी** कसतै रहई। → र० ६४-४, सा० जी० मृ० (४१) ६-१।

कस्तूरिया—वि० [सं० कस्तूरी] जिसमें कस्तूरी हो। →सा० कस्तू० (५३)।

कस्मल—संज्ञा पु० [सं० कश्मल] पाप, दोष। ~ मूंदे मदन काटि कर्म **कस्मल**, संतत चुवत अगारी। →पद ३०३-४।

कहगिल—संज्ञा स्त्री० [फा० काह = घास + गिल = मिट्टी] ईंट जोड़ने का गारा। ~ विनु **कहगिल** की ईंट समुझ मन बौरा हो। → चाँचर (५) २-६।

कहणाँ—क्रि० [सं० कथन] कहना। ~चरणूं ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज **कहणाँ** होइ। → सा० निन्द्या० (५४) ६-२।

कहल—क्रि० [हि० कहना] उपदेश। ~ब्राह्मन छत्री बानी, तिनहू **कहल** नहिं मानी। → पद ३४८-३।

कहांनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कथानक] मर्म, कृति, रहस्य। ~ जांनीं जांनीं रे राजा रांम की **कहांनीं**। → सब० ११६-१, सब० १२-१।

काँइ—अव्य० [हि० क्यों] क्यों। → काँइ गँवावै देह, कारज कोई ना सरै। → सा० कामी० (२०) ८-२, सा० जर० (८) ५-२; सा० भेष० (२४) १३-१।

काँच—संज्ञा पु० [सं०] शीशा। ~जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़ै **काँच**। → सा० साँच० (२२) १५-२, सब० ५-२।

कांच—वि० [सं० कच्चर] कच्चा। ~नाइकु एकु बनिजारै पांच बरध पचीस क संगु **कांच**। →पद २३६-३।

काँचली—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुक] सर्प के शरीर पर का झिल्लीदार आवरण (चमड़ा) जो हर साल गिर जाता है। ~ बीछड़ियाँ मिलिबो नहीं, ज्यों **काँचली** भुवंग। → सा० चिता० (१२) ६-२।

कांची—वि० [हि० कच्ची] कच्ची। ~अमर जांनि संची यह काया सो मिथ्या **कांची** गगरी। → पद २४६-३।

काँची कारी—मुहा० = टालमटोल करना। ~ **काँची कारी** जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि। →सा० चिता० (१२) ४०-१।

कांचै—वि० [हि० कच्चा] कच्चा। ~ **कांचै** करवै रहै न पांनीं, हंस उड़ा काया कुम्हिलानी। → पद २७८-४।

काँटवा—संज्ञा पु० [सं० कण्टक + वा] काँटा। ~ काल्हि गड़ै जो **कांटवा**, अगमन कस न खुराइ। → सा० उपज० (५०) १-२।

काँठै—संज्ञा पु० [दे०] किनारे। किनारा, निकट। ~ राम नाँम **काँठै** रहा, करै सिखां की आस। → सा० चाँण० (१७) ४-२, सा० कुसं०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२५) ४-१; सा० चाँण० (१७) १६-१।

कांनि—संज्ञा स्त्री० दे० 'कानि'।

काँनीं—वि० [हि० कानी] एकाक्ष, एक आँख वाली। ~ काहू कै जोगिनि होइ बैठी, काहू कै कौड़ी **काँनीं**।→ पद २२७-६।

कांसि—संज्ञा स्त्री० [सं० कास] एक प्रकार की जंगली घास। ~ **कांसि** कुडुंबा सुत कलित, दाझिनी बारंबार। → सा० चाँण० (१७) २२-२।

काकी—सर्व० [हि० किसकी] किसकी। ~ कौन पुरिख को **काकी** नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी। → पद ३३५-३।

काग—संज्ञा पु० [सं० काक] कौआ।~ **काग** गीध दोउ मरन बिचारैं, सूकर स्वान दोउ पंथ निहारैं। →र० ७८-५।

कागद—संज्ञा पु० [अ० काग़ज़] कर्मों का लेखा-जोखा; कागज। ~अबकी बेर न **कागद** कीन्यौ, तौ धर्मराय तो तूटै। →पद २१७-५।

काच—१. संज्ञा पु० [सं०] शीशा। **काच**—२. वि०[सं०]कच्चा।~पहिले **काच** कथीर था, फिरता ठाँवै ठाँउ। →सा० उपज० (५०) ८-२।

काचा—वि० [सं० कच्चर] जो पका न हो, अपक्व। ~यह तन **काचा** कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ। →सा० चिता० (१२) ३८-१।

काची—वि० [सं० कच्चर] कच्ची, नाशवान। ~ **काची** काया मन अथिर, थिर थिर करम करंत। → सा० काल० (४६) ३०-१।

काचे—वि० [हि० कच्चा] अपरिपक्व, जो सिद्ध न हो, कच्चा। ~ हाट वजारै लावै तारी, **काचे** सिद्धहिं माया प्यारी। →र० ६६-३, पद ३४६-६।

काचै—वि० दे० 'काचे'।

काछे—क्रि० [सं० कर्षण] हटाएगा। ~बाप पूत की एकै नारी, ई अचरज को **काछे**। → पद ३००-४, सब० ३५-८।

काछै—क्रि० दे० 'काछे'।

काजा—संज्ञा पु० [सं० कार्य] कार्य। ~ तुम्ह कहियतु त्रिभुवनपति राजा, मन वंछित सब पुरवन **काजा**। →सब० २-४।

काजो—वि० [अ०] न्यायकर्त्ता।~**काजी** काज करहु तुम कैसा, घर घर जवह करावहु भैसा। → र० ४६-४, पद ३०५-३, वसंत (४) १०-४; पद ३२६-३, पद ३४६-५, सा० साँच० (२२) ७-१, सब० २३-७; सब० ५२-२।

काठ—संज्ञा पु० [सं० काष्ठ] काष्ठ, लकड़ी।~जाहि फिरायाँ हरि मिलै; सो भौ **काठ** कठोर। →सा० भेष० (२४) २-२, कहरा(३) १-२७, पद २७६-५, सा० निगु० (५५) १-२।

काठा—संज्ञा पु० [सं० कण्ठ] किनारा, सहारा, आश्रय।~जानि बूझि कंचन तजै, **काठा** पकड़ै काँच। →सा० साँच० (२२) १५-२।

काठौं—संज्ञा पु० दे० 'काठ'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काढ़ा जाइ—क्रि० [सं० कर्षण] निकाला जा सकता है।~लागी मन्दिर द्वार तैं, अब क्या **काढ़ा जाइ**। → सा० काल० (४६) २४-२।

कातरैं—क्रि० [हि० कतरना] काटता है, कतरता है। ~ सिंघ ज वैठा पान **कातरैं** घूंस गिलौरा लावे। → पद ३३१-५।

कातल—क्रि० [हि० कातना] काता। ~छौ मास तागा बरिस दिन कुकुरी, लोग बोलैं भल **कातल** बपुरी। → पद २१५-४।

काति—क्रि० [हि० कातना] कातो। ~हरि कौ नांउँ लै **काति** बहुरिया। →पद २१५-२।

काती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्तरी] कैंची। ~माला पहर्‌याँ कछु नहीं, **काती** मन कै साथि। →सा० भेष० (२४) ८-१।

काती—संज्ञा स्त्री० [हि० √कात+ई (प्रत्य०)] कताई, कातने की क्रिया। ~ नान्हाँ **काती** चित्त दे, मँहगे मोलि बिकाइ।→सा० चिता० (१२) ५८-१।

कातौं—क्रि० [हि० कातना] कातती हूँ। ~मैं **कातौं** हजारी क सूत।→ पद २३५-१।

कात्याँ—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्तरी] काती, कैंची।~दुहु **कात्याँ** बिचि जीव है, द्वौ हनै संतौ सीख। →सा० उप० (३४) ५-२। दे० 'काती'।

कानि—संज्ञा स्त्री० [दे०] मर्यादा। ~कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल **कानि**। →सा० माया० (१६) ८-२, सा० चिता० (१२) ४६-१।

कानि—संज्ञा पु० [दे०] पासंग। ~ **कानि** तराजू सेर तिन पौवा, डहकैं ढोल बजाई हो।→कहरा (३)४-५; सा० चिता० (१२) ४६-१।

कान्ह—संज्ञा पु० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण।~केतेहि **कान्ह** भए मुरली-धर, तिन्ह भी अंत न पाया। →पद २५२-४।

कापड़ा—संज्ञा पु० [सं० कर्पट] वस्त्र, कपड़ा।~भगति हजारी **कापड़ा**, तामैं गल न समाइ।→ सा० साधु० (२८) १३-१।

कापड़ी—संज्ञा पु० [सं० कार्पटिक] तीर्थ स्थानों से जल लाकर, उससे जीविका चलाने वाले, एक जाति विशेष।~ कवि कवीनैं कबिता मूए, **कापड़ी** केदारैं जाई। →पद २६०-५।

काबा—संज्ञा पु० [अ०] अरब में मक्का शहर का एक स्थान जहाँ मुसलमान हज करने जाते हैं।~**काबा** फिर कासी भया, राँमहि भया रहीम। →सा० मधि० (३१) १०-१, सब० २३-६, सा० वी० (५६) ६-१, पद २२९-६,सा०साँच० (२२) ११-१।

काबे—संज्ञा पु० दे० 'काबै'।

काबै—संज्ञा पु० दे 'काबा'।

काम—संज्ञा पु० [सं०] प्रेमाभक्ति।~ **काम** मिलावै राम कौं, जो कोई जानै राखि। → सा० साधसा० (२९) ११-१।

कामलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कंबल]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कम्बल, योगियों का वस्त्र। ~फारि पटोरा धज करूँ, **कामलिया** पहिराउँ। →सा० विर० (३) ४१-१।

कामिनि—संज्ञा स्त्री० दे० 'कामिनी'।

कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुन्दर स्त्री, आसक्त नारी। ~कनक **कामिनी** घोर पटोरा, संपति बहुत रहै दिन थोरा। →र० २१-४, र० ७८-३।

कामो—संज्ञा पु० [हि० कामना] कामना; तृष्णा; राग। ~कहहिं कबीर **कामो** नहीं, जीवहि मरन न होय। → र० १०-८।

कायथ—संज्ञा पु० [सं० कायस्थ] चित्रगुप्त, लिपिक। ~**कायथ** कागद काढ़िया, दरगह लेखा पूरि। → सा० साँच० (२२) ३-२।

काया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर, देह। ~**काया** कंचन जतन कराया, बहुत भाँति कै मन लपटाया। →र० ६४-१, सा० काल० (४६) ३०-१, पद ३४४-३, पद २४६-३, पद २४१-५, सा० चिता० (१२) ५३-१, सब० ८१-७, सब० ६१-७, पद २६७-७।

कारकुन—संज्ञा पु० [फ़ा०] प्रबन्धकर्त्ता। ~काग दुकाग **कारकुन** आगे, बैल करै पटवारी। →पद ३००-७।

कारणि—संज्ञा पु० [सं० कारण] कारण, के लिए, प्रयोजन के लिए, निमित्त, लक्ष्य। ~जा **कारणि** मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ। →सा० परचा० (५) ३६-१, सा० परचा० (५) ३७-१।

कारणैं—क्रि० [सं० कारण] करने के लिए। ~निस अँधियारी **कारणैं**, चौरासी लख चंद। → सा० गुरु० (१) १८-१।

कारन—संज्ञा पु० [सं० कारण] जन्म मरण का कारण अर्थात् अज्ञान। ~करनी थैं **कारन** मिटि गया। → सब० ४७-२।

कारन—संज्ञा पु० [सं० कारण] हेतु, साधन। ~तेहि **कारन** मैं कहत हौं, जाते होय उबार। → र० ६०-५।

कारन—संज्ञा पु० [सं० कारण] कारण। ~जेहि **कारन** सिव अजहुँ वियोगी, अंग विभूति लाय भौ जोगी। → र० ५२-१।

कारनि—क्रि० वि० [सं० कारण] कारण, लिए। ~बिरहिन ऊठै भी पड़ै, दरसन **कारनि** राम। →सा० बिर० (३) ७-१।

कारा—संज्ञा स्त्री [सं०] रेखा या बंधन। ~गोबरु जूठा चउका जूठा, जूठै दीनीं **कारा**। →सब० ७१-७।

कारिवाँ—संज्ञा पु० [फ़ा० कारवाँ] काफ़िला, यात्रियों का दल। ~कबीर पट्टन **कारिवाँ** पंच चोर दस द्वार। →सा० चिता० (१२) ७-१।

कारी—वि० [सं० काल] काली, काले रंग की। ~**कारी** पियरी दुहहू गाई, ताकर दूध देहु बिलगाई। →र० ६२-५।

कारे—वि० [सं० कृष्ण] काला; अंधकारपूर्ण। ~**कारे** मूंड कौ एक न छांड्यौ, अजहूँ अकन कुंवारी। →र० २६-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारो—वि० [हिं० काला] कलुषित ।~ ऊपर ऊजर कहा भौ बौरे, भीतर अजहूँ **कारो** हो । → कहरा (३) ३-३ ।

काल—संज्ञा पु० [सं०] संहारक शक्ति । ~कहै कबीरा दूरि कर, आतम अदिष्ट **काल** । →सा० सू० ज० (१५) १-२ ।

कालबूत—संज्ञा पु० [फा० कालबुद] बनावटी; नाशवान् ।~**कालबूत** की हस्तिनी मन बौरा हो । →चाँचर (५) २-७ ।

कालबूत—संज्ञा पु० [फ़ा० कालबुद] वह कच्चा भराव, जिस पर मेहराब बनाई जाती है, ढाँचा । ~ **कालबूत** के कोट ज्यौं, देखत ही ढहि जाय । →सा० कर० बिन० क० (१८) १-२, सब० १९३-४ ।

कालर—संज्ञा पु० [दे०] नोनी मिट्टी, रेत, ऊसर ।~ते नर कदे न नीपजैं, ज्यौं **कालर** का खेत ।→सा० कुसंग० (२५) ३-२ ।

कालि—क्रि० वि० [सं० कल्यः] आगामी दूसरा दिन; आने वाला दिन; कल । ~कूर बड़ाई बूड़सी; भारी पड़सी **कालि** । →सा० चिता० (१२) ५२-२ ।

काल्हि—क्रि० वि० [सं० कल्य] कल । ~जिहि सरि मारी **काल्हि**, सो सर मेरे मन बस्या । →सा० बिर० (३) १७-२ ।

काव—सर्व० [सं० कोऽपि, हिं० कोई] कोई ।~पृथु गए पृथिमी के राव, तिरविक्रम गए रहे न **काव** । → वसंत (४) ६-३ ।

काष्ट—संज्ञा पु० [सं० काष्ठ] लकड़ी । ~जैसे बाढ़ी **काष्ट** ही काटै अगिनि न काटै कोई । →पद ३२५-५ ।

कासनि—सर्व० [सं० कस्य, प्रा० कस्स हिं० किससे] किससे । ~राम राइ **कासनि** करौं पुकारा । →पद २६७-१; सब० १७३-३ ।

कासों—सर्व० [सं० कस्य, प्रा० कस्स] किससे ।~कहैं कबीर **कासों** कहौं, सकलो जग अंधा । → सब० १३५-११, सा० काल० (४६) ३१-२ ।

किंगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी] वीणा ।~जगत गुर अनहद **किंगरी** बाजै । →सब० ११२-१; पद २५०-१ ।

किंचित—वि० [सं०] तुच्छ, निस्सार । ~**किंचित** है यह जगत भुलाना, धन सुत देखि भया अभिमाना । → र० ६६-४ ।

किंबा—अव्य० [सं० किंवा] अथवा, या; वा ।~साधन तैं सिधि पाइए, **किंबा** होइम होइ । → सब० ६७-६ ।

किंवार—संज्ञा पु० [सं० कपाट] किवाड़, दरवाजा, पट ।~कांमु **किंवार** दुख सुख दरबानी पाप पुन्नि दरवाजा । →सब० ६३-३, सब० १४८-३ ।

किती—वि० [सं० कियत्] कहाँ तक; कितना ।~ए उपमाँ हरि **किती** एक ओपैं, अनेक मेरु नख ऊपरि रोपैं । →पद २८३-४ ।

कितेब—संज्ञा स्त्री० [अ० क़िताब] ग्रंथ, पुस्तक, कुरान । ~बेद **कितेब**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुम्रिति नहिं संजम, जीव नहीं पर-छाई। →सब० ३१-७, र० ३६-२, २६७-५; र० ५-५।

किबला—संज्ञा पु० [अ० किब्लः] मक्के में वह स्थान जहाँ काला पत्थर स्थापित है और जिसकी ओर मुँह करके मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, पूजनीय। ~मनु करि मका **किबला** करि देही, बोलनहारु परम गुर एही। → सब० ७२-३।

कियहु—क्रि० [सं०√कृ०] किया, किये। ~जासों **कियहु** मिताई, सो धन भया न हित्त। →र० ५६-५।

कियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० केदार] क्यारी।~विष की **कियारी** बोयहु बिरहुली, लोढ़त का पछिताहु बिर-हुली। →बिरहु० (७) ११।

किरतम—वि० [सं० कृत्रिम] माया के प्रपंच से युक्त (संसार), अप्राकृतिक। ~पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, **किरतम** किन उपचारा। →सब० ३१-१२, सब० ४०-७, सा०पर० (५)२८-१।

किरतिम—वि० [सं० कृत्रिम] बनावटी, नकली।~देखहु कुमति केर पर-गासा, भए अभिअंतर **किरतिम** दासा। →विप्र० (२) १५, र० ५७-१, विप्र० (२) ११।

किरपा—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] कृपा, दया। ~सतगुर की **किरपा** भई, नहीं तौ करतीं भांड।→सा० माया० (१६) ७-२, सा० गु० सि० हे० (४३) २-२, सा० भ्रम० वि०(२३) ४-२।

किरपाल—वि० [सं० कृपालु] दयालु। ~गुरु **किरपाल** कृपा जब कीन्ही, हिरदै कँवल बिगासा। → सब० १३-३।

किरषी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] खेती, किसानी।~बुधि मेरी **किरषी** गुर मेरो बिझुका, अक्खिर दोइ रखवारे। →सब० ११३-५।

किरानाँ—संज्ञा पु० [सं०क्रयाणक] सौदा। ~करम **किरानाँ** बेंचि करि, उठि करि चाले बाट। →सा० चिता० (१२) ५७-२।

किरिम—संज्ञा पु० [सं० कृमि] कीड़ा, क्षुद्र कीट। ~भसम **किरिम** जाके साज समुझ मन बौरा हो। →सब० १७६-३, सब० १६३-३, चाँचर(५) २-४।

किल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० कील] लोहे का काँटा। ~तेहि ऊपर कछु अजब तमासा, मारो है जम **किल्ली**। → सब० ६४-१६।

किस बोलै—(मुहा०) क्या बोलकर, किस मुँह से।~सबै जीव सांई के प्यारे उबरहुगे **किस बोलै**।→पद २३०-८।

किसा—सर्व० [सं० कस्य० प्रा० कस्स] किसने, कैसा, किसका।~देखत ही दह मैं पड़ै, दई **किसा** कौं दोस। → सा० साषीभू० (५७) ३-२, सा० बेसा० (३५) ६-२, पद ३१७-७, सा० संग० (२६) ५-२।

कींगरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'किंगरी'।

की—अव्य० [सं० किंवा या फ़ा० कि] अथवा। ~करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत **की** तरकस बंदा। → र० ६६-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कीआ—क्रि० [हि० क्रिया] बनाया।~ एक नूर तैं सब जग **कीआ** कौन भले कौन मंदे। →पद २८१-४।

कीएं—क्रि० [हि० करना] करने से।~ जौ **कीएं** हीं होत है, तौ करता औरै कोइ।→सा० सम्र० (३८) २-२।

कीच—संज्ञा पु० [सं० कच्छ] कीचड़, कर्दम।~ग्यांन गलीं मैं होरी खेलै मची प्रेम की **कीच**। →पद ३०६-५।

कीट—संज्ञा पु० [सं०] कीड़ा। ~राम-नाम लौ लाय सो लीन्हा, भृंगी **कीट** समुझि मन दीन्हा। →र० २०-३, पद २४०-५।

कीटक—संज्ञा पु० [सं० कीट] कीड़ा। आँनि **कीटक** करत भ्रिग सो आपतैं रंगी। → पद ३२८-२।

कीया राई लौंन—(मुहा०) राई लौन करना, न्यौछावर किया। ~कबीर वार्‌या नांव पर, **कीया राई लौंन**। →सा० सम्र० (३८) ६-१।

कीर—संज्ञा पु० [सं०] शुक, तोता। ~ **कीर** भए सब जीयरा लिए बिख कर चारा। → पद ३१६-७।

कीला—संज्ञा स्त्री० [स० कील] खूँटी। ~लोभ मरुवा विपै भँवरा काम **कीला** ठानि। → हिंडोला (८) १-३।

कीलि—क्रि० [सं० कीलन] वश में करके या अधीन करके। ~लिंग रूप तब संकर कीन्हा, धरती **कीलि** रसातल दीन्हा। →र० २७-३।

कीयौ—क्रि० [हि० करना] किया।~ जिनि नर हरि जठराहँ, उदिक थैं पिंड प्रकट **कीयौ**। → सा० बेसा० (३५) १-१।

कुंज—संज्ञा पु० [सं० क्रौंच] क्रौंच पक्षी। ~राती रूनी बिरहिनी, ज्यौं बच्चों को **कुंज**। →सा० बिर० (३) १-१, सा० बिर० (३) २-१।

कुंजर—संज्ञा पु० [सं०] हाथी। ~क्या अपराध संत है कीन्हा, बाँधि पोटि **कुंजर** कौं दीन्हा। →सब० ४२-७, पद ३४७-३, पद २५३-५।

कुंजाँ—संज्ञा पु० दे० 'कुंज'।

कुंडलि—संज्ञा पु० [सं० कुण्डल] नाभि में।~कस्तूरी **कुण्डलि** बसै, म्रिग ढूढ़ै बन माँहि। →सा० कस्तू० (५३) १-१।

कुंभक—संज्ञा पु० [सं०] प्राणायाम का एक अंग, श्वास-प्रश्वास की निरुद्धावस्था। ~ जब **कुंभक** भरि पुरि लीनां, तब बाजै अनहद बीनां।→ सब० १७१-८।

कुंभारा—सं० पु० [सं० कुम्भकार] कुम्भकार।~आपुहि करता भया कुलाला, बहु विधि बासन गढ़ै **कुंभारा**। → र० २६-१।

कुँवरी—वि० स्त्री० दे 'कुँवारी'।

कुँवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] अविवाहिता।~पिता के संगहि भई बावरी, कन्या रहलि **कुँवारी**। → पद २६०-२, सब० २६-१, सा० चित्त० क० (४२) २-१।

कुँई—संज्ञा पु० [सं० कूप] छोटा कुआँ। ~कंकर **कुँई** पताल पांनियाँ सोनै बूँद बिकाई रे। →पद २५५-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] मुर्गी। ~ **कुकड़ी** मारै बकरी मारै हक्क हक्क करि बोलै। → पद २३०-७।

कुकरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कटी] बन मुर्गी।~कहैं कबीर ई हरि के बूता, राम रमे ते **कुकरि** के पूता। →सब० १५१-४।

कुकुरी—संज्ञा पु० [दे०] कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा, जो कातकर तकले पर से उतारा जाता है, अण्टी। ~छौ मास तागा बरिस दिन **कुकुरी** लोग बोलैं भल कातल बपुरी। → पद २१५-४।

कुकुही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] जल मुर्गी। ~जल केरी ज्यौं **कुकुही** जल मांहि रहाई। →पद ३४५-३।

कुचिल—वि० [सं० कुचैल] मैला, गन्दा। ~कहै कबीर नर सुन्दर रूप, राम भगति विनु **कुचिल** कुरूप। →सब० १२४-५।

कुटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुट्टक] छोटा टुकड़ा। ~चन्दन की **कुटकी** भली, नाँ बँबूर अंबराँउँ। →सा० साधुम० (३०) १-१।

कुटवार—संज्ञा पु० [सं० कोटपाल] कोतवाल। ~बावन कोटि जाकै **कुटवार**, नगरी नगरी खिअत अपार। →सब० १२८-११।

कुटवारी—संज्ञा पु० [सं० कोटपाल] रक्षा, रखवाली। ~कैसैं नगर करौं **कुटवारी**। →सब० ८६-१।

कुटि कुटि—क्रि० वि० [हिं०] सम्पन्न करके। ~माई मोर मनुसा अति सुजान, धंधा **कुटि कुटि** करै बिहान। →वसंत (४) ६-१।

कुटिल—वि० [सं०] वक्र, टेढ़ा, बुरा, दुष्ट, खोटा। ~**कुटिल** बचन साधू सहै, दूजै सहा न जाइ। →सा० कुस० (३६) २-२, पद २५४-३, पद २१४-६।

कुटिल—वि०[सं०] कपट, छल। ~कैसो तरो नाथ कैसो तरो अब बहु **कुटिल** भरो।→सब० ८५-१।

कुटुम—संज्ञा पु० [सं० कुटुम्ब] कुटुम्ब, परिवार। ~छत्री सो जो **कुटुम** से जूझै, पाँचो मेटि एक कै बूझै।→र० ८३-३, कहरा (३) १-१३।

कुडुंबा—संज्ञा पु० [सं० कुटुम्ब] परिवार। ~कांसि **कुडुंबा** सुत कलित, दाझनि बारंबार। → सा० चाँण० (१७) २२-२। दे० 'कुटुम'।

कुदरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] ईश्वरीय शक्ति, प्रकृति, ईश्वर, निसर्ग शक्ति, ईश्वरीय माया।~जिन कलमा कलि माँह पढ़ाया, **कुदरत** खोजि तिनहु नहिं पाया। →र० ३६-१, सब० २८-१, पद २८१-३।

कुदरति—संज्ञा स्त्री० दे० 'कुदरत'।

कुमारग—संज्ञा पु० [सं० कुमार्ग] भ्रष्ट या बुरा मार्ग। ~सोई हित बंधु मोहि मन भावै, जात **कुमारग** मारग लावै। → र० ६६-१।

कुम्हिलाइ—क्रि० [सं० कु+म्लान] सूख जाना, मुरझाना। ~जावासा के रूष ज्यूँ, घन मेहाँ **कुम्हिलाइ**। →सा० माया (१६) १५-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुम्हिलानीं—क्रि० [सं० कु + म्लान] मुरझा गई। ~कांचै करवै रहै न पांनीं, हंस उड़ा काया **कुम्हिलानीं**। →पद २७८-४।

कुम्हिलाय—क्रि० [सं० कु + म्लान] मुरझा जाता है, मुरझा गए। ~जो ऊगै सो आँथवै, फूलै सो **कुम्हिलाय**। →सा० काल० (४६) ११-१; पद ३२२-३।

कुरंग—संज्ञा पु० [सं०] भद्दा, फीका, बदरंग। ~राम नाँम रंग लागौ, **कुरंग** न होई। →पद २५६-१।

कुरलियाँ—क्रि० [सं० कुर्] करुणापूर्ण चीत्कार, चीखना। ~अम्बर कुंजाँ **कुरलियाँ**, गरजि भरे सब ताल।→ सा० बिर० (३) २-१।

कुरलै—क्रि० [सं० कुरव] चिल्लाना। ~ अदया अल्लह राम की; **कुरलै** कौनी कूष। →सा० चिता० (१२) ४७-२।

कुल—१. संज्ञा पु० [सं०] वंश, जाति।

कुल—२. वि० [अ०] समस्त, सब। ~ कुल अभिमाना खोइ कै, जियत मुवा नहि होय।→र० ८-७, र० ३५-७।

कुल—संज्ञा पु० [सं०] कुटुम्ब, परिवार। वि० [अ०] समग्र, पूर्ण, ब्रह्म भूमा। ~**कुल** खोये **कुल** ऊबरै; **कुल** राखे कुल जाइ। राम निकुल **कुल** भेंटिलै, सब कुल रहा समाइ। → सा० चिता० (१२) ४५-१,२।

कुलफ—संज्ञा पु० दे० 'कुलफु'।

कुलफु—संज्ञा पु० [अ० कुफ्ल] ताला। ~कुंजी **कुलफु** प्रांन करि राखे, उघ-रत बार न लाई। →सब० ११-४, पद २१८-४।

कुलाल—संज्ञा पु० [सं०] कुम्भकार। ~ब्रह्म **कुलाल** मेदिनी भइया, उपजि बिनसि कित गइया जी। → सब० ११५-३, र० २६-१।

कुलाला—संज्ञा पु० दे० 'कुलाल'।

कुली—संज्ञा पु० [सं० कुल] प्रकार। ~अष्ट **कुली** परबत जाके पग की रैनाँ, सातौं सायर अंजन नैना। → पद २८३-३।

कुलीन—वि० [सं०] उत्तम कुल में उत्पन्न। ~होय मिसकीन **कुलीन** कहावै, तूं जोगी सन्यासी। → पद २७२-२।

कुसबद—संज्ञा पु० [सं० कु + शब्द] दुर्वचन। →सा० कुसब० (३६)।

कुसलात—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल से] कुशल, क्षेम।~कबीर साँई मिलहिंगे, पूछहिंगे **कुसलात**। →सा० बीन० (५६) १-१।

कुसुंभ—संज्ञा पु० [सं०] केसर, केसरिया। ~तहाँ **कुसुंभ** रंग जो पावै, औगह गहि कै गँगन रहावै। → ज्ञान चौं० (१) ४, सब० १६३-६।

कुसेवग—संज्ञा पु० [सं० कु + सेवक] अयोग्य या बुरा सेवक।~हमहिं **कुसेवग** कि तुमहिं अयांनां, दुह मैं दोस काहि भगवाना। →सब० २-३।

कुहाड़ा—संज्ञा पु० [सं० कुठार] कुल्हाड़ी। ~पाइ **कुहाड़ा** मारिया, गाफिल अपनैं हाथि।→सा० चिता० (१२) ४३-२, सा० चिता० (१२) ४४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुहारि—संज्ञा स्त्री० दे० 'कुहाड़ा'।

कुहिया—क्रि० [सं० कु+हनन] घातक। ~हंसा संसय छूरी **कुहिया,** गइया पिये बछरुवै दुहिया। → पद ३२३-१।

कुहेरा—संज्ञा पु०[सं०कुहेडिका] कुहासा। ~राम बिनाँ संसार अंध **कुहेरा**। →पद २६०-१।

कूँची—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] चाभी, ताली। ~ ताला **कूँची** कुलफ के लागे, उघड़त वार न होई। → पद २१८-४।

कूँपल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंपल] अंकुर। ~जालन आँनी लाकड़ी, ऊठी **कूँपल** मेलि। →सा० वेली० (५८) १-२।

कूकर—संज्ञा पु० [सं० कुक्कुर] कुत्ता। ~ सूकर **कूकर** जोनि भ्रमे तऊ नां लाज आई। → पद २७५-७।

कूकरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुरी] कुतिया। ~ और सकल ए **कूकरि** सूकरि, सुंदरि नांउं न ओपै। →सब० ६६-१०।

कूकिए—क्रि० [सं० कूजन] पुकारिए, गाइए। ~ केसौ कहि कहि **कूकिए,** नाँ सोइय असरार। →सा० सुमि० (२) १६-१।

कूच—संज्ञा पु० [तु०] यात्रा, प्रस्थान, रवानगी। ~ कहाँ **कूच** कहँ करै मुकामा, कवन सुरति के करहु सलामा। →र० ४६-२।

कूच—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कूँची, झाड़ू। ~उरझ्यो सूत पाँन नहिं लागै, **कूच** फिरै सब लाई। →सब० १५४-३।

कूटि—संज्ञा पु० [सं० कूट] उपहास, व्यंग्य। ~छीजै साह चोर प्रतिपालै, संत जना की **कूटि** करै। → पद २७६-८।

कूड़ा—संज्ञा पु० [सं० √कूड्] ढेर, कतवार, व्यर्थ या बेकार वस्तु। ~ नाँ जाँनौं किस बिरिख तलि, **कूड़ा** होइ करंक। →सा० निन्द्या० (५४) ७-२, सा० गु० सि० हे० (४३) १०-१, सा० काल० (४६) २७-१।

कूड़े—संज्ञा पु० दे० 'कूड़ा'।

कूड़ै—संज्ञा पु० दे० 'कूड़ा'।

कूप—संज्ञा पु० [सं०] कुआँ। ~ग्रहन अमावस ढुकि ढुकि माँगै, कर दीपक लिए **कूप** परै। → पद २७६-५।

कूपल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुड्मल, प्रा० कुपल] अंकुर, नई मुलायम पत्ती। ~ सहज बेलि जब फूलन लागी, डाली **कूपल** मेल्ही। →पद २५३-४। दे० 'कूँपल'।

कूर—वि० [सं० क्रूर] कुटिल। ~**कूर** कपट की पासंग डारै फूला फूला डोलै। → पद २१४-४।

कूर—वि० [सं० क्रूर] व्यर्थ, बेकार। ~**कूर** बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालि। → सा० चिता० (१२) ५२-२।

कूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कूट] ढेरी, पुंज, राशि। ~हाड़ जरै जस लकड़ी झूरी, केस जरै जस तृन की **कूरी**। →सब० ६-४, सब० १३६-५।

कूरे—वि० [सं० क्रूर] क्रूर, निकृष्ट। ~जीवन मरन विचारि करि, **कूरे**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काँम निवारि। → सा० चिता० (१२) १४-१।

कूवा—संज्ञा पु० [सं० कूप] कुआँ। ~राम न रमसि मोह कहा माते परहु काल वस **कूवा**। → सब० १७६-६।

कूर्म—संज्ञा पु० [सं०] कछुवा। ~**कूर्म** कला है खेलही तस साहेब दासा। →पद ३४५-८।

कूष—संज्ञा पु० [सं० कोष] कोश, खजाना। ~अदया अल्लह राम की, कुरलै कौनी **कूष**। →सा० चिता० (१२) ४७-२।

कृतम—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम, वनावटी। ~ जन्मत सूद्र मुए पुनि सूद्रा, **कृतम** जनेउ डारि जग मुद्रा। → र० ६२-२।

कृसन—संज्ञा पु० [सं० कृष्ण] कृष्ण, प्रभु, ईश्वर। ~**कृसन** कृपाल कवीर कहि, इम प्रतिपाल न क्यौं करै।→ सा० बेसा० (३५) १-६।

केंचुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुक] सर्प आदि के शरीर पर की झिल्लीदार चमड़ी जो हर साल गिर जाती है। ~काम करम की **केंचुली**, पहिरि हुआ नर नाग। →सा० कामीन० (२०) २१-१।

केकर—सर्व० [सं० कस्य, प्रा० कस्स] किसकी। ~ चढ़त चढ़ावत भँड़हर फोरी, मन नहिं जानै **केकर** चोरी। →र० ५६-१।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटा पौधा जिसमें सुगंधित पुष्प होता है। ~कबीर भया है **केतकी**, भँवर भए सब दास। →सा० साधुम० (३०) ११-१।

केतिक—वि० [हि० कितना] कितनी बार। ~ **केतिक** कहौं कहाँ लगि कही, औरौ कहौं परै जो सही। → र० ७६-२।

केतिक—वि० [सं० कियत] कितना, कितनी। ~काटि काटि जिव **केतिक** देही। →पद २४२-४, पद २६७-१६, चाँचर (५) १-१५।

केदारै—संज्ञा पु० [सं० केदार] गढ़वाल क्षेत्र का प्रसिद्ध तीर्थ केदारनाथ। ~कवि कबीनैं कबिता मूए, कापड़ी **केदारै** जाई। →पद २६०-५।

केलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंद, क्रीड़ा, बिहार। ~मानसरोवर सुभर जल, हंसा **केलि** कराहिं। → सा० परचा० (५) ३६-१, सा० सजी० (४७) ६-२, पद ३२२-२।

केवल—वि० [सं०] एक, अकेला, अद्वितीय। ~अब मैं जानिबौ रे, **केवल** राइ की कहाँनी। → सब० १२-१।

केस—संज्ञा पु० [सं० केश] बाल। ~ बरिया बीती बल गया, **केस** पलटि भए और। →सा० काल० (४६) २५-१, सब० ६-४, वसंत (४) ४-२।

केसन—संज्ञा पु० [सं० केश] बाल, बालों ने। ~**केसन** कहा बिगारिया, जे मूड़े सौ बार। → सा० भेष० (२४) १२-१।

केसू—संज्ञा पु० [सं० किंशुक] टेसू, पलास का फूल। ~**केसू** फूले दिवस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोइ, खंखर भये पलास । → सा० चिता० (१२) ८-२ ।

केसो—संज्ञा पु० दे० 'केसौ' ।

केसौ—संज्ञा पु० [सं० केशव] केशव, ईश्वर, भगवान्, विष्णु । → **केसौ** कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय असरार । → सा० सुमि० (२)१६-१, सा० कामी० (२०) २२-१, पद ३२६-१, सा० उपज०(५०)११-१ ।

केहरि—संज्ञा पु० [सं० केशरी] सिंह । ~ज्यों **केहरि** बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि पर्‌यो । →सब० ५-३, पद ३४७-४ ।

कैंडा—संज्ञा पु० [सं० काण्ड] नापने का पैमाना । ~ चारि वेद **कैंडा** कियो, निराकार कियो राछ । → पद २४८-८ ।

कै—अव्य० [सं० किम्] या, अथवा । ~**कै** बिरहिन कौं मीच दे, **कै** आपा दिखलाइ । → सा० विरह (३) ३५-१, सब० १६४-४ ।

कै—१. क्रि० [सं०√कृ] कर ले ।

कै—२. अव्य० [दे०] अन्यथा । ~ निरमल हरि का नाव सों, **कै** निरमल सुध भाइ । **कै** लै दूनीं कालिमाँ, भावै सौं मन साबन लाइ । →सा० चित्त० (४२) ३-१,२ ।

कैलिन—क्रि० [हि० करना] किया । ~ भगति न जानै भगत कहावै, तजि अमृत विष **कैलिन** सारा । → पद ३२४-४ ।

कैसना—सर्व० [सं० कस्य, प्रा० कस्स] किससे । ~सोवत छाँड़ि चली पिय अपना, ई दुःख अब दहुँ कहव **कैसना** । →र० ७३-६ ।

कोंहरा—संज्ञा पु० [सं० कुम्भकार] कुम्हार । ~एकै खाक गढ़े सब भांडै एकै **कोंहरा** सांनां । → पद ३२५-४ ।

को—सर्व० [सं० कः] कोई । ~लाधा है कछु लाधा है, ताकी पारिष **को** न लहै । →पद २८०-१ ।

कोख—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] कोख । ~ बाँझ के **कोख** पुत्र अवतरिया, बिनु पग तरवर चढ़िया । → पद २७०-७ ।

कोखिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] कोख, पेट । ~जान पाँच **कोखिया** मिलि रखलों, और दुई औ चारी । → पद २२२-४ ।

कोट—संज्ञा पु० [सं० कोटि] समूह, ढेर ।~कालबूत के **कोट** ज्यौं, देखत ही ढहि जाय । → सा० कर० बि० कथ० (१८) १-२ ।

कोट—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीर, किले की रक्षा के लिए बनाई गई चहारदिवारी । ~दोवर **कोट** अरु तेवर खाई । →सब० ६३-२ ।

कोट—संज्ञा पु० [सं० कोट] गढ़, किला, दुर्ग, राशि । ~लंका सा **कोट** समुंद सी खाई, तिहि रावन की खबरि न पाई । →सब० ६२-४, पद ३०७-५, सा० साधु० (२८) ८-१, सा० चाँणक० (१७) १७-१ ।

कोटि—वि० [सं०] करोड़ । ~ तर ऊपर धै चाँपिहि, जस कोल्हु **कोटि** पचास । → र० १७-६, सब० १३-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोठड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० कोठा + ड़ी (प्रत्य०)] छोटा कमरा। ~ षट चक्र की कनक **कोठड़ी** वस्त्र भाव है सोई। →पद २१८-३।

कोड़—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीड़ा] क्रीड़ा, केलि करना। ~ ऊपर नचनियाँ करै **कोड़**, करिगह में दुइ चलै गोड़। →वसंत (४) ३-५।

कोड़ूं—क्रि० [हि० गोड़ना] गोड़ाई करना। ~ नित **कोड़ूं** नित सींचै बिरहुली, नित नव पल्लौ पेड़ बिरहुली। →बिरहुली (७)-५।

कोपीन—संज्ञा पु० [सं० कौपीन] लँगोटी। ~सतगंठी **कोपीन** दै, साधु न मानै संक। →सा० बिर्क० (३७) ८-१।

कोली—संज्ञा पु० [सं० कोल] हिन्दुओं की एक जाति जो कपड़ा बुनने का कार्य करती है। कोरी। ~थान बुनै **कोली** मैं बैठी; मैं खूंटा मैं गाड़ी। → सब० ३०-५।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कपर्दिका] कौड़ी के बराबर अर्थात् मूल्य में बहुत कम, तुच्छ मूल्य, कौड़ी। ~परखनहारा बाहिरा, **कौड़ी** बदले जाइ। →सा० अपा० (४८) २-२, पद २२७-६।

कौतुक—संज्ञा पु० [सं०] रहस्य, वैचित्र्य। ~ **कौतुक** दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास। → सा० परचा० (५) २-१।

कौतिकहार—वि० [सं० कौतुक + हि० हार] दिखावा करने वाला, पाषंडी। ~सोई राँम सती कहै, सांई कौतिकहार। →सा० विचार० (३३) १-१।

कौतिगहार—वि० दे० 'कौतुकहार'।

कौतुकहार—वि० [सं० कौतुक + हि० हार] तमाशा देखने वाले, तमाशबीन। ~कबिरा चाला राँम पै, **कौतुकहार** अपार। →सा० उपज० (५०) ३-२, सा० सूरा० (४५) २६-२।

कौली—संज्ञा पु० [सं० क्रोड] गोद, कोरा। ~ **कौली** घाल्या बीडरि चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै। →सब० २७-४।

क्रम—संज्ञा पु० [सं० कर्म] कर्म। ~ कोटि **क्रम** पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ। → सा० सुमि० (२) २०-१।

क्रितिम—वि० दे० 'किरतिम'।

क्रितिया—वि० दे० 'किरतिम'।

क्रिपा—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दया। ~जिन पर **क्रिपा** करत है गोविंद, ते सतसंगि मिलात। →सब० ७०-८।

क्रिमि-कीट—संज्ञा पु० [सं०कृमि-कीट] छोटे-छोटे कीड़े, क्षुद्र कीट। ~ जे जारै तौ होइ भसम तन गाड़े **क्रिमि कीट** खाई। →सब० १०२-३।

क्रिस्न—संज्ञा पु० [सं० कृष्ण] कृष्ण। ~ कोटि **क्रिस्न** जहँ जोरै हाथ; कोटि विष्नु जहँ नावैं माथ। → सब० ११०-५।

क्रोपहि—क्रि० [दे०] किटकिटाना। ~ कागा कापड़ धोवन लागे, बगुला **क्रोपहि** दाँता। →सब १५५-४।

क्वांरी—वि० दे० 'कुंवारी'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख

खंखर—वि० [देश०] उजड़ा हुआ, पत्र-पुष्प विहीन। ~केसू फूले दिवस दोइ, **खंखर** भये पलास। →सा० चिता० (१२) ८-२।

खंदा—वि० [हि०] खा जानेवाली। ~ डाइनि डिंभ सकल जग **खंदा**। →सब० ८५-६।

खँदाया—क्रि० [हि० खोदना] खोदा। ~ महि अकास दुइ गाड़ **खँदाया**, चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया। →र० २८-२।

खंभ—संज्ञा पु० दे० 'खंभा'।

खंभवा—संज्ञा पु० दे० 'खंभा'।

खंभा—संज्ञा पु० [सं० स्तम्भ] खम्भा। ~ **खंभा** तैं प्रगट्यौ गिलारि, हिरनांकस मार्यौ नख बिदारि। → सब० १५६-१०, २६२-७, पद ३४२-३, ज्ञान चौं० (१) ३८।

खंभै—संज्ञा पु० दे० 'खंभा'।

खटाइ—संज्ञा स्त्री० [हि० खट्टा+इ (प्रत्य०)] खटाई। ~कलि का स्वाँमी लोभिया, पीतल धरी **खटाइ**। →सा० चाँण० (१७) ६-१।

खटिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खाट] छोटी चारपाई। ~उतानैं **खटिया** गड़िले मटिया, संगि न कछु लै जाइ। → सब० १०५-२।

खटीक—संज्ञा पु० [सं० खट्टिक] कसाई, बधिक। ~बाँध्यो बारि **खटीक** कै, ता पसु केतिक आय।→सा० काल० (४६) २७-२।

खट्टु—वि० [सं० षट्] छः। ~उलटै पवन चक्र **खट्टु** भेदे सुरति सुन्नि अनुरागी। → पद २१६-३।

खड़ग—संज्ञा पु० [सं० खड्ग] तलवार। ~तब काढ़ि **खड़ग** कोप्यो रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ। → सब० १५६-६।

खतनां—संज्ञा पु० [अ० ख़तना] सुन्नत, मुसलमानी।~जे तूं तुरुक तुरुकिनी जाया; तौ भीतरि **खतनां** क्यूं न कराया। →सब० १२६-४।

खतमा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुत्वः] प्रार्थना विशेष।~इकइस पीर लिखे तेहि ठामा, **खतमा** पढ़ैं पैगम्बर नामा। → र० ४८-३।

खता—संज्ञा स्त्री० [अ०] दोष, अपराध; चूक। ~मीराँ मुझ मैं क्या **खता**, मुखाँ न बोलै पीर। →सा० बीन० (५६) ६-२, पद ३२०-२।

खताना—क्रि० [हि० खुटाना] समाप्त हो गया, बुझ गया।~दिया **खताना** किया पयाना; मन्दिर भया उजार। र० ६६-५।

खदेरा—क्रि० [हि० खेदना] भगा दिया। ~बस्ती माँहि तै दियो **खदेरा**; जंगल किएहु बसेरा। → सब० १३४-४।

खद्ध—क्रि० [हि० खाना] खाया; खा सका। ~संसय खाया सकल जग, संसा किनहुँ न **खद्ध**। जे बेधे गुरु अष्षिरां, तिनि संसा चुनिचुनि **खद्ध**॥ →सा० गुरु० (१) २२-१, २।

खन—संज्ञा पु० [सं० क्षण] कभी-कभी, क्षण भर। ~**खन** ऊबै **खन** डूबै **खन** औगाह। →सब० १६७३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खना— संज्ञा पु० [सं० क्षण] क्षण ।~ मैं तोहि पूछौं पंडित जना, हृदया ग्रहन लागु केहि **खना** । → सब० १६५-५ ।

खनि—क्रि० [हि० खनना] खोद कर । ~ग्रिह तजि वनखंडि जाइऐ, **खनि** खाइऐ कंदा । → सब० ६६-३, पद २२०-५, सा० सजी० (४७) २-१ ।

खपर—संज्ञा पु० [सं० खर्पर] खोपड़ी । ~जरि गौ कंथा धजा गयौ टूटी, भजि गौ डंड **खपर** गयौ फूटी । → सब० १२६-४ ।

खपर—संज्ञा पु० [सं० खर्पर] भिक्षा पात्र ।~सत करि **खपर** खिमा करि झोरी, ग्यांन विभूति चढ़ाई । → सब० ३३-७ ।

खपसी—क्रि० [सं० क्षेपण] नष्ट हो जाते हैं ।~ निज तत नांउँ निहचै नहिं जाँनां सब माया मैं **खपसी** ।→ पद ३१५-८ ।

खपै—क्रि० [सं० क्षेपण] नष्ट होता है । ~उपजै **खपै** जोनि फिरि आवै, सुख का लेस सपने नहिं पावै । → र० ८४-३, पद २६२-२२ ।

खर—संज्ञा पु० [सं०] तिनका, घास । ~न ना वो चौथे मँह जाई, राम कै गदह होय **खर** खाई । → ज्ञान चौं० (१) ४३ ।

खर—वि० दे० 'खरा' ।

खर—संज्ञा पु० [सं०] गधा । ~जस **खर** चंदन लादे भारा, परिमल बास न जान गँवारा । →र० ३२-२, सब० १६४-३ ।

खर—वि० [सं० तीक्ष्ण] अच्छा, वढ़िया, तेज । ~बढ़वत वढ़ी घटावत छोटी, परखत **खर** परखावत खोटी । → र० ७६-१, सा० बिर०(३)३०-१ ।

खरच—संज्ञा पु० [फ़ा० खर्च] व्यय । ~तेरे सिर पर जम खड़ा, **खरच** कदे का खाइ । →सा० सुमि० (२) १४-२ ।

खरसान—संज्ञा पु० [हिं० खर+सान (सं शाण)] तीक्ष्ण (तेज) शाण; अस्त्रों में तेज धार करने वाला यंत्र, मसकला । ~ कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह **खरसान** । → सा० सजी० (४०) ५-१ ।

खरा—वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] श्रेष्ठ, परमात्मा । ~ खोटो खाटै **खरा** न लीया, कछू जाँनी साटि । → पद २०३-७, ज्ञान चौं० (१) ६५ ।

खरा—वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] सच्चा । ~ पवनपति उनमनि रहनु **खरा** । →सब० १७१-१ ।

खरा—वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] अत्यंत । ~ऊड़ि पड़ै जब आँखि मैं, **खरा** दुहेला होइ । → सा० निन्द्या० (५४) ६-२ ।

खरा—वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] सत्य । ~**खरा** खोट जिन नहिं परखाया, चहत लाभ तिन्ह मूल गमाया ।→ र० ८०-२ ।

खरिहानां—संज्ञा पु० [सं० खल+स्थान] वह स्थान जहाँ फसल काट कर रखी जाती है और दाने को पृथक् किया जाता है । ~ गंग तीर मोरी खेती वारी, जमुन तीर **खरिहानां** । → सब० १७-३ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खरी—वि० [सं० खर=तीक्षण] विशुद्ध, बढ़िया । ~ **खरी** कसौटी राँम की, खोटा टिकै न कोइ । → सा० जी० मृ० (४१) ६-१ ।

खरी—वि० [सं० खर = तीक्ष्ण] बड़ी, अधिक । ~कवीर कठिनाई **खरी**, सुमिरताँ हरि नाम । →सा० सुमि० (२) २६-१ ।

खरे—वि० [सं० खर = तीक्ष्ण] अत्यधिक । ~तेरे नेवगी **खरे** सयांनें हो राम ।→ सब० १०-२ ।

खलक—संज्ञा [अ०] संसार, सांसारिक प्राणी । ~ **खलक** चबैना काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद । → सा० काल० (४६) १-२ ।

खलक—संज्ञा पु० [अ०] सृष्टि । ~ हक सांच खालिक **खलक** म्यांनैं स्याम मूरति नांहि । → सब० १८१-६ ।

खलक—संज्ञा पु० [अ०] संसार । ~ कहैं कबीर हमहीं पैं बौरे, ये सब **खलक** सयाना । → सब० १६७-६, पद २८१-२ ।

खलक—संज्ञा पु० [अ०] लोक समूह, जीव समष्टि । ~ विवेक विचार न करै कोय, सब **खलक** तमासा देखैं लोय । → वसन्त० (४) ७-६ ।

खवासी—संज्ञा स्त्री० [अ० खवास + ई (प्रत्य०)] नौकरी, चाकरी । ~ दुंदुर राजा टीका बैठे, बिखहर करै **खवासी** । → पद ३००-५ ।

खसम—संज्ञा पु० [फ़ा०] पति, स्वामी । ~भोलै भूली **खसम** कै बहुत किया विभिचार । → सा० पिव० पि० (३६) ३-१, सब० ४६-३ ।

खसम—संज्ञा पु० [फ़ा०] ईश्वर, स्वामी, मालिक ।~ सर्वभूत संसार निवासी, आपुहि **खसम** आपु सुख रासी । → र० १४-११, सब० ६४-१ ।

खसम[१]—वि० [सं० ख + सम] आकाश के समान अर्थात् निर्गुण ब्रह्म ।

खसम[२]—संज्ञा पु० [फ़ा०] स्वामी, पति । ~ सेस सहस मुख पार न पावा, सो अब **खसम** सही समुझावा । → र० ५२-२, र० ५-८, सब० १६३-३ ।

खसमहिं—संज्ञा पु० [फ़ा०] पति को । ~**खसमहिं** छोड़ि छिमा होय रहई, होय न खीन अखै पद लहई । → ज्ञान चौं (१) ६ ।

खसै—क्रि० [हि० खिसकना] खिसकना, सरकना । ~मनमथ बिंद करै असरारा, अलपै बिंद **खसै** नहिं द्वारा । → र० ३०-६ ।

खाँई—संज्ञा स्त्री० [सं० खनि] गड्ढा; महल आदि की रक्षा के लिए उसके चारों ओर खोदकर बनाई गई नहर । ~ कबीर **खाँई** कोट की, पानी पिए न कोइ । → सा० साधु० (२८) ८-१ ।

खाँखरि—संज्ञा स्त्री० [दे०] खोपड़ी; यहाँ तात्पर्य है शरीर । ~ **खाँखरि** डारिनि फोरि हो रमैया राम । → बेलि० (६) १-२४ ।

खाँगि—संज्ञा पु० [दे०] खुरहा नामक रोग जिससे पशु चलने में असमर्थ हो जाता है । ~पाँच लदनुवा **खाँगि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परे हो रमैया राम। →बेलि० (६) २३।

खाँच—संज्ञा पु० [हि०] टोकरी। ~ बड़े भोर उठि आँगनु वाढु, बड़े खाँच लै गोबर काढु। → वसंत (४) ६-२।

खाँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड] कच्ची शक्कर, स्वादिष्ट, मीठी, मिठाई।~ लपसी लौंग गनै एक सारा; परिहरि **खाँड़** मुख फाँकै छारा।→र० ७१-६, सब्र० १६८-२, सब० १३६-३, सब० ६-२; सा० माया० (१६) ७-१, सा० विर० (३) ३२-१, सा० साँच० (२२) १२-१।

खाँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड] शहद। ~कामिनि मीनीं **खाँड़** की, जे छेड़ौ तौ खाइ। → सा० कामी० (२०) २-१।

खाँडे—संज्ञा पु० [सं० खड्ग] तलवार। ~बिन **खाँडे** संग्राम है, नित उठि मन सौं जूझनां। → सा० साधसा० (२९) ८-२, सा० सूरा० (४५) २५-१।

खाई—संज्ञा स्त्री० [सं० खनि] खंदक। ~ दोवर कोट अरु तेवर **खाई**। → सब० ९३-२।

खाक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ाक] मिट्टी, धूल। ~बिनु ही मारे मृतक होइ, बिनु जारें होइ **खाक** सोइ। →पद २२५-५, पद ३२५-४, पद ३४०-४।

खाटै—क्रि० [दे०] संग्रह करता है। ~खोटी **खाटै** खरा न लीया, कछू न जाँनी साटि। →पद २०३-७।

खातां—क्रि० [हि० खाना से] खाते हुए। ~**खातां** जांन न कोई। → पद ३१३-२।

खाताँ—क्रि० वि० [हि० खाना] खाने में। ~**खाताँ** मीठीं खांड सी, अन्त-कालि विष होइ। → सा० कामी० (२०) ४-२।

खानि—क्रि० [हि० खाना] भोजन करना। ~ परनारी कौं राचनौं, जस लहसुन की **खानि**। → सा० कामी० (२०) ६-१।

खाबे—क्रि० [सं० खादन] खाना; भोजन करना। ~रचनहार कौं चीन्हि लै; **खाबे** कौं क्या रोइ। →सा० बेसा० (३५) ३-१।

खार—संज्ञा पु० [सं० क्षार] क्षार युक्त, खारी। ~**खार** समुद्र मैं माछली; केती बहि बहि जाँहि। →सा० कामी० (२०) ५-२।

खारा—वि० [सं० क्षार] खारा, दुःख। ~कबीर यहु जग कुछ नहीं, खिन **खारा** खिन मीठ। →स० काल० (४६) १५-१।

खारे—वि० [सं० क्षार] कडुवे। ~ हरि के **खारे** बरे पकाए, जिनि जानें तिन खाए। →पद ३३१-१।

खाला—संज्ञा स्त्री० [अ०] माता की बहन, मौसी। ~ कबीर यहु घर प्रेम का, **खाला** का घर नाँहि। → सा० सूरा० (४५) १९-१।

खालिक—संज्ञा पु० [अ०] सृष्टिकर्त्ता, ईश्वर, विधाता; स्वामी। ~ कबीर **खालिक** जागिया, और न जागै

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोइ। →सा० साध० सा० (२६) २०-१, सा० साँच० (२२) ६-२, सा० कस्तू० (५३) ६-१, पद २८१-२, सब० १८१-६।

खिअत—संज्ञा पु० [सं० क्षेत्रपाल] प्रसिद्ध ४६ भैरव जो पश्चिम के द्वारपाल माने जाते हैं। ~बावन कोटि जाकै कुटवार, नगरी नगरी **खिअत** अपार। →सब० १२८-११।

खिझुवा—वि० [हि०] खीझ कर बोलने वाला, चिढ़ने वाला, निन्दक। ~मनुवहि कहहु रहहू मन मारे, **खिझुवा** खीझि न बोलै हो। →कहरा (३) १-६।

खिन—संज्ञा पु० [सं० क्षण] क्षण, कुछ समय।~रावनहूँ तैं अधिक छत्र-पति, **खिन** महिं गए बिलात। → सब० ७०-६; र० २६-१, सं० काल० (४६) १५-१, पद २१६-८।

खिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] क्षमा। ~सत करि खपर **खिमा** करि झोरी, ग्यांन बिभूति चढ़ाई। →सब० ३३-७, पद ३०६-३।

खिलखाँना—संज्ञा पु० [अ० खिल (मित्र) + खाना (घर)] मित्रों के घर, यहाँ तात्पर्य है मित्र।~कोटि तेतीसूँ अरु **खिलखाँना**, चौरासी लख फिरैं दिवाना। →सब० १४१-५।

खिसै—क्रि० [हि० खिसकना] खिसकना, गिरना।~बस्त न बासन सूँ **खिसै**, चोर न सकई लागि। →सा० उप० (३४) १०-२।

खींचातानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कष्ट। ~कहैं कबीर भजि सारंगपानी, नाहीं तर ह्वैहै **खींचातानी**।→सब० १६१-५।

खींनां—क्रि० [सं० क्षीण] नष्ट होना, क्षीण होना।~कुसलहि कुसल करत जग **खींनां**, पड़ै काल भौ पासी रे। →सब० ८४-७।

खींनु—वि० दे० 'खीन'।

खीन—वि० [सं० क्षीण] दुर्बल।~इक जोग जुगुति तन होंहि **खीन** ऐसैं राम नांम सँगि रहैं न लीन। सब० ६१-४; पद ३३२-४, ज्ञान चौं० (१) ६।

खीनां—वि० [सं० क्षीण] क्षीण, कृश। ~ तन **खीनां** मन उनमनाँ, जग रूठड़ा फिरंत। → सा० साधसा० (२६) ३-२।

खीर—संज्ञा पु० [सं० क्षीर] दूध।~**खीर** खांड घृत पिंड संवारा, प्रांन गए लै बाहरि जारा। → सब० १३६-३, पद ३३४-६, सब० ६-२; सा० सार० (३२) १-१।

खीसै—वि० [सं० किष्क्] नष्ट।~करत विचार जनम गौ **खीसै** ई तन रहल असाधा। →सब० १५७-८।

खुटानौं—क्रि० [सं० खुड्] समाप्त हो गया।~बनिज **खुटानौं** पूँजी टूटि, दह दिसि टांड़ौ गयौ फूटि। →पद २३६-७।

खुटुकार—संज्ञा स्त्री० [दे०] चिंता, ध्यान।~जो **खुटुकार** बेगि नहिं लागै, हिरदय निवारहु कोहू हो।→ कहरा (३) १-४।

खुदाइ—संज्ञा पु० [अ० खुदा] ईश्वर;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रभु ।~जौ रे खुदाइ मसीति वसतु है, और मुलुक किस केरा । →सब० २३-६, सा० साधु सा० (२६) २१-१ ।

खुदाई—संज्ञा पु० [फा०] ईश्वर के, ईश्वरीय । ~हंम मसकीन खुदाई बंदे तुम्हरा जस मनि भावै । → पद २२६-२, पद २३०-१ ।

खुदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्वार्थ ।~ बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े विनु पानी । →सब० १३५-१० ।

खुमार—संज्ञा पु० [अ०] नशा; मद । ~हरि रस पीया जानिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार । → सा० रस० (६) ४-१ ।

खुमारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] मद, नशा ।~कहै कबीर फाबी मतिवारी, पियत राँम रस लगी खुमारी । → सब० १०८-५; पद ३०३-१०, पद २०१-७ ।

खुर खुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर-घर का शब्द, ध्वनि, आवाज । ~खुर खुर खुर खुर चलै नारि, बैठि जोला-हिन पलथि मारि । →वसन्त (४) ३-४ ।

खुराइ—क्रि० [दे०] दूर रहना, अलग रहना ।~कल्हि गड़ै जो काँटवा, अगमन कस न खुराइ ।→सा० उप० (५०) १-२ ।

खुसरैं—क्रि० [अ० खुसिय=अंडकोश, खुस्र=हानि पहुँचाना]=बधिया करना । ~ विंदु राखि जौ तरिऐ भाई, तौ खुसरैं क्यूं न परम गति पाई । →सब० ७७-५ ।

खुसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशी] आनन्द, प्रसन्नता ।~ज्यों कपि डोरि बांधि बाजीगर, अपनी खुसी परारी । → सब० १५६-६ ।

खूँटा—संज्ञा पु० [सं० क्षोड] जमीन में गाड़ी जाने वाली छोटी लकड़ी या बाँस का नुकीले मुँह वाला टुकड़ा । ~थान बुनै कोली मैं बैठी, मैं खूँटा मैं गाड़ी । → सब० ३०-५, पद २०६-४ ।

खूँदि—क्रि० [सं० स्कुंद] कूद-कूद कर ।~स्वाँग पहिरि सोहरा भया, खाया पीया खूँदि । → सा० भेष० (२४) १५-१ ।

खूटा—क्रि० [सं०√क्षुद्] नष्ट हो गया । ~संसा खूटा सुख भया, मिला पियारा कंत । →सा० पर० (५) १३-२ ।

खूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोड] एक पतली लकड़ी जिसके सिरे पर काँच का चुल्ला फोड़ कर बाँध देते हैं । इसी चुल्ले में रेशम के महीन तागे डालकर ताना बुनते हैं ।~सर खूटी एक राम नरायन, पूरन प्रगटे भेदा । →सब० १२७-३ ।

खूटै—क्रि० [सं० खुड] नष्ट हो गए ।~ और सबै रंग इहि रंग थैं छूटै, हरि रंग लागा कदे न खूटै । → पद २५६-३ ।

खूनी—वि० [फ़ा०] हत्यारा ।~खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुँहैमुँह खाइ । →सा० साँच० (२२) ६-२ ।

खेड़ा—संज्ञा पु० [सं० खेट] छोटा गाँव ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~चेतत रावल पावन **खेड़ा** सहजै मूलहि बाँधै। →सब० ६५-३।

खेतू—क्रि० [सं० क्षेत्र] युद्ध करता है। ~मूस बिलाई कैसन हेतू, जंबुक करै केहरि सों **खेतू**। →सब० ६२-२।

खेदा—संज्ञा पु० [सं० खेदन ?] हाँका करने वाले। ~ चित्त तरउवा पवन **खेदा** सहज मूल बांधा। → सब० १००-३।

खेदि—क्रि० [सं० खिद्] खेद कर, दौड़ा कर।~प्रथमै पदुमिनि रूप आहि, है सांपिनि जग **खेदि** खाहि। → वसंत (४) ५-३।

खेदै—क्रि० [हि० खेदना] दौड़ाता है।~ अचिरज एक देखहु संसारा, सुनहाँ **खेदै** कुंजर असवारा। →पद ३४७-३।

खेम—संज्ञा पु० [सं० क्षेम] कुशल।~ कुसल **खेम** अरु सही सलामति, ए दोइ काकौं दीन्हां रे। →सब० ८४-१।

खेलखासी—संज्ञा पु० [खेल (विनोद) +खासी (अ० खवास, खास का बहुवचन)] वे विशेष विश्वसनीय अन्तरंग महल में कार्य करने वाले सेवक जिन्हें राजाओं के मनोविनोद के समय उपस्थित होकर कार्य करने का अधिकार रहता है।~सेख जु कहिअहिं कोटि अठासी, छप्पन कोटि जाकै **खेलखासी**। →सब० १४१-४।

खेलै—क्रि० [सं० खेल] अभिनय करता है।~उहै जु **खेलै** सब घट माहीं, दूसर के लेखा कछु नाहीं। →र० ६८-४।

खेवइया—संज्ञा पु० दे० 'खेवट'।

खेवट—संज्ञा पु० [सं० केवर्त] मल्लाह, नाव चलाने वाला।~मूसा **खेवट** नाव बिलइया, सोवै दादुर सर्प पहरिया! →सब० ८६-४, पद २६५-६, सा० बिर्क० (३७) ६-२।

खेवटिया—संज्ञा पु० दे० 'खेवट'।

खेह—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार] मिट्टी, धूल।~वारि जु बाँधा प्रेम कै, डारि रहा सिरि **खेह**। →सा० रस० (६) ५-२, सा० चिता० (१२) २०-२; सा० चिता० (१२) ३०-२, सब० १०४-४।

खेहा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार] धूल।~ झूठहि झूठा मिलि रहा, अहमक **खेहा** खाय। →र० १४-१४।

खोंटि—वि० [सं० खोट्+इ] दोषपूर्ण। ~रामनाम निज जानि के, छाड़हु वस्तुहिं **खोंटि**। →र० ३६-६।

खोज—संज्ञा स्त्री० [हि०] मार्ग।~ पंखी का **खोज** मींन का मारग, कहै कबीर विचारी। →सब० ३७-७।

खोजा—संज्ञा स्त्री० [हि० खोजना] गवेषणा पूर्वक। ~दिल महिं खोजि देखि **खोजा** दे, भिस्ति कहाँ तैं आई। सब० ७६-१०।

खोट—संज्ञा स्त्री० [सं० खोट्] असत्य; मिथ्या।~खरा **खोट** जिन नहिं परखाया, चहत लाभ तिन्ह मूल गमाया। →र० ८०-२।

खोटी—वि० [सं० खोट्] हेय, निकृष्ट। ~बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी, परखत खर परखावत **खोटी**। →र० ७९-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खोटी—वि० [सं० √खोट्] दूषित ।~ कहै कबीर यह कलि है **खोटी**, जो रहै करवा सो निकसै टोटी । → पद २५८-५ ।

खोटी—वि० [सं० √खोट्] तुच्छ वस्तु । ~ **खोटी** खाटै खरा न लीया, कछू न जाँनी साटि । →पद २०३-७ ।

खोटी—वि० [सं० खोट्] दोष, बुराई । ~कबीर कलि **खोटी** भई, मुनियर मिलै न कोइ । →सा० चाँण० (१७) ८-१ ।

खोटे—वि० [सं० √खोट्] नीच ।~ कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, कलि में ब्राह्मन **खोटे** । →पद २६६-१० ।

खोटौ—वि० [सं० खोट्] खोटा, बुरा । ~**खोटौ** महतौ विकट बलाही, सिर कसदम का पारै । → सब० १०-७ ।

खोद खाद—क्रि० [हि० खोदना] खोदने का कार्य । ~ **खोद खाद** धरती सहै, काट कूट बनराइ । →सा० कुस० (३६) २-१ ।

खोदाई—संज्ञा पु० दे० 'खोदाय' ।

खोदाय—संज्ञा० पु० [फ़ा० खुदा] ईश्वर, स्वयंभू ।~यह तो खून वह बंदगी, क्यों कर खुसी **खोदाय** । →र० ४६-६, सब० १६७-५ ।

खोर—संज्ञा पु० दे० 'खोरी' ।

खोरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'खोरी' ।

खोरि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षौरि] चन्दन का टीका ।~नहाय **खोरि** उत्तिम होय आवैं, विष्णु भगत देखे दुख पावैं । → विप्र० (२) ६ ।

खोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० खोट] बुराई, दोष, ऐब ।~ब्राह्मन ही सब कीन्हों चोरी, ब्राह्मन ही को लागल **खोरी** । → र० १४-३; र० ८०-३, सा० चिता० (१२) ३१-१, सा० माया० (१६) १४-२; ज्ञान चौं० (१) ५, सा० संग० (२६) ६-२ ।

ख्वार—वि० [फ़ा०] अपमानित, तिरस्कृत, दुर्दशाग्रस्त ।~कबीर पूँजी साहु की, तूं जनि खोवै **ख्वार** । → सा० साँच० (२२) १-१ ।

ग

गंगोदिक—संज्ञा पु० [सं० गंगोदक] गंगाजल, गंगा का पानी ।~आइ मिलै जब गंग मैं, तब सब **गंगोदिक** होइ । →सा० साधु० (२८) ८-२, सब० ६६-५ ।

गंजन—संज्ञा पु० [सं०] दुःख ।~नहिं तर बेगि उठाइ, नित का **गंजन** को सहै । →सा०साधु० (२८) १०-२ ।

गंजन—संज्ञा पु० [सं०] अवज्ञा । ~भ्रम बिनु **गंजन** मनि बिनु निरखन, रूप बिना बहु रूपा । →पद २०४-५ ।

गंदा—वि० [फ़ा०] मलिन । ~हरि बिन भरमि बिगूचे **गंदा** ।→पद ३३७-१ ।

गंध्रप—संज्ञा पु० दे 'गंध्रव' ।

गंध्रव—संज्ञा पु० [सं० गंधर्व] गन्धर्व । ~कोटि जग्गि जाकै, दरबार, **गंध्रव** कोटि करहि जैकार । →हिंडोला (८) १-६, सब १२८-१३ ।

गँवारा—वि० [हि० गँवार] मूर्ख, अज्ञानी । ~जस खर चंदन लादे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारा, परिमल बास न जान **गँवारा** । →र० ३२-२. पद ३३६-१, र० ७८-८ ।

गइया—क्रि० [सं० गम् धातु] गया । ~ ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया, उपजि बिनसि कित **गइया** जी । → सब० ११५-३ ।

गऊ—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गाय, धेनु । ~हरि आदर आगैं लिया, ज्यौं **गऊ** बच्छ की लार । →सा० जी० मृ० (४१) ३-२ ।

गगन—संज्ञा पु० [सं०] सहस्रार, शून्य-स्थान ।~बसै **गगन** मैं दुनीं न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।→सब० ३४-३ ।

गगनु—संज्ञा पु० [सं० गगन] व्याप्त आकाश (Space) । ~आकासि **गगनु** पातालि गगनु है दह दिसि गगनु रहाईले । →पद २४१-३ ।

गज—संज्ञा पु० [सं०] हाथी ।~अस बिनु पाखर **गज** बिनु गुड़िया, बिन षंडै संग्रामहि जुड़िया । →सब० ११६-४, चाँचर (५) १-५, सब० १६३-५ ।

गजमुकुता—संज्ञा पु० [सं० गजमुक्ता] गजमणि, गजमुक्ता ।~चंदन चूर चतुर सभ लेपहिं, गरे **गजमुकुता** हारा हो । →कहरा (३) ६-५ ।

गडंत—क्रि० [हि० गाड़ना या सं० गर्त] कब्र में गाड़ दिए गए ।~कबीर भग की प्रीतड़ी केते गए **गडंत** । →सा० कामी० (२०) १३-१ ।

गड़िले—क्रि० [हिं० गाड़ना] गाड़ना, छिपाना ।~धन संचते राजा मूए, **गड़िले** कंचन भारी ।→पद २६०-७ ।

गड़िले—क्रि० [हिं० गाड़ना] गाड़ दिया । ~उतानैं खटिया **गड़िले** मटिया संगि न कछु लै जाइ । →सब० १०५-२ ।

गढ़—संज्ञा पु० [सं०] किला, दुर्ग ।~दास कबीर चढ़्यौ **गढ़** ऊपरि राज लियौ अबिनासी ।→सब० ६३-१२; सब० १४०-३ ।

गढ़न—क्रि० [हि० गढ़ना] रचना, निर्माण करना । ~ भांनन **गढ़न** सवांरन संम्रथ ज्यौं राखै त्यौं रहिए । →पद २०८-२ ।

गढ़नहारै—वि० [हिं०] गढ़ने वाला, शिल्पी, कारीगर ।~जे तूं मूरति सांचि है तौ **गढ़नहारै** खाउ ।→पद २११-६ ।

गढ़ै—क्रि० [हि० गढ़ना] बनाता है ।~आपुहि करता भया कुलाला, बहु विधि बासन **गढ़ै** कुंभारा । →र० २६-१ ।

गण—संज्ञा पु० [सं०] रुद्रानुचर, शिव जी के गण ।~सुर नर **गण** गंध्रब जिनि मोहे त्रिभुवन मेखुली लाई । →पद २५०-४ ।

गत—क्रि० [सं० √गम्] चला गया । ~निज निरखत **गत** ब्यौहारा । → सब० ८-२ ।

गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीला, विधान, मर्म, रहस्य ।~पढ़त पढ़त केते दिन बीते, **गति** एकौ नहिं जांनीं । → सब० ७६-२, पद २५१-१; सा० सू० मा० (१४) ५-२, पद २६८-१ ।

गति—सं० स्त्री [सं०] १. मोक्ष, २. साधन, ३. प्रवेश, ४. अवस्था ।~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूरब दिसा हंस **गति** होई, है समीप सँधि बूझै कोई।→ र० ५-६, पद ३०८-३।

गदह—संज्ञा पु० [सं० गर्दभ] गदहा, पशु, मूर्ख।~न ना वो चौथे मँह जाई, राम कै **गदह** होय खर खाई। → ज्ञान चौं० (१) ४३।

गन—संज्ञा पु० [सं० गण] १. समूह, २. शिव के पार्षद।~**गन** गंधर्व मुनि अंत न पाया, हरि अलोप जग धंधे लाया।→र० १६-२, हिंडोला (८) १-६।

गनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गणिका] वेश्या। **गनिका** कै घरि बेटा जाया, पिता नाँव किस कहिए। →सब० १८६-८।

गनै—क्रि० [सं० गणना] गिनते हैं, समझते हैं, मानते हैं।~जैसी भित्ति तैसि है नारी, राजपाट सब **गनै** उजारी। → र० ७१-४।

गफिलाई—संज्ञा स्त्री० [अ० गाफ़िल + आई (प्रत्य०)] असावधानी, भ्रम। ~ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए **गफिलाई**।→र० ६६-१।

गम—वि० [सं०] १. गम्य, प्रवेश। २. सगुण।~अगम काटि **गम** कियहु हो रमैया राम। →वेलि (६) १-१७।

गम—संज्ञा स्त्री० [सं० √गम्] पहुँच, पहुँच के भीतर।~आवागमन की **गम** नहीं, तहँ सकलो जग जाय। →र० ३४-७, पद ३२८-१०।

गम—सं० पु० [संज्ञा √गम्] ज्ञान।~एतिक लै **गम** कीहिस गइया, गइया अति हरहाई।→पद २०६-६।

गमि—संज्ञा स्त्री० [सं० √गम्] पहुँच, गति, पता, ज्ञान। ~अगम अगोचर **गमि** नहीं, जहाँ जगमगै जोति। → सा० पर० (५) ४-१, सा० सू० मा० (१४) ८-२, सा०मधि०(३१) ४-१, सब० १२-२, सा० जर० (८) ३-२।

गयंद—संज्ञा पु० [सं० गजेन्द्र] हाथी।~खंभा एक **गयंद** दोइ, क्यों करि वंधसि बारि।→सा० चिता० (१२) ४२-१, सा० सूरा० (४५) ८-२।

गयल—क्रि० [सं०√गम्] चले गए। ब्रह्मा गए मर्म नहिं जाना, बड़ सब **गयल** जो हल सयाना। →र० ४५-२।

गर—संज्ञा पु० [सं० गल] गला, कण्ठ। ~आपुहि बरी आपु **गर** बंधा, झूठा मोह काल को फंदा।→र० ३३-२।

गरक ह्वै—क्रि० [अ० गर्क] डूब कर, लीन होकर।~चित चेतनि मैं **गरक ह्वै**, चेति न देखै मंत। →सा० बिर्क० (३७) ५-१।

गरजि—क्रि० [सं० गर्जन] गुंजायमान करते हुए।~अम्बर कुंजाँ कुरलियाँ, **गरजि** भरे सब ताल।→सा० बिर० (३) २-१।

गरत्थ—क्रि० [सं०√ग्रथ्] ग्रथित किया है, बाँध दिया है। ~पसु पंखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठी **गरत्थ**। → सा० बेसा० (३५) ६-२।

गरब—संज्ञा पु० [सं० गर्व] अहंकार,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घमण्ड । ~ **गरब** गहेली **गरब** से, उलटि चली मुसुकाय । →पद ३१५-१३, पद २७४-४, चाँचर (५) १-७ ।

गरबसि—क्रि० [सं० गर्व] गर्व करता है । ~कहा नर **गरबसि** थोरी बात । →सब० ७०-१, सब० १९३-३ ।

गरबांनां—क्रि० [सं० गर्व से] अहंकार किया । ~माया देखि कै जगत लुभांनां काहे रे नर **गरबांनां** । → पद ३२५-७ ।

गरबावै—क्रि० दे० 'गरबियो' ।

गरबियो—क्रि० [सं० गर्व] गर्व करना, घमंड करना । ~कबीर कहा **गरबियो** इस जोबन की आस । →सा०चिता० (१२) ८-१, सा० काल० (४६) १९-१, सब० १३६-१, पद २०३-६ ।

गरब्यो—क्रि० दे० 'गरबियो' ।

गरभ—संज्ञा पु० [सं० गर्व] अभिमान, घमण्ड । दे० 'गरब' । ~लीन्ह बोलाय बात नहि पूछै, केवट **गरभ** ते न बोलै हो । → कहरा (३) १-१६ ।

गरभ—संज्ञा पु० [सं० गर्भ] गर्भ । ~ सुकदेव अचारज दुःख कै कारनि, **गरभ** सौं माया त्यागी । →सब० १३८-४ ।

गरवा—वि० [सं० गुरु] गम्भीर; महान् गुरुत्वपूर्ण, महत्वपूर्ण । ~ साहिब **गरवा** चाहिए, नफर बिगाड़ै नित्त । →सा० बीन० (५६) २-२, सा० गु० (१) १४-१ ।

गरवातन—संज्ञा पु० [सं० गुरुता] गुरुत्व, गौरव । ~मांनि महातम प्रेम रस, **गरवातन** गुण नेह । →सा० बेसा० (३५) १४-१ ।

गरासं—क्रि० [हि० ग्रसना] ग्रसना । ~ चूकीलें मोह पियासं; तहाँ ससिहर सूर **गरासं** । →सब० १७१-७ ।

गरासन—संज्ञा पु० [सं० ग्रसन] ग्रास कर लेना । ~कामिनी कहै मोर पिय आही, बाघिनी रूप **गरासन** चाही । → र० ७८-३ ।

गरासै—क्रि० [सं० ग्रसन] ग्रस लेती है । ~उलटी गंग समुद्रहिं सोखै, ससि-हर सूर **गरासै** । →सब० ३२-३ ।

गरि—क्रि० [हि० गलना] गल जाएगा । ~धन जोवन का गरब न कीजै कागद ज्यौं **गरि** जाइगा । →पद २७४-४ ।

गरी—संज्ञा पु० [सं० गल] गले में, कण्ठ में । ~काहू **गरी** गूदरी नांहीं काहू सेज पयारा । →पद २१६-६ ।

गरीबी—संज्ञा स्त्री० [अ०] आकिंचन्य । ~दीन **गरीबी** बंदिगी, करतां होइ सु होइ । →सा० जीव मृ० (४१) ११-२ ।

गरुआ—वि० [सं० गुरु] भारी, कठिन, महान् । ~ भव अस **गरुआ** दुःख अति भारी; करु जिन जतन जे देसु विचारी । →र० २०-४, र० ७७-३; सब० ९६-११ ।

गरुड़—संज्ञा पु० [सं०] गरुड़ । ~ फुनिगा कतहूँ **गरुड़** भखत है।→पद ३४७-२ ।

गरुवा—वि० दे० 'गरुआ' ।

गर्वसी—क्रि० [सं० गर्व + हि० सी] दे० 'गरबसि' ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्वसी—क्रि० [हि०] गर्व करते हो।~ तन धन सों का **गर्वसी** मन बौरा हो।→चाँचर (५) २-३।

गल—संज्ञा पु० [सं०] गला, गर्दन।~ मेरी पग का पैखड़ा, मेरी **गल** की पास। →सा० चिता० (१२) ६१-२, पद २४४-६।

गल—क्रि० [हि०] चले गए।~काको रोऊँ **गल** बहुतेरा, बहुतक मुअल फिरल नहिं फेरा। →सब० ७५-१।

गलका—सं० पु० [सं० गल] गले तक। ~**गलका** खाया बरजताँ, अब क्यौं आवै हाथि। → सा० मन० (१३) १६-२।

गलबल—वि० [दे०] गड़बड़। ~कत कत की सल पाड़िए, **गलबल** सहर अनंत।→सा० बिर्क० (३७) ५-२।

गलि—संज्ञा पु० [सं० गल] कंठ में, गले में।~कोई जावै मक्का कोई जावै क.सी, दोऊ कै **गलि** परि गई पासी। →सब० ३८-४; सा० मन० (१३) ११-१, सा० भेष० (२४) ६-२, सा० ज्ञान० वि० (४) ७-२, सा० चाँण० (१७) २२-१।

गलीगल—क्रि० [हि०] निचुड़कर, गल-कर।~हाड़ झरी झरि गूद **गलीगल**, दूध कहाँ ते आया।→सब० १७४-८।

गवन—क्रि० [सं० गमन] जाते हैं, छोड़ते हुए।~कोटि सरसती धारै राग, कोटि इन्द्र जहं **गवन** लाग। →सब० ११०-७; पद २४३-२।

गवाँइसी—क्रि० [सं० गमन] गँवा देगी, निकाल फेंकेगी। ~ दुरमति दूरि **गवाँइसी**, देखी सुमति बताइ। → सा० साधु० (२८) २-२।

गवाँयउ—क्रि० [सं० गमन] नष्ट कर दिया।~कबहुँ न भयउ संग अरु साथा, ऐसो जनम **गवाँयउ** हाथा। → र० ४४-१।

गहभरा—वि० [सं० गह्वर>गहवर < गहभर] व्याकुल, उद्विग्न। ~घायल घूँमै **गहभरा**, राखां रहै न ओट।→ सा० सूरा० (४५) १६-१।

गहनि—क्रि० [सं० ग्रहण] ग्रहण करना। ~ है कछु रहनि **गहनि** की बाता, बैसा रहे चला पुनि जाता। → र० ५१-३।

गहनी—क्रि० [सं० ग्रहण] पकड़ लिया। ~ **गहनी** बंधन बानि नहिं सूझा, थाकि परे तब किछवो न बूझा। → र० १६-३।

गहि—क्रि० [सं० ग्रहण] पकड़ कर। ~ कांन **गहि** काजी नाक **गहि** मुल्ला पंडित कै आँखी फोरी। → पद ३१३-५।

गहिर—वि० [सं० गम्भीर] गहरी। ~ गंग गुंसाइंनि **गहिर** गंभीर, जंजीर बाँधि करि खरे कबीर। → पद २१३-३।

गहिला—वि० [हि० गहेला] पागल, बावला। ~ यहु रस पीवै गूगाँ **गहिला**, ताकी कोई न बूझै सार रे। → सब० ८७-७।

गहेजुआ—संज्ञा पु० [दे०] छछूँदर। ~ सर्पन मुख **गहेजुआ**, जात सभन की जान। → र० ४५-८।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गहेलड़ी—वि० [हि० गहेली] हठीली, पागल, गँवारिन। दे० 'गहिला'। ~ रहु रहु मुगध **गहेलड़ी**, अब क्यों मीजै हाथ। → सा० बिर० (३) ३६-२।

गहेली—वि० [हि०] हठी। ~ ननद सुहेली गरब **गहेली**, देवर कै बिरहि जरउँ रे। → पद २३२-४।

गहेली—वि० [हि०] गर्वीली। ~ गरब **गहेली** गरब से, उलटि चली मुसकाय। → चाँचर (५) १-७।

गहौं—क्रि० [सं० ग्रहण] पकड़ता हूँ। ~ जे छाँड़ौं तौं बूड़िहौं, **गहौं** त डसिहै बाँहि। → सा० बिर० (३) ४३-२।

गह्या—क्रि० [सं० ग्रहण] पकड़ रखा। ~ जिनि पाया तिनि सुगह **गह्या**, रसनाँ लागी स्वादि। सा० पर० (५) ३३-१।

गाँगी—वि० [सं० गंगा] गंगा सम्बन्धी, गंगा के। ~ **गाँगी** रोलै बहि गया, हरि सौं किया न हेत। सा० भेष० (२४) ४-२।

गाँठरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गठरी] बोझ। ~ खोटा बाँधा **गाँठरी**, इब कछु लिया न जाइ। → सा० अपा० (४८) ३-२।

गांठि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] गाँठ, गाँठ में। ~ तजि कपूर **गाँठि** बिख बांधै, ग्यान गँवाय के मुगुध फिरै। → पद २७६-७, वसंत (४) ३-३, सा० वेसा० (३५) ६-२।

गांठि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] जड़-चित् की ग्रन्थि, गाँठ। ~ नानां रंगैं भांवरि फेरी **गांठि** जोरि बाबैं पतियाई। → पद २३८-५, पद ३१२-५, र० ८०-३, सब ४६-२।

गाँठि दीन्हीं—[मुहा०] निश्चयपूर्वक। ~ सांचु कहि हम **गांठि दीन्हीं** छोड़ि परम निधांन। → सब० १८७-४।

गाँठी—संज्ञा स्त्री० दे० 'गांठि'।

गांथल—क्रि० [सं० ग्रन्थन] गूँथती है, सँवारती है। ~ फुल भल फुलल मलिनि भल **गांथल**, फुलवा बिनसि गो भवँर निरासल। → पद २३६-४।

गाइ—क्रि० [सं० गान] गाकर। ~ मीराँ मुझ सौं यौं कहा, किनि फुरमाई **गाइ**। → सा० साध० सा० (२६) २१-२।

गाइ—संज्ञा स्त्री० दे० 'गाय'।

गाइत्री—संज्ञा स्त्री० दे० 'गायत्री'।

गाऊँ—संज्ञा पु० [सं० ग्राम] गाँव। ~ कहँ बस पुरुष कहाँ सो **गाऊँ**, पंडित मोहिं सुनावहु नाऊँ। → र० ३४-२, पद २५५-११।

गागरि—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गर] घट, कलश। ~ ऊभर था सो सूभर भरिया, त्रिसनां **गागरि** फूटि। → सब० १५-३।

गाज—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्ज] गर्जन। ~ ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनत सकल की **गाज**। → सा० सुमि० (२) १५-२।

गाजा—क्रि० [सं० गर्जन] अनाहत ध्वनि करता है। ~ ब्रह्महि पकरि अगिनि मँह होमै, मच्छ गगन चढ़ि **गाजा**। → सब० १४४-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गाजै—क्रि० [सं० गर्जन] शब्द करता है, गरजता है।~जंत्री जंत्र अनूपम बाजै, वाके अस्ट गगन मुख **गाजै**। →सब० १०६-१, सब० ८१-३।

गाठरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गट्ठर] गठरी, आवश्यकता की पूर्ति करने वाली चीजों का संग्रह।~संत न बाँधै **गाठरी**, पेट समाता होइ। → सा० बेसा० (३५) १०-१।

गाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त] गड्ढा। ~महि अकास दुइ **गाड़** खँदाया, चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया। → र० २८-२, चाँचर (५) १-१८।

गाड़—क्रि० [हि० गाड़ना] भूमि में गड्ढा बनाकर उसमें ढँक देना।~महि अकास दुइ **गाड़** खँदाया, चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया। →र० २८-२।

गाड़र—संज्ञा स्त्री० [सं० गड्डुरिका] भेड़।~**गाड़र** आनी ऊन को, बाँधी चरै कपास। →सा० चाँण० (१७) ३-२।

गाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त] गड्ढा। ~थान बुनै कोली मैं बैठी, मैं खूँटा मैं **गाड़ी**। →सब० ३०-५।

गाढ़ी—वि० [सं० गाढ़] सघन। ~तानै वानै पड़ी अनँवासी, सूत कहै बुनि **गाढ़ी**। →सब० ३०-६।

गाढ़ी—क्रि० वि० [हि०] भलीभाँति। ~काजल टीकि चसम मटकावै कसि कसि बाँधै **गाढ़ी**। →पद ३१३-३।

गाता—संज्ञा पु० [सं० गात्र] शरीर। ~कहा मुगध रे पाहन पूजे, क्या जल डारे **गाता**। →सब० १२२-४, सब० १४-४।

गानी—क्रि० [हि० गाना] गाऊँ, गिनाऊँ। ~बिनसे अगिनि पौन औ पानी, बिनसे सिस्टि कहाँ लौ **गानी**। → र० ४६-३।

गाफिल—वि० [अ०] असावधान, बेसुध, बेखबर। ~पाइ कुहाड़ा मारिया **गाफिल** अपनैं हाथि। →सा० चिता० (१२) ४३-२, सा० मन० (१३) १७-१, सब० ११-२, पद २१८-२, सा० चिता० (१२) २६-२।

गाफिलाँ—वि० दे० 'गाफिल'।

गाभिन—वि० [सं० गर्भिणी] गर्भिणी। ~जौ ब्यावै तौ दूध न देई, **गाभिन** अमृत सरवै। →सब० २७-३।

गाय—क्रि० [हि० गाना] गाता है, बतलाता है, विवेचन करता है।~की चित जानै आपना, की मेरो जन **गाय**। →र० ७३-८, सा० अपा० (४८) ५-१।

गायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक मन्त्र जो हिन्दू धर्म में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।~जेहि मुख वेद **गायत्री** उचरै, जाके वचन संसार तरै। →पद २७६-२, र० ३५-३, सब० ८२-३।

गायन—संज्ञा पु० [सं०] गाने वाला। उँच निच परबत ढेला न ईंट, बिनु **गायन** तहँवा उठे गीत। →सब० १६५-२।

गारड़ू—संज्ञा पु० दे० 'गारुड़ि'।

गारि—संज्ञा स्त्री० दे० 'गारी'।

गारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] कलंक, गाली, अभद्र कथन। ~सासु ननद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पटिया मिलि बँधलौं; भसुरहिं परलौं **गारी**। →पद २२२-२; सब० १५६-८।

गारुड़ि—संज्ञा पु० [सं० गारुडि] मंत्र से सर्प का विष उतारने वाला (इस मंत्र का देवता गरुड़ है, इसीलिए इस मंत्र को गरुड़ मंत्र कहते हैं और मंत्र जानने वाले को गारुड़ि कहते हैं), सर्प का मंत्र जानने या उतारने वाला, सद्गुरु।~विष के खाए विष नहिं जावै, **गारुड़ि** सो जो मरत जियावै। → र० २६-६; बिरहुली (७) १०, पद ३४५-१४, सब० १४५-१, पद २२३-६।

गारुड़ू—संज्ञा पु० दे० 'गारुड़ि'।

गालिब—वि० [अ०] शक्तिशाली। ~ **गालिब** नारी गांउँ बसाया; हांम कांम हंकारी। →सब० १०४-५।

गावहु—क्रि० [सं० गान] गाते हो, रस लेते हो।~चीन्ह चीन्ह का **गावहु** बौरे, बानी परी न चीन्ह। →र० ४-६।

गाहक—संज्ञा पु० [सं० ग्राहक] वह जो ग्रहण करता है, ग्रहण करने और परखने वाला। ~एक निस्प्रेही निरधार का, **गाहक** गोपीनाथ। →सा० भेष० (२४) २२-२, सब० १-१।

गिआंन—संज्ञा पु० दे० 'गियान'।

गियांनी—वि० [सं० ज्ञानिन्] ज्ञानी। ~पिया मोरा मिलिया सत्त **गियांनी**। → सब० १७६-१, पद २२०-६।

गियान—संज्ञा पु० [सं० ज्ञान] ज्ञान। ~अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म **गियान**। →सा० पर० (५) ४४-१, सब० १३-१; सा० कुस० (३६) ४-१, पद २५०-६।

गिरद—अव्य० [फ़ा० गिर्द] चारों ओर। ~सूरा जूझै **गिरद** सौं, इक दिसि सूर न होइ। →सा० सूरा० (४५) ४-१।

गिरदान—संज्ञा पु० [हि०] गिरगिट।~ मछरी मुख जस केंचुवा, मुसवन मुख **गिरदान**। → र० ४५-७।

गिरही—संज्ञा पु० [सं० गृहिन्] गृहस्थ। ~घाटे बाटै सब जग दुखिया, क्या **गिरही** बैरागी हो।→सब० १३८-३ सा० उप० (३४) ५-१, सा० कामी० (२०) २५-२।

गिरि—संज्ञा पु० [सं०] पर्वत। ~**गिरि** गोवर्धन नख पर राख्यौ ते बाघिनि मुख आया। → पद ३१३-८।

गिला—क्रि० [सं० गलन] गल गया। ~पग तौ पाला मैं **गिला**, भाजन लागी सूल।→सा० भेष० (२४) १-२।

गिलारि—संज्ञा पु० [सं० गिल+अरि] निगलने वाले ग्राह के शत्रु अर्थात् विष्णु। ~खंभा तैं प्रगट्यौ **गिलारि**; हिरनांकस मार्‌यौ नख बिदारि।→ सब० १५६-१०।

गिली—क्रि० [सं० निगरण] निगल जाना।~उलटि मूसै साँपिनि **गिली**; यहु अचरजु भाई। →सब० ५१-४।

गिले—क्रि० [सं० निगरण] निगल गया, नष्ट कर दिया।~मानि बड़े मुनिबर **गिले**, मांन सबनि कौं खाइ।→सा०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माया० (१६) १७-२, सा० माया० (१६) ३१-२ ।

गिलौरा—सं० पु० [दे०] पान का बीड़ा । ~ सिंघ ज बैठा पान कातरै घूंस **गिलौरा** लावे । →पद ३३१-५ ।

गोध—संज्ञा पु० [सं० गृध्र] गिद्ध नामक एक बड़ा पक्षी । ~काग **गोध** दोउ मरन बिचारैं; सूकर स्वान दोउ पंथ निहारैं । →र०७८-५, कहरा (३) ९-६ ।

गुँनी—वि० [सं० गुणिन्] कलाकार । ~बाजै जंत्र बजावै **गुँनी** । → सब० १८५-१ ।

गुंसाईंनि—संज्ञा स्त्री० [हि० गोस्वामिनी] पूज्या, आदरसूचक शब्द । ~ गंग **गुंसाइंनि** गहिर गंभीर, जंजीर बाँधि करि खरे कवीर । → पद २१३-३ ।

गुआर—संज्ञा पु० [हि० ग्वाल] अहीर । ~हमं गोरू तुम **गुआर** गुसांईं जनम जनम रखवारे । →पद २३१-७ ।

गुजारा—क्रि० [फ़ा० गुज़ारिश] प्रार्थना किया । ~एक से पूजा जैनि विचारा, एक से निहुरि निमाज **गुजारा** । → र० १४-७ ।

गुजारैं—क्रि० [फ़ा० गुजारिश] प्रार्थना या निवेदन करता है ।~ दिल महिं कपट निवाज **गुजारैं**, क्या हज काबै जाएं । →सब० २३-६, पद २२९-५, पद ३०४-५ ।

गुज्झ—क्रि० [सं० गुह्य] घनिष्टता, मित्रता या गठबन्धन करता है । ~ साँई सेती चोरियाँ चोरों सेती **गुज्झ** । → सा० साँच० (२२) १०-१ ।

गुड़—संज्ञा पु० [सं०] गुड़ । ~काया कलाली लाहनि मेलेउँ गुरु का सबद **गुड़** कीन्हा । → पद ३४४-३ ।

गुड़िया—संज्ञा पु० [दे०] हौदा ।~ अस बिनु पाखर गज बिनु **गुड़िया**, बिनु षंडै संग्रामहि जुड़िया ।→सब० ११६-४ ।

गुढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुणिका] उलझन, गाँठ, गुत्थी । ~ सुरझ्यो सूत **गुढ़ी** सब भागी, पवन राखि मन धीरा ।→सब० १५४-५ ।

गुण—संज्ञा पु० [सं०] प्रकृति के तीन भाव—सत्व, रजस् और तमस् ।~ कबीर **गुण** की बादली, तीतरबानीं छाँहि ।→सा०माया० (१६) २३-१ ।

गुण—संज्ञा पु० [सं०] डोरी, प्रत्यंचा । ~ हरि रस जे जन वेधिया, सर **गुण** सींगणि नाँहि । → सा० सब० (४०) ५-१ ।

गुणां—संज्ञा पु० [सं० गुण] गुण, विशेषता । ~ **गुणां** का भेद न्यारौ न्यारौ । → सब० ९६-१ ।

गुणियाले—वि० [सं० गुण + हि० वाले (प्रत्य०)] गुणवान् । ~ कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, वहु **गुणियाले** कंत । →सा० निह० (११) १-१ ।

गुदरावै—क्रि० [फ़ा० गुज़रान] पेश करना, सामने रखना । ~तहाँ मो गरीब की को **गुदरावै** । → सब० १४१-१ ।

गुदरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदड़ी] कथरी । ~ **गुदरी** सी उठि जाइगी चित चेति अभागी रे । → पद २७३-४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुन—संज्ञा पु० [सं० गुण] रहस्य। ~राम **गुन** बेलड़ी रे, अवधू गोरखनाथ जाँनी। → पद २५३-१।

गुन—संज्ञा पु० [सं० गुण] रस्सी, डोरी, तार। दे० 'गुण'। ~ कबीर सबद सरीर मैं, बिन **गुन** बाजै तांति। सा० सब० (४०) १-१।

गुन—संज्ञा पु० [सं० गुण] परिणाम, पदार्थ। ~ संजोगे का **गुन** रवै, बिजोगे का **गुन** जाय। → र० ४०-६।

गुन—संज्ञा पु० [सं० गुण] लाभ, प्रभाव। ~ विष के संग कौन **गुन** होई, किंचित् लाभ मूल गो खोई। → र० ११-८, सब० १६४-३।

गुन—संज्ञा पु० [सं० गुण] परम तत्व। ~ **गुन** अतीत जस निरगुन आप, भरम जेवरी जग कियौ सांप। → सब० ५०-८।

गुन—संज्ञा पु० [सं० गुण] १. कीर्तन-भजन। २. त्रिगुणात्मक बन्धन (सत्व, रजस्, तमस्)। ~**गुन** गाए **गुन** ना कटै, रटै न राम बिवोग। सा० सुमि० (२) २८-१, सब० ५०-६।

गुन अतीत—वि० [सं० गुणातीत] गुणों से परे, निर्गुण। ~ **गुन अतीत** निरमोलिक लीजै। → पद २४७-२।

गुनवन्ती—वि० [सं० गुणवती] १. सत्व, रजस्, तमस् गुणों से युक्त, त्रिगुणात्मिका। २ गुणों वाली। ~ इस **गुनवन्ती** बेलि का, कछु गुन कहा न जाइ। → सा० बेली० (५८) ३-२।

गुनह—संज्ञा पु० [फ़ा० गुनाह] अपराध, पाप। ~ और **गुनह** हरि बकसिहैं, काँमी डाल न मूल। →सा० कामी० (२०) १७-२, सब० १७२-६।

गुनां—संज्ञा पु० [सं० गुण] १. लाभ। २. प्रयोजन। ~ कपट भगति कीजै कौनं **गुनां**। सब० ५९-२।

गुनातीत—वि० [सं०] गुणों से परे, निर्गुण ब्रह्म। दे० 'गुन अतीत'। ~ **गुनातीत** के गावते; आपुहिं गये भ्रमाय। → र० ६१-५।

गुनि—क्रि० [हि० गुनना] विचार करके। ~ अच्छर पढ़ि **गुनि** राह चलाई, सनक सनंदन के मन भाई। → र० ५-४।

गुनिएँ—क्रि०[हि० गुनना] मनन कीजिए। ~ का पढ़िए का **गुनिएँ**, का वेद पुरांनां सुनिएँ। → पद ३३६-९।

गुनियाँ—वि० [सं० गुणिन्] गुण वाले, समझदार। ~ कहै कबीर सुनहु रे **गुनियाँ**, बिनसैगो रूप देखै सभ दुनियाँ। →पद २७९-६।

गुनी—वि० [सं० गुणिन्] विद्वान्, अन√ =साधारण व्यक्ति। ~ **गुनी अनगुनी** अर्थ नहिं आया, बहुतक जने चीन्हि नहिं पाया। → र० ४-४।

गुपुत धरी—क्रि० [हि०] सुरक्षित रखा। ~ याही तैं मोहिं प्यारी लागी लैकै **गुपुत धरी**। → पद ३२७-३।

गुप्त—वि० [सं०] सूक्ष्म। ~ तहिया **गुप्त** थूल नहिं काया, ताके न सोक ताकि पै माया। → ७४-१।

गुमांना—संज्ञा पु० [फ़ा० गुमान] घमण्ड।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दे० 'गुमाना'। ~ गरब **गुमांना** सब दूरि निवारै करनी कौ बल नाहीं। → पद ३१५-१३।

गुमाना—संज्ञा पु० [फ़ा गुमान] अहंकार, अभिमान। ~ कहहिं कबीर खोजै असमाना, सो न मिला जिहि जाय **गुमाना**। → र० ३२-३, पद २६७-७।

गुमानी—वि० [फ़ा] अहंकारी, घमण्डी, मिथ्याभिमानी। ~ बड़ सो पापी आहि **गुमानी**, पाषंड रूप छलो नर जानी। → र० १४-१।

गुर—संज्ञा पु० [सं० गुरु मन्त्र] भेद, रहस्य, युक्ति। ~ कहै कबीर **गुर** पूरा पाया भाग हमारा जागा।→ पद ३४०-८, सा० पी० पि० (३६) ३-२।

गुर—संज्ञा पु० [दे०] मस्तूल। ~ **गुर** भौ ढील गोनि भै लचपचि, कहा न मानेहु मोरा हो। → कहरा (३) १-२६।

गुर—संज्ञा पु० [सं० गुरु] सद्गुरु। → कहै कबीर **गुर** एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिलै राम राई। → पद ३११-५, पद २८१-५।

गुरगंमि—संज्ञा पु० दे० 'गुरुगमि'।

गुरगमि—संज्ञा पु० दे० 'गुरुगमि'।

गुरु—संज्ञा पु० [सं०] महान् पुरुष, ब्रह्मादि, सनकादि, सद्गुरु।~प्रथम चरन **गुरु** कीन्ह विचारा, करता गावै सिरजनहारा। → र० ४-१।

गुरुगमि—यौ० [सं० गुरुगम्य] रहस्य का ज्ञान, गुरु के मार्ग से या गुरु के प्रभाव से। ~ प्रकट प्रकास ग्यान **गुरुगमि** थैं, ब्रह्म अगिनि परजारी। → सब० १५८-३, पद ३४५-१०, पद ३४२-१२।

गुवारा—संज्ञा पु० [सं० ग्वाल] ग्वाल। ~ मथुरा मरिगो कृस्न **गुवारा**, मरि मरि गए दसौ अवतारा। → र० ५४-२।

गुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठी] परामर्श; बातचीत। ~ आँधरि **गुष्टि** स्रिष्टि भौ बौरी, तीनि लोक मँह लागि ठगौरी। → र० ११-१।

गुसल—संज्ञा पु० [अ० गुस्ल] स्नान। ~ असमांन म्यांनैं लहंग दरिया **गुसल** करदः बूद। → सब० ८१-७।

गुसाँइ—संज्ञा पु० दे० 'गुसाई'।

गुसाई—संज्ञा पु०[सं० गोस्वामी] स्वामी, प्रभु, ईश्वर। ~अब न बसूँ इहि गाउँ **गुसाई**। → सब० १०-१, सा० बीन० (५६) ५-१।

गूँगा—वि० [फ़ा० गुंग] जिसे वाणी न हो, मूक, जो बोल न सके। ~ **गूँगा** ग्यान बिग्यान प्रकासै, अनहद बांनी बोलै। → सब० २८-८, पद १-२, पद ३०३-१२।

गूँगे—वि० दे० 'गूँगा'।

गूद—संज्ञा पु० [सं० गुप्त, प्रा० गुत्त] गूदा, मांस, भेजा। दे० 'गूदा'। ~ हाड़ झरी झरि **गूद** गली गल, दूध कहाँ ते आया। → सब० १७४-८।

गूदरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदड़ी] फटा वस्त्र। ~ काहू गरी **गूदरी** नांहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काहू सेज पयारा। →पद २१६-६।

गूदा—संज्ञा पु० [सं० गुप्त] मांस; भेजा। ~ एक रुधिर एकै मल मूतर, एक चांम एक **गूदा**। → सब० ५५-३।

गे—संबो० [दे०] सम्बोधन 'हे' के स्थान पर पूर्वी प्रयोग (तिरहुत में प्रचलित)। ~ ननदी **गे** तैं बिषम सोहागिनि, तैं निदले संसारा **गे**। → कहरा (३) ११-१।

गेल—क्रि० [सं० √गम्] गया। ~ बेद कितेब कीन्ह् विस्तारा, फैलि **गेल** मन अगम अपारा। → र० ५-५।

गेह—संज्ञा पु० [सं० गृह] घर। ~ बिनु जिभ्या गुन गाइया, बिनु बस्ती का **गेह**। → पद २४८-६।

गै—संज्ञा पु० [सं० गज] हाथी। ~ है **गै** वाहन सघन घन, छत्र धुजा फहराइ। → सा० साधुम० (३०) ४-१।

गैऊ—क्रि० [सं० √गम्] चला गया। ~ सुंनहि बांछा सुंनहि **गैऊ**, हाथा छाड़ि बेहाथा भैऊ। → र० १९-३।

गैल—क्रि० [भोज०] चले गए, नष्ट हो गए। ~ दाँत **गैल** मोर पान खात, केस **गैल** मोर गंग नहात। नैन **गैल**··· । → वसंत (४) ४-२, ३।

गो—क्रि० [सं० गम्] गया। ~विष अमृत **गो** एकहिं सानी, जिन जानी तिनि विषि कै मानी।→र० ११-७।

गोई—क्रि० [सं० गोपन] छिपाकर। ~ पढ़ना पढ़हु धरहु जनि **गोई**, नहिं तौ निश्चय जाहु बिगोई। → र० १७-७, कहरा (३) १-२५।

गोड़—संज्ञा पु० [प्रा० गोड] पैर। ~ **गोड़** न मूड़ न प्रान अधारा; तामँह भरमि रहा संसारा। → र० ७२-२, पद ३१८-५।

गोड़ा—संज्ञा पु० [दे०] पाया, कैंची की तरह बँधी हुई ताने के दोनों ओर की लकड़ियाँ जो ताने को रोके रहती हैं। ~ चाँद सुरुज दुइ **गोड़ा** कीन्हा, माँझ दीप माँझा कीन्हा। → सब० १२७-६।

गोता—संज्ञा पु० [सं० गोत्र] कुल, वंश। ~ नाता **गोता** कुल कुटुम सभ, इन्ह की कौन बड़ाई हो। → कहरा (३) ५-७।

गोती—वि० [सं० गोत्रीय] गोत्र वाले। ~ और सकल ए भार लदाऊ, महिषी सुत कै **गोती**। → सब० ९६-४।

गोनि—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण] रस्सी, जिसे नाव खींचने के लिए मस्तूल में बाँधते हैं। ~ गुर भौ ढील **गोनि** भै लचपचि, कहा न मानेहु मोरा हो। → कहरा (३) १-२६।

गोनि—संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] थैला। ~ नौ बहिया दस **गोनि** हो रमैया राम। → बेलि (६) १-२२।

गोबछ—संज्ञा पु० [सं० गोवत्स] गाय का बछड़ा। ~ कहैं कबीर हरि सरन गहु, **गोबछ** खुर विस्तार। → र० २०-७।

गोबर—संज्ञा पु० [सं० गोमय] गौ का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मल, मलिन । ~ **गोबर** कोट उचाए हो रमैया राम । → बेलि (६) २-७, सब० ७१-७ ।

गोबरधनधारी—संज्ञा पु० [सं० गोवर्धन-धारिन्] गोवर्धन पर्वत उठाने वाला अर्थात् श्रीकृष्ण । ~ लोग कहैं **गोबरधनधारी** । → पद २८३-१ ।

गोबरु—संज्ञा पु० दे० 'गोबर' ।

गोबरौरा—संज्ञा पु० [हि० गुबरैला] गोबर का कीड़ा । ~ राम बिना नर होइहो कैसा, बाट मांझ **गोबरौरा** जैसा । → पद २२१-५ ।

गोर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कब्र । ~ जाका बासा **गोर** मैं, सो क्यौं सोवै सुक्ख । →सा० सुमि० (२) १३-२ ।

गोरू—संज्ञा पु० [सं० गोरूप] पशु । ~हमं **गोरू** तुम गुआर गुसांई जनम जनम रखवारे । → पद २३१-७ ।

गोहराव—क्रि० [हि० गुहार] पुकारता है । ~ चेतत नाहीं बावरा, मोर मोर **गोहराव** । → र० ७८-११ ।

गोहरावा—क्रि० [हि० गोहराना] कहना, चेतावनी देना । ~ छेव परे केहु अंत न पावा, कहँहि कबीर अगमन **गोहरावा** । →ज्ञानचौं० (१) ७० ।

गोहारि—संज्ञा स्त्री० [हि० गुहार] पुकार । ~ जरत जरत से बाँचिहो, काहे न करहु **गोहारि** । → र० १३-१२ ।

गौंहनि—संज्ञा पु० दे० 'गौहनि' ।

गौ—क्रि० [सं० √गम्] चले गए । ~हिरनाकुस रावन **गौ** कंसा, कृस्न गए सुर नर मुनि वंसा । → र० ४५-१ ।

गौना—संज्ञा पु० [सं० गमन] गमन, जाने की क्रिया । ~ रहिगौ पंथ थकित भौ पौना, दसो दिसा उजारि भौ **गौना** । → र० ४५-४ ।

गौनी—क्रि० [सं० √गम्] गमन किया । ~ भाई के संग सासुर **गौनी**, सासुहि सावत दीन्हा । → पद २६०-४ ।

गौने—संज्ञा पु० [सं० गमन] गौना, द्विरागमन । ~ कहैं कबीर हम **गौने** जैबे, तरब कंत लै तूर बजाई । → पद ३१२ ८ ।

गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती । ~ ईश्वर **गौरी** पीवन लागे, राम तनीं मतवारी रे । → सब० ८७-४ ।

गौहनि—संज्ञा पु० [सं० गोधन] संग; साथ । ~ मैं सासुरे प्रिय **गौहनि** आई । →पद २३८-१, सा० बिर० (३) ३१-१ ।

ग्यारसि—संज्ञा स्त्री० [सं० एकादशी] एकादशी व्रत, महीने के दोनों पक्षों की ग्यारहवीं तिथि । ~ बाह्मन **ग्यारसि** करै चौबीसौं, काजी मांह रमजांना । → सब० २३-७, पद ३२६-४ ।

ग्रभबास—सं० पु० [सं० गर्भवास] गर्भ में । ~ **ग्रभबास** मैं सुमिरन कीन्हां सुखदेव कौंन सु माला । → पद ३१४-७ ।

ग्रहन—संज्ञा पु० [सं० ग्रहण] सूर्य-चन्द्र के मध्य में किसी दूसरे आकाशचारी पिंड की छाया पड़ना । ~ **ग्रहन** अमावस रुचि रुचि मांगहिं; कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीपकु लै कूप परहि ।→सब० ८२-६, सब० १४४-४, पद २७६-५ ।

ग्रहि—क्रि० [सं० ग्रहण] ग्रहण करना, अपनाना । ~परिहरि बकला **ग्रहि** गुन डारि, निरखि देखि निधि वार न पार । →सब० ५०-१० ।

ग्रास—संज्ञा पु० [सं०] कौर, भोजन, आहार । ~ द्वादस गम को अंतरा, तहाँ अमृत कौं **ग्रास** ।→पद ३४२-५ ।

ग्रिह—संज्ञा पु० [सं० गृह] घर, गृहस्थी । ~इक बैरागी **ग्रिह** करै, एक ग्रिही बैराग ।→सा० वेसा० (३५) २०-२, पद २९८-५, सब० ६९-३; पद २७५-३, सब ९७-३ ।

ग्रिही—संज्ञा पु० [सं० गृहिन्] गृहस्थ ।~ इक बैरागी ग्रिह करै, एक **ग्रिही** बैराग ।→सा० बेसा० (३५) २०-२ ।

ग्रेह—सं० पु० दे० 'ग्रिह' ।

ग्वाड़ा—संज्ञा पु० [सं० गोष्ठ] गाय बाँधने का स्थान, गोशाला । ~**ग्वाड़ा** मांहैं आनंद उपनौं, खूँटै दोऊ बाँधी रे । →सब० २७-६ ।

घ

घंम—संज्ञा पु० दे० 'घाम' ।

घट—संज्ञा [सं०] शरीर ।~भूलि भटकि नर फिरि **घट** आया, हो अजान सो सभन्हि गँवाया ।→र० २५-२, सब० १६६-३; सा० पर० (५) ९-१, र० ६८-४; र० ३०-९ ।

घटि—संज्ञा पु० [सं० घट] हृदय में, शरीर में । ~जिहि **घटि** प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम ।→ सा० सुमि० (५) १७-१, पद २३०-६ ।

घटि-घटि—संज्ञा पु० [सं० घट] प्रत्येक शरीर में ।~ऐसे **घटि-घटि** राम हैं, दुनिया देखैं नाँहि ।→सा० कस्तू० (५३) १-२ ।

घड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० घट] घड़ा, जलपात्र ।~सहस **घड़ी** नित उठि जल ढारै, फिर सूखे का सूखा ।→ सब० १६१-४ ।

घन—वि० [सं०] घनी, प्रचुर ।~वारह पखुरी चौविस पाता, **घन** बरोह लागे चहुँ पासा ।→सब० १९६-३ ।

घन—वि० [सं०] सघन, गहरी ।~ जावासा के रूष ज्यूं, **घन** मेहाँ कुम्हिलाइ । →सा० माया० (१६) १५-२ ।

घन—संज्ञा पु० [सं०] हथौड़ा ।~**घन** अहरन बिच लोह ज्यौं, घनी सहै सिरि चोट ।→सा० चिता० (१२) ५१-२ ।

घनाँ—वि० [सं० घन] अत्यधिक ।~जा घट जान विजान है, तिहि घटि आवटनाँ **घनां** ।→सा० साध० साषी० (२९) ८-१ ।

घना—वि० [सं० घन] अनेक, बहुत से ।~निपजी मैं साझी **घना**, बाँटे नहीं कबीर ।→सा० गुरु० (१) ३०-२ ।

घनी—वि० [सं० घन+ई० (प्रत्य०)] अधिक मात्रा में, नाना प्रकार की ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~गिरही तौ चिंता **घनी**, बैरागी तौ भीख।→सा० उप० (३४) ५-१।

घने—वि० [सं० घन] अनेक, अधिकांश। ~कबीर इस संसार में, **घने** मनुष मतिहीन।→सा० चिता० (१२) २४-१।

घनेरा—वि० [हि० घना+एरा(प्रत्य०)] अधिक, बहुत।~हाथी घोड़ा बैंल बाहनों, संग्रह किया **घनेरा**।→सब० १३४-३।

घनेरी—वि० [हिं० घना+एरा (प्रत्य०) (स्त्री० घनेरी)] अधिक।~बाबा आदम पै नजरि दिलाई, उन भी भिस्ति **घनेरी** पाई। → सब० १४१-६।

घमसांनां—संज्ञा पु० [हि० घमासान] भयङ्कर।~कोई सूर लड़ै मैदांनां, जिन मारि किया **घमसांनां**। →पद २०५-४।

घर—संज्ञा पु० [सं० गृह] १. सांसारिक घर, २. वास्तविक घर, आध्यात्मिक घर।~**घर** जारै **घर** ऊबरै, **घर** राखें **घर** जाइ।~सा० जी० मृ० (४१) ४-१, २।

घरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहिणी] पत्नी, घरवाली।~सुरपति जाय अहीलहिं छरी, सुरगुरु **घरनि** चन्द्रमै हरी। ~र० ८१-३, पद २६७-९।

घरनी—संज्ञा स्त्री० दे० 'घरनि'।

घरबारी—संज्ञा स्त्री० [हि० घरवाली] घरवाली, रखैल। ~ समधी के संग नाहीं आई, सहज भई **घर-बारी**।→पद २६०-६।

घरि—संज्ञा पु० [सं० गृह] घर में।~**घरि** परमेसुर पाहुना, सुनौ सनेही दास।~सा० निह० प० (११) १८-१।

घरिआर—संज्ञा पु० दे० 'घरियार'।

घरियार—संज्ञा पु० [हि० घड़ियाल] नक्र, ग्राह, एक विशाल हिंसक जल-जंतु। ~मच्छ कच्छ **घरियार** बियाने, रुधिर नीर जल भरिया। →सब० १७४ ६, र० ७४-६।

घसि—क्रि० [सं० घर्षण] घिस कर। ~**घसि** चंदन बनखंडि बारा, बिनु नैंननि रूप निहारा।→सब० ८-७, पद २६२-३।

घाँन—संज्ञा पु० [सं० घन=समूह] वस्तु की वह मात्रा जो एक बार डाल कर कोल्हू में पेरी या चक्की में पीसी जाती है। ~सती सूरतन साहि करि, तन मन कीया **घाँन**।→सा० सूरा० (४५) ३५-१।

घांम—संज्ञा पु० दे० 'घाम'।

घाई—संज्ञा पु० [सं० घातक] घातक। ~ऐसा **घाई** बापरा, जीवहि मारै झारि।→र० १८-६।

घाऊ—संज्ञा पु० [सं० घात] चोट, जखम।~हालै करै निसाने **घाऊ** जूझि परे तँह मनमथ राऊ। →र० ८३-५।

घाट—संज्ञा पु० [सं० घट्ट] लक्ष्य, गन्तव्य स्थान।~घट माँहैं औघट लह्या; औघट माँहैं **घाट**।→सा० पर० (५) ९-१; सा० पर० (५) २८-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घाटा—क्रि० [हि० घटना] घट गया, समाप्त हो गया।~पाथर **घाटा** लोह सब, (तब) पारस कौने काम। →सा० बिरह० (३) ८-२।

घाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० घाट से] पर्वतों के बीच का सँकरा मार्ग।~औघट **घाटी** गुर कही, तिहिं चढ़ि रहा कबीर।→सा०मधि० (३१) ५-२।

घाटे—संज्ञा पु० [हि० घाट] स्थित। ~**घाटे** बाटै सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो। → सब० १३८-३।

घात—संज्ञा पु० [सं०] वध, हत्या।~ जाकै पाइं जगत सभ लागै, सो पंडित जिउ **घात** करै।→सब० ८२-४।

घात—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई कार्य करने के लिए सुयोग, सुअवसर, दाँव।~इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अबकी **घात**।→सा० चिता० (१२) २६-२।

घाता—क्रि० [सं० घात] प्रहार करना। ~कर गहि केस करै जो **घाता**, तऊ न हेत उतारै माता। →पद ३३३-४।

घानि—संज्ञा स्त्री० [सं० घन] घानी। दे० 'घाँन'।~कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला **घानि**।→ सा० माया (१६) ८-१।

घाम—संज्ञा पु० [सं० घर्म] धूप, घाम, यहाँ तात्पर्य है—दिन।~नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस **घाम**।→ सा० बिर० (३) २४-१, सब० ४३-१५, सब० १४०-१३; कहरा (३) १-१२, सा० मधि० (३१) ४-२।

घाला—क्रि० [सं० घटन] डाल दिया। ~कबीर माया मोहिनी, सब जग **घाला** घानि।→सा० माया० (१६) ८-१।

घालि—क्रि० [हि० घालना] डालकर। ~ **घालि** जनेऊ ब्राह्मन होता, मेहरिहिं का पहिराया। → सब० ७६-७; पद २४४-६।

घालि—क्रि० [हि०] नष्ट कर देना, काट डालना।~रांम छांडौं तौ मेरे गुरहिं गारि, मोकउँ **घालि** जारि भावै मारि डारि।→सब० १५६-८।

घालि—क्रि० [सं० घटन] डालकर; मिलाकर।~**घालि** रसरिया जब जम खैंचै, तब का पति रहै तुम्हारी। →सब० १०४-६, सब० १८४-५।

घाले—क्रि० [हि० घालना] मारे हुए। ~अति अभिमान लोभ के **घाले**; चले अपनपौ खोइ।→सब० ७३-४।

घालैं—क्रि० [सं० घटन] नष्ट करता है।~जीव मारि जीवहिं प्रतिपालै; देखत जन्म आपनो घालै। → र० ८३-४, सब० ८-५।

घालै—क्रि० [सं० घटन] डालती है, पैदा कर देती है।~हरि बिचि **घालै** अन्तरा, माया बड़ी बिसास।→सा० माया० (१६) ५-२।

घाल्या—क्रि० [सं० घटन] मिटा दिया। ~कबीर केसौ की दया, संसा **घाल्या** खोइ।→सा० उप० (५०) ११-१।

घाल्या—क्रि० [सं० घालन] डालना; रखना। ~कौली **घाल्या** बीडरि चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै। →सब० २७-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घाल्यौ—क्रि० [सं० घटन] नष्ट करना। ~प्रगटी बास वासना धोइ, कुल प्रगट्यौ कुल **घाल्यौ** खोइ।→सब० ४७-५।

घाव—संज्ञा पु० [सं० घात] चोट।~गगन दमामाँ बाजिया, परा निसानैं **घाव**।→सा० सूरा० (४५) ६-१।

घिन—संज्ञा स्त्री [सं० घृणा] घृणा। ~जाकौ यहु जग **घिन** कर चालै, ता प्रसाद निस्तरिया। →सब० ३२-८।

घींन—वि० [सं० घृणित] दे० 'घीन'।

घीन—वि० [सं० घृणित] घृणित।~ अपने ऊँच नीच घर भोजन, **घीन** कर्म करि उदर भरै।→पद २७६-४, सब० ८२-५।

घुरड़ि—क्रि० [सं० घूर्णन] उस्तरे से घुटाकर।~भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ।→सा० भेष० (२४) ११-२।

घुराऊँ—क्रि० [हिं०] वजाऊँ।~रिपु कै दल मैं सहजहिं रौंदौं अनहद तबल **घुराऊँ** जी।→पद ३०७-७।

घूर—संज्ञा पु० [सं० कूट] कूड़े का ढेर।~हाड़ गोड़ लैं **घूर** पँवारिन, आगि धुँवाँ नहिं खाई। →पद ३१८-५।

घूरि-घूरि—वि० [हि० घोर] अत्यधिक। ~**घूरि-घूरि** वरखा बरसावै, परिया बूंद न पानी।→पद १६६-२।

घेरा—संज्ञा पु० [हि०] बंधन।~कहैं कबीर सुनो हो संतो, कठिन काल का **घेरा**।→सब० १८०-४।

घेरिन—क्रि० [हि०] घेर लेना।~ दसहुँ दिसा वाके फंद हैं, जिव **घेरिन** आना।→सब० १३५-४।

घोंटि—संज्ञा स्त्री० [सं० घुट्टी] घुट्टी। ~ते नर कहहु कहाँ गए, जिन्हहिं दीन्ह गुर **घोंटि**।→र० ३६-५।

घोर—संज्ञा पु० दे० 'घोरा'।

घोरा—संज्ञा पु० [सं० घोटक] घोड़ा, अश्व।~**घोरा** घोरी कीन्ह बटोरा, गाँव पाय जस चले करोरा।→र० ६६-८, कहरा (३) १-२७।

घोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा +ई (प्रत्य०)] घोड़ी। ~घोरा **घोरी** कीन्ह बटोरा, गाँव पाय जस चले करोरा।→र० ६६-८।

च

चंगे—वि० [सं० चंग] अच्छा, खासा, निर्मल।~उस **चंगे** दीवान मैं, पला न पकड़ै कोइ। →सा० साँच (२२) २-२।

चंचु—संज्ञा पु० [सं०] चोंच।~मुकताहल बिनु **चंचु** न लावै, मौनि गहै कै हरि गुन गावै। →पद ३३४-४।

चंदा—संज्ञा पु० [सं० चन्द्र] चन्द्रमा।~ बिनु **चंदा** उजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजरि परै। →पद २४६-४।

चंद्रबदनि—वि० [हि० चन्द्रवदनी] चन्द्रमा के समान मुख वाली। ~ **चंद्रबदनि** मृगलोचनि माया, बुंदका दियो उधार। →चाँचर (५) १-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंपा—संज्ञा पु० [सं० चंपक] मझोले कद का एक पेड़ जिसमें हलके पीले रंग के कड़ी महक के फूल लगते हैं। ~दौना मरुआ **चंपा** कै फूला, मानहुँ जीव कोटि सम तूला।→र० ३०-४।

चंपै—क्रि [सं०√चप्] चाँपना; दबा कर रखना।~आगि कहै दाझै नहीं, जे नहिं **चंपै** पाँइ। →सा० विचार० (३३) २-१।

चउका—संज्ञा पु० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] रसोई घर। ~ गोबरु जूठा **चउका** जूठा, जूठै दीनीं कारा। →सब० ७१-७।

चउबारे—संज्ञा पु० [हि० चौ+बार] खुला कमरा, बँगला। ~ पवन कोटि **चउबारे** फिरहिं, बासिग कोटि सेज बिसतरहिं। →सब० १२८-७।

चकई—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रवाक+ई०] मादा चकवा। ~ **चकई** बिछुरी रैनि की, आइ मिली परभाति। → सा० विर० (३) ३-१।

चकमक—संज्ञा पु० [तु०] एक प्रकार का पत्थर जिस पर आघात करने से आग निकलती है।~चित **चकमक** लागै नहीं, ताथै धूवाँ ह्वै ह्वै जाइ। →साध सा० (२९) १९-२।

चकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री] चक्की।~दुइ **चकरी** जनि दरर पसारहु, तब पैहौ ठिक ठौरा हो।→ कहरा (३) २-१३।

चकवै—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] चक्रवर्ती राजा।~सब **चकवै** बित धरनि समाना, एको जीव परतीत न माना। →र० ४७-५; वसंत (४) ९-४।

चखियौ—क्रि० [सं० चष] चखा, रसास्वाद लिया।~अंन पान जहाँ जरै, तहाँ तैं अनल न **चखियौ**। →सा० वेसा० (३५) १-४, सा० सुमि० (२) १८-१।

चढ़त-चढ़ावत—क्रि० [हि० चढ़ना+ चढ़ाना] प्राणायाम करना, प्राण को चढ़ाना।~**चढ़त-चढ़ावत** भँड़हर फोरी, मन नहिं जानै केकर चोरी। →र० ५९-१।

चतुरगुन—वि० [सं० चतुर्+गुण] चौगुना, सब प्रकार से। ~ जीव सीव का आहि नसौना, चारिउ वेद **चतुरगुन** मौना। →र० ३०-२।

चतुरभुज—संज्ञा पु० [सं० चतुर्भुज] विष्णु। ~ चतुराई न **चतुरभुज** पइऐ। →सब० १०१-१।

चतुरा—वि० [सं० चतुर] चतुर, होशियार।~**चतुरा** झूलहि चतुराइया झूलहि राजा सेस। →हिंडोला (८) ३-३।

चतुराइया—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर+ हि० आई (प्रत्य०)] चतुराई में।~ चतुरा झूलहि **चतुराइया** झूलहि राजा सेस। →हिंडोला (८) ३-३।

चपल—वि० [सं०] चंचल।~मेरी **चपल** बुद्धि सौं कहा बसाइ। →पद २२४-२।

चपेटसी—क्रि० [हि० चपेटना] धर कर दबोचना।~घोरे बैठि **चपेटसी**, यों ले वूड़ैं ग्यान। →सा०असा० (२७) २-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चपेटै—क्रि० [हि० चपेटना] दबाती है। ~दुर्मति केर दोहागिनि भेटै, ढोटहि चाँप **चपेटै**। →पद २६६-५।

चबैना—संज्ञा पु० [सं० चर्वण] भोजन, ग्रास। ~खलक **चबैना** काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद। →सा० काल० (४६) १-२।

चमंकि—क्रि० [हि० चमकना] चमकी, प्रकाशित हुई। ~बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि **चमंकि**। →सा० गुरु० (१) २५-१।

चमंकिया—क्रि० [हि० चमक] चमक गया, तप्त हो गया। ~कबीर चित्त **चमंकिया**, चहुँ दिस लागी लाइ। → सा० सुमि० (२) ३२-१; सा० साँच० (२२) ३-१।

चमरख—संज्ञा स्त्री० [हि० चाम+सं० रक्षा] चमड़े के टुकड़े, जिनमें से होकर तकुआ घूमता है। ~ चारि खूँटी दोइ **चमरख** लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई। →पद २१५-३।

चर—वि० [सं०] चेतन, जंगम। ~रवि के उदै तार भौ छीना, **चर** बीहर दोनों मँह लीना। →र० २६-५।

चरई—संज्ञा स्त्री [दे०] तार की खूँटी। ~जिभ्या तार नासिका **चरई**, माया मोम लगाया। →सब० १०६-५।

चरखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चर्ख] चर्खी। ~ताना तनै को अहुठा लीन्हा **चरखी** चारो वेदा। →सब० १२७-२।

चरनौं—संज्ञा पु० [सं० चरण] चरणों में। ~हरि **चरनौं** चित राखिए, तौ अमरापुर होइ। →सा० भेष० (२४) ६-२।

चराएहु—क्रि० [हि० चराना] चराया, भोजन दिया। ~कबहुँ न पार उतारि **चराएहु** कैसे खसम हमारे। →पद २३१-८।

चरिन्दा—संज्ञा पु० [फ़ा०] चरने वाला। ~कामिनि रूपी सकल कबीरा, मृगा **चरिन्दा** होई। →सब० ६४-७।

चलत—वि० [हि०] चञ्चल। ~**चलत** मनसा अचल कीन्हीं मांहि मन पंगी। →पद ३२८-७।

चल्यौ हाथ झारि—[मुहा०] हाथ झाड़ कर चलना, हाथ खाली हो जाना। ~तीनि जगाती करत रारि, **चल्यौ** बनिजारा **हाथ झारि**। →पद २३६-६।

चषि—क्रि० [सं० चष] चखकर। ~कबीर प्रेम न चाषिया, **चषि** न लीया साव। →सा० सुमि० (२) १८-१।

चसम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] नेत्र, आँख। दे० 'चसम'। ~काजल टीकि **चसम** मटकावै कसि कसि बाँधै गाढ़ी। →पद ३१३-३।

चसमैं—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] आँख, नेत्र। दे० 'चसम'। ~करि फिकिर दाइम लाइ **चसमैं** जहाँ तहाँ मौजूद। →सब० १८१-८।

चाँणक—संज्ञा पु० [सं० चाणक्य] ई० पू० चौथी शताब्दी के राजनीति के एक आचार्य, जो पाटलिपुत्र के सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु और मंत्री थे। ये परम चतुर थे। उन्हीं के नाम के आधार पर यह शब्द बना है। भाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है—चातुर्य, चतुराई। → सा० चाँणक० (१७)।

चाँद—संज्ञा पु० [सं० चंद्र] चंद्रमा; चंद्र नाड़ी, इड़ा, बायीं नाड़ी।~सूर समाना **चाँद** मैं, दुहूँ किया घर एक। →सा० पर० (५) १०-१।

चाँदना—संज्ञा पु० दे० 'चाँदिना'।

चाँदिना—संज्ञा स्त्री० [हि० चाँद] चाँदनी, प्रकाश। ~ चाँद बिहूना **चाँदिना**, अलख निरंजन राइ। → सा० पर० (५) १५-२, सा० गुरु० (१) १७-२।

चाँप—संज्ञा स्त्री० [सं० √ चप्] दबाव। ~दुर्मति केर दोहागिनि भेटै, ढोटहि **चाँप** चपेटै। →पद २६६-५।

चाँपिहि—क्रि० [हि० चाँपना] पीस डालेंगे।~तर ऊपर धै **चाँपिहि**, जस कोल्हु कोटि पचास। →र० १७-६।

चाँम—संज्ञा पु० [सं० चर्म] चमड़ा, व्याघ्र चर्म या मृगछाला। ~का नांगे का बाँधें **चाँम**। →सब० ७७-१, सब० ५५-३, सा० चिता० (१२) ११-१; सा० अपा० (४८) ५-२।

चाइ—संज्ञा स्त्री० [हि० चाह] इच्छा; लालसा। दे० 'चाव'।~राम नाँम चीन्है नहीं, पीतलि ही कै **चाइ**। → सा० चाँण० (१७) ५-२।

चाक—संज्ञा पु० दे० 'चाकि'।

चाकि—संज्ञा पु० [सं० चक्र] कील पर घूमता हुआ मंडलाकार पत्थर, जिस पर मिट्टी का लोंदा रखकर कुंभार बर्तन बनाते हैं, चाक। ~पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़िहै **चाकि**। →सा० रस० (६) १-२; विप्र० (२) २४।

चाख—क्रि० [सं० चष्] चखना, स्वाद लेना।~जब लग सिर सौंपे नहीं, **चाख** सकै नहिं कोइ। →सा० सूर० (४५) १८-२।

चाखिया—क्रि० [हि० चखना] चखता है।~जिनि यह अमृत **चाखिया**, सो ठाकुर हँम दास। →पद ३४२-६।

चाखुर—संज्ञा पु० [दे०] हेंगा, भूमि को समतल करने वाला पट्टा।~बनकि भलुइया **चाखुर** फेरै, छागर भये किसाना। →सब० १५५-३।

चाखे—क्रि० [हि० चखना] स्वाद लेना। ~फ फा फल लागे बड़ दूरी, **चाखे** सतगुरु देइ न तूरी। → ज्ञान चौं० (१) ३८।

चाटक—संज्ञा पु० [सं० चेटक] जादू। ~ हरिबाजी सुर नर मुनि जहंडे, माया **चाटक** लाया। →सब १८-३।

चात्रिग—संज्ञा पु० [सं० चातक] चातक।~रांमहि रांम रटौ **चात्रिग** ज्यौं निहचै भगति निवासा। →पद २०८-८।

चाबुक—संज्ञा पु० [फ़ा०] कोड़ा।~ सहज पलांन चित कै **चाबुक** लौ की लगांम लगाऊँ जी। →पद ३०७-३।

चारन—संज्ञा पु० [सं० चारण] चारण, भाट, प्रशस्ति गायक।~मड़ए के **चारन** समधी दीन्हा, पुत्र बिबाहल माता। →सब० ३६-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारा—संज्ञा पु० [सं० √चर्] भोजन, खाद्य पदार्थ। ~कीर भए सब जीयरा लिए विख कर **चारा**। → पद ३१६-७।

चाल—संज्ञा स्त्री०[सं०√चल] आचरण करना।~जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै **चाल**। →सा० कर० वि० क० (१८) २-१।

चालनहार—क्रि० वि० [सं० √चल्+हार] चलने वाले, मृत्यु के निकट। ~जिनि हम जाए ते मुए, हम भी **चालनहार**। →सा० काल० (४६) ३२-१।

चालनां—क्रि० [सं० √चल्] चलना है, जाना है।~जिहि पंथा तोहि **चालनां**, सोई पंथ सँवारि। →सा० चिता० (१२) १४-२।

चाला—क्रि० [सं० √चल्] चलते हुए जाना।~कबीर **चाला** जाइ था, आगैं मिला खुदाइ। →सा० साध० सा० (२६) २१-१।

चालि—क्रि० [सं० √चल्] चला गया; बह गया।~डूँगरि बूठा मेह ज्यूँ, गया निवाँणा **चालि**। →सा० मन० (१३) २२-२।

चाली—क्रि० [सं०√चल्] गयी, चली। ~दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न **चाली** साथि। →सा० चिता० (१२) ४३-१।

चालै—क्रि० [हिं० चलना] चलता है। ~बिनु जिभ्या गावै गुन रसाल, बिनु चरनन **चालै** अधर चाल। → पद २२५-३, पद ३२३-६।

चालै—क्रि० [सं०√चल्] आचरण करना।~जैसी मुख तैं नीकसै तैसी चालै **चाल**। → सा० कर० बि० क० (१८) २-१; ३-१।

चाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह] इच्छा, उत्कंठा, लालसा।~खेत बुहारा सूरिवाँ, मुझ मरने का **चाव**। →सा० सूरा० (४५) ६-२, चाँचर (५) १-१०, वसंत (४) १-७।

चाषि—क्रि० [सं०√चष्] चखकर, स्वाद लेकर।~इहि चिति **चाषि** सबै रस दीठा, राम नाम सा और न मीठा।→सब० १४-३।

चाषिया—क्रि० दे० 'चखियौ'।

चितवै—क्रि० [सं० चिन्ता] चिन्ता करता है।~कबीर का तूँ **चितवै**, का तेरे चिंते होइ।→सा० बेसा० (३५) ६-१।

चिंता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिंतन, स्मरण, ध्यान, ख्याल, अभिलाषा।~ **चिंता** तौ हरि नाँव की, और न चितवै दास।→सा०सुमि० (२) ६-१, सा० बेसा० (३५) ५-२, सब० १४६-८।

चिंतामणि—संज्ञा पु० [सं०] वह मणि जिसके पास रहने से समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। ~**चिंतामणि** क्यूँ पाइए ठोली, मन दे रांम लियौ निरमोली। → सब० ३१-४, पद २५१-२, सा० बेसा० (३५) ५-१; सब० १४६-७।

चिंतामनि—संज्ञा पु० दे० 'चिंतामणि'।

चिंते—क्रि० [सं० चिन्ता या चिन्तन] चिंतन करने से। ~ कबीर का तूँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिंतवै, का तेरे **चिंते** होइ। सा० बेसा० (३५) ६-१।

चिकनिया—वि० [सं० चिक्कण, हि० चिकना + इया (प्रत्य०)] छैला, विलासी। ~ चतुर **चिकनिया** चुनि चुन मारे कोई न छांड़ा नेरै। →पद २४४-२।

चिगवा—संज्ञा स्त्री० [दे०] नालिका, नली।~चंद सूर दोइ भाठी कीन्हीं, सुषमनि **चिगवा** लागी रे। →सब० ८७-५।

चिगाई—क्रि० [हि०] बनाई, तैयार की। ~ दोइ पुड़ जोरि **चिगाई** भाठी, चुआ महारस भारी । → सब० ३५-५।

चिजारा—संज्ञा पु० दे० 'चेजारा'।

चिड़ा—संज्ञा पु० [सं० चटक] गौरा पक्षी, गौरैया का नर।~काल सचांनां नर **चिड़ा** औझड़ औचिंताह।→सा० काल० (४६) २-२।

चित—संज्ञा पु० [सं० चित्त] चित्त, मन। ~ **चित** चरणूं मैं चुभि रहा, तब न काल का बान।→सा० सजी० (४७) ५-२।

चितरनहारा—संज्ञा पु० [हि०] चित्रकार, रचने वाला। अंबर मद्धे दीसै तारा, कौन चतुर ऐसा **चितरनहारा**। → सब० ७४-३।

चितवै—क्रि० [हि०] चिंतन करना, स्मरण करना। ~ चिंता तौ हरि नाँव की, और न **चितवै** दास। →सा० सुमि० (२) ६-१।

चितावणी—संज्ञा स्त्री [हि० चेतावनी] सचेत करने की क्रिया।→सा० चिता० (१२)।

चिति—संज्ञा पु० [सं० चित्त] चित्त में। ~इहि **चिति** चाषि सबै रस दीठा, राम नाम सा और न मीठा।→सब० १४-३।

चितेला—संज्ञा पु० [हि० चित्रकार] चित्रकार। ~जिन्ह यह चित्र विचित्र उखेला, चित्र छोड़ि तैं चेतु **चितेला**। → ज्ञान चौं० (१) १४।

चित्र—संज्ञा पु० [सं०] संसार के पदार्थ (चित्र), तस्वीर।~च चा **चित्र** रचो बहु भारी, **चित्र** छाड़ि तैं चेतु चित्रकारी। जिन्ह यह **चित्र विचित्र** उखेला, **चित्र** छोड़ि तैं चेतु चितेला। → ज्ञान चौं० (१) १३, १४।

चित्रकारी—संज्ञा पु० [हि० चित्रकार] चित्र बनाने वाला, निर्माता, प्रभु। ~ च चा चित्र रचौ बहुभारी, चित्र छाड़ि तैं चेतु **चित्रकारी**। →ज्ञान चौं० (१) १३।

चित्री—वि० [सं० चित्रित] चित्रित, सुसज्जित।~ कबीर ऊँचा धौलहर, माँटी **चित्री** पौलि। → सा० काल० (४६) १८-१।

चिनाऊँ—क्रि० [सं०√चि] बनवाऊँ।~ काहे कूँ मंदिर महल **चिनाऊँ**, मुँवां पीछ घड़ी एक रहन न पाऊँ।→ सब० ८०-२।

चिनि गया—क्रि० [हि० चुनना + सं० √गम्] चुन गया।~कोई चेजारा **चिनि गया**, मिला न दूजी बार।→ सा० चिन्ता (१२) १७-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिन्हारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्हार+ई (प्रत्य०)] जान-पहचान, परिचय ।~अनचिन्ह रहेउ न कियेहु **चिन्हारी** सो कैसे पहिचानै हो । → कहरा (३) १-१५ ।

चिमिकि—क्रि० [हिं० चमकना] चमक कर ।~**चिमिकि चिमिकि** चिमिकै दृग दुहु दिस, अर्ब रहा छिरिआई । →पद २६५-३ ।

चिरकुट—संज्ञा पु० [सं० चीर+√कुट्ट] फटा वस्त्र । ~ **चिरकुट** फाड़ि चुहाड़ा लै गयौ तनी तागरी छूटी । →पद २१६-१० ।

चिराक—संज्ञा पु० [फ़ा० चिराग] दीपक, प्रकाश । ~ कोटि चन्द्रमां करहिं **चिराक**, सुर तैंतीसउ जेवहिं पाक । →सब० १२८-५ ।

चिलकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] उतार-चढ़ाव, उत्तेजना । ~ना मैं बालक बूढ़ो नाहीं, ना मोरे **चिलकाई** हो । →कहरा (३) १०-६ ।

चिलकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] आभा, चमक, युवावस्था । ~नां हम बार बूढ़ नांही हम ना हमरै **चिलकाई** हो । →पद २३७-४ ।

चीता—संज्ञा पु० [सं० चित्त] चित्त । दे० 'चित' ।~वैरी उलटि भए हैं मीता, साकत उलटि सजन भए **चीता** ।→ सब० २०-५ ।

चीनिऐ—क्रि० [हिं० चीन्हना] पहचानिए ।~आपा पर सम चीनिऐ तब मिलै आतमांराम । → पद ३१७-८ ।

चीन्ह—क्रि० [हिं० चिह्न] पहचानो । ~ **चीन्ह चीन्ह** का गावहु बौरे, बानी परी न **चीन्ह** ।→ र० ४-६ ।

चीन्हसि—क्रि० [सं० चिह्न] पहचाना । ~जौ नहिं **चीन्हसि** आतमरांम ।→ सब० ७७-२ ।

चीन्हिया—क्रि० [सं० चिह्न] पहचानना ।~आपा पर जब **चीन्हिया**, (तब) उलटि समाना माँहि ।→ सा० विचा० (३३) ३-२ ।

चीसा—क्रि० [सं० चीत्कार] चीखकर, चिग्घाड़ कर ।~भाग्यौ हस्ती **चीसा** मारी, या मूरति की हौं बलिहारी । → पद ४२-४ ।

चुआ—क्रि० [सं० च्यवन] टपका, बूँद-बूँद कर गिरा ।~दोइ पुड़ जोरि चिगाई भाठी; **चुआ** महारस भारी । →सब० ३५-५ ।

चुकाव—संज्ञा पु० [हिं०] मुक्ति । ~ अबकी बार जो होय **चुकाव**, कहहिं कबीर ताको पूर दाँव । → वसंत (४) ७-१० ।

चुगते—क्रि० [सं०√चि के चुनते रूप से] पक्षियों द्वारा चोंच से दाना उठाकर खाना, चुगना ।~जेहि सरवर बिच मोतिया **चुगते**, बहुविधि केलि कराय । →पद ३२२-२ ।

चुनिया—क्रि० [सं०√चि के 'चुनते' रूप से] जोड़ाई होती है, (भवन) बनाए जाते हैं ।~जो **चुनिया** सो ढहि पड़ैं, जन्मे सो मरि जाय ।→सा० काल० (४६) ११-२ ।

चुभि—क्रि० [सं० चुम्ब] चुभ जाना;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धँस जाना, अनुरक्त हो जाना।~ चित चरणूँ मैं **चुभि** रहा, तब न काल का बान।→ सा० सजी० (४७) ५-२।

चुरुआ—संज्ञा पु० [सं० चुल्लु] चुल्लू भर।~आप न देही **चुरुआ** पांनी, तिहि निंदहिं जिन गंगा आंनीं।→ सब० ५८-४।

चुवत—क्रि०[हि० चूना] टपकती है।~ मूंदे मदन काटि कर्म कस्मल, संतत **चुवत** अगारी।→पद ३०३-४।

चुवाई—क्रि० दे० 'चुवावा'।

चुवावा—क्रि० [हि० चूना का सं० रूप] टपकाया। ~बहुत मोलि महँगे गुड़ पावा, लै कसाव रस राँम **चुवावा**। →सब० १०८-३, पद २०१-६।

चुहाड़ा—संज्ञा पु० [दे०] भंगी, मेहतर, चांडाल।~चिरकुट फाड़ि **चुहाड़ा** लै गयौ तनी तागरी छूटी। → पद २१६-१०।

चूँगी--संज्ञा स्त्री० [दे०] रस टपकाने की नली।~गगन ही भाठी सींगी करि **चूँगी**, कनक कलस एक पावा।→ सब० ११२-५।

चूक—संज्ञा स्त्री० [सं० च्युतक, प्रा० चुक्क] भूल, त्रुटि।~सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिष ही माँहै **चूक**।→ सा० गुरु० (१) २१-१।

चूका—क्रि० [सं० च्युतक >प्रा० चुक्क] समाप्त हो गया।~कोई ले भरि सकै न मूका, औरन पहिं जांनां **चूका**।→सब० ८-४।

चूकोले—क्रि० [हि० चुकना] समाप्त कर दे।~**चूकीले** मोह पियासं, तहाँ ससिहर सूर गरासं। → सब० १७१-७।

चूके—क्रि० [हि० चूक] समाप्त हो गए। ~जे थे सचल अचल ह्वै थाके, **चूके** बाद बिबादा। → सब० १५-७।

चून—संज्ञा पु०[सं० चूर्ण] आटा, चूनी। ~मोट **चून** मैदा भया, बैठि कबीरा जीम।→सा०मधि०(३१) १०-२।

चूर—संज्ञा पु० [सं० चूर्ण] चूर्ण। ~ चंदन **चूर** चतुर सभ लेपहिं, गरे गजमुकुता हारा हो। → कहरा (३) ६-५।

चूरा—संज्ञा पु० [सं० चूड़ा] चूड़ी, हाथ का आभूषण।~का **चूरा** पाइल झमकाए, कहा भयो बिछुवा ठमकाए। → सब १३०-३।

चूरा—क्रि० [सं० चूर्ण] विचूर्ण होना, नष्ट होना।~आवागवन होत है फुनि फुनि, तापर संग न **चूरा**।→ सब० ६८-६।

चूषै—क्रि० [सं०चूषण] चूसती है।~ सुरही **चूषै** बछतलि,बछा दूध उतारै। →सब० ५१-७।

चेजारा—संज्ञा पु० [फ़ा० चीदन] कारीगर।~कोई **चेजारा** चिनि गया, मिला न दूजी बार।→सा० चिता० (१२) १७-२, १८-२।

चेटक—संज्ञा पु० [सं०] जादू, कलाबाजी।~नाटक **चेटक** भैरौं कलुवा, इनमैं जोग न होई।→सब० ३३-६।

चेत—वि० [सं०] ज्ञानी~कहँ लगि कहौं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अचेतहि गैऊ, **चेत** अचेत झगर एक भैऊ। → र० ४७-६।

चेतत—संज्ञा पु० [हि०] अन्तरात्मा। ~**चेतत** रावल पावन खेड़ा, सहजै मूलहि बांधै।→सव० ६५-३।

चेतन—संज्ञा पु० [सं०] जीवात्मा।~ कवीर घोड़ा प्रेम का, **चेतन** चढ़ि असवार।→सा० सूरा० (४५) २७-१।

चेतनि—संज्ञा पु० [सं० चेतन] चैतन्य स्वरूप, आत्मतत्त्व।~बसै गगन मैं दुनीं न देखै, **चेतनि** चौकी बैठा।→ सव० ३४-३।

चेतनि—वि० [सं० सचेतन] सचेत होकर, सावधान होकर।~कोई एक राखै सावधान, **चेतनि** पहरैं जागि।→सा० उप० (३४) १०-१।

चेतनि—संज्ञा स्त्री० [सं० चेतना] ज्ञान। ~**चेतनि** चौकी बैंसि करि, सतगुरु दीन्ही धीर। → सा० गुरु० (१) २३-१।

चेतनि—संज्ञा पु० [सं० चेतन] चैतन्य ब्रह्म। ~चित **चेतनि** मैं गरक ह्वै, चेति न देखै मंत।→सा० विर्क० (३७) ५-१।

चेतवा—क्रि० [हि० चेत] होश में आना, सावधान होना।~**चेतवा** है तौ चेतहु, नहिं दिवसु परतु है धार। →र० ४४-५।

चेता—वि० [हि० चेतना] चाहा हुआ, वांछित।~मन का **चेता** तव भया, कछू पूरवला लेख।→सा० पर० (५) १०-२।

चेति—क्रि० [सं० चेतन] चेतकर, सावधान होकर।~चित चेतनि मैं गरक ह्वै; **चेति** न देखै मंत। → सा० विर्क० (३७) ५-१।

चेति—क्रि० [सं० चिंतन] सावधानी से, समझ कर। ~ बाजीगरी संसार कबीरा, **चेति** ढारि पासा।→सब० १७५-८।

चेतु—क्रि० [सं० चिंतन] सावधान हो जाओ।~हंसा हो चित **चेतु** सबेरा, इन्ह परपंच करल बहुतेरा → पद ३२४-१।

चेतु—क्रि० [सं० चिंतन] चिंतन करो; ध्यान करो। ~ जिन्ह यह चित्र विचित्र उखेला, चित्र छोड़ि तैं **चेतु** चितेला। →ज्ञान चौं० (१) १४।

चेतैं—क्रि० [सं० चिंतन] विचार करना। ~काल फाँस न मुगध **चेतैं** कनक कांमिनी लागि। → सब० १८७-६।

चेत्या—क्रि० [हि० चेत] सावधान हुआ, विचार किया। ~ इहि औसरि **चेत्या** नहीं, चूका अबकी बात। →सा० चिता० (१२) २९-२।

चेरा—संज्ञा पु० [सं० चेलक] चेला, शिष्य। ~ कबीर **चेरा** संत का, दासनि का परदास।→सा०जी० मृ० (४१) १३-१।

चेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटी] दासी।~ कहै कबीर राजा रांम भजन सौं नव निधि होइगी **चेरी**।→सब० १६०-७, पद २४४-७।

चेली—संज्ञा स्त्री० [सं० चेलक से]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिष्या ।~ब्रांह्मन कै घरि ब्रांह्मनि होती, जोगी कै घरि **चेली** ।→सब० २६-५ ।

चोंगी—संज्ञा स्त्री० [दे०] नली ।~भाठी गगन सींगी करि **चोंगी** कनक कलस इक पावा ।→पद २५०-५ ।

चोआ—संज्ञा पु० [हि० चुआना] एक सुगन्धित द्रव पदार्थ, जो कई गंध द्रव्यों को एक साथ मिलाकर उसका रस टपकाने से तैयार होता है ।~ **चोआ** चंदन मरदन अंगा, सो तनु जलै काठ कै संगा ।→पद २७६-५; वसंत (४) ११-२ ।

चोख—वि० [सं० चोक्ष, प्रा० चोक्ख] फुर्ती से, वेग से ।~बैठा रहै चलन यह **चोख** ।→सब० १६७-१० ।

चोखी—संज्ञा स्त्री० [हि०] तले-भुने पदार्थ ।~एक तौ पड़े धरनि पर लोटैं, एक कहैं **चोखी** दे माई ।→ सब० १२०-६ ।

चोखै—वि० [सं० चोक्ष] शुद्ध, उत्तम, श्रेष्ठ । ~आज बसौ मन मंदिर **चोख**, कहै कबीर परहु मति धोखै । →सब० ६-५ ।

चोघतां—क्रि० [सं० √चिं] चुगते हुए । ~कबीर टुक-टुक **चोघतां**, पल पल गई बिहाइ ।→ सा० काल० (४६) ७-२ ।

चोटा—संज्ञा स्त्री० [सं०√चुट्] चोट, मार, मुंह की खाना ।~सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं तौ मुखि **चोटा** खाइगा ।→पद २७४-६ ।

चोरियाँ—क्रि० [हि० चोरी] छिपाता है, दुराव करता है । ~ साँई सेती **चोरियाँ**, चोरों सेती गुज्झ ।→सा० साँच० (२२) १०.१ ।

चोल—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजीठ, एक प्रकार की लता जिसकी जड़ व डंठलों को उबाल कर लाल रंग निकाला जाता है । ~ पांसि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी **चोल** । →सा० गुरु० (१) २४-२ ।

चोलना—संज्ञा पु० [सं० चोल] एक प्रकार का पर्याप्त लम्बा और ढीला कुर्त्ता जिसे प्रायः साधु पहनते हैं, चोला ।~कांम **चोलना** भया पुरांना गया भरम सभ छूटी । →सब० १५-४ ।

चोला—संज्ञा पु० [सं० चोल] वस्त्र । ~सहज सिंगार प्रेम का **चोला** सुरति निरति भरि आनी । →सब० १७६-३, सब० १२५-२ ।

चोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की डिबिया । ~चंदन भागां गुन करै, जैसे **चोली** पंन । →सा० बिर्क० (३७) ३-१ ।

चोवा—संज्ञा पु० दे० 'चोआ' ।

चौक—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्क] चौकोर भूमि ।~दुलहिन लीपि **चौक** बैठारे, निरभय पद परगाता । →सब० ३६-४ ।

चौकै—संज्ञा पु० [सं० चतुष्क] मंगल के अवसर पर पूजन के लिए आटा और अबीर की रेखाओं से बना चौकोर क्षेत्र, वेदी । ~ पूरि सुहाग भयौ बिनु दूलह **चौकै** राँड भई संग सांई । → पद २३८-६ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चौकै रांड भई—[मुहा०] भाँवर पड़ते ही विधवा हो गई।~पूरि सुहाग भयौ बिनु दूलह **चौकै रांड भई** संग सांई। →पद २३८-६।

चौज—संज्ञा पु० [?] आनंद, मनो-विनोद करने वाली चमत्कारपूर्ण उक्ति।~कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस **चौज**। →सा० चिता० (१२) ३५-१।

चौड़ै—संज्ञा पु० [सं० चुंटा] अनाज रखने का गड्ढा। ~चींटी परबत उखारिया, लै राख्यौ **चौड़ै**। → सब० ५१-५।

चौथे पद—संज्ञा पु० [सं० चतुर्थ+पद] तुरीयावस्था, तुरीय [चतुर+ईयट् (प्रत्य०)]।~कहै कबीर हमरा गोबिन्द, **चौथे पद** महिं जन की जिंद। →सब० ४२-१०।

चौधरी—संज्ञा पु० [हि० चतुर+धर] मुखिया, अगुआ; मालिक।~चौदह भुवन **चौधरी** मरिहै काकी धरिऐ आसा। →पद २६३-६।

चौपड़ि—संज्ञा स्त्री० [चतुष्पट] चौसर, एक प्रकार का खेल, जो बिसात पर चार रंगों की चार-चार गोटियों और तीन पासों से दो मनुष्यों में खेला जाता है, साधना।~**चौपड़ि** माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार। →सा० गुरु० (१) ३१-१।

चौहटै—संज्ञा पु० [हि० चौ+सं०हट्ट] चौराहा, त्रिकुटी, जो दोनों भौहों के मध्य में है।~चौपड़ि माँडी **चौहटै**, अरध उरध बाजार। →सा० गुरु० (१) ३१-१।

च्यंत—संज्ञा स्त्री० [सं०चिता०] विचार, ध्यान, फिक्र।~द्वादस दल अभिअंतरि म्यंत, तहाँ प्रभू पाइसि करिलै **च्यंत**। →सब० १४०-१२, सब० ८१-२।

च्यंत—संज्ञा स्त्री० [सं० चिंता] १. ज्ञान ! २. सांसारिक चिंताएँ।~ उपजी **च्यंत च्यंत** मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसी भई। →सब० ४७-६।

च्यंति—संज्ञा स्त्री० [सं०चिन्ता] चिन्ता। ~अपनै **च्यंति** न आवई, जिनकी आदि न अंत। →सा० निन्द्या० (५४) २-२।

छ

छंछरै—क्रि० [सं० तुच्छ] खाली होना, खाली करना। ~इहि भाँति भयानक उद्र में उद्र न कबहूँ **छंछरै**। →सा० बेसा० (३५) १-५।

छकि—क्रि० [हि० छकना] तृप्त होना। ~छ छा आहि छत्रपति पासा, **छकि** किन रहै मेटि सब आसा। →ज्ञान चौं० (१) १५।

छछिहारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] छाछ को मथने वाली।~इला पिंगुला सुख-मन नारी, बेगि बिलोइ ठाढ़ी **छछि-हारी**। →पद ३३०-४।

छठये—वि० [सं० षष्ठ] छठे, मन को छठी इन्द्रिय माना गया है। यहाँ तात्पर्य है शुद्ध अंतःकरण।~ऐसी विधि जो मो कहँ ध्यावै, **छठये** माँह दरस सो पावै। →र० ५२-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छतरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र] छाता । ~ ऐसनि जानि पसीजहु सीझहु, कस न **छतरिया** छायहु हो । →कहरा (३) १-२३ ।

छताँ—क्रि० वि० [सं० सत्] रहते हुए । ~ देह **छताँ** तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर । → पद ३४६-७ ।

छत्र—संज्ञा पु० [सं०] राजचिह्न, छाता, छतरी । ~ गगन मंडल महि लसकरु करै, सो सुरतानु **छत्र** सिरि धरै । → पद ३४६-८, सा० चिता० (१२) ११-२, सब० २७३-७ ।

छत्रपति—संज्ञा पु० [सं०] राजा, परमात्मा । ~ छ छा आहि **छत्रपति** पासा; छकि किन रहै मेटि सब आसा । → ज्ञान चौं० (१) १५ ।

छत्री—संज्ञा पु० [सं० क्षत्री] क्षत्रिय । ~ ब्राह्मन **छत्री** बानी, तिनहू कहल नहिं मानी । →पद ३४८-३; पद ३६२-११, र० ८३-१ ।

छपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० छप्पर] झोंपड़ी । ~ वैश्नौं की **छपरी** भली, ना साकत बड़ गाँउँ । →सा० साधु म० (३०) १-२ ।

छरी—क्रि० [सं० छल] प्रवंचित किया, छला । ~ सुरपति जाय अहीलहिं **छरी**, सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी । → र० ८१-३ ।

छहियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँह] छाया । ~ बारह जोजन कै विषै चले छत्र की **छहियाँ** रे । →पद २७३-७ ।

छाँड़हु—क्रि० [हि० छोड़ना] छोड़ दो या छोड़ दीजिए । ~ **छाँड़हु** पति **छाँड़हु** लबराई, मन अभिमान छूटि तब जाई । →र० ६०-१ ।

छांड़ा—क्रि० [हि० छोड़ना] छोड़ दिया । ~ सुख **छांड़ा** तव सब दुख भागा, गुर कै सबदि मेरा मन लागा । → सब० १६२-५ ।

छाँड़ौं—क्रि० [हि० छोड़ना] छोड़ता हूँ । ~ जे **छाड़ौं** तौं बूड़िहौं, गहौं त डसिहै बाँहि । →सा० बिर० (३) ४३-२ ।

छाँनाँ—वि० [सं० छन्न] छन्न, छिपा । ~ जिहि हिरदै हरि आइया, सो क्यों **छाँनाँ** होइ । → सा० साध० सा० (२६) १७-२, १६-१ ।

छाँनि—संज्ञा स्त्री० [हि०] छप्पर, छाजन । ~ राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की **छाँनि** । → सा० साधु म० (३०) १०-१, पद ३०२-४ ।

छाँनि—क्रि० [सं० चालन] छेद कर, भेद कर । ~ लागी चोट मरम्म की, गई कलेजे **छाँनि** । → सा० बिर० (३) १६-२ ।

छाँनै—क्रि० वि० [सं० छन्न] प्रच्छन्न रूप से, एकान्त में । → कबीर परगट राम कहि, **छाँनै** राँम न गाइ । →सा० सूरा० (४५) ३६-१ ।

छाँह—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] छाया, भक्ति की छाया । ~ कबीर तहाँ विलंबिया, जहाँ **छाँह** नहिं घंम । → सा० मधि (३१) ४-२, सब० ६६-३, सब० ४३-१५, सब० १४०-१३, सा० माया (१६) २३-१ ।

छाँहां—संज्ञा स्त्री० दे० 'छाँह' ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छाँहि—संज्ञा स्त्री० दे० 'छाँह'।

छाँही—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] प्रति-बिम्ब, छाया।~बिस्नु लोक बिनसे छिन माँही, हौं देखा परलै की **छाँही**। →र० ४६-४।

छाऊँ—क्रि० [सं० छादन] आच्छादन करना, छाना।~काहे कूँ **छाऊँ** ऊँच ऊँचेरा, साढे तीनि हाथ घर मेरा। →सब० ८०-३।

छाका—क्रि० [हि० छकना] छक गया। ~नीझर झरै अमीरस निकसै इहि मद रावल **छाका**। →पद ३४४-७।

छाकि—संज्ञा स्त्री० [हि० छकन] छक कर (पीने) का भाव, तृप्ति।~कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न **छाकि**। →सा० रस० (६) १-१।

छाकि पर्‌यो—हिं० [मुहा०] तृप्त हो गया।~**छाकि पर्‌यो** आतम मति-वारा। →सब० १०८-१।

छागर—संज्ञा पु० [सं० छागल] बकरा। ~सुम्रिति कहा आपु नहिं माना, तरुवर तर **छागर** होय जाना। → र० ६५-९।

छाजै—क्रि० [हि० छज] शोभा देता है। ~कहै कवीर रांम है राजा, जो कछु करैं सो **छाजै**। → सब० २८-१०।

छानै—संज्ञा पु० [सं० छन्न] प्रच्छन्न रूप में।~छाँनै लंघन नित करै, राम पियारे जोग। →सा० साध सा० (२९) १०-२।

छापरडाँह—संज्ञा पु० [हि०] छप्पर पर। ~ नीर मिवाणाँ ठाहरै, नाँ कछु छापरडाँह। → सा० निगु० (५५) ४-२।

छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] साया। ~ सीतल **छाया** सघन फल, पंखी केलि करंत।→सा० सजी० (४७) ६-२।

छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज—[सूर्य-प्रियाकान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः, अमर-कोष, पृ० ४२४]। ~ प्रगटे पवन पानी औ **छाया**, बहु विस्तार कै प्रगटी माया।→र० ३-३।

छार—संज्ञा पु० [सं० क्षार] भस्म, राख, मिट्टी।~सो तन छिया **छार** होइ जैहैं, नाँउँ न लेइहै कोई।→ सब० ७८-४, पद २११-८; कहरा (३) ७-३, र० ७१-६।

छारा—संज्ञा पु० दे० 'छार'।

छिछिल—क्रि० [दे०] फैल गया।~ **छिछिल** बिरहुली **छिछिल** बिरहुली, **छिछिल** रहलि तिहुँ लोक बिरहुली। → बिरहुली (७) ६।

छिटकाई—क्रि० [हि० छिटकाना] छोड़ दिया, छूट गया। ~ कहै कबीर भिसति **छिटकाई** दोजग ही मन मानां। →पद २३०-१०।

छिटकाय—क्रि० [सं० क्षिप्ति] इधर उधर फेंक दिया, बिखेर दिया। ~फगुआ लियो छिनाय कै, बहुरि दियो **छिटकाय**।→चाँचर(५) १-९।

छिन—संज्ञा पु० [सं० क्षण] क्षण। ~ बिस्नु लोक बिनसे **छिन** माँही, हौं देखा परलै की छाँही। → र० ४६-४।

छिन-छिन—क्रि० वि० [सं० क्षण] क्षण-क्षण।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ नैन हमारे बावरे, **छिन छिन** लोरैं तुज्झ । → सा० बिर० (३) ४२-१ ।

छिनाय—क्रि० [हि० छीनना] छीन कर, मोहित कर ।~नारद को मुख मांड़ि के, लीन्हों बदन **छिनाय** ।→ चाँच० (५) १-६ ।

छिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] शांति, सहिष्णुता, संतोष ।~ खसमहिं छोड़ि **छिमा** होय रहई, होय न खीन अखै पद लहई ।→ज्ञान चौं० (१) ६ ।

छिया—संज्ञा पु० [सं० क्षिया] मलिन, घृणित वस्तु, घिनौनी । ~ सो तन **छिया** छार होइ जैहै, नांउँ न लेइहै कोई ।→सब० ७८-४ ।

छिरकि—क्रि० [हि० छिड़कना] छिड़क कर ।~काँम अगिनि तन जरत रह्यो है, हरि रसि **छिरकि** बुझाई ।→ पद २६५-२ ।

छिरिआई—क्रि० [दे०] फैला हुआ है । ~ चिमिकि चिमिकि चिमिकै हग दुहु दिस, अर्ब रहा **छिरिआई** । पद २६५-३ ।

छिलकत—क्रि० [हि० छलकना] उमड़ती हैं । ~**छिलकत** थोथे प्रेम सो, धरि पिचकारी गात । → चाँचर (५) १-१६ ।

छिवैला—क्रि० [सं०√ छुप् धा०] स्पर्श करता है । ~ पारस कौं जे लोह **छिवैला**, बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला ।→सब० ६६-४ ।

छीजै—क्रि० [सं० क्षय] क्षीण होना, क्षीण होता है, नष्ट हो रहे हैं । ~ राम कहत लज्जा क्यूँ कीजै, पल पल आउ घटै तन **छीजै** ।→सब० ११७-५, सब० ३२-२; सब० १४४-५; पद २७६-८ ।

छीन— वि० [सं० क्षीण] दुर्बल, कमजोर । ~लम्बी पुरिया पाई **छीन**, सूत पुराना खूंटा तीन । → वसंत (४) ३-२ ।

छीना—वि० [सं० क्षीण] क्षीण, नष्ट । ~रवि के उदै तार भौ **छीना**, चर बीहर दोनों मँह लीना । → र० २९-५ ।

छीलर—संज्ञा पु० [हि०] छिछला तालाव, पोखरा । ~ हरि सागर जिनि बीसरै, **छीलर** देखि अनंत ।→ सा० सुमि० (२) ३०-२ ।

छुअत—क्रि० [हि० छूना] स्पर्श करते ही । ~मैं कासे कहौं को सुने पतिआय, फुलवा के **छुअत** भँवर मरि जाय ।→पद २३६-१ ।

छुटकावन—क्रि० [हि० छुड़ाना से] छुड़ाने के लिए । ~ जापहिं जाउँ आपु **छुटकावन** ते बाँधे बहु फंदा । →पद ३३७-२ ।

छूँछा—वि० [दे०] खाली, खोखला । ~ **छूँछा** परे अकारथ जाई, कहहिं कबीर चित चेतहु भाई । →र० ५६-४ ।

छूटनु—क्रि० [सं० छुट्] छुटकारा पाना, मुक्त होना । ~कहैं कबीर छूटन नहीं मन बउरा रे **छूटनु** हरि की सेव ।→सब० १९३-११ ।

छूति—संज्ञा स्त्री० [सं० छुप्, प्रा० छुत्त]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्पृश्य । ~ कहु धौं **छूति** कहाँ से उपजी, तबहिं **छूति** तुम मानी ।→ सब० १६६-२ ।

छूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुर] फलदार चाकू । ~हंसा संसय **छूरी** कुहिया, गइया पिये बछरुवै दुहिया । →पद ३२३-१ ।

छेक—संज्ञा पु० [हि०] छिद्र, छेद, सुराख । ~लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै **छेक** । → सा० गुरु० (१) ७-२ ।

छेक—संज्ञा पु० [?] भेद, अंतर ।~ कबीर सुपनैं रैंनिकै, पारस जीय मैं **छेक** ।→सा० चिता०(१२) २३-१ ।

छेकल—क्रि० [हि० छेकना] स्थान बना लिया, पहुँच गए । ~हनुमत कस्यप जनक बालि, ई सभ **छेकल** जम के द्वार ।→वसन्त (४) ६-५ ।

छेती—संज्ञा पु० [सं० छिद्र] अंतर । ~मैं अकेल ए दोइ जनां, **छेती** नाहीं कांइ ।→सा० काल० (४६) ८-१ ।

छेम—संज्ञा पु० [सं० क्षेम] कुशल, सुरक्षा । ~ **छेम** कुसल औ सही सलामत, कहहु कवन को दीन्हा हो । →कहरा (३) ८-१ ।

छेव—संज्ञा पु० [सं० छेद] जख्म, घाव, मृत्यु, नारा । ~हा हा करत जीव सभ जाई, **छेव** परै तब को समुझाई। →ज्ञान चौं० (१) ६६ ।

छेवा—संज्ञा पु० [सं० छेद] प्रहार, वध । ~बकरी मुर्गा कीन्हेउ **छेवा** । →पद २४२-५ ।

छोछो—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० छुच्छ, हि० छूंछी] रिक्त, खाली । ~**छोछो** नली कांम नहिं आवै लपटि रही उरझाई । →पद २७१-६ ।

छोति—संज्ञा स्त्री० [सं०√ छुप्] छूत, अस्पृश्य । ~तहाँ कबीरा बन्दगी, पाप पुन्नि नहिं **छोति** । → सा० पर० (४५) ४-२, पद २२५-७ ।

छोति—संज्ञा स्त्री० [सं०√ छुप्>छुप्त> छुत्त>छूत] अपवित्र वस्तु, अस्पृश्य वस्तु । ~ हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घर की **छोति** ।→सा० काल० (४६) १७-२ ।

ज

जंगम—संज्ञा पु० [सं०] दाक्षिणात्य लिंगायत शैवसम्प्रदाय, लिंगायत सम्प्रदाय के साधु, ये लोग शिवलिंग धारण करते हैं । ~इक **जंगम** इक जटाधार, इक अंग बिभूति करै अपार । → पद ३३२-३, सब० १३८-५, पद २४४-४ ।

जंजाल—संज्ञा पु० [सं० जगज्जाल] सांसारिक बंधन, प्रपंच । ~जिउ **जंजाल** न छाँड़ई, जम दिया दमामाँ आइ ।→सा० काल० (४६) ७-२, सा० सुमि० (२) ५-१ ।

जंत्र—संज्ञा पु० [सं० यन्त्र] वाद्य, बाजा । ~बाजै **जंत्र** बजावै गुंनी । →सब० १८५-१, पद २७०-१ ।

जंबुक—संज्ञा पु० [सं०] सियार, गीदड़ । ~ऐसा एक अचंभौ देखा, **जंबुक** करै केहरि सौं लेखा । →पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३४७-४, कहरा (३) ९-६। र० ७८-४।

जंबूरै—संज्ञा पु० [फ़ा० जम्बूरा] मदारी। ~ जुगति **जंबूरै** पाइया बिसहर लपटाई। →पद ३४५-९।

जँवाई—संज्ञा पु० [सं० जामातृ] दामाद। ~ सो धन चोर मूसि लै जावै, रहा सहा लै जाइ **जँवाई**।→ सब० १२०-४।

जँहडाइया—क्रि० [दे०] ठगे गए, धोखे में आ गए। ~सबै लोग **जँहडाइया**, अंधा सबै भुलान।→र० १६-७।

जईये—क्रि० [हि० जाना] चलें।~ पंच सखी मिलिहैं सुजांन, चलहु त **जईये** त्रिवेनी न्हान।→पद २३४-५।

जउ—अव्य० [सं० यद्] यदि।~और मुएं क्या रोइए **जउ** आपा थिरु न रहाइ। →पद २६६-५।

जगत—संज्ञा पु० [सं० जगत्] विषय सुख। ~है हरिजन सौं **जगत** लरत है। →पद ३४७-१।

जगपति—संज्ञा पु० [सं० जगत्पति] ईश्वर। ~ (तैं) भज्यौ न **जगपति** राजा। →पद २२०-२।

जगमगै—क्रि० [हि० जगमग] प्रकाशित हो रही है। ~ अगम अगोचर गमि नहीं, जहाँ **जगमगै** जोति। → सा० पर० (५) ४-१।

जगाती—संज्ञा पु० [अ० ज़क़ात] कर वसूल करने वाले, कर्मचारी।~ तीनि **जगाती** करत रारि, चल्यौ बनिजारा हाथ झारि। → पद २३९-६।

जग्गि—संज्ञा पु० दे० 'जग्य'।

जग्य—संज्ञा पु० [सं० यज्ञ] यज्ञ, मख, याग।~ब्राह्मन होय कै ब्रह्म न जानै, घर मँह **जग्य** प्रतिग्रह आनै। → विप्र० (२) २, सब० १२८-१३; पद २०९-४।

जग्या—क्रि० [हि० जगना] सावधान रहना। ~कहै कबीर **जग्या** ही चाहिए, क्या गृह क्या बैराग रे।→ सब० ११८-६।

जटाधर—संज्ञा पु० [सं०] जटाधारी। ~लुंचित मुंडित मोनि **जटाधर** अंति तऊ मरना।→सब० १४२-८।

जटाधार—सं० पु० दे० 'जटाधारि'।

जटाधारि—वि० [सं० जटाधारी] जटा धारण करने वाले। ~कबि जन जोगी **जटाधारि**, सभ आपन औसर चले हारि। →पद २२४-६; पद ३३२-३।

जठर अगिनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भाशय। ~**जठर अगिनि** मँह दीन्ह प्रजारी, तामे आपु भया प्रतिपाली। →र० २६-३।

जठराहँ—संज्ञा पु० [सं० जठर] पेट में। ~जिनि नर हरि **जठराहँ**, उदिक थैं पिंड प्रकट कीयौ। →सा० बेसा० (३५) १।

जड़िया—क्रि० [सं० जटन] जड़ा गया, सजाया गया, बहुमूल्य बनाया गया। ~कबीर मंदिर लाख का, **जड़िया** हीरै लालि।→सा० चिता० (१२) १९-१।

जत—क्रि० वि० [सं० इयत्] जितने।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~पसु पंखेरू जीव **जत**, (सब) रहे मेर मैं बूड़ि।→सा० उप० (५०) ४-२ ।

जतन—संज्ञा पु० [सं०यत्न] यत्न, उपाय। ~ काया कंचन **जतन** कराया, बहुत भाँति कै मन पलटाया।→ र० ६४-१, सा० साध० सा० (२९) १६-२, सा० मन० (१३) १०-२, पद २८४-५, सब० ११३-१, सब० १९४-६ ।

जति—संज्ञा पु० दे० 'जती' ।

जती—संज्ञा पु० [सं० यति] साधक, साधु, संन्यासी।~स्वाँग **जती** का पहिरि करि, घरि घरि माँगै भीख। सा० गुरु० (१) २७-२, र० २५-५, पद २६७-७, सब० ८४-३, कहरा (३) ८-३ ।

जदि—अव्य० [सं० यदि] यदि, अगर। ~**जदि** विषै पियारी प्रीति सौं, तब अन्तर हरि नाँहि।→सा० साध सा० (२९) १३-१ ।

जदि का—क्रि० वि० [सं० यदा] जब से, जिस समय से। ~**जदि का** माइ जनमियाँ, काहू न पाया सुख।→ सा० सम्र० (३८) ११-१ ।

जदि-तदि—अव्य० [सं० यदा+तदा] जब-तब, कभी-न-कभी ।~जो है जाका भावता, **जदि-तदि** मिलिहै आइ।→सा० हेत प्री०(४४) ३-१, सा० चिता० (१२) ३८-२ ।

जन—संज्ञा पु० [सं०] भक्त।~राम सरीखे **जन** मिले, तिन सारे सब काँम।→सा० साधु० (२८) ५-२, सा० पारि०(४९) ३-१, र० ७६-२, सब० १४६-१ ।

जनतैं—क्रि० [सं० जनन] उत्पन्न करते ही, जन्म देते ही।~तौ **जनतैं** तीनि डांडि किन सारै।→सब० १२९-२।

जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता।~ हरि **जननी** मैं बालक तेरा। →पद ३३३-१ ।

जनमांवनहारी—वि० [सं० जन्म+आवन +हारी] पैदा करने वाली। ~नाँ हूँ परनीं ना हूँ क्वांरी, पूत **जनमांवनहारी**। →सब० २६-३ ।

जनमिया—क्रि० [हि० जनम से] पैदा हुआ।~पहिले जन्म पूत को भयऊ, बाप **जनमिया** पाछे।→पद ३००-३।

जना—संज्ञा पु० [सं० जना.] लोग। ~साधु संत तेई **जना**, जो मानहिं बचन हमार। →र० ५८-६ ।

जना—क्रि० [सं० जनन] पैदा किया, उत्पन्न किया। ~ एकै जनी **जना** संसारा, कौन ग्यान ते भयो निनारा। →र० २-९, पद ३१३-९ ।

जनावनहारी—वि० [हि०] पैदा करने वाली, उत्पन्न करने वाली। ~ बर नहिं बरै ब्याह नहिं करई, पूत **जनावनहारी**। →सब० १९८-४ ।

जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री, माया। ~एकै **जनी** जना संसारा, कौन ग्यान ते भयो निनारा। → र० २-९ ।

जनी—क्रि० दे० 'जना' ।

जनी—वि० [सं०√जन+ई०] उत्पन्न हुए (लोग)। ~जम के बाहन बाँधे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनी, बाँधे स्रिष्टि कहाँ लौ गनी। → र० ६-२।

जनु—संज्ञा पु० दे० 'जन'।

जनेउ—संज्ञा पु० [सं० यज्ञ] यज्ञोपवीत। ~जन्मत सूद्र मुए पुनि सूद्रा, कृतम **जनेउ** डारि जग मुद्रा। → र० ६२-२।

जपंतड़ाँ—क्रि० [पं०] जपते हुए।~ राँमहि राम **जपंतड़ाँ**, काल घसीटा जाइ। → सा० चाँण० (१७) १८-२।

जबराँहि—क्रि० वि० [फ़ा० जबर + हिं (प्रत्य०)] बल पूर्वक। ~मच्छ रूप माया भई, **जबराँहि** खेले अहेर। → र० ४६-५।

जबह—संज्ञा पु० [अ०] वध, हत्या, काटना। ~ काजी काज करहु तुम कैसा, घर-घर **जबह** करावहु भैसा। → र० ४६-४।

जम—संज्ञा पु० [सं० यम] मृत्यु, काल, यमराज।~तेरे सिर पर **जम** खड़ा, खरच कदे का खाइ।→सा० सुमि० (२) १४-२; सा० बीन० (५६) ५-२, र० १८-३, र० ४१-६, सब० ६-६, पद २७२-१।

जम के बाहन—संज्ञा पु० [सं० यम + वाहन] काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि। ~**जम के बाहन** बाँधे जनी, बाँधे स्रिष्टि कहाँ लौ गनी। → र० ६-२।

जमघर—संज्ञा पु० [सं० यम-गृह] यमराज का घर, काल या मृत्यु का घर।~हरि उतंग तुम जाति पतंगा, **जमघर** कियहु जीव को संगा। → र० ६५-६।

जमनां—संज्ञा पु० [सं० यम] यमराज। ~ रसनां रांम नांम हितु जाकै कहा करै **जमनाँ**। →सब० १४२-२।

जमपुरि—संज्ञा पु० [सं० यमपुर] यमपुर, यमलोक।~एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे **जमपुरि** जाँहि।→सा० चिता० (१२) ५४-२।

जमराना—संज्ञा पु० [सं० यमराज] यमराज। ~**जमराना** गढ़ भेलिसी, सुमिरि लेहु करतार।→सा० चिता० (१२) ७-२।

जमावली—संज्ञा स्त्री० [सं० यमावली] यमपंक्ति। ~ असंखि कोटि जाकै **जमावली**, रावन सैनां जिहि तैं छली। →सब० १२८-१५।

जर—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़] जड़, मूल। ~आदि अंत नहिं होत बिरहुली, नहिं **जर** पल्लौ पेड़ बिरहुली। → बिर० (७) १।

जरजर—वि० [सं० जर्जर] जीर्ण, खंडित, क्षत-विक्षत।~चोट सताँनीं बिरह की, सब तन **जरजर** होइ।→ सा० बिर० (३) १४-१।

जरजरा—वि० [सं० जर्जर] जर्जर, जीर्ण, पुराना। ~ भेरा देख्या **जरजरा**, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि। →सा० गुरु० (१) २५-२, सा० चिता० (१२) ६२-१।

जरजरी—वि० दे० 'जरजरा'।

जरजोधन—संज्ञा पु० [सं० दुर्योधन] कुरुवंशीय राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में सबसे बड़ा, दुर्योधन। ~सहस बांह कै हरे परांन, **जरजोधन** का मथिआ मांन। →सब० १२८-१६; पद २७३-८।

जरणाँ—संज्ञा पु० [दे०] अत्यंत प्राचीन, अनादिकाल से जैसा है वैसा; अनिर्वचनीय ब्रह्म।→सा० **जरणाँ** (८)।

जरतहि—क्रि० [हि० जलना] जलते हुए, परितप्त होते हुए। ~ कहहिं कबीर पुकारि कै, ई जिव **जरतहि** जाय। →र० ७६-५।

जरद—वि० [फ़ा० जर्द] पीला। ~मैं तोहिं पूछों मूसलमाना, लाल **जरद** की नाना बाना। →र० ४६-३।

जरन—संज्ञा स्त्री० [सं० जरा] वार्द्धक्य, वृद्धावस्था। ~**जरन** मरन दुख घेरि करम सुख जीअ जनम तैं छूटै। → सब० १५३-२। दे० 'जरा'।

जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धावस्था, वार्द्धक्य। ~ **जरा** मरण छूटै भ्रम भागै। → सब० १४०-२; पद २८६-१, ३४६-६। दे० 'जुरा'।

जरिए—क्रि० [हि० जलना] जलना। ~ जब **जरिए** तब होइ भसम तन रहै किरिम दल खाई। → सब० १७६-३।

जरिया—क्रि० [सं० ज्वलन] जल गया। ~आगि जु लागी नीर महिं, कांदौ **जरिया** झारि। →सा० ज्ञान वि० (४) ५-१।

जरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ी] जड़ीबूटी। ~ हमारै गुर दीन्हीं अजब **जरी**।→पद ३२७-१।

जलन—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] ईर्ष्या, डाह। ~ दिन दिन जरै **जलन** के पाऊँ, डाढ़े जाय न उमँगे काऊ।→ र० ५६-१।

जलनिधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र; सागर। ~ कहा करउँ कैसे तरउँ, भव **जलनिधि** भारी। → सब० ६६-१, पद २६१-३।

जलहर—संज्ञा पु० [सं० जलधर] जलाशय। ~ सहज समाधि बिरष यहु सींचा,धरती **जलहर** सोषा।→सब० १२-७, सा० बिर० (३ ३६-१, सा० हे० प्री० स० (४४) १-१।

जलहरि—संज्ञा पु० दे० 'जलहर'।

जलावनहार—संज्ञा पु० [हि० जलाना +हार (प्रत्य०)] जलाने वाला व्यक्ति।~रोवनहारे भी मुए, मुए **जलावनहार**।→सा० काल० (४६) ३१-१।

जलि—संज्ञा पु० [सं० जल] जल में। ~कबीर जग की कौ कहै, भौ **जलि** बूड़ै दास। → सा० माया (१६) १६-१।

जस—संज्ञा पु० [सं० यश] यश, कीर्ति। ~ निरमल नांव चुनै **जस** बोलै। →पद ३३४-२।

जहँड़ाई—क्रि० [हि०] दे० जहँडाय।

जहँडाय—क्रि० [सं० जहन] धोखे में आना, हानि उठाना, ठगा जाना।~ मानुष जन्महि पाय नर, काहे कै **जहँडाय**।→र० २३-७, वेलि० (६) २-१, कहरा (३) ४-७।

जहड़ायहु—क्रि० दे० 'जहँडाय'।

जहँड़ाया—क्रि० दे० 'जहँड़े'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहंडे—क्रि० [हि०] ठगे गए, धोखे में पड़ गए। ~हरिबाजी सुर नर मुनि **जहंडे**, माया चाटक लाया। →सब० १८-३, कहरा (३) ६-२, पद २४२-२।

जहँड़े—क्रि०, दे० 'जहंडे'।

जहंदम—संज्ञा पु० [फ़ा० जहन्नुम] नरक, दुःख एवं कष्ट की जगह। ~जगत **जहंदम** राचिया,झूठे कुल की लाज। →सा० भेष० (२४) २०-१।

जहान—संज्ञा पु० [फ़ा०] विश्व, संसार। ~झूलहि जीव जहान जहँ कतहूँ नहीं थिति ठौर। →हिंडोला (८) ३-२।

जाँघ उघारि—[मुहा०] पर्दाफाश करना, पर्दा हटाना। दोषों को खोलना। ~अपनी **जाँघ उघारि** कै अपनी कही न जाय। →र० ७३-७।

जाँचो—क्रि० [सं० याचन्] माँगा। ~बावन रूप न बलि को **जाँचो**, जो जाँचै सो माया। → पद २६२-६।

जाँच्चौ—क्रि० [सं० याचना] याचना करता रहा, माँगता फिरा। ~यही उदर कै कारनैं, जग **जाँच्चौ** निस जाम। →सा० चाँण० (१७) २-१।

जांन—वि० [सं० ज्ञान] ज्ञानी। ~**जांन** भगत का नित मरन, अनजाने का राज। → सा० साध सा० (२६) ७-१।

जांनि—संज्ञा पु० [सं० ज्ञान] ज्ञान से। ~कहै कबीर **जांनि** भ्रम भागा तउ मन सुन्नि समांनां। → सब० १५३-१०।

जाँमण मरण—यौ० [सं० जन्म मरण] जन्म-मरण। ~ कबीर संसा दूरि करि, **जाँमण मरण** भरंम। →सा० उप० (३४) ४-१, सब० १६०-४।

जांमन मरना—यौ० दे० 'जाँमण मरण'।

जाँमैं—सर्व० [सं० यत्] जिसमें। ~जीव अछत **जाँमैं** मरै, सूषिम लखै न कोइ। → सा० सू० ज० (१५) २-२।

जांहि—क्रि० [हि० जाना] नष्ट हो जाते हैं। ~ दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला **जांहि**। → सा० का० न० (२०) ३-२।

जाइ—क्रि० [सं०√गम् = हि० जाना] चला जाता है, नष्ट हो जाता है। ~ घर जारै घर ऊबरै, घर राखें घर **जाइ**। →सा० जी० मृ० (४१) ४-१।

जाइ था—क्रि० [हि० जाना] जा रहा था, ढूँढ़ रहा था। ~ जा कारणि मैं **जाइ था**, सोई पाया ठौर। → सा० पर० (५) ३७-१।

जाई—क्रि० [सं० जा = उत्पन्न] उत्पन्न किया, पैदा किया। ~ नारि एक संसारहि आई, माय न बाके बाप न **जाई**। →र० ७२-१।

जाईले—क्रि० [हि० जाना] जाता है। ~ आनंद मूल सदा पुरुखोतम घट बिनसै गगनु न **जाईले**। → पद २४१-४।

जाए—क्रि० [सं० जा] पैदा किया। ~ जिनि हम **जाए** ते मुए, हम भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चालनहार ।→ सा० काल० (४६) ३२-१, पद० ३०१-२ ।

जागह—संज्ञा पु० [फ़ा० जायगाह] स्थान, जगह । ~ जाने का **जागह** नहीं, रहिवै कौं नहिं ठौर । →सा० सू० मा० (१४) ५-१ ।

जाचउँ—क्रि० [सं० याचन] याचना करूँ, भिक्षा माँगना । ~जौ **जाचउँ** तौ केवल रांम ।→सब० १२८-१ ।

जाचन—क्रि० [सं० याचना] भिक्षा माँगने के लिए । ~ कबीर **जाचन** जाइ था, आगे मिला अजंच । → सा० उप० (५०) १२-१ ।

जात—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञाति] जाति-पाँति, कौम, वंश । ~ सुन्नहि सुरति समाइया, कासों कहिए **जात** । → र० ३६-६ ।

जात है—क्रि० [सं० √ गम् = जाना] नष्ट हो रहा है । ~ कहत सुनत जग **जात है**, विषय न सूझै काल । → सा० चिता० (१२) ४६-१ ।

जाती—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञाति] जाति । ~धरम कहै सब पानी अहई, **जाती** के मन बानी अहई ।→ र० ७४-५ ।

जादवराय—संज्ञा पु० [हि० यादवराय] श्री कृष्ण ।~डरपत हौं यह झूलिवे को राखु **जादवराय** । → हिंडोला (८) २-७ ।

जान—संज्ञा पु० [सं० ज्ञान] ज्ञान । ~जो यह एकै जानिया, तौ जानां सब **जान** ।→सा० निह० प० (११) ८-१ ।

जान—वि० [हि०] जानकार, ज्ञानी । ~ **जान** पुरुषवा मोर अहार, अनजाने पर करौं सिंगार । → वसन्त (४) ४-४ ।

जाननहार—संज्ञा पु० [सं० ज्ञान + हार (प्रत्य०)] ज्ञाता, जानकार ।~ हंस रूप कोई साधु है, तत का **जाननहार** । → सा० सार० (३२) १-२ ।

जान-विजान—संज्ञा पु० [सं० ज्ञान-विज्ञान] ज्ञान-विज्ञान ।~जा घट **जान विजान** है; तिहि घटि आवटनां घनाँ ।→सा० साधसा० (२६) ८-१ ।

जानी—क्रि० [सं०√ज्ञा] मालूम है, ज्ञात है ।~बड़ सो पापी आहि गुमानी; पाषंड रूप छलो नर **जानी** । → र० १४-१ ।

जाने—संज्ञा पु० [सं० ज्ञान से] पुस्तकीय ज्ञान वाले पंडित ।~**जाने** जिव कँह परा अँदेसा, झूठहिं आय के कहैं सँदेसा ।→र० ४३-४ ।

जाम—संज्ञा पु० [सं० याम] प्रहर (दिन), समय । ~यही उदर कै कारनैं, जग जाँच्यौ निस **जाम** । → सा० चाँण० (१७) २-१, वसंत (४) ६-७ ।

जाय था—क्रि० [सं०√गम्] जा रहा था ।~कविरा सुख को **जाय था**, आगे मिलिया दुक्ख । →सा० निह० प० (११) ६-१ ।

जाय—क्रि० [सं० जा] उत्पन्न किया, पैदा किया । ~कहै कबीर हरिके गुन गाया, कुन्ती करन कुँवारहिं **जाया** । →र० ८१-४, र० ६४-३,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब० ८-८, सब० ११६-३, सब० १२६-३, सा० साधु म० (३०) ७-१।

जारा—क्रि० [सं० ज्वलन] जला देता है। ~चंदन बास भेदै नहीं, **जारा** सब परिवार। →सा० निगु० (५५) ११-२।

जारो—क्रि० [हि० जलना] जलाओ। ~ज जा ई तन जियतहिं **जारो**, जोवन जारि जुक्ति तन पारो। → ज्ञान चौं० (१) १७।

जारौं—क्रि० [सं० ज्वलन] जला दूँ। ~यह तन **जारौं** मसि करौं, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि। →सा० बिर० (३) ११-१, सब० १२०-१।

जार्‌यौ—क्रि० [हि० जलाना] जलाने से। ~**जार्‌यौ** जरै न काट्यौ सूखै, उतपति प्रलै न आवै। →पद ३०५-७।

जाल—संज्ञा पु [सं०] दाँव-पेच; कौशल। ~कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जानैं **जाल**। →सा० सू० ज० (१५) १-१।

जालन—संज्ञा पु० [सं० ज्वलन] जलाने के लिए। ~**जालन** आँनी लाकड़ी, ऊठी कूँपल मेलि। → सा० वेली० (५८) १-२।

जालि—क्रि० [हि० जलाना] जला दी जाती है। ~मड़हट देखें डरपती, चौड़ै दीया **जालि**। →सा० काल (४६) १६-२।

जालि दे—क्रि० [हि० जला देना] जला दो! ~ऊँचे मन्दिर **जालि दे**, जहँ भगति न सारँगपानि। → सा० साधु म० (३०) १०-२।

जाली—क्रि० [हि० जलाना] जला दी जाती है। ~वहुत जतन करि काया पाली, मरती बार अगिनि सँग **जाली**। →पद २७६-४।

जालूँ—क्रि० [हि० जलाना] जला दूँ। ~**जालूँ** कली कनीर की, तन राता मन सेत। →सा० चि० क० (४२) १-२।

जालौं—क्रि० [सं० ज्वलन] जला दूँ। ~**जालौं** इहै बड़ापना, सरलै पेड़ खजूरि। →सा० निगु० (५५) १०-१, सा० गु० सि० हे० (४३) १३-२।

जावासा—संज्ञा० पु० [सं० यावासक] एक प्रकार का कँटीला पौधा जिसके पत्ते वृष्टि से मुरझाकर गिर जाते हैं। ~**जावासा** के रूष ज्यूँ, घन मेहाँ कुम्हिलाइ। →सा० माया० (१६) १५-२।

जासी—क्रि० [पं०] जाएगी। ~वाला-पन गयौ जोवन **जासी**, जरा मरन भौ संकट आसी। →सब० ११७-३।

जासी—क्रि० [सं० √गम्] जायगा। ~अब गहु सत्यनाम अविनासी, हरि तजि जियरा कतहुँ न **जासी**। → र० २०-१, सा० काल० (४६) ५-२, सा० काल० (४६) २३-१, सब० १६८-१०।

जासों—सर्व० [सं० यत्] जिससे। ~**जासों** कियहु मिताई, सो धन भया न हित्त। →र० ५६-५।

जाहिगा—क्रि० [हि० जाना] चला जाएगा। ~जिअ रे **जाहिगा** मैं जांनां। →सब० १२२-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिंद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जीवन ।~ कहै कबीर हमरा गोविन्द, चौथे पद महिं जन की **जिंद** ।→सब० ४२-१० ।

जिआवनहारा—वि० [हि०] जीवित रखने वाला, प्रभु ।~हमकौ मिला **जिआवनहारा** ।→पद ३२६-२ ।

जिउ—संज्ञा पु० [सं० जीव] जीव । ~पिंड परे **जिउ** जैहै जहाँ, जीवत ही लै राखौ तहाँ ।→सब० ५०-१२; सा० काल० (४६) ७-२ ।

जितु—सर्व० [हिं० जिस] जिससे ।~ देव करहु दया मोहिं मारगि लावहु **जितु** भव बंधन टूटै ।→सब० १५३-१ ।

जिन—सर्व० [सं० यत्] जिसने ।~ **जिन** यह चित्र बनाइया, साँचा सो सुतधारि ।→र० २६-६ ।

जिनि—सर्व० [हि० जिन] जो । ~ रे मन तेरो कोइ नहीं खैंचि लेइ **जिनि** भारु ।→पद २६६-६ ।

जिनि—अव्य० [दे०] मत, नहीं । ~ कबीर माया **जिनि** मिलै, सौ बिरिया दै बाँह । →सा० माया० (१६) ३१-१ ।

जिबहैं—संज्ञा स्त्री० [अ० जबह] वध; हत्या । ~जोरी करि **जिबहैं** करैं, कहते हैं ज हलाल । →सा० साँच० (२२) ८-१ ।

जिभ्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] जिह्वा, जीभ । ~पग बिनु निरति करां बिनु बाजा, **जिभ्या** हींनां गावै । →सब० ३७-५, पद २२५-३, र० ३३-५, सा० सुमि० (२) ३०-१ ।

जिमीं—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पृथ्वी, भूमि । ~कहँ तब **जिमीं** कहाँ असमान, कँह तब वेद कितेब कुरान । →सब० ४०-३ ।

जिय—संज्ञा पु० [सं० जीव] हृदय । ~बहुतक साहस करु **जिय** अपना, तेहि साहब सों भेंट न सपना । → र० ८०-१ ।

जियत मुवा—वि० [हि०जीना + मरना] जीते हुए मर जाना; अहंभाव का विनाश । ~कुल अभिमाना खोइकै; **जियत मुवा** नहिं होय ।→र० ८-७ ।

जियरा—संज्ञा पु० [सं० जीव से] जीव, हृदय, प्राण । ~तुम **जियरा** बहुतै दुख पावा, जल बिनु मीन कौन सचु पावा । →र० ६५-२, र० २०-१, पद २७४-२, सा० बिर०(३)१०-२, सा० काल० (४६) २८-२ ।

जियरै—संज्ञा पु० दे० 'जियरा' ।

जियांऊँ—क्रि० [हि० जीमना] भोजन, कराऊँ । ~ल्यौति **जियांऊँ** अपनौ करहा छार मुनिस की दाढ़ी रे ।→ पद २५५-८ ।

जिरजोधन—संज्ञा पु० दे० 'जरजोधन' ।

जिव—संज्ञा पु० [सं० जीव] जीव ।~ **जिव** तरसै तुझ मिलन को, मन नाहीं बिसराम । → सा० बिर० (३) ६-२, सा० बेसा० (३५) ६-२; सा० काल० (४६) २३-१ ।

जिहाज—संज्ञा पु० [अ० जहाज] जहाज । ~नाव **जिहाज** खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा । →पद २६५-६ ।

जीअ—संज्ञा पु० दे० 'जीयरा' ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीता—१. क्रि० [हि० जीत] विजयी होना। २. वि० [सं० जीवित] जीवित, जो मरा न हो। ~राम भजा सोइ **जीता** रे।→पद २६३-२।

जीन—संज्ञा पु० [फ़ा०] घोड़े की पीठ पर रखी जाने वाली गद्दी, काठी। ~दै मुहरा लगाम पहिरावउँ, सिकली **जीन** गगन दौरावउँ। → सब० ३-३।

जीम—क्रि० [सं०√जिम् = जेमनम्] भोजन करना। ~मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा **जीम**। → सा० मधि० (३१) १०-२।

जीयरा—संज्ञा पु० [सं० जीव+रा] जीव, प्राणी। ~तेरी बारी **जीयरा**, नेरी आवै नित। →सा० काल० (४६) ६-२, पद २८२-३,३१६-७।

जीवत—वि० [सं० जीवन] जीते ही, जीते जी। ~**जीवत** मिरतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस। →सा० जी० मृ० (४१) १-१।

जीवाँ—संज्ञा पु० [सं० जीव] साधारण प्राणी। ~**जीवाँ** कौं राजा कहै, माया के आधीन। →सा० माया० (१६) १८-२।

जुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] उपाय, मर्म, रहस्य, युक्ति, प्रयत्न, साधन। ~मोहा बपुरा **जुक्ति** न देखा, सिव सक्ति विरंचि नहिं पेखा। →र० ८२-५, र० ५-२, सब० ६०-४।

जुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] सद्गुरु द्वारा बताया गया मार्ग। ~रामहिं जानि **जुक्ति** जों चलई, जुक्तिहिं तें फंदा नहिं परई। →र० २१-२।

जुक्ती—संज्ञा स्त्री० दे० 'जुक्ति'।

जुग—वि० [सं० युग] दोनों। ~इनको इहै सुभाव, पूरि लागी **जुग** जन कौं। →सा० विचा० (३३) ६-२।

जुग जुगन्त—यौ० [हि०] युगों युगों तक, अनेक वर्षों तक। ~साधु संगति मिलि करि बसंत, भौ बंद न छूटै **जुग जुगन्त**। →पद ३३८-४।

जुगति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] युक्ति, उपाय, साधन, साधना, साधना की युक्ति। दे० 'जुक्ति'। ~ **जुगति** जंबूरै पाइया बिसहर लपटाई। → पद ३४५-६, पद ३११-२, सब० १६४-६, पद ३०६-३, पद २४५-५; पद २६०-६, सब० ६७-११।

जुगन—संज्ञा पु० [सं० युग] युगों। ~कहाँ लौ कहौं **जुगन** की बाता, भूला ब्रह्म न चीन्है बाटा। →र० ५-१।

जुगुति—संज्ञा स्त्री० दे० 'जुगति'।

जुझाउर—वि० [हि० जूझ] युद्ध सम्बन्धी, उत्तेजित करने वाला। ~जब बजै **जुझाउर** बाजा, तब कायर उठि उठि भाजा। →पद २०५-३।

जुड़िया—क्रि० [हि० जुड़ना] जुड़ा रहता है, लगा रहता है। ~ अस विनु पाखर गज विनु गुड़िया, बिनु षंडै संग्रामहि **जुड़िया**। → सब० ११६-४।

जुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० जरा] वृद्धावस्था। ~काल न खाइ कलप नहिं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यापै, देही **जुरा** नहिं छीजै। → सब० ३२-२, पद २०२-५, सा० काल० (४६) ८-२। दे० 'जरा'।

जुलुम—संज्ञा पु० [अ० जुल्म] अत्याचार, अन्याय, अपराध। ~ जोर किया सो **जुलुम** है, लेइ जवाब खुदाइ। → सा० साँच० (२२) ९-१, सब० ७६-११।

जुवा—संज्ञा पु० [सं० द्यूत] बाजी। ~ रांम नांम अंतर गति नांहीं तौ जनम **जुवा** ज्यौं हारी। → सब० १०४-२।

जू-ज—सर्वं० [हि० जो-जो] भिन्न, भिन्न। ~सोई आखर सोइ वैन, जन **जू-जू** वाचवंत। → सा० विचा० (३३) ७-१।

जूझ—संज्ञा पु० [सं० युद्ध] युद्ध, लड़ाई। ~ कबीर सोई सूरिवाँ, मन सो माँड़ै **जूझ**। → सा० सूरा० (४५) ३-१, सा० सूरा० (४५) २-२।

जूझनां—क्रि० [सं० युद्ध] युद्ध करना। ~ विन खाँडे संग्राम है, नित उठि मन सौं **जूझनां**। → सा० साध सा० (२९) ८-२।

जूझै—क्रि० [सं० युद्ध] युद्ध करता है। ~छत्री सो जो कुटुम से **जूझै**, पाँचो मेटि एक कै बूझै। → र० ८३-३, सब० ८६-५।

जूठन—वि० दे० 'जूठा'।

जूठनि—संज्ञा स्त्री० दे० 'जूठा'।

जूठा—वि० [सं० जुष्ठ] जूठन, उच्छिष्ट भोजन, किसी के खाने के बाद बचा हुआ अन्न। ~ जूठी करछी अन्न परोसा, जूठै **जूठा** खाया। → सब० ७१-६, सब० ९४-६, सा० कामी० (२०) १४-१, विप्र० (२) ७।

जूठो—वि० दे० 'जूठा'।

जेंवावै—क्रि० [हि० जीमना] भोजन कराता है। ~ दुखित सुखित होइ कुटुंब **जेंवावै**, मरण वेर एकसर दुख पावै। →पद २५८-४।

जे—क्रि० वि० [सं० यद्] यदि, अगर। ~**जे** दिढ़ ग्यान न ऊपजै, तौ अहटि मरै जनि कोइ रे। → सब० ९७-१०, पद २५४-३।

जेठ—संज्ञा पु० [सं० ज्येष्ठ] किसी स्त्री के पति का बड़ा भाई। ~ऊँ जे सुनी मन्दोदरि तारा, तिन घर **जेठ** सदा लगवारा। → र० ८१-२।

जेता—क्रि० वि० [हि० जितना] जितना, समान। ~ देवल माँहे देहुरी, तिल **जेता** विस्तार। →सा० पर० (५) ४२-१।

जेर—वि० [फ़ा०] पराजित, परास्त। ~खेलति माया मोहिनी, जिन्ह **जेर** कियो संसार। →चाँचर (५) १-१।

जेवड़ा—संज्ञा पु० दे० 'जेवड़ी'।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी; जंजीर। ~ गले राम की **जेवड़ी**, जित खैंचे तित जाउँ। →सा० निह० प० (११) १४-२, सा० चाँण० (१७) ११-१; सा० चिता० (१२) ४८-१, सब० ५०-८।

जेवन—संज्ञा पु० [सं० जेमन] भोजन। ~छूतिहि **जेवन** छूतिहि अँचवन;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छूतिहि जग उपजाया । → सब० १६६-७ ।

जेवरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'जेवड़ी' ।

जेवहिं—क्रि० [हि० जीमना] भोजन करते हैं । ~ कोटि चन्द्रमां करहिं चिराक, सुर तैंतीसउ **जेवहिं** पाक । →सब० १२८-५ ।

जैंदेउ—संज्ञा पु० [सं० जयदेव] प्रसिद्ध भक्त ।~ सनक सनंदन **जैंदेउ** नांमां, भगति करी मन उनहुँ नं जांनां ।→ सब० १४३-३ ।

जैंबे—क्रि० [सं०√गम् = हि० जाना] जाएँगे । ~ ना जानै अपनौं मरि **जैंबे**, टका दस वढ़ै अवर लै खैंवे । →र० ५५-७, पद २५८-१ ।

जैंवहु खेत—[मुहा० खेत रहना], मृत्यु को प्राप्त होना । ~परिहरि **जैंवहु खेत** हो रमैया राम ।→बेलि (६) २-८ ।

जोइ—क्रि० [हि० जोहना] खोजना, ढूँढ़ना । ~जिहि घट मैं संसै बसै, तिहि घटि राम न **जोइ** । → सा० साध० सा० (२६) १४-१ ।

जोइया—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] स्त्री । दे० 'जोई' । ~कहंहि कबीर ये हरि के काज, **जोइया** के ढिंगरहिं कवनि लाज ।→वसन्त (४) ६-५ ।

जोइया—क्रि० [सं०√युज् [योजित किया, युक्त किया । ~तीन्यूं मिलि करि **जोइया**, (तब) उड़ि उड़ि पड़ै पतंग ।→सा० ग्या० वि०(४) १-२ ।

जोई—सर्व० [सं० यत् = जो + ई (प्रत्य०)] जो लोग । ~ देह हलाये भगति न होई, स्वांग धरे नर बहु विधि **जोई** । →र० ६७-१ ।

जोई—संज्ञा स्त्री० [सं० योषिता] स्त्री, पत्नी । ~तुम हम हम तुम और न कोई, तुम मोर पुरुष हमैं तोरि **जोई** । →र० १-५ ।

जोई—क्रि० [सं० जषण] देखते हैं । ~सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, सेस सहस मुख **जोई** । → सब० ७८-५ ।

जोऊँ—क्रि० [हि०] खोजूं, देखूं । ~ बन बन ढूंढ़ि नैन भरि **जोऊँ**, पीव न मिलै तौ बिलखि करि रोऊँ । → सब० १७३-५ ।

जोऊँ—क्रि० [हि० जोहना] प्रतीक्षा करूँ, इंतजार करूँ । ~मैं बिरहिनि ठाढ़ी मग **जोऊँ**, राम तुम्हारी आस । →सब० २२-३ ।

जोग—संज्ञा पु० [सं० योग] संयोग । ~अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै द्रुलभ **जोग** । →सा० सुमि० (२) २८-२, वसंत (४) ७-५ ।

जोग—वि० [सं० योग्य] योग्य । ~ नाँ कछु किया न करि सका, नाँ करने **जोग** सरीर । →सा० सम्र० (३८) १-१ ।

जोग—संज्ञा पु० [सं० योग] मिलन । ~छाँनै लंघन नित करै, राम पियारे **जोग** । →सा० साध सा० (२६) १०-२ ।

जोग—संज्ञा पु० [सं० योग] हृदय को ईश्वर से जोड़ना, साधना । ~मैं जान्यौं पढ़िबौ भलौ, पढ़िबा तै भल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जोग।→सा० क० बि० क० (१६) १-१।

जोग—संज्ञा पु० [सं० योग] नाथ-योगियों की साधना। ~ऐसा **जोग** न देखा भाई, भूला फिरै लिये गफिलाई।→ र० ६६-१।

जोगिया—संज्ञा पु० [सं० योगी] योगी। ~**जोगिया** के नगर बसो मति कोई, जो रे बसै सो **जोगिया** होई।→ सब० १२५-१।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] चमक, प्रकाश।~सोई भुवंग जाकै मस्तकि मनि है, **जोति** उजालै खेलै।→ सब० ६६-५; सा० काल० (४६) १७-१।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] जीवात्मा। ~कहै कबीर भव बंधन छूटै, जोतिहि **जोति** समानी।→ सब० ३५-१०।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] परम ज्योति, जीवतत्व। ~नाना बांनी बोलिया, **जोति** धरी करतारि।→ सा० विचा० (३३) ४-२।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] ज्योति, यहाँ पर 'ब्रह्म' से तात्पर्य है। ~बिबि अक्षर का कीन्ह बंधाना, अनहद सब्द **जोति** परमाना।→ र० ५-३।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] ब्रह्म की ज्योति, आत्मज्योति।~दस द्वारे का देहरा, तामें **जोति** पिछांनि।→ सा० भ्रम वि० (२३) १०-२।

जोतिग—संज्ञा पु० [सं० ज्योतिष] ज्योतिष विद्या। ~जप तप संजम पूजा अरचा **जोतिग** जग बौरानां। →पद २०८-५।

जोतिहि—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] परम ज्योति,परमात्मा।~कहै कबीर भव बंधन छूटै, **जोतिहि** जोति समानी।→सब० ३५-१०।

जोनि—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] योनि। ~उपजै खपै **जोनि** फिरि आवै, सुख का लेस सपने नहिं पावै।→ र० ८४-३।

जोनिन—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] योनियाँ। ~सनकादिक भूले भँवर बोय, लख चौरासी **जोनिन** जोय। →वसन्त (४) १-५।

जोनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] योनि। ~गुर मिलि जिनिके खुले कपाट; बहुरि न आवै **जोनीं** बाट। →पद २०२-१०, सब० १७७-६, पद ३०८-४। दे० 'जोनि'।

जोय—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] पत्नी, स्त्री।~सनकादिक भूले भँवर बोय, लख चौरासी जोनिन **जोय**।→ वसन्त (४) १-५।

जोर—संज्ञा पु० [फ़ा०] बल, शक्ति। ~आहि मेरे ठाकुर तुम्हरा **जोर**। →सब० ४२-१।

जोर—संज्ञा पु० [फ़ा०] जबरदस्ती, बलपूर्वक। ~**जोर** किया सो जुलुम है, लेइ जवाब खुदाइ।→ सा० साँच० (२२) ६-१, कहरा (३) ४-७।

जोर—क्रि० [सं०√जुड्] जोड़ना।~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिरिया त्रिष्नां पापिनी, तासों प्रीति न **जोर**। →सा० माया० (१६) १४-१।

जोरा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अत्याचार। ~बंदे पर **जोरा** हुवै, जम कौ बरजि गुसाँइ।→सा० बीन०(५६) ५-२।

जोरी—क्रि० [हि० जोड़ना से] एकत्र किया। ~कब दत्तै मावासी तोरी, कब सुखदेव तोपची **जोरी**। →र० ६६-४।

जोरी—क्रि० वि० [फ़ा०] बलपूर्वक।~ **जोरी** करि जिबहैं करैं, कहते हैं ज हलाल। → सा० साँच० (२२) ८-१।

जोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ी] युग्म, दो का समूह। ~ **जोरी** बिछुरी हंस की, पड़े बगाँ कै साथि। → सा० अपा० (४८) १-२।

जोरू—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोइ] स्त्री। ~**जोरू** जूठनि जगत की, भले बुरे का बीच। → सा० कामी० (२०) १४-१।

जोवती—क्रि० [सं० जुह्वन्] प्रतीक्षा करती, इंतजार करती। ~ बहुत दिनन की **जोवती**, बाट तुम्हारी राम।→सा० बिर० (३) ६-१।

जोवन—संज्ञा पु० [सं० यौवन] युवावस्था। ~ तन मन **जोवन** भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर। → सा० लाँबि (७) १-२, सा० चिता० (१२) ८-१।

जोवनहार—संज्ञा पु० [हि०] साक्षि-चैतन्य। ~ **जोवनहार** अतीत सदा संगि ए गुण तहाँ समांहीं। → पद २६८-६।

जोवैं—क्रि० [हि० जोहना] प्रतीक्षा कर रहे हैं। ~ तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन **जोवैं** बाट। →सा० लै (१०) ३-२।

जोहारा—क्रि० [सं० जुषण] प्रणाम करना। ~ बूड़ि गए नहिं आपु संभारा, ऊँच नीच कहु काहि **जोहारा**। →विप्र० (२) २१, बेलि (६) २६।

जोहारि—क्रि० दे० 'जोहारा'।

जोहिया—क्रि० [हि० जोहना से] खोजा, ढूँढ़ा। ~ बहुत ध्यान कै **जोहिया**, नहिं तेहि संख्या आय।→ र० ७७-६।

जोहै—क्रि० [हि० जोहना] जोहता है, इंतजार करता है, इच्छा करता है। ~फंद छोड़ि जे बाहर होई, बहुरि पंथ नहिं **जोहै** सोई।→ र० ७४-७।

जौहरी—संज्ञा पु० [फा०] रत्न विक्रेता, रत्न को परखने वाला।~हरि हीरा जन **जौहरी**, ले ले माँडिय हाटि।→ सा० पारि० (४९) ३-१।

ज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकाश। जीव रूप यक अन्तर-वासा; अन्तर **ज्योति** कीन्ह परगासा। → र० १-१।

ज्वाब—संज्ञा पु० [अ० जवाब] उत्तर। ~पाहन कौं क्या पूजिए, जो जनमि न देई **ज्वाब**। → सा० भ्रमवि० (२३) ३-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झ

झकझोरी—संज्ञा पु० [हि०] झटका ।~ अंतर मधे अंत लेइ, **झकझोरी** झोला जीवहिं देइ ।→ वसन्त (४) ७-४ ।

झकोरैं—क्रि० [हि०] चलती है । ~ सोरह मंझै पवन **झकोरैं**, आकासैं फरु फिरिया । → सब० ११६-६ ।

झखमारि—[मुहा०] झख मारना । विवश होकर । ~ त्रिखावंत जो होइगा, (सो) पीवेगा **झखमारि** । → सा० विर्क० (३७) ७-२ ।

झख मारी—क्रि० [सं० झख + हि० मारना] मन मारकर, 'झख' मछली को कहते हैं । यह मुहावरा उसी से बना है, भाव है—व्यर्थ समय नष्ट करना ।~ पण्डित सो बोलिये हित-कारी; मूरुख ते रहिये **झख मारी** । →र० ७०-४, पद २००-५ ।

झगरा—संज्ञा पु० [हि० झगड़ा] विवाद, संघर्ष । ~राउर की कछु खबरि न जानहु, कैसे क **झगरा** निबेरहु हो । →कहरा (३) २-५ ।

झगरा—संज्ञा पु० [हि०] संशय ।~ **झगरा** एक निबेरहु राम । सब० १३३-१ ।

झटका—संज्ञा पु० [हि०] पशु को एक ही आघात से काट डालना । ~ वै हलाल वै **झटका** मारैं, आगि दुनौ घर लागी ।→पद ३०४-८ ।

झड़पसी—क्रि० [हि० झपटना] झपट्टा मारेगा । ~ काल अचिंता **झड़पसी**, ज्यौं तीतर कौं वाज ।→सा० काल० (४६) ६-२ ।

झड़ि—संज्ञा स्त्री० [हि०] झड़ी ।~ पारब्रह्म बड़ मोतियाँ, **झड़ि** बाँधी सिषराँह । → सा० निगु० (५५) ३-१ ।

झनकार—संज्ञा स्त्री० [सं० झंकार] ध्वनि । ~ विनु बाजा **झनकार** उठै जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै ।→ पद २४६-३ ।

झमकाए—क्रि० [हि०] चमकाने से । ~ का चूरा पाइल **झमकाए**, कहा भयो बिछुवा ठमकाए । → सब० १३०-३ ।

झरनां—क्रि० [हि०] गिरने देना ।~ सुपिनैं बिंदु न देई **झरनां**; तिसु काजी कउ जरा न मरना । → पद ३४६-६ ।

झरी—क्रि० [सं० क्षरण] झरना । ~ हाड़ **झरी** झरि गूद गलीगल, दूध कहाँ ते आया ।→ सब० १७४-८ ।

झरै—क्रि० [हि० झरना] झरता है । ~ नीझर **झरै** अमीरस निकसै इहि मद रावल छाका ।→ पद ३४४-७ ।

झल—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] ज्वाला, जलन । ~गोविंद मिलै न **झल** बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ।→ सा० चाँग० (१७) १-२ ।

झल—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल] विष-याग्नि । ~ मुर्गी मिनकी सों लड़ै, **झल** पांनी दौड़े । → सब० ५१-६ ।

झल—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल] आग । ~कहै कबीर गुर दिया पलीता सो **झल** बिरलै देखी । →पद २१६-८ ।

झलकती—क्रि० [सं० झल्लिका] चम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कती है, दमकती है।~मन्दिर माँही **झलकती**, दीबा की सी जोति। → सा० काल० (४६) १७-१।

झलक्कै—क्रि० [सं० झल्लिका] प्रतिविम्बित होने लगता है, प्रकाशित होने लगता है। झलकना; चमकना। ~ तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म **झलक्कै** सीसि।→सा० मन० (१३) २०-२, सा० सुन्द० (५२) ४-२।

झलमई—वि० [सं० झल+मयी] ज्वालामय, अग्निमय। ~आगैं पीछैं **झलमई**, राखै सिरजनहार।→सा० सम्र० (३८) ७-२।

झलि—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल] ज्वाला में। ~ माया की **झलि** जग जरै, कनक कामिनि लागि। → सा० माया० (१६) ३२-१।

झाँई—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] अंधकार। ~ अँखियन तौ **झाँई** परी, पंथ निहारि निहारि।→सा० बिर० (३) ३२-१।

झांई—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] परछाई, प्रतिबिम्ब। ~ **झांई** मानत इच्छा कीनी, इच्छा ते अभिमानी। →पद २६४-३, कहरा (३) १०-३।

झाँपि—क्रि० [सं० झम्पन] ढँक लेना, बंद कर लेना। ~ नैनां अंतरि आव तू, नैन **झाँपि** तोहि लेउँ। → सा० निह० प० (११) २-१।

झारि—वि० [हि०] सभी लोग। ~छव चकवै मंडलिक **झारि**, अजहूं हो नर देख बिचारि।→वसन्त (४) ६-४।

झारि—वि० [सं०] सम्पूर्ण रूप से। ~ आगि जु लागी नीर महिं, कांदी जरिया **झारि**।→ सा० ज्ञान० (४) ५-१, सा० कामी० न० (२०) १-२।

झारी—वि० [सं० ?] समस्त, सब, सम्पूर्ण। दे० 'झारि'। ~प्रगटे सुर नर मुनि सब **झारी**, ताही खोज परे सब हारी।→ र० ३-६, र० ६-५, पद २६१-६।

झाल—संज्ञा स्त्री० [सं० झल] लपट; ज्वाला। ~एक कनक अरु कामिनीं; दोइ अगिन की **झाल**। → सा० कामी न० (२०) १२-१, सा० सूरा० (४५) २६-१।

झालि—क्रि० [हि० झेलना] झेलकर। ~ कबीर केवल राम कह, सुद्ध गरीबी **झालि**। → सा० चिता० (१२) ५२-१।

झिन—वि० [सं० क्षीण] सूक्ष्म।~कहै कबीर केहिं देहौ खोरी, जब चलिहौ **झिन** आसा तेरी।→ र० ८०-४।

झिरमिर—वि० [अनु०] मंद-मंद, धीरे-धीरे।~**झिरमिर** झिरमिर बरषिया; पाहन ऊपरि मेह। →सा० निगु० (५५) २-१।

झीं झीं—यौ० [दे०] नाद, ध्वनि। ~ रामुरा **झीं झीं** जंतर बाजै, कर चरन बिहूना नाचै।→पद २७०-१।

झीं झीं—वि० [सं० क्षीण-क्षीण] सूक्ष्म; सूक्ष्म। ~ **झीं झीं** आसा मँह लगे; ज्ञानी पण्डित दास।→ र० ८०-५।

झीन—वि० [सं० जीर्ण, प्रा० झीण] सूक्ष्म, झीना।~ पानी हू तैं पातरा, धूंवां हू ते **झीन**। → सा० मन० (१३) १२-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झीना—वि० [सं० क्षीण] क्षीण, कृश। ~ कबीर हरि का भांवता, **झीना** पिंजर तास। → सा० सा० सा० (२६) ४-१।

झूरि—क्रि० [हिं०] सूखकर, शुष्क होकर, संतप्त होकर। ~ ऊँचा बिरिख अकासि फल, पंखी मूए **झूरि**। → सा० सूरा० (४५) १७-१।

झूरि—वि० [हिं० झूर] शुष्क, संतप्त, चिन्तित। ~ दुखिया मूवा दुख कौं सुखिया सुख कौं **झूरि**। → सा० मधि० (३१) ८-१।

झूरी—वि० [हिं० झूर] सूखी। ~हाड़ जरै जैसे लकड़ी **झूरी**, केस जरै जैसे त्रिन कै कूरी। → सब० १३६-५, सब० ६-४।

झूलि—क्रि० [हिं० झूलना] लटके या झूलते रहते हैं। ~ ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि **झूलि**। → सा० चिता० (१२) २८-२।

झेल—क्रि० [हिं०] झेलना, बचाना। ~टूटै बरत अकास तैं, कौन सकत है **झेल**। → सा० सूरा० (४५) ३२-२।

झेलिक झेला—संज्ञा पु० [दे०] ठेलाठेली, खींचतान, धोखाधड़ी। ~ छाँड़ि देहु नर **झेलिक झेला**, बूड़े दोऊ गुरु औ चेला। → र० १२-४।

झोंट—संज्ञा पु० [सं० झुण्ड] बालों का समूह, झोंटा। ~जब जमु आइ **झोंट** पकरै, तबहि काहे रोआ। → सब० १७५-६।

झोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कपड़े की थैलीं। ~ सत करि खपर खिमा करि **झोरी**, ग्यांन बिभूति चढ़ाई। → सब० ३३-७।

झोल—संज्ञा पु० [सं० ज्वाल] ज्वाला। ~कबीर दरिया परजला, दाझै जल थल **झोल**। → सा० दया नि० (५१) १-१।

झोला—संज्ञा पु० [हिं०] धक्का, रेला। ~ अंतर मधे अंत लेइ, झकझोरी **झोला** जीवहिं देइ। → वसन्त (४) ७-४।

झोलै—क्रि० [सं० ज्वलन] जलाए, सताए। ~ जहँ जहँ जाइ तहीं सचु पावै माया तासु न **झोलै**। → पद २५४-५।

ट

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० टंकशाला] सिक्का ढालने का स्थान, शुद्ध, निर्दोष। ~ अंमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै **टकसाल**। → सा० पर० (५) ४७-१।

टका—संज्ञा पु० [सं० टंक] द्रव्य, रुपया। ~ मन दस नाज **टका** दस गांठी, ऐंडौ टेढौ जात। → सब० ७०-२।

टाँकि—क्रि० [सं० टंकन] छेनी से काटकर। ~पाहन **टाँकि** न तोलिए, हाड़ि न कीजै बेह। → सा० संग० (२६) ५-१।

टांकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] छेनी। ~अर सकल पाखांन बराबरि, **टांकी** अगिनि प्रकासा। → सब० ६६-८।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

टांचनहारै—वि० [हि०] तराशने वाला, गढ़ने वाला। ~**टांचनहारै** टांचिया दै छाती ऊपरि पाउ। → पद २११-५।

टांचिया—क्रि० [हि० टाँचना] तराशा, काटा। ~ टांचनहारै **टांचिया** दै छाती ऊपरि पाउ।→पद २११-५।

टांडौ—संज्ञा पु० [हि० टाँड] अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए पशुओं का झुंड, जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं, व्यापार की वस्तुएँ। ~ बनिज खुटानौं पूंजी टूटि, दह दिसि **टांडौ** गयौ फूटि।→पद २३६-७।

टाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थात्री या तटी] टट्टी, टटिया, पर्दा।~काहे कूँ भीति बनाऊँ **टाटी**, का जानूँ कहाँ परिहै माटी।→सब० ८०-१, पद ३०२-२।

टापा—संज्ञा पु० [सं० स्थापन] अज्ञान की पट्टी। ~राम नाम जानैं नहीं, आये **टापा** दीन।→ सा० चिता० (१२) २४-२।

टीका—संज्ञा पु० [सं० तिलक, प्रा० टिक्क] गद्दी।~दुंदुर राजा **टीका** बैठे, बिखहर करै खवासी। → पद ३००-५।

टीकि—क्रि० [हि० टीकना] लगाकर। ~काजल **टीकि** चसम मटकावै कासे कसि बाँधै गाढ़ी।→पद ३१३-३।

टीडरि—संज्ञा स्त्री० [दे०] बाल्टी। ~ बाँधे ज्यूं अरहट **टीडरि**, आवत जात बिगूते।→सब० १८६-३।

टुक—वि० [सं० स्तोक] जरा, थोड़ा सा, किंचित्, टुकड़ा, खंड। ~खूब खाँड़ है खीचड़ी, माँहि पड़ै **टुक** लौंन।→सा० साँच० (२२) १२-१; सा० काल० (४६) ७-१, सा० द० निर० (५१) ३-२, सब० १८१-४।

टेकहु—क्रि० [हि० टेकना] सहारा लो। ~ **टेकहु** नाम जहाज समुझ मन बौरा हो।→चांचर (५) २-२६।

टेरैं—क्रि० [हि० टेरना] पुकारती है। ~ ठाढ़ी माइ करारैं **टेरैं**, है कोई लावै गहि रे।→सब० ६७-२।

टोकनी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० टोक्कण] भिक्षा-पात्र।~कबीर तष्टा **टोकनी**, लीए फिरै सुभाइ। → सा० चाँण० (१७) ५-१।

टोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] नली। ~ कहै कबीर यह कलि है खोटी, जो रहै करवा सो निकसै **टोटी**।→ पद २५८-५।

टोप—संज्ञा पु० [हि०] लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी, शिरस्त्राण।~ स्वाद सनांह **टोप** ममिता कौ कुबुद्धि कमांन चढ़ाई। → सब० ६३-५, सब० ११८-३।

टोवहु—क्रि० [हि० टोहना] खोजते हो, टटोलना। ~ पेलना अछत पेलि चलु बौरे, तीर तीर का **टोवहु** हो। →कहरा (३) १-२०।

ठ

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर+आई (प्रत्य०)] प्रभुता, स्वामित्व, सरदारी। ~जहाँ मसीति देहुरा नाँहीं, तहँ काकी **ठकुराई**।→पद ३२६-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठग—संज्ञा पु० [सं० स्थग] धूर्त, धोखा देने वाला। ~ ठ ठा ठौर दूरि, **ठग** नियरे, नितिकै निठुर कीन्ह मन घेरै। →ज्ञान चौं० (१) २७।

ठगिनि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठगिनी] ठगने वाली, धोखा देने वाली।~ माया महा **ठगिनि** हम जानीं। → पद २२७-१।

ठगौरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] भ्रम में डालने वाली क्रिया या चतुराई, मोहित करने वाली क्रिया, माया। ~ हरि ठग जगत **ठगौरी** लाई। → पद ३३५-१, सब० १३०-५।

ठगौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग+बौरी] ठगने की कला, जादू, टोना। ~ये कलि गुरू बड़े परपंची, डारि **ठगौरी** सब जग मारा।→ पद ३२४-७।

ठगौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग+बौरी] ठगने वाली, माया।~आँधरि गुष्टि स्रिष्टि भौ बौरी, तीनि लोक महँ लागि **ठगौरी**।→र० ११-१।

ठपका—संज्ञा पु० [दे०] धक्का, ठेस। ~ **ठपका** लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि। → सा० चिता० (१२) ३६-२।

ठमकाए—क्रि० [सं०स्तम्भ] बजाने से। ~का चूरा पाइल झमकाए, कहा भयो बिछुआ **ठमकाए**।→सब० १३०-३।

ठमूकड़ा—वि० [सं० स्तम्भ] स्थिर, क्रियाशून्य।~अहरनि रहा **ठमूकड़ा**, जब उठि चला लुहार।→सा०काल० (४६) २१-२।

ठहराइ—क्रि० [हि०] स्थिर करना, चरितार्थ करना। ~कथनी कथी तो क्या भया, जौ करनीं नाँ **ठहराइ**। →सा० कर०बि० क०(१८) १-१।

ठहरांनी—क्रि० [सं० स्थैर्य+ना (प्र०)] रुकी हुई, प्रतिष्ठित। ~कहै कबीर तेरा संत न जाइगा रांम भगति **ठहरांनी**।→सब० १२३-६।

ठहरानी—क्रि० [हि० ठहरना] स्थिर हो गई। ~ पवन थक्यो गुड़िया **ठहरानी**, सीस धुनै धुनि रोवै प्रानी। →सब० १६१-४।

ठहराय—क्रि० [हि० ठहराना] रुकता है।~ अति भरमत भरम हिंडोलना नेकु नहीं **ठहराय**। → हिंडोला (८) २-६।

ठाँइ—संज्ञा पु० दे० 'ठाउँ'।

ठाँई—संज्ञा पु० दे० 'ठाउँ'।

ठाउँ—संज्ञा पु० [सं० स्थान] स्थान, जगह। ~अनेक जुग जो पुन्नि करै, नहीं राम बिन **ठाउँ**।→सा० सुमि० (२) २०-१, सा० जर० (८) ५-१, कहरा (३) १०-६, पद २३७-७; र० २६-२।

ठाऊँ—संज्ञा पु० दे० 'ठाउँ'।

ठाँवै-ठाँव—संज्ञा पु० [सं० स्थान से] स्थान-स्थान पर। ~पुर पट्टन सूबस बसै, आनंद **ठाँवै-ठाँव**। → सा० साधु म० (३०) २-१।

ठाकुर—संज्ञा पु० [सं० टक्कुर] स्वामी; मालिक, सद्गुरु। ~ नटवर विद्या खेल जो जानै, तेहिका गुन सो **ठाकुर** मानै। →र० ६८-३, पद ३४२-६, कहरा (३) १-१०, सब० १६-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठाना—क्रि० [सं० अनुष्ठान] रचा। ~ चारि वेद ब्रह्मे निज **ठाना**, मुक्तिक मर्म उनहुँ नहिं जाना।→ र० ३४-३।

ठानिन्हि—क्रि० [सं० अनुष्ठान] तत्परता के साथ प्रतिपादन करते हैं।~रामहुँ केर मरमु नहिं जाना, लै मति **ठानिन्हि** वेद पुराना।→र० ६१-३।

ठानी—वि० [सं० अनुष्ठान से] स्थिर, सिद्ध। ~ गये पंडु कुन्ती सी रानी, सहदेवहु जिन बुधि मति **ठानी**।→ र० ५५-३।

ठाम—संज्ञा पु० [सं० स्थान] स्थान, सहारा। ~सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं **ठाम**। →सा० सुमि० (२) २६-२, र० ४८-३।

ठामा—संज्ञा पु० दे० 'ठाम'।

ठाहर—क्रि० [हि० ठहरना] ठहरना, रुकना। ~ तिहिं पूति बाप इक जाया, बिनु **ठाहर** नगर बसाया।→ सब० ८-८।

ठाहरि—संज्ञा पु० [सं० स्थान] स्थान पर। ~ अवधू जांनि राखि मन **ठाहरि**।→सब० ३३-१।

ठाहरै—क्रि० [सं० स्थिर] ठहरता है, टिक पाता है, रुक सकता है। ~ बिरला कोई **ठाहरै**, सतगुरु साँमी झूठि।→सा० संग० (२६) १-१।

ठाहरै—क्रि० [सं० स्थिर] रुकना।~ नीर मिवाणाँ **ठाहरै**, नाँ कछु छापर-डाँह।→सा० निगु० (५५) ४-२।

ठिक—वि० [हि०] ठीक, वास्तविक, यथार्थ। ~ दुइ चकरी जनि दरर पसारहु, तब पैहौ **ठिक** ठौरा हो।→ कहरा (३) २-१३।

ठिठकी—वि० [सं० स्थित] डरी हुई; त्रस्त।~करि सिंगार बहै पखिआरी, संत की **ठिठकी** फिरै बिचारी।→ सब० ४६-६।

ठीक दै—मुहा० [हि० ठीक देना] नियत करके, पूरा-पूरा करके। ~ चार लाख अरु **ठीक दै**, जनम लिख्यौ सब चोटै।→ पद २१७-४।

ठूँठा—वि० [सं० स्याणु] जिसका हाथ कटा हो, लूला। ~ सिसुपाल की भुजा उपारिन, आपु भए हरि **ठूँठा**। →सब० ४-८।

ठेलिया—क्रि० [हि०] ढकेलना, ठेलना, धक्का देना।~अँधहि अंधा **ठेलिया**; दोनों कूप पड़ंत।→सा० गुरु०(१) १५-२।

ठैऊ—संज्ञा पु० [सं० स्थान] अधिष्ठान। प्रथम अरंभ कौन को भैऊ, दूसर प्रगट कीन्ह सो **ठैऊ**।→र० ३-१।

ठोंकत—क्रि० [हि० ठोंकना] चोट करना। ~ पानी मँह पखान की रेखा, **ठोंकत** उठै भभूका।→सब० १६१-२।

ठोकि बजाइ—मुहा० = ठोकना बजाना। ठोंक बजाकर, परीक्षण करके। ~ हरि बिन अपना कोइ नहीं, देखे **ठोकि बजाइ**।→सा० बिर्क०(३७) १०-२।

ठोली—क्रि० वि० [दे०] सरलतापूर्वक। ~चिंतामणि क्यूँ पाइए **ठोली**, मन दे रांम लियौ निरमोली।→ सब० २१-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठौर—संज्ञा पु० [सं० स्थान] निश्चय। ~आपु जियत लखु आपु **ठौर** करु, मुए कहाँ घर तेरा। → सब० १८०-२।

ठौर—संज्ञा पु० [सं० स्थान] स्थान, स्थल, जगह, ठिकाना।~जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया **ठौर**। → सा० पर० (५) ३७-१, हिंडोला(८) ३-२, सा० काल० (४६) २५-२, ज्ञान चौं० (१) २७, सब० १७०-४, सा० सू० मा० ४-२, ५-१, कहरा (३) २-१३, सा० चिता० (१२) ३६-१।

ठौरा—संज्ञा पु० दे० 'ठौर'।

ड

डंक—संज्ञा पु० [हि० डंका] एक प्रकार का बाजा, जो ताँबे या लोहे के बर्तन पर चमड़ा चढ़ा कर बजाया जाता है, डंका; नगाड़ा। ~ मेरु दंड पर **डंक** दीन्ह; अष्ट कवँल परजारि दीन्ह। → वसन्त (४) २-२, सब० १८-२।

डंड—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] पाप, अपराध। ~ राम न रमसि कौन **डंड** लागा, मरि जैबे का करिबे अभागा। →पद २५८-१।

डंड—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] मेरुदण्ड। ~ जरि गौ कंथा धजा गयौ टूटी, भजि गौ **डंड** खपर गयौ फूटी। → सब० १२६-४।

डंडु—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] डण्डा।~ जम का **डंडु** मूंड माहिं लागै खिन महिं करै निबेरा।→पद २१६-८।

डंडूल—संज्ञा पु० [सं० द्वन्द्व, प्रा० डंडुल] वात्याचक्र, बवंडर, द्वन्द्व। ~ कर सेती माला जपैं, हिरदै बहै **डंडूल**। →सा० भेष० (२४) १-१।

डगमग—संज्ञा पु० [हि०] अस्थिरता। ~**डगमग** छांडि दे मन बौरा। → सब० १३७-१।

डरपत—क्रि० [हि० डरना] डरते रहो। ~सुवटा **डरपत** रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत बिलाई।→पद ३२०-१।

डरपता—क्रि० [हि० डर] डरना, भयभीत होना। ~ आँखि न मीचौं **डरपता**, मत सपना ह्वै जाइ। → सा० उप० (५०) ६-२।

डरपती—क्रि० [हि० डरना से] भयभीत होती है।~मड़हट देखें **डरपती** चौड़े दीया जालि! → सा० काल० (४६) १६-२।

डरिहो—क्रि० [हि० डालना] डाला जाएगा। ~ मरिहो रे तन का ले करिहो, प्रान छूटे बाहर लै **डरिहो**। →पद २२१-१।

डसिले—क्रि० [सं० दंशन] डस लिया। ~संसार भवंगम **डसिले** काया, अरु दुखदारन व्यापै तेरी माया।→सब० १४५-३।

डसिहै—क्रि० [सं० दंशन] डस लेता है।~जे छाँड़ौं तौं बूड़िहौं, गहौं त **डसिहै** बाँहि। → सा० बिर० (३) ४३-२।

डहकाई—क्रि० [हि० डहकाना] धोखा देती है। ~ या मंजारी मुगध्र न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानै, सब दुनिया डहकाई । → पद ३२०-३ ।

डहकाए—क्रि० [हि० डहकाना] भटकते हुए, धोखा खाते हुए।~ग्यांन अचेत फिरै नर लोई, ताथैं जनम जनम डहकाए ।→पद ३३१-२ ।

डंहके—क्रि० [हि०] ठगा, धोखा दिया । ~ या माया सुर नर मुनि डंहके, पीर पयंबर कौं धरि खाई । →सब० १२०-७ ।

डहकै—क्रि० [हि०] चिंघाड़ना । ~ कानि तराजू सेर तिन पौत्रा, डहकै ढोल बजाई हो । → कहरा (३) ४-५ ।

डहडही—क्रि० [दे०] हराभरा होना, लहलहाना ।~जे काटौं तौ डहडही, सीचौं तौ कुम्हिलाइ । → सा० बे० (५८) ३-१ ।

डांग—संज्ञा स्त्री० [दे०] डण्डा, लाठी । ~ घर घर खायउ डांग समुझ मन बौरा हो ।→ चाँचर (५) २-१६ ।

डांड कै डोरिया—यौ० [हि०] कमर की डोरी, करधनी । ~ **डांड कै डोरिया** तोरिलाइन, जो कोटिन धन होई हो ।→कहरा (३) ६-२ ।

डांडि—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] चिह्न, तिलक । ~ तौ जनतैं तीनि डांडि किन सारै ।→सब० १२६-२ ।

डाँड़ि—संज्ञा पु० [सं० दण्ड] दण्ड । ~ बाँधि मारि डाँड़ि सभ लैहैं, छुटिहै सभ मतवाली हो । → कहरा (३) १-११ ।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] हिंडोले में लगी हुई चार लकड़ियाँ या डोरी की लरें जिनसे बँधी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है । ~ सुभ असुभ बनाय डाँड़ी गहै दोनौं पानि । → हिंडोला (८) १-४ ।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] तराजू का डंडा जिसके दोनों सिरों से पलड़े लटकाए जाते हैं ।~विन डाँड़ी बिन पालरै, तौलै सब संसार । → सा० सम्र० (३८) ८-२ ।

डाकि पड़े—क्रि० [हि० डाँकना + पड़ना] कूद पड़े । ~ **डाकि पड़े** ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार । → सा० सूरा० (४५) २६-२ ।

डाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिशाचिनी, राक्षसी, डाइन । ~ कबीरा माया **डाकिनी**, सब काहू कौं खाइ । → सा० माया० (१६) २१-१ ।

डागल—संज्ञा पु० [हि० डग, डगर] ऊबड़-खाबड़ भूमि या मार्ग । ~ **डागल** ऊपरि दौरनां, सुख नींदड़ी न सोइ । → सा० चिता० (१२) ५६-१ ।

डाजा—क्रि० [सं० दग्ध] जलना, क्रुद्ध होना ।~स्वारथ लागि रहै वेकाजा, नाम लेत पावक जौं **डाजा** ।→विप्र० (२) १० ।

डाढ़े—वि० [सं० दग्ध] दग्ध । ~दिन दिन जरै जलन के पाऊँ, **डाढ़े** जाय न उमँगे काऊ ।→र० ५६-१ ।

डार—संज्ञा स्त्री० [हि० डाल] डाली से, शाखा से । ~ पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै **डार** ।→ सा० चिता० (१२) ३४-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डाला—संज्ञा पु० [हि० डाल] शाखा। ~कहै कबीर सब भेख भुलांनां मूल छाँड़ि गहि **डाला**।→पद ३१४-८।

डाव—संज्ञा पु० [सं० दाच्] दाँव, चाल। ~ नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या **डाव**। → सा० गुरु० (१) १६-१।

डाहै—क्रि० [सं० दाहन] दग्ध करता है। ~उदधि भूत ते तरुवर **डाहै**, मच्छ अहेरा खेलै।→पद १६६-८।

डाहै—क्रि० [सं० दग्ध] जला देता है। ~ अनल जोति **डाहै** एक संगा, नैन नेह जस जरै पतंगा।→र० २३-३।

डाहो—क्रि० [सं० दग्ध] जला दिया। ~तीसर बूड़े पारथि भाई, जिन वन **डाहो** दग्वा लाई।→र० १२-५।

डिंभ—संज्ञा पु० [सं० दंभ] घमंड, पाषण्ड, आडम्बर, अभिमान, दंभ। ~ डाइनि **डिंभ** सकल जग खंदा। → सब० ८५-६, र० ४७-४, पद २६७-७।

डिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] भारत की राजधानी, दिल्ली। ~ चारि दिग महि मंड रचो है, रूम साम बिच **डिल्ली**। →सब० ६४-१५।

डिगम्बर—संज्ञा पु० [सं० दिगम्बर] नंगा रहने वाला, जैन साधु, दिगम्बर यति। ~ मौंनी बीर **डिगम्बर** मारे जतन करंता जोगी।→पद २४४-३।

डिगै—क्रि० [हि० डिगना] विचलित होना। ~मन न **डिगै** तनु काहे को डेराई।→पद २१३-१।

डुगडुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] एक प्रकार का छोटा अनवत्थ (चमड़ा से मढ़ा हुआ) वाद्य। ~ ढोल दमामा **डुगडुगी**, सहनाई औ भेरि। →सा० चिता० (१२) ३-१।

डूँगर—संज्ञा पु० [सं० तुंग] टीला, भीटा। ~कबीर हरि रस बरषिया, गिरि **डूँगर** सिषराँह।→सा० निगु० (५५) ४-१।

डूँगरि—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंग से] टीला या पहाड़ी पर। ~ **डूँगरि** बूठा मेह ज्यूँ, गया निबाँणा चालि। → सा० मन० (१३) २२-२।

डूंघै—वि० [पं०] गहरा। ~ तीरथ करि करि जग मुआ, **डूंघै** पानी न्हाइ।→सा०चाँण० (१७) १८-१।

डेरा—संज्ञा पु० [हि०] निवासस्थान। ~ मन मारि अगमपुर लीया, चित्र-गुप्त परे **डेरा** कीया।→पद २०५-७।

डेहरि—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दहलीज़] द्वार। ~ जिन्ह सभ जुक्ति अगमन कै राखिनि, धरनि माछ भरि **डेहरि** हो।→ कहरा (३) १-१८।

डोरै-डारै—मुहा० डोरा डालना, परचाना, अपनी ओर आकृष्ट करना। ~ डांइन **डारै सुनहाँ डोरै**, सिंघ रहै बन घेरे।→सब० ४४-३।

ढ

ढँढोलता—क्रि० [सं० ढुंढन] टटोलता, ढूँढ़ता। ~ सायर माँहि **ढँढोलता**, हीरै पड़ि गया हत्थ। →सा० पर० (५) ३४-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ढंढोल्या—क्रि० [सं० ढुंढन] ढूँढ़ता है या ढूँढ़ा। ~ रतन निराला,पाइया, जगत **ढंढोल्या** बादि। →सा० पर० (५) ३३-२।

ढहाऊं—क्रि० [हि० ढहाना] गिरा दूं। ~ धीर गंभीर खड़ग लिए मुदगर माया कै कोट **ढहाऊं** जी। → पद ३०७-५।

ढहाया—क्रि० [सं० ध्वंसन] गिरा दिया, नष्ट कर दिया। ~ ब्रह्म अगिनि सहजैं परजाली एकहिं चोट **ढहाया**। →सब० ९३-८।

ढहि पड़ा--क्रि० [सं० ध्वंसन] मकान आदि का ढह जाना, गिर जाना। ~ कबीर मंदिर **ढहि पड़ा**, ईंट भई सैवार। → सा० चिता० (१२) १७-१, १८-१।

ढहि पड़ै—क्रि०[सं० ध्वंसन + हि० पड़ना] ढह जाते हैं, गिर जाते हैं। ~ जो चुनिया सो **ढहि पड़ै**, जन्मे सो मरि जाय। → सा० काल० (४६) ११-२।

ढाकनो—क्रि० [हि० ढकना] छिपाना। ~ स्वान बापुरो धरनि **ढाकनो**, बिल्ली घर की दासी। → पद ३००-६।

ढाढ़स—संज्ञा पु० [सं० दृढ़] साहस। ~ नर को **ढाढ़स** देखहु आई, कछु अकथ कथा है भाई। → सब० १५५-१।

ढारि पासा--मुहा० = पासा ढालना, कर्म करना। ~बाजीगरी संसार कबीरा, चेति **ढारि पासा**।→सब० १७५-८।

ढालि—क्रि० [हि०] फेंकना। ~ कहैं कबीर ते कबहुं न हारहिं **ढालि** जु जानंहि पासा। → सब० १९०-८।

ढिग—क्रि० वि० [सं० दिक्] समीप, निकट।~तेरी **ढिग** मिनी कछू करि पुकार। → पद ३३८-२। वसंत (४) १२-३।

ढीकुली--संज्ञा स्त्री० [दे०] कुएँ से पानी खींचने वाला यंत्र। ~ सुरति **ढीकुली** लेज लौ, मन नित ढोलनहार। →सा० लै० (१०) २-१।

ढुकि ढुकि—क्रि० [दे० ढुकना] घुस-घुस कर।~ग्रहन अमावस **ढुकि ढुकि** माँगै, कर दीपक लिए कूप परै।→ पद २७६-५।

ढुरि—क्रि० [हि० ढरना या ढुलना] ढरना या ढुलक जाना, सरक जाना। ~अस **ढुरि** जाहु रांड के करहा प्रेम प्रीति ल्यौ लाए रे।→पद २५५-२।

ढुरि—क्रि० [हि०] ढुरक कर या लुढ़ककर। ~ जैसे जल जलही **ढुरि** मिलियौ त्यौं **ढुरि** मिल्यौ जुलाहा। → पद २८५-४, सा० पर० (५) १८-२।

ढुलि—क्रि० दे० 'ढुरि'।

ढेला—संज्ञा पु० [सं० दल] मिट्टी आदि का टुकड़ा। ~ उँच निच परबत **ढेला** न ईंट, बिनु गायन तहँवा उठे गीत।→सब० १९५-२।

ढोर—संज्ञा पु० [हि०] गाय, भैंस आदि पालतू पशु, मवेशी। ~ **ढोर** पतंग सरे घरिआरा, तेहि पानी सब करैं अचारा।→र० ७४-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ढोलनहार—संज्ञा पु० [दे० ढोल + हार (प्रत्य०)] ढरकाने या खींचने वाला व्यक्ति । ~सुरति ढीकुली लेज लौ, मन नित **ढोलनहार** । → सा० लै० (१०) २-१ ।

ढोल्या—क्रि० [सं० दोलन] वहन किया है, धारण किया है ।~बाहरि **ढोल्या** हींगलू, भीतरि भरी भँगारि ।→सा० भेष० (२४) ७-२ ।

ढौरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] लगाव, लगन । ~ हमसूँ प्रीति न करि री बौरी, तुम्ह से केते लागे **ढौरी** । → पद २४३-५ ।

त

तंग—संज्ञा पु० [हि०] ज्ञान ।~आवत जात दोऊ विधि लूटैं, सर्व **तंग** हरि लीन्हा हो ।→ कहरा (३) ८-२ ।

तंगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दुःख, सीमाएँ । ~बंध तै निर्बंध कीया तोरि सब **तंगी** । →पद ३२८-६ ।

तंत—संज्ञा स्त्री० [सं० तंत्र] तंत्री । ~ सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त । → सा० बिर० (३) २०-१ ।

तंत मंत—सज्ञा पु० [सं० तंत्र मंत्र] तंत्र मंत्र । ~ इक **तंत मंत** ओषध बाँन, इक सकल सिध राखैं अपांन । → सब० ६१-६ ।

तंति—संज्ञा पु० [सं० तन्तु] तांत ।~ लवानालि **तंति** एक सँमि करि, जंत्र एक भल साजा । →सब० १७२-३ ।

तंबोली—संज्ञा पु० [सं० ताम्बोल] ताम्बूल (पान) बेचने वाला ।~ **तंबोली** के पान ज्यौं, दिन-दिन पीला होइ । → सा० साध सा० (२६) ६-२ ।

तइयो—अव्य० [सं० तथापि] फिर भी, तो भी । ~ खूँटा गाड़ि डोरि दृढ़ बाँधे, **तइयो** तोरि पराई । → पद २०६-४ ।

तकाई—क्रि० [हि० तकना] खोजा । ~धूप दाझतैं छाँह **तकाई**, मति तर-वर सच पाऊँ । → सब० ६६-३ ।

तकुला—संज्ञा पु० [हि० ताकना] देखने योग्य अर्थात् परमपद । ~ भैसिन्ह माँह रहत नित बकुला, **तकुला** ताकि न लीन्हा हो ।→कहरा (३) २-८ ।

तजलों—क्रि० [सं० त्यजन] त्याग दिया । ~ **तजलों** कासी मति भइ भोरी, प्राननाथ कहु का गति मोरी । → सब० १६-३ ।

तटि—संज्ञा पु० [सं० तट से] किनारे । ~ सरवर **तटि** हंसिनी तिसाई ।→ पद ३११-१ ।

तणाँ—प्रत्य० [राज०] सम्बन्ध कारक चिह्न 'का' । ~ सब आसन आसा **तणाँ**, निवरति कोई नाहिं । →सा० माया० (१६) २७-१ ।

तत—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] सारतत्त्व । ~ दूजा बनिज नहीं कछु बाषर, राँम नाम दोऊ **तत** आषर । → सब० १४-५ ।

तत—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] तत्त्व, रहस्य, वास्तविकता । ~ फूटा कुंभ जल जलहि समांनां यह **तत** कथौ गियानी । →सब० ६१-६ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] तत्त्व, ब्रह्म। ~ जौ तत नाउँ न जानियाँ, गल मैं परिया फंद। →सा० क० बि० क० (१८) ४-२, सा० पर० (५) ३२-१, सा० सुमि० (२) ३-१।

तत—सर्व० [सं०] उसके। ~ गत फल फूल तत तरु पल्लव, अंकुर बीज नसाँनाँ। →सब० १५८-२।

तत—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] तत्त्व, सार। ~ हंस रूप कोइ साधु है, तत का जाननहार। → सा० सार० (३२) १-२, पद ३३०-२, सा० सुमि० (२) ३-१; सा० काल० (४६) १२-२, सब० ४४-७।

तत—संज्ञा पु० [सं० तत्व] सत्य। ~ भाई रे बिरलै दोस्त कबीर के यहु तत बार बार कासौं कहिए। →पद २०८-१।

ततबेता—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व वेत्ता] परमार्थ जानने वाला। ~ कहै कबीर सोई ततबेता जीवन मुक्ति समाइ। →पद ३०६-१०।

ततसार—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व + सार] सार तत्त्व। ~ करनी दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार। → सा० गुरु० (१) २८-२, सा०सुमि० (२) २-२।

तत्त—संज्ञा पु० दे० 'तत'।

तत्त—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] प्राकृतिक तत्त्व। ~ रैनि दिवस न चंद सूरज तहाँ तत्त पल्लौ नाहिं। → हिंडोला (८) १-२४।

तत्तु—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] सार, तत्त्व, गुण। ~ बोलना कासों बोलिय (रे) भाई, बोलत ही सब तत्तु नसाई। →र० ७०-१।

तत्तु—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व] रहस्य, भेद, मर्म। ~ लौहे लोह जस काटि सयाना, त्रिया कै तत्तु त्रियै पै जाना। → र० ५०-४।

तत्तुमसी—सर्व० [सं० तद् त्वम् असि] तू वही है। ~ तत्तुमसी इन्हके उपदेसा, ई उपनिषद् कहैं संदेसा। → र० ८-१।

तत्तुहि—संज्ञा पु० [सं० तत्त्व + हि० हि] सारतत्त्व में। ~ जो तन त्रिभुवन माहि छिपावै, तत्तुहि मिलै तत्त सो पावै। →ज्ञान चौं० (१) ३६।

तदबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] उपाय, युक्ति। ~ कै मुरीद तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ज्ञाना। → पद २६७-६।

तन—संज्ञा पु० [सं० तनु] शरीर। ~ फिर पाछे पछिताहुगे, यह तन जैहै छूटि। →सा० सुमि० (२) २५-२; सा० बीन० (५६) ४-१, सा० कस्तू० म्रि० (५३) ३-१।

तनक—वि० [सं० तनु] थोड़ा। ~ रांम बड़े मैं तनक लहुरिया। → पद ३३९-२।

तनि—संज्ञा पु० [सं० तनु] तन में, शरीर में। ~ सीतलता सुपिनै नहीं; फल फीका तनि ताप। → सा० मा० (१६) २०-२; सा० पर० (५) २९-२।

तनीं—चतुर्थी कारक [प्रा० तणी] के लिए। ~ ईश्वर गौरी पीवन लागे, राम तनीं मतिवारी रे। →सब० ८७-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तनी—संज्ञा पु० [सं० तन + ई (प्रत्य०)] शरीर पर की। ~ चिरकुट फाड़ि चुहाड़ा लै गयौ **तनी** तागरी छूटी। →पद २१६-१०।

तपति—क्रि० [सं० तपन] जलती है, तपती है। ~ना तल **तपति** न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लाग। →सब० ८३-४।

तपनि—संज्ञा स्त्री० [हि० तपना] जलन। ~ राम बिनु तन की **तपनि** न जाइ। →पद २६१-१।

तपसी—संज्ञा पु० [सं० तपस्वी] तपस्वी, तपस्या करने वाला। ~ कोई कहै मैं दाता रे भाई कोई कहैं मैं **तपसी**। →पद ३१५-७, पद २५२-३।

तपा—संज्ञा पु० [सं० तपस्वी] तपस्वी। ~**तपा** जु माते तब कै भेव, संन्यासी माते अहंमेव। →पद ३१०-४।

तबल—संज्ञा पु० [अ० तबलः] अवनद्ध वाद्य, चमड़े से मढ़ा हुआ बाजा। ~ रिपु कै दल मैं सहजहिं रौंदौ अनहद **तबल** घुराऊँ जी। → पद ३०७-७।

तबाई—क्रि० [फ़ा०] नष्ट हो जाना। ~ स सा सरा रचो बरिआई, सर वेधे सब लोग **तबाई**। → ज्ञान चौं० (१) ६७।

तमासा—संज्ञा पु० [अ० तमाशा] अनोखी बात। ~ तेहि ऊपर कछु अजब **तमासा**, मारो है जम किल्ली। →सब० ६४-१६।

तमासा—संज्ञा पु० [अ०] कौतुक, खिलवाड़, वैचित्र्य। ~ अनहद अनुभव की करि आंसा, देखहु यह विपरीत **तमासा**। → र० १६-१।

तमासा—संज्ञा पु० [अ० तमाशा] अद्‌भुत कार्य। ~ तीनि लोक ब्रह्मण्ड खण्ड मैं, अँधरा देख **तमासा**। → सब० २८-६, वसंत (४) ७-६।

तरँग—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहर, जल। ~ कवलपत्र **तरँग** एक माहीं, संगै रहै लिप्त पै नाहीं। → र० ७४-२।

तर—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे, तले। ~ सुम्रिति कहा आपु नहिं माना, तरुवर **तर** छागर होय जाना। → र० ६५-६, सब० २३६-२, सब० ८८-६, र० ७३-१।

तरउवा—संज्ञा पु० [हि०] खेदा करने वालों के सहयोगी, पदाति। ~चित्त **तरउवा** पवन खेदा सहज मूल बांधा। → सब० १००-३।

तरकस—संज्ञा पु० [फ़ा० तरकश] तूणीर, तीर या बाण रखने का चोंगा। ~ करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत की **तरकस** बंदा। → र० ६६-६, पद ३०७-४।

तरकस बंदा—संज्ञा पु० [फ़ा०] तरकस बाँधने वाला व्यक्ति, सिपाही। ~ करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत की **तरकस बंदा**। → र० ६६-६।

तरगस—संज्ञा पु० दे० 'तरकस'।

तरन—क्रि० [सं० तरण] उद्धार करने के लिए। ~ भवनिधि **तरन** चरन चिंतामनि, इक निमिख न यहु मनु लाया। → सब० ८८-४।

तरन—संज्ञा पु० [सं० तरण] तरने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाला। ~करु विचार विकार परिहरु, **तरन** तारने सोई। → पद २२८-८।

तरन-तारन—संज्ञा पु० [हिं०] उद्धार कर्त्ता हैं। ~ करि विचार त्रिकार परिहरि **तरन-तारन** सोइ। →सब० १८७-७।

तरपन—संज्ञा पु० [सं० तर्पण] देवताओं की तृप्ति के लिए स्नान करके मंत्रोच्चार करते हुए उन्हें जल देना। ~संझा **तरपन** औ षट कर्मा, ई बहु रूप करहिं अस धर्मा।→र० ३५-२।

तरब—क्रि० [हिं० तरना] पार कर जाएँगे।~कहै कबीर हम गौने जैबे, **तरब** कंत लै तूर बजाई। → पद ३१२-८।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] वृक्ष। ~भूमि बिना अरु बीज बिन, **तरवर** एक भाई। →सब० १-३।

तरस—संज्ञा पु० [सं० त्रस] दया, करुणा।~खसम पिछांनि **तरस** करि जिय मैं माल मनीं करि फीकी। → पद २२६-७।

तरसि—संज्ञा पु० [सं० त्रास] भय। ~ सासु की दुखी ससुर की पिआरी जेठ कै **तरसि** डरउँ रे। → पद २३२-३।

तराई—क्रि० [सं० तरण] उद्धार हो जाता है। ~ हरि का दास मरै जो मगहरि तौ सगली सैंन **तराई**। → सब० १७७-८।

तरासा—क्रि० [सं० त्रसन] भय उत्पन्न करती है। ~ उर्ध निरासा उपजि **तरासा**, हकराइन्हि परिवारा हो। →कहरा (३) ६-३।

तरुनि—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] युवती; स्त्री।~बुढ़िया हँसि बोलै मैं नितहिं बारि, मोहि अस **तरुनि** कहौ कौन नारि। →वसन्त (४) ४-१।

तलपैं—क्रि० [हिं० तड़पना] तड़पता हैं। ~ बिरहिन पिउ पावै नहीं, जियरा **तलपैं** माइ। →सा० विर० (३) ३४-२।

तलफि—क्रि० [हिं० तड़पना] तड़प गया। ~ पानी माँहि **तलफि** गौ भूभुरि, धूरि हिलोरा देई। → पद ३२३-३।

तलब—संज्ञा स्त्री० [अ०] बुलावा। ~आई **तलब** गोपालराइ की माया मंदिर छांडि चल्यौ। → पद २३३-१०।

तलि—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे।~ नाँ जाँनौं किस बिरिख **तलि** कूड़ा होइ करंक। → सा० निन्द्या० (५४) ७-२।

तवांई—क्रि० [सं० तपन] संताप ग्रस्त होना।~ दर्ब हीन कैसन पुरुषारथ, मनहीं माँह **तवाँई** हो। → कहरा (३) ६-५।

तवार्वाहिंगे—क्रि० [हिं० तपाना] तप्त करेंगे। ~ जैसे बहु कंचन के भूखन एकहिं घालि **तवार्वाहिंगे**। → सब० १८४-५।

तष्टा—संज्ञा पु० [फ़ा० तश्त > तश्ता > तष्टा] तसला। ~कबीर **तष्टा** टोकनी, लीए फिरै सुभाइ। →सा० चाँण० (१७) ५-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तसबी—संज्ञा स्त्री० [अ० तसबीह] सुमिरिनी; जप माला। ~ कोई फेरै माला कोई फेरै **तसबी**, देखौ रे लोगा दोनों कसबी। →सब० ३८-३।

तहवाँ—क्रि० वि० [सं० तत्र] वहाँ; वहाँ पर। ~ कबीर मन पंछी भया, भावै **तहवाँ** जाइ। → सा० संग० (२६) ७-१; र० ३४-५, सब० १६९-३।

तहिया—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तहाँ, उस स्थान पर; तब, उस समय, सहज शून्य ब्रह्म या निरालम्ब अवस्था। ~ **तहिया** होत कली नहिं फूला, **तहिया** होत गर्भ नहिं मूला। →र० ७-१५; र० ४०-२।

तहियो—अव्य० [सं० तदपि] तब भी, फिर भी। ~ खेवै सभै मर्म नहिं जानी, **तहियो** कहै रहै उतरानी। →र० ४५-६।

ताँइ—अव्य० [सं० तावत्] कारण, लिये, निमित्त। ~ कबीर करत है बीनती, भौसागर के **ताँइ**। → सा० वीन० (५६) ५-१।

तांति—संज्ञा स्त्री० [सं० तंत्री] एक प्रकार का वाद्य जिसमें तार लगे होते हैं; जैसे—वीणा, सितार आदि। ~ कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै **तांति**। →सा० सब० (४०) १-१।

तांमसु—वि० [सं० तामस] तमस् से युक्त। ~ बिसमिल **तांमसु** भरम कंदूरी, भखि लै पंचै होइ सबूरी। →सब० ७२-४।

ता—सर्व० [सं० तद्] उससे। ~दाध बली **ता** सब दुखी, सुखी न देखौं कोइ। →सा० दया नि० (५१) ३-१।

ताइ लिया—क्रि० [हिं० तवा] मूँदकर रखा, ढंक दिया, सुरक्षित किया। ~कसनी दे कंचन किया, **ताइ लिया** ततसार। →सा० गुरु० (१) २८-२।

ताइँ—अव्य० [सं० तावत्] निमित्त, लिए। ~ किएउँ सिंगारु मिलन कै **ताइँ**, हरि न मिले जग जीवन गुसाइँ। →पद ३३९-३।

ताका—सर्व० [सं० तद्] उसका। ~ **ताका** जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि। →सा० पर० (५) ४५-२।

ताकू—संज्ञा पु० [हिं०] सूत काटने के काम में व्यवहृत उपकरण, तकली। ~**ताकू** केरे सूत ज्यों, उलटि अपूठा आंनि। →सा० मन० (१३) १-२।

ताग—संज्ञा पु० [सं० तार्कव] तागा, डोरा। दे० 'तागा'। ~ हार गुह्यौ मेरो राँम **ताग**, बिचि बिचि मान्यक एक लाग। → पद २३४-३।

तागरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताग+कड़ी] मेखला, करधनी। ~चिरकुट फाड़ि चुहाड़ा लै गयौ तनी **तागरी** छूटी। →पद २१६-१०।

तागा—संज्ञा पु० [सं० तार्कव, प्रा० तग्गो] तागा, सूत। ~ जब लगि **तागा** बाहौं बेही, तब लगि बिसरै रांम सनेही। →सब० १३९-४।

तागि—संज्ञा पु० दे० 'तागा'।

ताजनैं—संज्ञा पु० [फ़ा० ताज़ियाना] कोड़ा। ~ चलु रे बैकुंठ तुझहि लै

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तारउं, हिचहि त प्रेम **ताजनैं** मारउं। →सब० ३-४।

ताजी—संज्ञा पु० [फ़ा०] अरबी घोड़ा। ~ **ताजी** तुरुकी कबहु न साजेहुं, चढ़ेउ काठ के घोरा हो। → कहरा (३) १-२७।

ताड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] ध्यान, समाधि। ~ दसवैं द्वारै **ताड़ी** लागी अलख पुरुख जाको ध्यान धरै।→ पद २४६-५।

तात—संज्ञा पु० [सं०] पिता। ~**तात** जननी कहै पुत्र हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला।→र० ७८-२।

तातपर्ज—संज्ञा पु० [सं० तात्पर्य] तात्पर्य, भाव। ~ कहों **तातपर्ज** एक ऐसा, जस पंथी बोहित चढ़ि वैसा। → र० ५१-२।

ताता—वि० [सं० तप्त] तप्त, गर्म। ~ **ताता** लोहा यौं मिलै, संधि लखै नहिं कोइ। → सा० बीन० (५६) ७-२, विप्र० (२) २८।

तातैं—सर्व० [सं० तत्] उससे।~माला फेरै मनमुखी, **तातैं** कछू न होइ।→ सा० भेष० (२४) ३-१।

तातैं—वि० [सं० तप्त] तप्त। दे० 'ताता'। ~ सतगुर साँचा सूरिवाँ, **तातैं** लोहि लुहार। → सा० गुरु० (१) २८-१।

ताथैं—अव्य० [सं० तदेव] इसी कारण। ~निर्मल कीन्हीं आत्माँ, **ताथैं** सदा हजूरि।→सा० गुरु (१) ३५-२।

ताथैं—सर्व० [सं० तत्] उसी से। ~ जो कछु सो हरि किया, **ताथैं** भया कबीर कबीर।→सा० सम्र०(३८) १-२।

तामँह—सर्व० [सं० तत्] उसमें। ~ गोड़ न मूड़ न प्रान अधारा, **तामँह** भरमि रहा संसारा।→र० ७२-२।

तार—संज्ञा पु० [सं० तारा] नक्षत्र। दे० 'तारा'। ~ चमकै बिजुरी **तार** अनंत; तहाँ प्रभू बैठे कवलाकंत। →सब० १४०-४।

तारन—संज्ञा पु० [सं० तारण] तारने वाला, उद्धार करने वाला। ~ **तारन** तिरन तिरन तूं **तारन,** और न दूजा जानौं। सब० ६६-७, पद २२८-८।

तारन—क्रि० [हि० तारना] उद्धार करना। ~ **तारन** तरनु तबै लगि कहिए जब लगि तत्त न जाँनाँ।→ पद २६४-५।

तारा—संज्ञा पु० [सं०] नक्षत्र, ज्योति, अग्नि। ~ धरती गगन पवन नहिं होता; नहिं तोया नहिं **तारा**।→सा० पर० (५) २७-१।

तारि—क्रि० [सं० तारण] भव-सागर से पार करके। ~ राम मोहि **तारि** कहाँ लै जइहौ। → पद २६४-१।

तारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] ध्यान, एकाग्रता, दे० 'ताड़ी'। ~ ससिहर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग **तारी**।→ पद २०१-४, सब० १३-१७, सब० १५८-४, ज्ञान चौं० (१) ४०, ४१, र० ६४-३।

ताल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का बाजा, झाँझ; मँजीरा। ~धौल मंदलिया बैल रबाबी कउवा **ताल** बजावै।→पद ३३१-३।

तालाबेलि—संज्ञा स्त्री० [हि० तलफना]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छटपटाहट, तड़पन, व्याकुलता ।~ **तालाबेलि** होत घट भीतर, जैसे जल बिनु मींन ।→सब० २२-५ ।

ताल—संज्ञा पु० [सं० तल्ल] तालाब। ~ अम्बर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब **ताल** । →सा० ब्रिर० (३) २-१ ।

तिन—संज्ञा पु० [सं० तृण] घास । दे० 'तिनका' । ~ **तिन** कै ओटे राम हैं, परबत मेरे भाइ । → सा० कस्तू० (५३) ७-१, पद २६८-५ ।

तिनका—संज्ञा पु० [सं० तृण, तिनका । दे० 'त्रिन' ।~समंदहि **तिनका** बरिगिनै; स्वाँति बूंद की आस ।→सा० निह० (११ ५-१ ।

तिना—संज्ञा पु० [सं० तृण] तृण, तिनका । दे० 'तिन' । ~राम सनेही दास बिचि, **तिना** न संचर होइ ।→ सा० साधसा० (२६) १४-२ ।

तिरत—क्रि० [हि० तिरना] पार होते । ~ जैसी कहै करै जो तैसी, तौ **तिरत** न लागै बारा । → पद २६८-३ ।

तिरत—क्रि० [सं० तरण] तैरने या पार करने में ।~कबीर मधि अंग जे को रहै, तौ **तिरत** न लागै बार । →सा० मधि० (३१) १-१ ।

तिरन—संज्ञा पु० [हि०] उद्धार करने का साधन ।~तारन **तिरन** त्रिरन तूं तारन, और न दूजा जाँनौं ।→सब० ६६-७ ।

तिरनहुं—संज्ञा पु०[सं०तृण] तृण को भी । ~ **तिरनहुँ** कबहुं न निन्दिए, पाँव तले है जोइ ।→सा०निन्द्या० (५४) ६-१ ।

तिरविक्रम—संज्ञा पु० [सं० त्रिविक्रम] विष्णु । ~पृथु गए पृथिमी के राव, **तिरविक्रम** गए रहे न काव ।→वसन्त (४) ६-३ ।

तिराइ—क्रि० [सं० तरण] तैरना ।~ मूरिष संग न कीजिए, लोहा जल न **तिराइ** ।→सा० कुसं० (२५) २-१ ।

तिराई—क्रि० [सं० तरण] पार हो सकते हैं । ~ हरि को दास मरै जो मगहरि, सेनां सकल **तिराई** । → पद ३०८-८ ।

तिरि—क्रि० वि० [हि०] मुक्त हो जाय । ~भोजन कहें भूखे जे भाजै तो सब कोई **तिरि** जाई ।→सब० १६८-४ ।

तिरि—क्रि० [हि० तैरना] तैर कर । ~ भौ बूड़त कछु उपाइ करीजै ज्यौं **तिरि** लंघै तीरा । →पद २३१-६ ।

तिरि गए—क्रि० [सं० तरण] तैर कर पार हो गए । ~ हलके हलके **तिरि गए**, बूड़े जिन सिरभार । → सा० चिता० (१२) ६२-२ ।

तिरिबौ—क्रि० [हि० तिरना] पार करना । ~मन ग्यांन जांनि कै करि बिचार, रांमरमत भौ **तिरिबौ** पार। पद २२४-८ ।

तिरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिया] स्त्री। ~ **तिरिया** त्रिस्नां पापिनी, तासों प्रीति न जोर।→सा० माया० (१६) १४-१, सब ६६-६ ।

तिरिये—वि० [सं० त्रीणि] तीनों से । ~ ते **तिरिये** भग लिंग अनन्ता, तेऊ न जाने आदि औ अंता।→र०२-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिरूँ—क्रि० [सं० तरण] पार करूँ। ~ कहै कबीर कैसे **तिरूँ**, पंच कुसंगी संग।→सा० मन० (१३) २१-२।

तिरै—क्रि० [हि० तरन] पार हो जाना, उद्धार हो जाना। ~ जीतौ बूड़ौ हारौ **तिरै**, गुरु परसादि जीवत ही मरै। → सब० ५३-७, सब० १४०-१८।

तिरै—क्रि० [सं० तरण] तरना, उद्धार होना, पार होना।~कहै कबीर सोई गुरु मेरा, आप **तिरै** मोहिं तारै।→ सब० ४४-८।

तिलक—वि० [सं०] श्रेष्ठ। ~ तत्त **तिलक** तिहुँलोक मैं, रामनाम निज-सार। → सा० सुमि० (२) ३-१।

तिवास—वि० [सं० त्रि + वासर] तीन दिन का बासी। ~जैसे दूध **तिवास** का, उलटि हुआ जो आक। →सा० विर्क० (३७) २-२।

तिसनां—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] तृष्णा, लोभ। ~ **तिसनां** तीर रहै घट भीतरि यहु गढ़ु लिऔ न जाई। → सब० ६३-६, सब० १०२-६।

तिसाई—वि० [सं० तृषा से] प्यासा ही, तृषित ही। ~देवल बूड़ा कलस सों, पंखि **तिसाई** जाइ।→सा० रस० (६) ७-२, पद ३११-१।

तिसै—सर्व० [हि०] उसी को। ~तब लगि प्रानीं **तिसै** सरेवहु जब लगि घट मंहि सांसा।→सब० १६०-५।

तीखा—वि० [सं० तीक्ष्ण] नुकीला। ~ कबीर मन **तीखा** किया, लाइ बिरह खरसान। → सा० सजी० (४७) ५-१।

तीतर—संज्ञा पु० [सं० तित्तिर] एक पक्षी विशेष। ~काल अचिंता झड़-पसी, ज्यौं **तीतर** कौं बाज। →सा० काल० (४६) ६-२।

तीतरबानीं—वि० [सं० तीतरवर्णी] तीतर पक्षी के वर्ण वाली अर्थात् मिश्रित रंग वाली।~कबीर गुण की बादली, **तीतरबानीं** छाँहि। → सा० माया० (१६) २३-१।

तीर—संज्ञा पु० [फ़ा०] वाण, शर। ~ सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे **तीर**।→सा० गुरु० (१) ६-१, सब० ६३-६, सब० २६२-१।

तीर—क्रि० [हि०] पार लगना।~ ऐसो दुर्लभ जात सरीर, राम नाम भजु लागु **तीर**।→वसन्त (४) ६-१।

तीर—संज्ञा पु० [सं०] किनारा, तट। कबीर हीरा बनिजिया, मानसरोवर **तीर**। → सा० गुरु० (१) २६-२, कहरा (३) १-२०।

तुज्झ—सर्व० [सं० तुभ्यम्] तुम्हारे प्रति।~नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोरैं **तुज्झ**। → सा० विर० (३) ४२-१।

तुझ—सर्व० [सं० तुभ्यम्] तुम्हें।~नाँ हौं देखौं और कूं, ना **तुझ** देखन देउँ।→सा० निह० (११) २-२।

तुतरे—संज्ञा पु० [हि० तुतला] अस्पष्ट बोलने वाला, तुतलाने वाला। ~ ल ला **तुतरे** बात जनाई, तुतरे पाय तुतरे परचाई।→ज्ञान चौं०(१)५६।

तुम्बा—संज्ञा पु० [सं० तुम्बक] लौकी का बना तुंबा।~मुख के नाल स्रवन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के **तुम्बा**, सतगुरु साज बनाया।→ सब० १०६-४।

तुरंगहि—संज्ञा पु० [सं० तुरंग+हि० हि (प्रत्य०)] घोड़े को। ~ आयौ चोर **तुरंगहि** लै गयौ मोहड़ी राखत मुगध फिरै।→पद २३३-६।

तुरकां—संज्ञा पु० दे० 'तुरका'।

तुरकांनीं—संज्ञा स्त्री० [फा० तुर्क+ आनी (प्रत्य०)] मुसलमान स्त्री। ~ भगतां कै भगतिनि होइ बैठी, तुरकां कै **तुरकांनीं**।→पद २२७-७।

तुरका—संज्ञा पु० [फा० तुर्क] मुसल-मान।~गाय बधे तेहि **तुरका** कहिए, इन्हते वै क्या छोटे।→पद २६६-६, पद २२७-७।

तुरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुलसी] तुलसी का पौधा।~आसि पासि **तुरसी** का बिरवा मांझि बनारस गाँऊँ रे।→ पद २५५-११।

तुरावहु—क्रि० [सं०√ त्रुट्] तोड़वा डालो, नष्ट कर दो। ~ रे महावत तोकौं मारौं सांटि, इसहिं **तुरावहु** घालहु काटि।→ पद ४२-५।

तुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर+ईयट्] तुरीयावस्था, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त से परे चौथी अवस्था।~राजा सँवरै **तुरिया** चढ़ी, पंथी सँवरै नाम लै वढ़ी।→ र० ६-४।

तुरुकी—संज्ञा पु० [फा०] तुर्किस्तान का घोड़ा। ~ताजी **तुरुकी** कबहु न साजेहुँ, चढ़ेहु काठ के घोरा हो।→ कहरा (३) १-२७।

तूंड—संज्ञा पु० [सं० तुंड] मुख। ~ करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि **तूंड**। → सा० क० वि० क० (१८) ५-१।

तूंबड़ा—संज्ञा पु० [सं० तुम्बक] कमण्डल। ~ धरती अरु असमान बिचि, दोइ **तूंबड़ा** अबध।→सा० मधि० (३१) ११-१।

तूंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बक] कड़वी लौकी।~**तूंबी** अठसठि तीरथ न्हाई, कड़ुवापन तऊ न जाई। सब० ७६-४।

तूटी—वि० [सं० त्रुटि से] त्रुटिपूर्ण। ~ हिन्दू तुरुक दोऊ रह **तूटी**, फूटी अरु कनराई।→पद ३२६-७।

तूटै—क्रि० [हि० टूटना] टूट जाएगा। ~ अबकी बेर न कागद कीन्यौ, तौ धर्मराय सो **तूटै**।→पद २१७.५।

तूटै—क्रि० [हि० टूटना] टूट जाता है; नष्ट हो जाता है।~झूठे को साँचा मिलै, तब ही **तूटै** नेह। → सा० साँच० (२२) १७-२।

तूर—संज्ञा पु० [सं० तूर्य] फूंककर बजाया जाने वाला एक बाजा; तुरही।~निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद **तूर**।→सा० पर०(५) ४३-२।

तूर—संज्ञा पु० [सं० तूर्य] नगाड़ा; तुरही, मंगलवाद्य। दे० 'तूरा'। ~ कहै कबीर हौं सर रचि मरिहौं तरौं कंत लै **तूर** बजाई।→पद २३८-८, पद ३१२-८, सब० १३-६।

तूरा—संज्ञा पु० [सं० तूर्य] तुरही, एक वाद्य विशेष। दे० 'तूर'।~**तूरा** दुइ मुख बाजनां, न्याइ तमाचे खाइ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० निह० पति० (११) १२-२, सब० १५८-६, पद० २५५-६।

तूरी—क्रि० [हि० तोड़ना] तोड़कर। ~ फ फा फल लागे बड़ दूरी, चाखे सतगुरु देइ न **तूरी**। → ज्ञान चौं० (१) ४७।

तूला—वि० [सं० तुल्य] तुल्य, समान। ~दौना मरुआ चंपा कै फूला, मानहुँ जीव कोटि सम **तूला**।→र० ३०-४।

तृखा—संज्ञा स्त्री० दे० 'तृषा'।

तृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्यास।~भूख न **तृषा** धूप नहिं छाँहीं, सुख दुःख रहित रहै तेहि माँहीं।→र० ७७-४, पद २०६-२, सब० १५०-२।

तेई—सर्व० [सं० ते+ई] वे ही। ~ साधु संत **तेई** जना, जो मानहिं वचन हमार।→र० ५८-६।

तेज—संज्ञा पु० [सं० तेजस्] अग्नि। ~**तेज** पवन मिलि पवन सबद मिलि सहज समाधि लगावहिंगे। → सब० १८४-४।

तेनि—सर्व० [सं० तेन] उसके द्वारा। पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक दीठा **तेनि**।→सा० पर० (५) १-२।

तेह—वि० [?] कठोर। ~माटी गलि सैंजल भई, पाहन वोही **तेह**।→सा० निगु० (५५) २-२।

तैं—सर्व० [सं० त्वम्] तू, तुम। ~जाका सँग **तैं** बीछुरा, ताही के संग लागि। सा० सुमि० (२) १२-२, पद ३४८-१।

तैयो—अव्य० [सं० तदपि] तब भी। जौ सौ बार कहौं समुझाई, **तैयो** धरा छोरि नहीं जाई।→र० ६४-२।

तोपची—संज्ञा पु० [अ० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलाने वाला, गोलन्दाज। ~ कब दत्तै मावासी तोरी, कब सुखदेव **तोपची** जोरी। →र० ६९-४।

तोया—संज्ञा पु० [सं० तोय] जल।~ धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं **तोया** नहिं तारा। → सा० पर० (५) २७-१।

तोरन—संज्ञा पु० [सं० तोरण] स्वागत द्वार। ~ काल खड़ा सिर ऊपरै, ज्यों **तोरन** आया बींद। → सा० काल० (४६) ४-२।

तोरिलाइन—क्रि० [हि० तोड़ना] तोड़कर फेंक देते हैं। ~डांड कै डोरिया **तोरिलाइन**, जो कोटिन धन होई हो।→कहरा (३) ९-२।

तोलै—क्रि० [सं० तोलन] संयमित करे। ~बारंबार बरजि बिखया तैं लै नर जौ मन **तोलै**।→पद २५४-४।

तोहरि—सर्व० [सं० तव] तुम्हारी। ~ तूं मेरो पुरिखा हौं तेरी नारी, **तोहरि** चाल पाहनहुं तै भारी।→ पद २४३-४, बसंत (४) ११-१।

तोहारि—सर्व० दे० 'तोहरि'।

त्यौं—अव्य० [सं० तद्] वैसा।~भावै **त्यौं** परमोधिए, ज्यूं बंसि बजाई फूक।→सा० गु० (१) २१-२।

त्रास—संज्ञा पु० [सं०] भय। ~**त्रास** मथन दधि मथन कियो हो रमैया राम।→बेलि (६) १-९।

त्रिकुट—संज्ञा स्त्री० दे० '**त्रिकुटी**'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोनों भौहों के मध्य का स्थान जहाँ आकर तीनों नाड़ियाँ (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना मिलती हैं)।~वोछी मति चंदा गो अथई, **त्रिकुटी** संगम स्वामी बसई। → र० १३-६, सब० ५४-४, पद ३२१-४।

त्रिखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] प्यास, विषय वासना। ~ जुगन जुगन की **त्रिखा** बुझांनीं करम भरम अघ ब्याधि टरै।→पद २४६-७, सब० १६८-३।

त्रिखि—वि० [सं० तृषित] तृषित, प्यासी। ~साकत कै यहु पिंड परां-इन, हमरी द्दष्टि परैं **त्रिखि** डांइनि। सब० ४६-८।

त्रिन—संज्ञा पु० [सं० तृण] तृण; तिनका। ~ वज्रहुं ते **त्रिन** खिन में होई, **त्रिन** ते बज्र करै पुनि सोई। →र० २६-१, सब० १३६-५।

त्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] औरत, पत्नी। दे० 'त्रिया'।~ई भर जुवती वै बार नाह, अति रे तेज **त्रिय** रैनि ताहि। →वसंत (४) ५-४।

त्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।~ लौहे लोह जस काटि सयाना, **त्रिया** कै तत्तु त्रियै पै जाना। → र० ५०-४, र० ७७-२।

त्रियो—क्रि० [हि० तैरना] तैरना, पार होना। ~ त ता अति **त्रियो** नहिं जाई, तन त्रिभुवन मँह राखु छुपाई। →ज्ञान चौं० (१) ३५।

त्रिविध—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से—तीव्र, मध्यम और मंद गति। ~रज गति **त्रिविध** कीन्ह परगासा, कर्म धर्म बुधि केर विनासा।→ र० २६-४।

त्रिषा—संज्ञा स्त्री० दे० 'तृषा'।

त्रिसनां—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] तृष्णा; लालसा। ~ ऊभर था सो सूभर भरिया, **त्रिसनां** गागरि फूटी। → सब० १५-३।

त्रिसनां—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] लोभ, लालच। ~ **त्रिसनां** कांम क्रोध मद मतसर काटि काटि कस दीन्हां।→ पद ३४४-४, पद ३०२-४।

त्री—वि० [सं०] तीन बार (प्रातः, मध्याह्न, सायं)। ~ अखंड मंडल मंडित मंड, **त्री** असनांन करै **त्री** खंड।→ सब० ४३-७।

त्री अस्थान—यौ० [सं० त्रि+स्थान] त्रिकुटी।~ **त्री अस्थान** अंतर मृग-छाला, गगन मंडल सींगी बाजै। सब० ११२-३।

त्रीखण्ड—संज्ञा पु० [सं० त्रिखण्ड] त्रिभुवन, तीन लोक।~अखंड मंडल मंडित मंड, त्रि स्नान करै **त्रीखण्ड**। →सब० १४०-५।

थ

थँभाई—क्रि० [सं० स्तंभन] रुक जाता है, स्थिर हो जाता है।~ थोर थोर थिर होहु रे भाई, बिन खंभै जैस मंदिल **थँभाई**। → ज्ञानचौं० (१) ३८।

थकाँ—क्रि० [सं० स्था+ √कृ०] क्लांत, बीतते-बीतते।~दिवस **थकाँ**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साँई मिलौं, पीछे पड़िहै राति । → सा० मन० (१३) १३-२ ।

थकित—वि० [हि० थकना] शिथिल, श्रांत, थका हुआ । ~ रहिगौ पंथ **थकित** भौ पौना; दसो दिसा उजारि भौ गौना ।→र० ४५-४ ।

थक्यो—क्रि० [हि० थकना] रुक गया । ~ पवन **थक्यो** गुड़िया ठहरानी, सीस धुनै धुनि रोवै प्रांनी ।→सब० १६१-४ ।

थर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] परत, तह । ~ द्वै **थर** चढ़ि गयौ रांड कौ करहा मनहं पाट की सैली रे । → पद २५५-४ ।

थरहर—संज्ञा स्त्री० [हि० थरथर] भय या शीत के कारण कँपकँपी । ~**थरहर** कंपै बाला जीउ, नां जांनौं क्या करिहै पीउ ।→पद २७८-३ ।

थाँभै—क्रि० [सं० स्तम्भन] रोकना । ~नारी कुंड नरक का, बिरला **थाँभै** बाग ।→सा० कामी० (२०)१५-१ ।

थाकि—क्रि० [सं०√स्था+ √कृ०] थक कर, श्रांत होकर । ~ कबीर मारग कठिन है, मुनि जन बैठे **थाकि** । →सा० सू० मा० (१४) ६-१ ।

थाकी—क्रि० [हि० थकना] थक गई, नष्ट हो गई, समाप्त हो गई । ~ **थाकी** सौंज संग के बिछुरे, रांम नांम मसि धोई ।→सब० १५-६ ।

थाके—क्रि० [हि० थकना] थक गए, शांत हो गए । ~जे थे सबल अचल ह्वै **थाके**, चूके बाद बिबादा । → सब० १५-७, सब० १६०-३, पद २८२-३ ।

थाकौ—क्रि० दे० 'थाके' ।

थाघी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूणा] सहारे की लकड़ी, आधार, सहारा । ~ निगुसाँवाँ बहि जाएगा, जाकै **थाघी** नहिं कोइ । →सा० जी० मृ० (४) ११-१ ।

थान—संज्ञा पु० [सं० स्थान] कपड़ा । ~**थान** बुनै कोली मैं बैठी, मैं खूंटा मैं गाड़ी ।→सब० ३०-५ ।

थान—संज्ञा पु० [सं० स्थान] स्थान, पद । दे० 'थाना' । ~ अंकुर बीज नसाय कै, भए बिदेही **थान** ।→ र० ३५-८ ।

थाना—संज्ञा पु० [सं० स्थान] १. स्थान, २. योनि, ३. शरीर । ~ बहुरि न पइहउ ऐसो **थाना**; साधु संग तुम नहिं पहिचाना । →र० ४४-२ ।

थाना—संज्ञा पु० [सं० स्थान+आ] स्थान, जगह ।~शब्द न चीन्है कथये ज्ञाना, ताते जम दीयो है **थाना** ।→ र० १८-३ ।

थापनि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] स्थापना, गुरु द्वारा शिष्य की पुष्टि । ~ **थापनि** पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर । → सा० गुरु० (१) २६-१ ।

थापहु—क्रि० [सं० स्थापन] स्थापित करते हो । ~ जीउ बधहु सु धरमु करि **थापहु** अधरम कहहु कत भाई । →सब० १६४-५ ।

थापि—क्रि० [सं० स्थापना] स्थापित कर दिया ।~गुरु दीहल मोहि **थापि** हो रमैया राम ।→बेलि (६) २ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थापै—क्रि० [सं० स्थापन] चढ़ाते हैं। ~ निरजिव आगे सरजिव **थापै**, लोचन कछू न सूझै। → सब० १८८-४।

थारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली] थाली। ~ हँड़िया हाड़ हाड़ **थारी** मुख, अब षट कर्म बनेऊ। → सब० १६५-४।

थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] आलम्बन। ~ **थिति** बिनु सुरति रहस बिनु आनंद, ऐसो चरित अनूपा। →पद० २०४-६।

थिति—वि० [सं० स्थित] स्थिर, ठहरा हुआ। ~ झूलहि जीव जहान जहँ कतहूँ नहीं **थिति** ठौर। → हिंडोला (८) ३-२।

थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] स्थिति, स्थिरता, शांति। ~ थापनि पाई **थिति** भई, सतगुरु दीन्हीं धीर। →सा० गुरु० (१) २६-१।

थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] प्रतिष्ठित हो जाने की दशा। ~ **थिति** पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ। →सा० पर० (५) २६-१।

थिर[१]—वि० [सं० स्थिर] स्थिर। ~ नहिं जल नहिं थल नहिं **थिर** पौना, को धरे नाम हुकुम को बरना। →र० ६-४, सा० काल० (४६) ३०-१।

थिर[२]—वि० [सं० स्थिर] स्थिर,स्थायी। ~थिति पाई मन **थिर** भया, सतगुर करी सहाइ। → सा० पर० (५) २६-१, ज्ञान चौं० (१) ३७।

थिर[३]—वि० [सं० स्थिर] स्थिर, एकाग्र। ~मन **थिर** बैसि बिचारिया, रामहि लौ लाई। →सब० १-५।

थिर[४]—वि० [सं० स्थिर] स्थायी, स्थिर। ~ क्या मागौं किछु **थिर** न रहाई। →सब० ६२-१।

थिरु—वि० [सं० स्थिर] स्थिर। दे० 'थिर'। ~ और मुएँ क्या रोइए जउ आपा **थिरु** न रहाइ। → पद २६६-५।

थीरा—वि० [सं० स्थिर] स्थिर, शान्त। दे० 'थिर'। ~ मांझ मंझरिया बसै जो जानै, जन होइहैं सो **थीरा** हो। →कहरा (३) ७-६।

थूँनि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] खम्भा, स्तम्भ। ~ दुचिते की दोइ **थूँनि** गिरांनी मोह बलेंडा टूटा। → पद ३०२-३।

थूल[१]—वि० [सं० स्थूल] स्थूल शरीर। ~ **थूल** अस्थूल पवन नहिं पावक, रबि ससि धरनि न नीरा। → सब० १६६-२।

थूल[२]—वि० [सं० स्थूल] स्थूल। ~ तहिया गुप्त **थूल** नहिं काया, ताके न सोक ताकि पै माया। →र० ७४-१।

थैं—प्रत्य० [थैं > तैं > ते > से] से। ~जरा मरण **थैं** भये धीर, राँम कृपा भइ कहि कवीर। → सब० ६१-१०, पद २१२-१, सब०४७-२।

थोथरा—वि० [दे०] निस्सार, थोथा। ~ जप तप **थोथरा**, तीरथ ब्रत वेसास। → सा० भ्र० वि० (२३) ८-१।

थोथरे—वि० [दे०] थोथा, निस्सार। दे० 'थोथरा'। ~ सबै पछोड़े **थोथरे**,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक दिना विस्वास ।→ सा० बेसा० (३५) १६-१ ।

थोथी[१]—वि० [दे०] जिसकी धार तेज न हो, भोथर, कुंठित ।~मारा है जे मरैगा, बिन सर **थोथी** भालि । → सा० ग्या० वि० (४) २-१ ।

थोथी[२]—वि० [दे०] निकम्मी, कुंठित, व्यर्थ । ~ झूठी अनभै बिस्तरी, सब **थोथी** बाई ।→सब० १-६ ।

थोथे—वि० [दे०] निस्सार, खोखला । दे० 'थोथरा' ।~छिलकत **थोथे** प्रेम सो, धरि पिचकारी गात ।→ चाँचर (५) १-१६ ।

थोरी—वि० [हि० थोड़ी] थोड़ी । ~ बिनती एक राँम सुंनि **थोरी** ।→ पद २८८-१ ।

थौ—क्रि० [हि० था] था । धरनि अकास दोऊ नहिं होते तब यहु नंद कहाँ **थौ** रे ।→पद २८२-२ ।

द

दई—संज्ञा पु० [सं० दैव] ईश्वर ।~जब दफतर देखैगा **दई**, तब ह्वैगा कौन हवाल ।→सा० साँच० (२२) ८-२ ।

दगध्या—क्रि० [सं० दग्ध] पीड़ित किया । ~छापा तिलक बनाइ करि, **दगध्या** लोक अनेक । → सा० भेष (२४) १६-२ ।

दफतर—संज्ञा पु० [फ़ा० दफ़्तर] दफ्तर, लेखा, कर्मपत्री । ~ जब **दफतर** देखैगा दई, तब ह्वैगा कौन हवाल । →सा० साँच० (२२) ८-२ ।

दम—संज्ञा पु० [फा०] साँस, श्वास । ~टुक **दम** करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ ।→सब० १८१-४ ।

दमदम—संज्ञा पु० [फा०] एक एक श्वास का । ~ **दमदम** की कोइ खबरि न जानै, करि न सकै निरुआरा । →सब० ६४-१४ ।

दमामाँ—संज्ञा पु० दे० 'दमामा' ।

दमामा—संज्ञा पु० [फ़ा०] दुंदुभि, बड़ा नक्कारा, नगाड़ा, डंका । ~ ढोल **दमामा** डुगडुगी, सहनाई औ भेरि । → सा० चिता० (१२) ३-१, सा० सूरा० (४५) ६-१, सा० काल० (४६) ७-२ ।

दमोदर—संज्ञा पु० [सं० दामोदर] कृष्ण ।~दीनदयाल क्रिपाल **दमोदर**, भगत बछल भै हारी । → सब० ६८-६ ।

दया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुग्रह, कृपा । ~ दाता तरवर **दया** फल, उपगारी जीवंत ।→सा० सजी० (४७) ७-१ ।

दर—क्रि० वि० [फा०] भीतर । ~ पंच पहरुआ **दर** महिं रहते, तिनका नहिं पतिआरा ।→सब० ११-५ ।

दर—संज्ञा पु० [फ़ा०] पता, स्थान । ~**दर** की बात कहौ दरवेसा, पातसाह है कौने भेसा ।→ र० ४६-१ ।

दरगह—संज्ञा पु० [फा० दरगाह] दरबार ।~सतगुरु पूजउँ सदा मनावउँ, ऐसी सेव **दरगह** सुखु पावउँ । → सब० १११-५, सा० सम्र० (३८) ३-२, सा०मन० (१३) १७-२, सा० साँच० (२२) ३-२ ।

दरपन—संज्ञा पु० [सं० दर्पण] दर्पण,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शीशा ।~ परगट कंथा मांहै जोगी, दिल मैं **दरपन** जोवै ।→सब० ३४-५, र० ३२-१ ।

दरब—संज्ञा पु० [सं० द्रव्य] धन, सांसारिक उपलब्धियाँ, पंचभूत, प्रकृति । ~ नहिं परतीत जो यहि संसारा, **दरब** की चोट कठिन कै मारा । → र० १३-१ ।

दरबानी—संज्ञा पु० [फा० दरबान] पहरेदारी । ~कांमु किंवार दुख सुख **दरबानी** पाप पुन्नि दरवाजा । → सब० ६३-३ ।

दरबी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] करछुल । ~अंध सो दरपन वेद पुराना, **दरबी** कहा महारस जाना ।→र० ३२-१ ।

दरबेसा—संज्ञा पु० [फ़ा० दरवेश] पुनीतात्मा, सिद्ध, फकीर ।~दर की बात कहौ **दरबेसा**, पातसाह है कौने भेसा ।→र० ४६-१ ।

दरमांदा—संज्ञा पु० [फा० दरमादः] दुःखित, दीन ।~**दरमांदा** ठाढ़ौं दरबारि । →सब० १४८-१ ।

दरर—संज्ञा पु० [दे०] दलने वाली वस्तु ।~दुइ चकरी जनि **दरर** पसारहु, तब पैहौ ठिक ठौरा हौ । → कहरा (३) २-१३ ।

दरवै—क्रि० [सं० द्रवण] द्रवित होती है, द्रवीभूत ।~कौली घाल्या बीडरि चालै, ज्यूँ घेरौं त्यूँ **दरवै** ।→ सब० २७-४ ।

दरस—संज्ञा पु० [सं० दर्शन] दर्शन । ~**दरस** परस तैं दुरमति नासी, दीन रटनि लौ आई ।→पद २६५-३ ।

दरसै—क्रि० [सं० दर्शन] दर्शन होना । अनभौ भाव न **दरसै**, जियत न आप लखाय । र० ३१-६ ।

दरार—संज्ञा स्त्री० [सं० दर] रंध्र, छिद्र ।~ मेरे मन मैं परि गई, ऐसी एक **दरार** । → सा० बिर्क० (३७) १-१ ।

दरि—संज्ञा पु० [फ़ा० दर] दरबार में । ~ चढ़ि मसीति एकै कहै, **दरि** क्यूं साँचा होइ ।→ सा० साँच० (२२) ६-२ ।

दरि—संज्ञा पु० [फ़ा० दर, सं० द्वार] [सप्तमी प्रयोग] द्वार पर ।~आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ **दरि** बाँधे हाथी । → सब० ६२-५ ।

दरिया—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] समुद्र, नदी । ~ **दरिया** केरी नाँव ज्यों, सँजोगे मिलि जाँहि ।→सा० चिता० (१२) ५६-२, सा० दया नि० (५१) १-१, सा० पर० (५) २६-१, सब० १८१-७, पद ३२८-६ ।

दरियाव—संज्ञा पु० [फ़ा० दरिया] नदी । ~ समांनीं **दरियाव** दरिया पार नां लंघी । पद ३२८-६ ।

दरीचै—संज्ञा पु० [फ़ा०] झरोखा, खिड़की ।~मनवाँ जाइ **दरीचै** बैठा, मगन भया रसि लागा । → सब० २६-५ ।

दरोगु—संज्ञा पु० [अ०] धोखा, असत्य । ~**दरोगु** पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबरु बादु बकाहिं ।→सब० १८१-५ ।

दर्पन—संज्ञा पु० [सं० दर्पण] दर्पण, आइना । ~ सबद मसकला फेरि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करि, देह **दर्पन** करै सोइ। → सब० ३-२।

दर्ब—संज्ञा पु० [सं० द्रव्य] धन।~ **दर्ब** हीन कैसन पुरुषारथ, मनहीं माँह तबाँई हो।→ कहरा (३) ६-५।

दल—संज्ञा पु० [सं०] समूह। ~ जब जरिए तब होइ भसम तन रहै किरिम **दल** खाई। सब० १७६-३।

दलाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मध्यस्थता का पारिश्रमिक। ~ है कोई संत सहज सुख अंतरि जाकौ जप तप देउं **दलाली**। →पद ३४४-१।

दव—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावाग्नि, बड़वा-नल। दे० 'दवा'। ~ नलनी सायर घर किया, **दव** लागी बहुतेन। → सा० माया (१६) २२-१।

दवन—संज्ञा पु० [सं० दमन] दमन, निग्रह।~ प्रिथिमी रवन **दवन** नहिं करिया, पैठि पताल नहीं बलिया छलिया।→र० ७५-४।

दवा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव] दावाग्नि, वन की अग्नि। दे० 'दव'।~ अंगि उघारै लागिया, गई **दवा** सूं फूंटि। →सा० गुरु० (१) ८-२।

दस द्वारे—संज्ञा पु० [सं० दश द्वार] शरीर के दस छिद्र–दो नेत्र, दो कान, दो नासिका, मुख, गुदा, लिंग, ब्रह्म-रंध्र। ~ **दस द्वारे** का देहरा, तामें जोति पिछांनि। → सा० भ्रम वि० (२३) १०-२।

दसन—संज्ञा पु० [सं० दशन] दाँत। ~ नैन नासिका जिनि हरि सिरजै, **दसन** बसन बिधि काया। → सब० ८१-७, सब० ५-४।

दसनन—संज्ञा पु० दे० 'दसन'।

दसवैं तत्त—संज्ञा पु० [सं० दशम तत्त्व] दसवाँ तत्व, दहर कोश। ~ कहत कबीर नवै घरु मूसे, **दसवैं तत्त** समाई। →सब० ११-८।

दसवैं द्वारि—संज्ञा पु० [सं० दशमद्वार] कपाल कुहर के भीतर तालु में स्थित सूक्ष्म छिद्र।~मन मंजन करि **दसवैं द्वारि**, गंगा जमुनां संधि बिचारि। →सब० ५०-५।

दस्तगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सहायक, मददगार। ~ यहु जु दुनिया सिहरु मेला कोई **दस्तगीरी** नांहि।→सब० १८१-२।

दह—संज्ञा पु० [सं० ह्रद] कुण्ड। ~ देखत ही **दह** मैं पड़ै, दई किसा कौं दोस।→सा० साषी० (५७) ३-२।

दह—वि० [सं० दश] दस। ~बनिज खुटानौं पूंजी टूटि, **दह** दिसि टांड़ौ गयौ फूटि।→पद २३९-७।

दहदिसि—दे० 'दहुँदिसि'।

दहुँ दिसि—संज्ञा स्त्री० [सं० दश दिशा] दश-दिशाएँ, चारो ओर। ~ भैं भैं प्रिथिमी **दहुँ दिसि** धावै, अस्थिर होय न औषध पावै। → र० ५-७, पद २४१-३।

दहेड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० दही + हंडी] दही जमाने या रखने का पात्र। ~ एक **दहेड़िया** दही जमायौ दुसरी परि गई साढ़ी रे।→पद २५५-७।

दांव—संज्ञा पु० [सं० प्रत्य० दो (दाच्)] उपयुक्त अवसर, अनुकूल संयोग।~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो हारौं तौ हरि सवाँ, जो जीतौं तो **दांव**।→सा० सूरा० (४५) ३०-१, चाँचर (५) १-११, बसंत (४) ७-१०।

दाइज—संज्ञा पु० [सं० दाय] दहेज। विवाह के अवसर पर वर पक्ष को दिया गया दान।~बन के रोझ धरि **दाइज** दीन्हो, गोह लोकन्दे जाई। →सब० १५५-७।

दाइम—संज्ञा पु० [अ०] नित्य। ~करि फिकिर **दाइम** लाइ चसमैं जहाँ तहाँ मौजूद।→सब० १८१-८।

दाग—संज्ञा पु० [फ़ा०] धब्बा। ~ कबहुँक **दाग** लगावै, कारी हाँड़ी हाथ। →र० ६६-१०।

दाझत—क्रि० [सं० दग्ध] जल रहा है। जा बन में क्रीला करी, **दाझत** है बन सोइ।→सा० ग्यान वि०(४)८-२।

दाझतैं—क्रि० [सं० दहन] जलते हुए। ~ धूप **दाझतैं** छाँह तकाई, मति तरवर सच पाऊँ।→सब० ६६-३।

दाझन—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन, ताप। ~ दावै **दाझन** होतु है; निर-दावै निहसंक।→सा० बिर्क० (३७) ६-१।

दाझनाँ—क्रि० [सं० दाहन] दग्ध होना, संतप्त होना। ~ आठ पहर का **दाझनाँ**, मोपै सहा न जाइ।→सा० विर० (३) ३५-२।

दाझनि—क्रि० [सं० दाहन] जलना। ~ कांसि कुडुंवा सुत कलित **दाझनि** बारंबार। → सा० चाँण० (१७) २२-२।

दाझै—क्रि० [सं० दाह] दग्ध होना। ~ आगि कहै **दाझै** नहीं, जे नहिं चंपै पाँइ। → सा० विचा० (३३) २-१।

दाझैं—क्रि० [सं० दाह] दग्ध हो रहे हैं। ~कबीर दरिया परजला, **दाझैं** जल थल झोल। → सा० दया निर० (५१) १-१।

दाझैं—क्रि० [सं० दाह] दग्ध होना, जलना। ~ सायर जरै सकल बन **दाझैं**, मंछ अहेरा खेलै। → सब० ४४-६, सब० १६८-३।

दाता—संज्ञा पु० [सं०] दान देने वाला; दानी। ~ **दाता** तरवर दया फल, उपगारी जीवंत। → सा० सजी० (४७) ७-१, सब० १४१-७।

दाति—संज्ञा स्त्री० [सं० दातव्य] दान। ~ सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सईं न **दाति**। → सा० गुरु० (१) १-१।

दाते—संज्ञा पु० दे० 'दाता'।

दादि—संज्ञा स्त्री० [फा०] प्रशंसा; विनती।~सुनहु हमारी **दादि** गुसाँई; अब जिन करहु बधीर। → पद ३४६-५।

दादि—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] न्याय।~ बुरी दिवांन **दादि** नहिं लागै, इक बांधै इक मारै हो राम। → सब० १०-८।

दाध—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध] जलन, दाह। ~ **दाध** बली ता सब दुखी, सुखी न देखौं कोइ। → सा० दया निर० (५१) ३-१।

दाधा—क्रि० [सं० दग्ध] दग्ध किया; जलाया। ~ गुरु **दाधा** चेला जला;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिरहा लागी आगि । → सा० ग्यान बिर० (४) ७-१ ।

दाधी—वि० [सं० दग्ध] जली हुई । ~**दाधी** देह न पालवै; सद्‌गुरु गया लगाइ ।→सा०ज्ञान बिर० (४) ६-२ ।

दाधे--क्रि० [सं० दग्ध] दग्ध हो गए, जल गए । ~ डाकि पड़े ते ऊबरे, **दाधे** कौतिगहार । → सा० सूरा० (४५) २९-२ ।

दामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत, बिजली ।~माया मोह उहाँ भरपूरी, दादुर **दामिनी** पवन अपूरी ।→ र० १६-५ ।

दारन—वि० दे० 'दारुन' ।

दारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री, पत्नी, भार्या । ~ पर निंदा पर धन पर **दारा**, पर अपवादहिं सूरा ।→ सब० ९८-५, सब ९४-४, विप्र० (२) ७ ।

दारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी ।~ हो **दारी** के ले देउँ तोहि गारी, तैं समुझु सुपंथ बिचारी ।→पद ३४८-१ ।

दारुन—वि० [सं० दारुण] भीषण, दुस्सह, भयंकर ।~माधौ **दारुन** दुख सह्यौ न जाइ । → सब० २२४-१, सब० १४५-३, कहरा (३) १-१० ।

दालिद—संज्ञा पु० [सं० दारिद्रय] दरिद्रता । ~ राँम जपत **दालिद** भला, टूटी घर की छाँनि ।→सा०साधु म० (३०) १०-१, सा० बेसा० (३५) १८-२, ज्ञान चौं० (१) ५७ ।

दाव—संज्ञा पु० [हि० दाँव] उपाय, युक्ति, दाँव, मौका । ~ कहै कबीर मन कौ सुभाव, इक नांम बिना सब जम कौ **दाव** ।→ सब० १०६-१० ।

दावा--संज्ञा पु० [अ०] स्वत्व, अधिकार; कामना ।~ **दावा** किसही का नहीं, बिना बिलायत राज ।→सा० बेसा० (३५) १३-२, सा० बिर्क० (३७) ९-१ ।

दावै—संज्ञा पु० दे० 'दावा' ।

दास—संज्ञा पु० [सं०] भक्त । ~ कहै कबीर रांम भजि भाई, **दास** अधम गति कबहुँ न जाई ।→पद ३४७-५ ।

दासा—संज्ञा पु० [सं०] शूद्र ।~सर्मन वर्मन देव औ **दासा**, रज सत तमगुन धरति अकासा ।→ र० २७-७ ।

दिखावनहार—संज्ञा पु० [हि० दिखाना +हार] दिखलाने वाला ।~लोचन अनँत उघारिया, अनँत **दिखावनहार** । →सा० गुरु० (१) ३-२ ।

दिग—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्] दिशा । ~चारि **दिग** महि मंड रचो है, रूम साम बिच डिल्ली ।→सब०६४-१५ ।

दिगन्तर—संज्ञा पु० [सं०] भिन्न-भिन्न दिशाओं (योनियों) में जाना ।~ आजु काज है कालिह अकाजा, चलेउ लादि **दिगन्तर** राजा ।→र०१३-४ ।

दिगमग—संज्ञा पु० [सं० दिग्मण्डल] दिशाएँ ।~ तीनि लोक एक करिगह कीन्हो, **दिगमग** कीन्हों ताना । → सब० १२७-१० ।

दिज—संज्ञा पु० [सं० द्विज] ब्राह्मण । ~ इनकैं पूरब दिसा देव **दिज** पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा । → पद ३२९-४ ।

दिठाई—क्रि० [सं० दृढ़+आई (प्रत्य०)] अधिष्ठित किया, स्थापित किया ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ सत्त सत्त कै बिस्नु दिठाई, तीनि लोक मँह राखि निजाई। → र० २७-२।

दिठियार—संज्ञा पु० [सं० दृष्टि+आर (प्रत्य०)] देखने वाला, दृष्टि संपन्न। ~ आँधर कहै सबै हम देखा, तहँ **दिठियार** बैठि मुख पेखा। → र० ४२-४।

दिढ़—वि० [सं० दृढ़] मजबूत। ~ घायल कौं घायल मिलै, तौ राम भगति **दिढ़** होइ।→ सा० गु० सि० हे० (४३) ११-२।

दिढ़ाइ—क्रि० [सं० दृढ़] दृढ़ कर दिया। ~ चूल्हैं अगिनि बुताइ करि चरखा दियौ **दिढ़ाइ**।→पद २३५-८।

दिढ़ाई—क्रि० [सं० दृढ़] दृढ़ निश्चय करके।~उहै बात जो जनक **दिढ़ाई**, देह धरे विदेह कहाई।→र० ८-६।

दिढ़ावै—क्रि० [हि०] दृढ़ करना। ~ करम पढैं करमहि कौं धावैं, जे पूंछे तेहि करम **दिढ़ावै**। → विप्र० (२) १२।

दिनकार—संज्ञा पु० [सं० दिनकर] सूर्य। ~ते नर चौरासी भरमिहैं, जों लगि ससि **दिनकार**।→ र० ४३-७।

दिपंती—वि० [सं० दीप्ति] दीप्तिमती, चमकती हुई।~ राज करंता राजा जाइगा रूप **दिपंती** रानीं।→ सब० १२३-३।

दिलासा—संज्ञा पु० [फा०] आशा, हौसला। ~ तन की सकल सक्ति घटि गयऊ, मनहि **दिलासा** दूनी हो। →कहरा (३) ३-७।

दिवला—संज्ञा पु० [सं० दीपक] दीपक। ~ या तन का **दिवला** करूं, बाती मेलों जीव। → सा० बिर० (३) २३-१।

दिवांन—संज्ञा पु० [अ० दीवान] मंत्री। ~बुरौ **दिवांन** दादि नहिं लागै, इक बांधै इक मारै हो राम। → सब० १०-८, सब० १४१-५।

दिवाँनाँ—वि० [फ़ा० दीवाना] उन्मत्त, पागल। ~ निरभै भया कछू नहिं ब्यापै कहै कबीर **दिवाँनाँ**। → पद ३२५-८।

दिवांनां—वि० [फ़ा० दीवाना] तन्मय, आनन्द मग्न।~कहै कबीर मैं भया **दिवांनां**, मुसि मुसि मनुवा सहजि समांनां।→सब० ७२-५।

दिवांनी—वि० [फा० दीवानी] उन्मत्त, पागल। ~ जब हम रहलीं हठिल **दिवांनी** तब पिय मुखां न बोला। →पद ३४०-३।

दिवाजा—संज्ञा पु० [दे०] दीपार्चन, आरती। ~ इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग **दिवाजा**। →पद ३२६-४।

दिवानां—संज्ञा पु० दे० 'दिवांन'।

दिसावराँ—संज्ञा पु० दे० 'दिसावरि'।

दिसावरि—संज्ञा पु० [सं० देश+अपर] पराया देश, विदेश, अन्यत्र।~ गयौ **दिसावरि** कौन बतावै, जोगिया बहुरि गुफा नहिं आवै।→ सब० १२६-३, सा० सजी० (४७) ७-२।

दिस्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि। ~ जाकी **दिस्टि** नाद लिव लागै। →पद २५०-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन्त्र ।~ इन्हते **दीक्षा** सब कोई माँगै, हँसि आवै मोहि भाई ।→पद २६६-६ ।

दीठ—क्रि० [सं० दृष्टि] दिखाई पड़ता है ।~कालि्ह जु बैठा माड़िया, आज मसांनां **दीठ** ।→सा० काल० (४६) १५-१ ।

दीठ—क्रि० दे० 'दीठा' ।

दीठा—क्रि० [सं०√दृश्] देखा ।~ इहि चिति चाषि सबै रस **दीठा**, राम नाम सा और न मीठा । → सब० १४-३, सब० २८१-६, पद ३०४-१, सा० जर० (८) १-२ ।

दीठा—क्रि० [सं० दृष्ट] देखा गया । ~ पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक **दीठा** तेनि ।→सा०पर० (५) १-२, २-१, सा० मन० (१३) ६-१ ।

दीदार—संज्ञा पु० [फ़ा०] दर्शन । ~ कहौ संतौ क्यों पाइए, दुर्लभ हरि **दीदार** ।→सा० सुमि० (२) २७-२, पद २२३-८ ।

दीदै—संज्ञा पु० [फ़ा० दीदः] नेत्रों से, दृष्टि से ।~फाटै **दीदै** मैं फिरूँ, नजरि न आवै कोइ । → सा० साध सा० (२६) १७-१ ।

दीन—संज्ञा पु० [अ०] धर्म, मजहब । ~ मन मसले की खबरि न जानै; मति भुलान दुइ **दीन** बखानै ।→र० ४०-५, सब० ५५-२, पद २२६-३, सा० चिता० (१२) ४३-१, सा० साँच० (२२) ७-२ ।

दीन—वि० [सं०] भक्त, दास ।~दरस परस तैं दुरमति नासी, **दीन** रटनि लौ आई ।→पद २६५-३ ।

दीन[1]—क्रि० [सं०√दा] दिया ।

दीन[2]—वि० [सं०] जिसमें दैन्य भाव हो ।~दुँदर दिल विष सूं भरी, **दीन** गरीबी राम । → सा० जी० मृ० (४१) १२-२ ।

दीन (ता)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दैन्य, लघुता ।~**दीन** गरीबी वंदिगी, करतां होइ सु होइ । → सा० जी० मृ० (४१) ११-२ ।

दीनन—संज्ञा पु० [फा० दीन का बहुवचन] धर्म ।~दोऊ आप **दीनन** में झगरैं, ठाढ़े देखहिं हंस कबीर । → पद २८६-६ ।

दीप—संज्ञा पु० [सं०] परम ज्योति । ~ कदली पुहुप **दीप** परकास, ह्रिदा पंकज महि लिया निवास । → सब० ४३-६ ।

दीया—क्रि० [सं० दा = देना] दे दिया । ~ आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक **दीया** हाथि । → सा० गुरु० (१) ११-२ ।

दीयौ—क्रि० [सं० √ दा, हि० देना] दिया । ~ सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास **दीयौ** ।→सा० बेसा० (३५) १-२ ।

दीवा—संज्ञा पु० [सं० दीप] दीपक । ~मन्दिर माँही झलकती, **दीवा** की सी जोति । → सा० काल० (४६) १७-१ ।

दीवान—संज्ञा पु० [अ०] दरबार ।~ उस चंगे **दीवान** मैं, पला न पकड़ै कोइ ।→ सा० साँच० (२२) २-२ ।

दीसंत—क्रि० [सं०√दृश्) दिखाई पड़ते हैं, पहचान में आते हैं । ~ कबीर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरि का भांवता, दूरै तैं **दीसंत**।→ सा० साध० सा० (२६) ३-१।

दीसै—क्रि० [सं०√दृश्] दिखाई पड़ता है। ~ करता **दीसै** कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड। → सा० क० बि० कथ० (१८) ५-१।

दीहल—क्रि० [हि० देना] दिया।~ गुरु **दीहल** मोहि थापि हो रमैया राम। →वेलि (६) २-६।

दुंदर—वि० [सं० द्वंद्वालु] झगड़ालू, झगड़ा करने वाला व्यक्ति।~ **दुंदर** दिल विष सूं भरी, दीन गरीबी राम। → सा० जी० मृ० (४१) १२-२, सब० ६३-४।

दुंदि—संज्ञा पु० [सं० द्वन्द्व] द्वन्द्व; राग-द्वेष, सुख-दुःख; हर्ष-शोक। ~ बिनु गुरु ज्ञान **दुंदि** भई, खसम कही मिलि बात।→र० ५-११।

दुइ-दुइ—संज्ञा पु० [सं० द्वि से] द्वन्द्व। ~ **दुइ-दुइ** अंग सूं लाग करि, डूबत है संसार। → सा० मधि० (३१) १-२।

दुखड़ियाँ—क्रि० [सं० दुःख] दुख रही है। ~ अँखियाँ प्रेम कसाइयां, लोग जानैं **दुखड़ियाँ**।→सा० बिर० (३) २५-१।

दुचिते—वि० [हि० दो + चित्त] चित्त की दो अवस्थाएँ—विषयासक्ति और बाह्याचार।~ **दुचिते** की दोइ थूंनि गिरांनी मोह बलेंडा टूटा। → पद ३०२-३।

दुतिअ—वि० [सं० द्वितीय] दूसरा। दे० 'दुतिया'।~ कहै कबीर भगवंत भजि नर **दुतिअ** नांहीं कोइ। → सब० १८७-८।

दुतिया—वि० [सं० द्वितीय] द्वितीय, दूसरा।~ **दुतिया** नाम पारबती भैऊ, तप करते संकर कहँ दैऊ। → र० २७-५, पद २२८-६।

दुनियां—संज्ञा स्त्री० [अ०] जगत्; संसार। ~ बेद कतेब दीन अरु **दुनियां**, कौंन पुरिख कौन नारी।→ सब० ५५-२।

दुनियाई—वि० [अ० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] सांसारिक। ~ बांधत बंधन छोरि न जाई, विषै रूप भूली **दुनियाई**। → र० ३३-३।

दुनियाई—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनिया + ई (प्रत्य०)] संसार में। ~ पठएँ न जाउँ अनवां नहिं आऊँ सहजि रहूँ **दुनियाई** हो।→पद २३७-५।

दुनीं—संज्ञा स्त्री० दे० 'दुनी'।

दुनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] संसार, सांसारिक मोह-प्रपंच आदि। ~ दीन गँवाया **दुनी** सौं, **दुनी** न चाली साथि। → सा० चिता० (१२) ४३-१, सब० १८५-२, सब० ३४-३; पद २०८-३, सा० साँच० (२२) ७-१; पद ३४१-२।

दुनौ—वि० [हि० दोनों] दोनों का। ~ संतो राह **दुनौ** हम दीठा।→पद ३०४-१।

दुरगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दुर्गन्ध, बदबू। नऊँ दुवार नरक धरि मूंदे **दुरगंधि** ही के बेढ़े। → सब० १०२-२।

दुरत दुराई—[यौ०] छिपाने से छिपना या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलग करने से अलग हो जाना।~ मोहिं तोहिं आदि अंति बनि आई,अव कैसे **दुरत दुराई**।→पद २४०-३।

दुरमति—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मति] दुर्बुद्धि। ~ **दुरमति** दूरि गवाँइसी, देसी सुमति बताइ।→ सा० साधु० (२८) २-२, पद २६५-३, पद ३०२-४।

दुराइ—क्रि० वि० [हि० दूर] अलग, दूर।~ राँम नाँम सौं दिल मिला, जम सों परा **दुराइ**।→ सा० बेसा० (३५) ११-१।

दुरासनि—वि० [सं० दुराशय] दुराशय, कठोर। ~ सास **दुरासनि** जीव डराऊँ।→ पद २३४-२।

दुरि—क्रिया वि० [हि० दूर] दूर किए हुए। ~ राम नाम को सेवहु बीरा, दूरि नाहि, **दुरि** आसा हो।→कहरा (३) ३-१।

दुरुस—वि० [फ़ा दुरुस्त] ठीक, शुद्ध। ~ सो हिन्दू सो मूसलमांन, जिसका **दुरुस** रहै ईमान।→सब० ४१-४।

दुर्गम—वि० [सं०] दुःसाध्य।~अगम **दुर्गम** गढ़ देउँ छुड़ाई, औरौ बात सुनहु कछु आई।→र० ५८-२।

दुर्लभ—वि० [सं०] दुष्प्राप्य।~ ऐसो **दुर्लभ** जात सरीर, राम नाम भजु लागु तीर।→वसंत (४) ६-१।

दुलभ—वि० [सं० दुर्लभ] दुर्लभ, कठिनाई से पाया जाने वाला। दे० दुर्लभ।~मानुष जनम **दुलभ** है, होइ न बारंबार।→सा० चिता० (१२) ३४-१, सा० रस० (६) २-२।

दुलहाई—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्लभ + हि० आई (प्रत्य०)] विवाह संबंधी गीत। ~ हरि अस ठाकुर तजा न जाई, बालन भिस्त गाव **दुलहाई**।→ र० ३६-४।

दुलहिनीं—संज्ञा स्त्री० [हि०] सौभाग्यवती वधू।~**दुलहिनीं** गावहु मंगलचार।→सब० १४६-१।

दुवार—संज्ञा पु० [सं० द्वार] दरवाजा। ~ जम **दुवार** जब लेखा मांगै तब का कहसि मुकुन्दा।→पद २३१-२।

दुवारा—संज्ञा पु० [सं० द्वार] द्वार, दरवाजा। दे० 'दुवार'। ~ भगति **दुवारा** साँकरा, राई दसएँ भाइ। →सा० मन० (१३) २६-१।

दुविधा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विधा] दो ओर जाना, डाँवाडोल, चंचलता, संशय। ~ मुख तौ तबही देखिए, (जे) मन की **दुविधा** जाइ।→सा० मन० (१३) ८-२।

दुह—वि० [सं० द्वि] दोनों।~ हमहिं कुसेवग कि तुमहिं अयांनां, **दुह** मैं दोस काहि भगवाना।→सब० २-३।

दुहाई—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि + आह्वाय] गुहार, शपथ, सौगंध।~बोलौ भाई राँम की **दुहाई**। → पद २०१-१, सब० ६६-१।

दुहागनि—संज्ञा स्त्री० वि० [सं० दुर्भाग्यवती] दुर्भाग्यवती, सुहागिन का विलोम। ~ जो हाँसेही हरि मिलै, तौ नहीं **दुहागनि** कोइ। → सा० बिर० (३) २६-२।

दुहिया—क्रि० [सं० दोहन] दुहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ हंसा संसय छूरी कुहिया, गइया पिये बछरुवै **दुहिया**।→पद ३२३-१।

दुहूंठा—क्रिया वि० [हि०] दोनों स्थानों पर। ~ तुरक मसीति देहुरै हिन्दू, **दुहूंठा** राँम खुदाई।→पद ३२६-५।

दुहूधां—क्रि० वि० [सं० द्विविधि] दोनों ओर से।~ आवत जात **दुहूधां** लूटे, सब तत्त हरि लीन्हा रे। → सब० ८४-२।

दुहेरा—वि० दे० 'दुहेला'।

दुहेला—वि० [सं० दुर्हेल] दुःसाध्य, कठिन। ~ तहिया होत गुरू नहिं चेला, गम्म अगम्म न पंथ **दुहेला**। → र० ७-५, सा० निद्या० (५४) ६-२, पद ३३६-४।

दुहेली—वि० [सं० दुर्हेल] दुःखदायी, दुस्साध्य। ~ जटा तोरि पहिरावैं सेली, जोग जुक्ति कै गर्व **दुहेली**।→ र० ७१-२, सा० सूरा० (४५) २४-२।

दूज—संज्ञा पु० [सं० द्वैत] द्वैत।~पंच पियादे पारि कै, दूरि करै सब **दूज**। →सा० सूरा० (४५) ३-२।

दूजा—वि० [सं० द्वितीय] दूसरा, अतिरिक्त।~जप तीरथ व्रत कीजै पूजा, दान पुन्य कीजै बहु **दूजा**। → र० २२-७, सा० गुरु० (१) २६-१, पद २६२-२२।

दूजा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] द्वितीया तिथि।~ग्रहन अमावस सायर **दूजा**, सांती पाठ परोजन पूजा।→ विप्र० (२) ४।

दूजा—संज्ञा पु० [सं० द्वितीय] १. द्वैत भाव। २. अनन्यता का भाव। ~क्या जपु क्या तपु क्या व्रत पूजा, जाकै हृदै भाव है **दूजा**। → सब० १०१-३।

दूधा—संज्ञा पु० [सं० दुग्ध] दूध। ~ गुप्त प्रकट है एकै **दूधा**, काको कहिए ब्राह्मन सूदा।→ र० २६-७।

दूनी[१]—वि० [सं० द्वि] दोनों।

दूनी[२]—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनिया] संसार, जगत्।~सूर्य चन्द्र तारागन नाहीं, मच्छ कच्छ नहिं **दूनी**। → सब० ३१-६।

दूभर—वि० [सं० दुर्भर] दुस्साध्य, कठिन। ~ **दूभर** पनियाँ भरा न जाई।→सब० १५०-१।

दूषा—वि० [सं० दुःख] दुःखी।~सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते **दूषा**।→सब० २५-६।

दूलह—संज्ञा पु० [सं० दुर्लभ] वर, पति। ~पूरि सुहाग भयौ बिनु **दूलह** चौकै रांड भई संग साँई।→पद २३८-६।

दृग—संज्ञा पु० [सं० दृक्] द्रष्टा। ~ चिमिकि चिमिकि चिमिकै **दृग** दुहु दिस, अर्ब रहा छिरिआई। → पद २६५-३।

देबा—क्रि० [राज०] दिए जाएँगे।~ हैबर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी **देबा** गाड़।→सा० चिता० (१२) ११-२।

देव—संज्ञा पु० [सं०] वैश्य।~ सर्मन वर्मन **देव** औ दासा, रज सत तमगुन धरति अकासा।→र० २७-७।

देवघर—संज्ञा पु० [सं० देवगृह] मंदिर। ~जैनी धर्म क मर्म न जाना, पाती तोरि **देवघर** आना।→ र० ३०-३; चाँचर (५) २-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवघरा—संज्ञा पु० दे० 'देवघर'।

देवल—संज्ञा पु० [सं० देवालय] देवालय, मंदिर।~मन चाले **देवल** चलै, ताका सर्वस जाइ। → सा० मन० (१३) २८-२, सब० ६०-३, सा० बिर० (३) ४४-२।

देवलि—संज्ञा पु० दे० 'देवल'।

देवा—वि० [सं० दिव्य] पवित्र, पावन। ~तैं सुत मानु हमारी सेवा, तो कँह राज देइहों **देवा**।→र० ५८-१।

देसी—क्रि० [सं०√दा] देगा। ~ देवलि देवलि धाहड़ी, **देसी** ऊगे सूरि।→ सा० बिर० (३) ४४-२, सा० साधु० (२८) २-२।

देह—क्रि० [हि० देना] याचना।~ए सबही अहला गया, जबहिं कहा कछु **देह**।→सा० बेस़ा० (३५) १४-२।

देहरा—संज्ञा पु० [सं० देवगृह] देवालय, मंदिर।~ दस द्वारे का **देहरा**, तामें जोति पिछांनि। → सा० भ्रम० (२३) १०-२।

देहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] द्वार। ~**देहरी** बैठी मेहरी रोवै, द्वारै लगि सगी माइ।→सब० १०५-३।

देहियां—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] शरीर। ~ तोरी सदा न **देहियां** रे।→ पद २७३-२।

देही—संज्ञा पु० [सं० देहिन्] देह में रहने वाला जीवात्मा। ~ काल न खाइ कलप नहिं ब्यापै, **देही** जुरा नहिं छीजै। → सब० ३२-२, सब० ७२-३।

देही—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] शरीर। ~ कबीर कहा गरबियो, **देही** देखि सुरंग।→सा० चिता० (१२) ६-१।

देहुरा—संज्ञा पु० [सं० देवगृह] देवालय, मंदिर। दे० 'देहरा'। ~ नींव बिहूनां **देहुरा**, देह बिहूनां देव। → सा० पर० (५) ४१-२, सब० ११६-७, सब० ३२६-६।

देहुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] देहरी; द्वार के चौखट की लकड़ी जो नीचे होती है। दे० 'देहरी'।~देवल माँहे **देहुरी**, तिल जेता बिस्तार। →सा० पर० (५) ४२-१।

देहुरै—संज्ञा पु० [सं० देवगृह] देवालय, मंदिर। दे० 'देहरा'। ~ तुरक मसीति **देहुरै** हिन्दू, दुहूंठा राँम खुदाई।→पद ३२६-५, सा० भ्रम० (२३) ११-१।

दोइ सरीर—संज्ञा पु० [सं० द्वि+शरीर] द्वैत भाव। ~ कहै कबीर वह क्यों मिलैं, जब लगि **दोइ सरीर**।→सा० पर० (५) २५-२।

दोई—वि० [सं० द्वि] दोनों। ~झूठ गर्भ भूले मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल **दोई**।→ र० २६-८।

दोजक—संज्ञा पु० दे० 'दोजख'।

दोजख—संज्ञा पु० [फ़ा० दोज़ख] नरक। ~ होय भिस्त जौ चित न डोलावै, खसमहिं छोड़ि **दोजख** को धावै।→ र० ५-८, र० ४०-४, सा० निह० (११) ७-१, सब० ८२-२।

दोजग—संज्ञा पु० [फ़ा० दोज़ख] नरक। दे० 'दोजख'। ~कहै कबीरा भिस्ति छोड़ि करि **दोजग** ही मन मांनां। → पद २२६-१०; पद ३२५-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोवर—वि० [हि० दोहरा] दोहरा। ~**दोवर** कोट अरु तेवर खाई। → सब० ६३-२।

दोस—संज्ञा पु० [सं० दोष] बुराई, त्रुटि। ~ हमहिं कुसेवग कि तुमहिं अयांनां, दुह मैं **दोस** काहि भगवाना। → सब० २-३, पद २१०-६, सा० साषीभू० (५७) ३-२।

दोसत—संज्ञा पु० दे० 'दोस्त'।

दोस्त—संज्ञा पु० [फ़ा०] मित्र, प्रिय। ~ एक **दोस्त** जो हम किया, जिस गलि लाल कबाइ। ~ सा० मन० (१३) ११-१, सा० पर० (५) १२-२।

दोहरा—वि० [दे०] कठिन। ~ स्वामी होना सोहरा, **दोहरा** होना दास।→ सा० चाँण० (१७) ३-१।

दोहागिनि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दुर्भाग्य। ~दुर्मति केर **दोहागिनि** भेटै, ढोटहि चाँप चपैटै।→पद २६६-५।

दौं—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव] दावाग्नि। ~ हिरदै भीतरि **दौं** बलै, धुवाँ न परगट होइ। → सा० ग्यान० (४) ३-१, सा० बेली० (५८) २-१।

दौना—संज्ञा पु० [सं० दमनक] एक पौधा जिसकी पत्तियों में तेज, किंतु कुछ कड़वी गंध होती है। ~ **दौना** मरुआ चंपा कै फूला, मानहुँ जीव कोटि सम तूला।→र० ३०-४।

द्यौहड़े—संज्ञा पु० [सं० देवगृह+ड़े (प्रत्य०)] देवगृह>देवघर>द्येवहर, देवालय।~पुन्नैं पाए **द्यौहड़े**, ओछी ठौर न खोइ।→सा० चिता०(१२) ५६-२।

द्यौहाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगृह+री (ड़ी) प्रत्य०] देवगृह> देवघर> द्योहर, देवालय। ~ बलिहारी गुरु आपणैं, **द्यौहाड़ी** कै बार। → सा० गु० (१) २-१। [ना० प्र० सभा]।

द्रुगम—वि० [सं० दुर्गम] दुर्गम, कठिन। ~अगम **द्रुगम** गढ़ि रचिऔ बास, जामहि जोति करै परगास।→सब० ४३-३।

द्रुलभ—वि० [सं० दुर्लभ] दुर्लभ।~ अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै **द्रुलभ** जोग। → सा० सुमि० (२) २८-२।

द्रोह—संज्ञा पु० [सं०] शत्रुता। ~ है दयाल **द्रोह** नहिं वाके, कहहु कौन को मारा।→पद २६२-४।

द्वात—संज्ञा स्त्री० [अ० दावात] स्याही रखने का पात्र। ~ मसि बिनु **द्वात** कलम बिनु कागद, बिनु अक्षर सुधि होई।→पद २७०-८।

द्वादस दल—संज्ञा पु० [द्वादश दल] अनाहत चक्र (इसमें बारह दल होते हैं)। ~ **द्वादस दल** अभिअंतरि म्यंत, तहाँ प्रभू बैठे समरथ सार।→सब० १४०-१२।

द्वारा—संज्ञा पु० [सं० द्वार] मार्ग; दरवाजा, प्रवेश द्वार। ~ गगन मध्ये रोकिनि **द्वारा**, जहाँ दिवस नहिं राती।→सब० ६५-७।

ध

धंधा—संज्ञा पु० [हि०] सांसारिक प्रपंच, प्रपंच का चक्कर।~**धंधा** ही में मरि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया, बाहर हुई न बंव। → सा० चिता० (१२) ३३-२, सब० २५-७।

धंधा—संज्ञा पु० [सं० धन+√धा] कार्य, उद्यम, व्यापार। ~**धंधा** वंधा किन्ह बेवहारा, करम विवरजित बसै निआरा। → र० २२-३, वसंत (४) ६-१।

धंधे—संज्ञा पु० [हि०] काम-काज, कर्मवंधन। ~ बंस आगि लगि बंसै जरिया, भर्म भूलि नर **धंधे** परिया। →र० ५०-२।

धंधै—संज्ञा पु० [सं० धंधक] कर्म, कार्य। ~ कबीर जे **धंधै** तौ धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं। → सा० चिता० (१२) २१-१।

धंनि—वि० [सं० धन्य] कृतार्थ, धन्य। ~ रांम देव संगि भांवरि लेइहौं **धंनि** धंनि भाग हमारा।→सब०१४६-६।

धज—संज्ञा पु० [हि०] टुकड़ा, चिथड़ा। ~फारि पटोरा **धज** करूँ, कामलिया पहिराउँ।→सा०बिर० (३)४१-१।

धजा—संज्ञा पु० [सं० ध्वज] ध्वजा, पताका। ~ काया देवल मन **धजा**, विषय लहरि फहराइ।→सा० मन० (१३) २८-१।

धड़—संज्ञा पु० [सं० धर] शरीर का स्थूल मध्य भाग।~ **धड़** सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुज्झ।→सा० सूरा० (४५) २६-२।

धन—संज्ञा स्त्री० दे० 'धना'।

धना—संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका] स्त्री। दे० 'धनि'। ~ गये राम औ गये लछमना, संग न गई सीता अस **धना**।→र० ५५-१।

धना—संज्ञा पु० [सं० धन] सम्पत्ति। ~ मुए एक जाँय तजि **धना**, मरहिं इत्यादिक ते के गना। → ज्ञान चौं० (१) ३४।

धनि—संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका] युवती, स्त्री, पत्नी।~ **धनि** पिउ एकै संगि बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा।→ पद ३३६-४, वसंत (४) ८-२।

धनिक—वि० [सं०] धनवान।~ धन के कहें **धनिक** जौ होई तौ निरधन रहै न कोई।→सब० १६८-८।

धनुक—संज्ञा पु० [सं० धनुष] धनुष। ~ मिरतक उठा **धनुक** कर लीये, काल अहेड़ी भागा।→सब० १३-५।

धनुहड़ी—संज्ञा पु० [सं० धनुष+ड़ी (प्रत्य०)] छोटा धनुष। ~ससा सींग की **धनुहड़ी** रमै बाँझ का पूत। → सा० बेली० (५८) ४-२।

धन्नि—वि० [सं० धन्य] कृतार्थ, प्रशंसा-योग्य। ~ **धन्नि** सुहागिनि जो पिय भावै, कह कबीर फिरि जनमि न आवै।→पद ३३६-५।

धमार—संज्ञा स्त्री० [हि०] उछलकूद, उत्पात।~ पाँच पचीसो दसहूँ द्वार, सखी पाँच तहँ रची **धमार**।→वसन्त (४) ३-६।

धमारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] खेलकूद। ~ जारौं माँग मैं तासु नारि की, जिन सरवर रचल **धमारी**। → पद २२२-३।

धरंम—संज्ञा पु० [सं० धर्म] धर्म।~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर मन फूला फिरै, करता हूँ मैं **धरंम**।→सा० चाँण० (१७) २१-१।

धर—वि० [सं०] धारण करने वाला; सँभालने वाला।~तहिया होत पिंड नहिं वासू, ना **धर** धरनि न अनल अकासू।→र० ७-४।

धर—क्रि० [सं०] पकड़ कर।~ पाँच किसाना भाजि गये हैं, जीव **धर** बांध्यौ पारी हो राम। → सब० १०-१०।

धर—संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी। ~ त्रिसनां छांनि परी **धर** ऊपरि दुरमति भांडा फूटा।→पद ३०२-४।

धरई—क्रि० [सं०√धृ=धारण] धारण करते हैं।~ जो जन गुरु की निन्दा करई, सूकर स्वान जन्म सो **धरई**। →र० ६७-५।

धरती—संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] पृथ्वी, जमीन, मृत्युलोक। ~ जेहि जल जीव सीव को बासा, सो जल **धरती** अमर परगासा। → सब० १०७-३।

धरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणी] पृथ्वी। ~ तहिया होत पिंड नहिं वासू, ना धर **धरनि** न अनल अकासू। →र० ७-४, र० ७५-६, सब० ३२-१४, सब० १६६-२, पद २८२-२, सा० सम्र० (३८) ५-२।

धरनी—संज्ञा स्त्री० दे० 'धरनि'।

धरनीधरा—संज्ञा पु० [सं० धरणीधर] शेषनाग। ~ अगम अगोचर अभि-अंतरा, ताको पार न पावै **धरनी-धरा**।→सब०४३-८, सब०१४०-६।

धरमराइ—संज्ञा पु० [सं० धर्मराज] यमराज। ~ **धरमराइ** जब लेखा मांग्या, बाकी निकसी भारी। → सब० १०-६, सब० २७४-७।

धरमी—वि० [सं०√धर्मिन्] धर्म का पाषण्ड करने वाला। ~ नेमी देखा **धरमी** देखा, प्रात करै असनाना। →पद २६७-३।

धरल—क्रि० [हि० धरना] पकड़ लिया। ~संतो अचरज एक भौ भारी, पुत्र **धरल** महतारी।→पद २६०-१।

धरा—क्रि० वि० [सं०√धृ] पकड़ा हुआ।~जौ सौ बार कहौं समुझाई, तैयो **धरा** छोरि नहीं जाई। → र० ६४-२।

धरिया—क्रि० [सं० धारण] धारण किया। ~ होय बराह धरनि नहिं **धरिया**, छत्री मारि निछत्र न करिया। →र० ७५-६।

धरिया—क्रि० [सं० धारण] धारण करता है। ~ कर्म धर्म मति बुधि परिहरिया, झूठा नाम साँच लै **धरिया**।→र० २६-३।

धर्मराज—संज्ञा पु० [सं०] यमराज, काल।~ थोरहि संपति गौ बौराई, **धर्मराज** के खबरि न पाई। → र० २१-५, सब० २१७-५।

धर्मराय—संज्ञा पु० दे० 'धर्मराज'।

धवंती—क्रि० वि० [सं० धावन] धौंकती हुई, चलती हुई। ~ धवणि **धवंती** रहि गई, बुझि गए अंगार।→ सा० काल० (४६) २१-१।

धसै—क्रि० [हि० धँसना] प्रवेश करता है। ~ ओसों प्यास न भाजई, जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लगि **धसै** न आभ । → सा० सुमि० (२) २१-२ ।

धांनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० धामन्] स्थान, जगह । ~ सोनैं की लंका बनीं भइ धूर की **धांनीं** रे ।→पद २७३-५ ।

धागा—संज्ञा पु० [हि० तागा] डोरा, प्रेम की डोर । ~ **धागा** ज्यूँ टूटै त्यूँ जोरि । → सब० १५४-१, पद ३४०-७ ।

धागा—संज्ञा पु० [हि० तागा] सूत्र, ध्यान का सूत्र ।~ संतौ **धागा** टूटा गगन बिनसि गया सबद जु कहाँ समाई ।→पद २९८-१ ।

धाप—संज्ञा पु० [हि०] छाप ।~ द्रिष्टि परे उन काहु न छाँड़े, कै लीन्हों एक **धाप** ।→ चाँच० (५) १-२१ ।

धाय—क्रि० [सं० धावन] दौड़ कर । ~ मंदिर तौ है नेह का, मति कोइ पैठे **धाय** ।→र० २२-८, र० १-७ ।

धाया—क्रि० [सं० √ धा] दौड़ा । ~ जिन अवधू गुरु ग्यान लखाया, ताकर मन तँहई लै **धाया** । → र० ८३-२ ।

धार—संज्ञा पु० [सं०] डाका, छापा । ~ चेतवा है तौ चेतहु, नहिं दिवसु परतु है **धार** ।→ र० ४४-५ ।

धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालवा में 'धारा' नामक नगरी जहाँ भोज की राजधानी थी । ~ जात कौरवहिं लागु न बारा, गये भोज जिन साजल **धारा** ।→र० ५५-२ ।

धारैं—क्रि० [सं० धारण] धारण करती है । ~ कोटि सरसती **धारैं** राग, कोटि इन्द्र जहं गवन लाग ।→सब० ११०-७ ।

धावा—क्रि० [सं० धावन] दौड़ता है । ~ चकवा बैसि अंगारै निगलै समद अकासा **धावा** ।→पद ३३१-८ ।

धाहड़ी—क्रि० [अनु०] ध्वनित होता है, आवाज उत्पन्न होती है । ~ देवलि देवलि **धाहड़ी**, देसी ऊगे सूरि ।→सा० बिरह० (३) ४४-२ ।

धाहदे—क्रि० [अनु०] चिल्ला-चिल्ला कर पुकारना या कहना । ~ ऊठि कबीरा **धाहदे**, दाझत है संसार ।→ सा० दया० निर० (५१) २-२ ।

धियांनां—संज्ञा पु० दे० 'धियान' ।

धियांनी—वि० [सं० ध्यानिन्] ध्यान लगाने वाला ।~ब्रह्म गियाँनी अधिक **धियांनी**, जम कै पटै लिखाया । → पद २२०-६ ।

धिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] पुत्री । ~ देव चरित्र सुनहु रे भाई, सो तो ब्रह्मा **धिया** नसाई ।→र० ८१-१ ।

धियान—संज्ञा पु० [सं० ध्यान] ध्यान । ~ अविगत अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम **धियान** ।→सा० पर० (५) ४४-२; पद ३१०-३; पद ३३१-४ ।

धियावहु—क्रि० [हि० ध्यान] ध्यान करो । ~ कहै कबीर नर तिसहिं **धियावहु** बावरिया संसारा ।→सब० १७७-१० ।

धींगा धींगी—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग] बाह्याडम्बर ।~**धींगा धींगी** भलो न माना; जो काहू मोहि हिरदय न जाना ।→र० ६७-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोध ।~ मृतक कूँ **धी** जौं नहीं, मेरा मन बी है।→ सा० मन० (१३) २३-१ ।

धीजिए—क्रि० [सं०√धृ] धारण करना, ग्रहण करना; विश्वास करना । ~ उज्जल देखि न **धीजिए,** बग ज्यौं माँडै ध्यान । → सा० असा० (२७) २-१ ।

धीमर--संज्ञा पु० [हि० धीवर] मल्लाह, मछुआरा । ~ करम फाँस जम जाल पसारा, जस **धीमर** मछरी गहि मारा । →पद २२१-४ ।

धीर—वि० [सं०] धैर्य । ~ चेतनि चौकी बैंसि करि, सतगुरु दीन्हीं **धीर** ।→सा० गुरु० (१) २३-१ ।

धुँधुवाउँ—क्रि० [सं० धूम्र से] धीरे-धीरे, सुलग-सुलग कर धुँआ देकर जलना । ~ हौं बिरहा की लाकड़ी, समुझि समुझि **धुँधुवाउँ** । → सा० बिर० (३) ३७-१ ।

धुजा—संज्ञा पु० [सं० ध्वज] झण्डा । ~है गै वाहन सघन घन, छत्र **धुजा** फहराइ ।→सा०साधुम०(३०)४-१ ।

धुनि—संज्ञा स्त्री० [स० ध्वनि] शब्द, आवाज, नाद, अनाहत नाद । ~ अवधू ग्यान लहरि **धुनि** मांडी रे । → सब० ३०-१, पद ३०५-१८, सब० ५२-६ ।

धूंवरि—वि० [सं० धूम+हि० रि] धुएँ के रङ्ग का । ~ यहु संसार इसो रे प्राणी, जैसी **धूंवरि** मेह । → पद २०३-४ ।

धूंवां—संज्ञा पु० [सं० धूम्र] धुआँ ।~ पानी हू तैं पातरा, **धूँवां** हू ते झीन । →सा० मन० (१३) १२-१ ।

धूप—संज्ञा स्त्री० [सं०] सांसारिक ताप । ~ **धूप** दाझतैं छाँह तकाई, मति तरवर सच पाऊँ । → सब० ६६-३ ।

धूम--संज्ञा पु० [सं० धूम्र] धुआँ ।~ इक **धूम** घोटि तन होंहि स्याम, यूँ मुकति नहीं बिन राँम नाम । → सब० ६१-८ ।

धूर—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि] धूलि, मिट्टी । ~ सोनैं की लंका बनीं भइ **धूर** की धांनीं रे । → पद २७३-५; बसंत (४) २-५, सब० १०२-८ ।

धूरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'धूर' ।

धूरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'धूर' ।

धूलि—क्रि० [हि० धोना] धुलना, स्वच्छ हो जाना । ~ कबीर जे धंधै तौ **धूलि,** बिन धंधै धूलै नहीं । → सा० चिता० (१२) २१-१ ।

धूवाँ—संज्ञा पु० [सं० धूम्र] धूवाँ, धूम्र । दे० 'धूम' ।~यह तन जारौं मसि करौं, ज्यूं **धूवाँ** जाइ सरग्गि । →सा० बिर० (३) ११-१ ।

धेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय ।~ओस न प्यास मंदिर नहिं जँहवा, सहसौं **धेनु** दुहावैं तहवाँ ।→सब० १६५-३ ।

धोइ—क्रि० [सं० धावन, प्रा० धोअण] निकाल फेंको, छोड़ दो । ~कबीर अपने जीव तैं, ए दोइ बातैं **धोइ** । सा० चिता० (१२) ४१-१ ।

धोरे—संज्ञा पु० [सं० धर] समीप, निकट । ~ **धोरे** बैठि चपेटसी, यों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यौं बूड़ैं ग्यांन। → सा० असाधु० (२७) २-२।

धौखै—संज्ञा पु० [सं० धूक] भुलावा, छल।~ दुनियाँ के **धौखै** मुवा, चलै जु कुल की कांनि।→ सा० चिता० (१२) ४६-१।

धौलहर—संज्ञा पु० [सं० धवलगृह] प्रासाद, महल।~धूंवाँ केरा **धौलहर**, जात न लागै बार।→ सा० चिता० (१२) २७-२, सा० काल० (४६) १८-१।

ध्याया—क्रि० [सं० ध्यान] ध्यान किया। ~ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं **ध्याया** नहीं।→सा० चिता० (२१) २१-२।

ध्यावै—क्रि० [सं० ध्यान] ध्यान करना, सुरति लगाना। ~ अह निसि हरि **ध्यावै** नहीं, क्यों पावै द्रुलभ जोग। →सा० सुमि० (२) २८-२।

ध्रिग—अव्य० [सं० धृक्] धिक्, धिक्कार। ~कबीर हरि की भगति बिन, **ध्रिग** जीवन संसार। → सा० चिता० (१२) २७-१।

न

नंदन—संज्ञा पु० [सं०] पुत्र।~लोका तुम ज कहत हौ, नंद कौ **नंदन** नंद कहौ धूं काकौ रे।→ पद २८२-१।

नइ-नइ—क्रि० [सं० नमन] झुक जाना। ~ जिहि जिहि डाली पग धरै, सोई **नइ-नइ** जाइ।→सा० सम्र० (३८) १०-२।

नकटूं—संज्ञा पु० [सं० नासिका] नाक। ~ नैनूं **नकटूं** श्रवनूं, रसनूं, इन्द्री कहा न मानैं हो राम। → सब० १०-४।

नग—संज्ञा पु० [सं०] मणि।~ फूटा **नग** ज्यों जोड़ि मन, संधिहि संधि मिलाइ।→सा०सुमि० (२) ३१-२।

नगन—वि० [सं० नग्न] वस्त्रहीन, नग्न। ~ इक पढ़हि पाठ इक भ्रमैं उदास; इक **नगन** निरंतर रहैं निवास।→ सब० ६१-३।

नगबेली—संज्ञा स्त्री० [सं नागवल्ली] काँटेदार बेल। ~आंब चढ़ी अंबली रे अँबली बबूर चढ़ी **नगबेली** रे।→ पद २५५-३।

नग्र—संज्ञा पु० [सं० नगर] नगर। ~आतम ब्रह्म जो खेलन लागे काया **नग्र** मझार। →पद ३०६-४।

नचींत—वि० [सं० निश्चित] निश्चित। ~ जिन दिल बाँधी एक सौं, ते सुख सोवैं **नचींत**। → सा० निह० पति० (११) १३-२।

नजरि—संज्ञा स्त्री० [अ० नज़र] प्रत्यक्ष। ~ बिनु चंदा उजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा **नजरि** परै।→पद २४६-४।

नजरि—संज्ञा स्त्री० [अ० नज़र] दृष्टि, निगाह।→कहै कबीरा संत हो, परि गया **नजरि** अनूप। → सा० पर० (५) २४-२, सब० १४१-६।

नजरि—संज्ञा स्त्री० [अ०] दृष्टि में; निगाह में। ~ फाटै दीदै मैं फिरूँ; **नजरि** न आवै कोइ। → सा० साध-सा० (२६) १७-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नजीकि—वि० [फ़ा० नजदीक] निकट, समीप। ~ दासु कबीर तेरी पनह समांनां, भिस्ति **नजीकि** राखि रहिमांनां। →सब० १४१-८।

नट—संज्ञा पु० [सं०] अभिनेता। ~ नाना नाच नचाय के, नाचै **नट** के भेख।→र० ६३-५।

नटत—क्रि० [सं०√नट] नाचता हुआ, नृत्य करता हुआ। ~ मरकट मूँठी स्वाद न बिहुरै, घर घर **नटत** फिर्यो।→सब० ५-५।

नटबिधि—यौ० [सं० नटविधि] नट के समान। ~ काको जरै काहि होइ हांनि, **नटबिधि** खेलै सारंग पांनि। →पद २५६-४।

नटवत—[सं०] नट के समान।~ **नटवत** सारे साज साजिया, जो खेलै सो देख बाजिया।→ र० ८२-४, सब० ६०-१०।

नपाक—वि० [फ़ा० नापाक] अपवित्र। ~रज बीरज सो मांस उपाने, मांस **नपाक** जो तुम खाई।→पद २१०-५।

नफर—संज्ञा पु० [अ०] दास, नौकर। ~ साहिब गरवा चाहिए, **नफर** बिगाड़ै नित्त। → सा० बीन० (५६) २-२।

नबी—संज्ञा पु० [अ०] ईश्वर के दूत, पैगम्बर। ~ **नबी** हबीबी के जो कामा, जहँ लौ अमल सो सबै हरामा। →र० ४८-५।

नभ—संज्ञा पु० [सं० नभस्] आकाश। ~ मरि गये ब्रह्मा **नभ** के वासी, सीव सहित मुए अविनासी। → र० ५४-१।

नरहरि—संज्ञा पु० [सं०] श्रेष्ठ नर। ~ **नरहरि** लागी दव बिनु ईंधन, मिलै न बुझावनहारा। → सब० १५७-१।

नरहरि—संज्ञा पु० [सं०] नृसिंह प्रभु। ~ **नरहरि** सहजें ही जिनि जाँना। → सब० १५८-१, सब० ६७-६, सब० ५०-१।

नरहरी—संज्ञा पु० दे० 'नरहरि'।

नरायन—संज्ञा पु० [सं० नारायण] सभी नरों का आश्रय। ~ सर खूटी एक राम **नरायन**, पूरन प्रगटे भेदा। → सब० १२७-३।

नरी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] ढरकी के भीतर की नली, जिस पर तार लपेटा रहता है (ढरकी = जुलाहों का वह औजार जिससे वे बाने का सूत फेंकते हैं)।~महि अकास दुइ गाड़ खँदाया, चाँद सुरुज दुइ **नरी** बनाया।→र० २८-२।

नवाऊँ—क्रि० [सं० नमन] झुकाऊँ। ~ कहै कबीर मेरै सिर परि साहेब मैं ताकौं सीस **नवाऊँ** जी। → पद ३०७-८।

नवावौं—क्रि० [सं० नमन] झुकाना; नमस्कार करना।~अब मन रामहिं ह्वै रहा, सीस **नवावौं** काहि। → सा० सुमि० (२) ८-२।

नसाँना—क्रि० [हि०] नष्ट हो गया। ~ भागा भर्म भया मन असथिर, निद्रा नेह **नसाँना**।→पद ३०५-१५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नसाई—क्रि० [सं० नष्ट] नष्ट हो जाते हैं। ~ बोलना कासों बोलिय (रे) भाई; बोलत ही सब तत्तु **नसाई**। →र० ७०-१।

नसानी—क्रि० [हि०] नष्ट हो गई। ~ आपन आपन झगरा पसारिनि, पिया सो प्रीति **नसानी** हो। →कहरा (३) २-७।

नसौना—वि० [संज्ञा नाशकारिन्] विनाशक। ~जीव सीव का आहि **नसौना**, चारिउ वेद चतुर गुन मौना। →र० ३०-२।

नहिं तर—अव्य [हि० नहीं+तो+तर] अन्यथा, नहीं तो। ~राम कहें भल होइगा, **नहिं तर** भला न होइ।→ सा० सुमि० (२) १-२, सा० साधु० (२८) १०-२।

नाँइ—संज्ञा पु० दे० 'नाँउँ'।

नांउँ—संज्ञा पु० [सं० नाम] नाम। ~**नांउँ** मेरै खेती **नांउँ** मेरै बारी, भगति करउँ जन सरनि तुम्हारी। → सब० ४६-३, सा० साधसा० (२९) १२-१।

नाँगी—वि० [सं० नग्न] नग्न, नंगी, वस्त्रविहीना। ~ पतिवरता **नाँगी** रहे, तौ उसहि पुरिस कौं लाज। →सा० निह० पति० (११) १७-२, सब० ७७-१, सा० चिता० (१२) ३७-२।

नांगे—संज्ञा पु० दे० 'नाँगी'।

नान्हाँ—वि० [सं०√न्यंच्] छोटा, सूक्ष्म, महीन।~**नान्हाँ** काती चित्त दे; मँहगे मोलि बिकाइ। → सा० चिता० (१२) ५८-१।

नान्हीं—वि० [सं०√न्यंच्] महीन, पतला।~**नान्हीं** मैदा पीसि लई है; छाँनि लई द्वै बारा। → सब० १५४-७।

नां फिरु—अव्य० [हि०] अन्यथा। ~बंदे खोज दिल हर रोज **नां फिरु** परेसानीं मांहि।→सब० १८१-३।

नांभि—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभि] नाभि। ~सनक सनंदन सिव सुकादि, **नाभि** कंवल जांने ब्रह्मादि।→पद २२४-५।

नाँमहरूँम—वि० [अ० महरूम] वंचित। ~दरगह तेरी साँइयाँ **नाँमहरूँम** न होइ।→सा० सम्र० (३८) ३-२।

नाँव—संज्ञा पु० [सं० नाम] नाम। दे० 'नाव'। ~ भगति भजन हरि **नाँव** है, दूजा दुक्ख अपार। →सा० सुमि० (२) ४-१, सा० चिता० (१२) ५४-२, सा० निन्द्या० (५४) १-२, सा० बिर०(३) १२-१, सा० क० बि० कथ० (१८) ४-२, ज्ञान चौं० (१) ३३; र० ३४-२।

नाँव—संज्ञा पु० [सं० नाम] नाम का जप। ~एकै हरि के **नाँव** बिन, गए जनम सब हारि। → सा० चिता० (१२) २-२।

नाइक—संज्ञा पु० [सं० नायक] स्वामी। ~गोकुल **नाइक** बीठुला, मेरा मनु लागा तोहिं रे।→सब० ६७-१।

नाईं—संज्ञा पु० [सं० नाम] नाम से। ~अल्लह रांम जिऊँ तेरै **नाईं**।→ सब० २३-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाउँ—संज्ञा पु० दे० 'नाँव'।

नाऊँ—संज्ञा पु० दे० 'नाँव'।

नाकै—संज्ञा पु० [हि०] छिद्र, प्रवेश द्वार। ~गुरु परसादि सुई कै **नाकै**, हस्ती आवैं जांही।→सब० ३०-८।

नाखै—क्रि० [सं० नष्ट] नष्ट करे, उल्लंघन करे। ~ संगहि पोच है ज्ञान पुकारै, चतुरा होय सो **नाखै**। →पद २०७-६।

नाग—संज्ञा पु० [सं०] शेषनाग, सर्प। ~बिनसे **नाग**, गरुड़ गलि जाई, बिनसे कपटी, औ सत भाई।→र० ४६-१, सा० निगु० (५५) ८-१, सा० कामी० (२०) २१-१।

नाज—संज्ञा पु० [हि० अनाज] अनाज, अन्न (गल्ला)। ~मन दस **नाज** टका दस गांठी; ऐंड़ौ टेढ़ौ जात। →सब० ७०-२, सा० बेसा० (३५) १३-१।

नातर—अव्य० [सं० न+तो+अरु] नहीं तो, अन्यथा। ~ भली भई जु गुर मिल्या, **नातर** होती हानि।→ सा० गुरु०(१)१६-१, पद २१६-२, सब० १६१-५।

नातरु—अव्य० दे० 'नातर'।

नाता—संज्ञा पु० [सं० ज्ञाति] सम्बन्ध, रिश्ता।~**नाता** गोता कुल कुटुम सभ, इन्ह की कौन बड़ाई हो। → कहरा (३) ५-७।

नादाना—वि० [फ़ा० नादान] अज्ञानी। ~भूला वे अहमक **नादाना**, तुम हरदम रामहिं ना जाना। → पद २१०-१।

नादैं—संज्ञा पु० [सं० नाद] शब्द, ध्वनि।~ज्यूं मृग **नादैं** बेध्यौ जाइ, पिंड परे वाकौ ध्यान न जाइ।→ सब० ५६-३।

नाधे—क्रि० [सं० नद्ध] जुते हुए।~ बैठत नाहिं साधु की संगति, **नाधे** जनम गयो।→सब० ६४-२।

नाना—वि० [हि०] विचित्र, अनुपम। ~मैं तोहिं पूछों मूसलमाना, लाल जरद की **नाना** बाना। →र० ४६-३।

नापाक—वि० [फ़ा०] अपवित्र। ~ दिल **नापाक** पाक नहिं चीन्हां तिसका मरम न जांनां।→पद २३०-६।

नामा—संज्ञा पु० [हि० नामदेव] प्रसिद्ध भक्त, जिन्होंने मराठी व हिन्दी दोनों में काव्य-रचना की थी। ~ सिव माते हरि चरन सेव, कलि माते **नामा** जयदेव।→वसन्त(४)१०-७।

नामा—संज्ञा पु० [सं० नाम] नाम का। ~ऊ जे सुनी जौनपुर धामा, झूंसी सुनि पीरन को **नामा**। → र० ४८-२।

नाराइन—संज्ञा पु० [सं० नारायण] ईश्वर। ~ मेरी जिभ्या बिस्नु नैनं **नाराइन** हिरदै बसहि गोविंदा। → पद २३१-१, सब० १४२-१।

नाराइनां—संज्ञा पु० दे० 'नाराइन'।

नारि—संज्ञा स्त्री० दे० 'नारी'।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाड़ी] धमनी, नाड़ी। ~ इला पिंगुला सुखमन **नारी**, वेगि विलोइ ठाढ़ी छछिहारी। →पद ३३०-४, वसंत (४) ३-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा की डाँड़ी। ~ मुख के **नाल** स्रवन के तुम्बा, सतगुरु साज बनाया। → सब० १०६-४।

नालि—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल] नली या नाली। ~ प्रेम पलीता सुरति **नालि** करि गोला ग्यांन चलाया।→ सब० ६३-७।

नालि—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल] डाँड़ी। ~ लवा **नालि** तंति एक सँमि करि, जंत्र एक भल साजा। → सब० १७२-३।

नाव—संज्ञा पु० [सं० नाम] नाम। ~ कबीर हरि के **नाव** सौं, प्रीति रहै इकतार।→सा० उपदे० (३४) ८-१, पद २६५-६।

नाव—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका] नौका, नाव। ~मूसा खेवट **नाव** बिलइया, सोवै दादुर सर्प पहरिया। → सब० ८६-४, पद ३४२-११, सा० चिता० (१२) ५६-२।

नाह—संज्ञा पु० [सं० नाथ] पति, स्वामी, आत्मा। ~ ई भर जुवती वै बार **नाह**, अति रे तेज त्रिय रैनि ताहि। → वसंत (४) ५-४, पद २३२-६, पद ३४८-२।

नाहींतर—[अव्य०] दे० 'नातर'।

निंत—अव्य० [सं० नित्य] नित्य, दे० 'नित'। ~तेरी बारी जीयरा, नेरी आवै **निंत**। →सा० काल० (४६) ६-२।

निआउ—संज्ञा पु० [सं० न्याय] दे० 'न्याव'। न्याय। ~ मुल्ला कहहु **निआउ** खुदाई। →पद २३०-१।

निआरा—वि० [सं० निराकृत] पृथक्, अलग।~धंधा बंधा किन्ह बेवहारा, करम विवरजित बसै **निआरा**। → र० २२-३।

निकंदिया—क्रि० [सं० नि+कंदन] नष्ट कर दिया है। ~ कबीर मूल **निकंदिया**, कौन हलाहल खाइ।→ सा० भ्र० वि० (२३) ६-२।

निकुल—वि० [नि+अ० कुल] कुल-हीन, सीमाहीन, असीम। ~ राम **निकुल** कुल भेंटि लै, सब कुल रहा समाइ।→सा० चिता०(१२)४५-२।

निखेध—संज्ञा पु० [सं० निषेध] निषिद्ध। ~तजि भरम करम बिधि **निखेध** रांम नामु लेही।→पद २७५-६।

निगंध—वि० [सं० निर्गन्ध] गन्ध रहित। ~एक **निगंध** बासनाँ प्रगटै, जगथैं रहै अकेला।→पद ३०५-१३।

निगम—संज्ञा पु० [सं०] पथ, मार्ग। ~अगम **निगम** गढ़ रचिले अवास, तहवाँ जोति करै परकास। →सब० १४०-३।

निगम—संज्ञा पु० [सं०] वेद। ~ **निगम** रिसाल चारि फल लागे, तामे तीन समाई।→सब० ८८-४, सब० ७-४।

निगलै—क्रि० [हि० निगलना] खा जाता है। ~ चकवा बैसि अंगारै **निगलै** समद अकासा धावा। →पद ३३१-८।

निगुणां[१]—वि० [सं० निर्+गुण] अनाड़ी, विवेकहीन, गुणहीन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निगुणाँ—वि० [सं० नि+गुरु] निगुरा, जिसका कोई गुरु नहीं है। →सा० निगु० (५५)।

निगुराँह—वि० [सं० निः+गुरुः] बिना गुरु का। दे० 'निगुरा'। ~ सगुरा सगुरा चुनि लिए, चूक पड़ी **निगुराँह**। →सा० निगु० (५५) ३-२।

निगुरा—वि० [सं० निः+गुरु] जिसका कोई गुरु नहीं है। ~सतगुर संपुट खोलि दिखावै, **निगुरा** होइ तो कहा बतावै। →सब० ५४-६।

निगुसाँवाँ—वि० [हि० नि+गोसाईं] जिसका कोई मालिक न हो। ~ **निगुसाँवाँ** बहि जाएगा, जाकै थाघी नहिं कोइ। →सा० जी० मृ०(४१) ११-१।

निगोड़ी—वि० [हि०] अभागिन। ~अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै **निगोड़ी** बौरी। →सब० १३०-५।

निग्रह—संज्ञा पु० [सं०] नियन्त्रण, अवरोध। ~न ना **निग्रह** से करु नेहू, करु निरुवार छाँड़ु संदेहू।→ ज्ञान चौं० (१) २१, पद २६८-६।

निचीता—वि० [सं० निश्चित] निश्चित, चिन्ता रहित। ~ बाँवरिया वन मैं फँद रोपै संग मैं फिरै **निचीता** रे। →पद २६३-७।

निचोइ—क्रि० [हि० निचोड़ना] निचोड़ कर।~नेक **निचोइ** सुधा रस वाकौ कौन जुगति सौं पीजै। → सब० १७८-२।

निछत्र—वि० [सं० नि+क्षत्रिय] क्षत्रिय विहीन। ~होय वराह धरनि नहिं धरिया, छत्री मारि **निछत्र** न करिया। →र० ७५-६।

निज—वि० [सं०] अपने भीतर विद्यमान् परम तत्व, प्रत्यगात्मा। ~ राम नाम **निज** जानि के, छाड़हु वस्तुहिं खोंटि।→र० ३६-६।

निज—संज्ञा पु० [सं०] आत्म तत्व। ~ग्याँन अंकूर न ऊगई, भावै **निज** परमोध।→सा० कामी० (२०) २०-२।

निज—संज्ञा पु० [सं०] आत्मा, आत्म स्वरूप। ~ **निज** निरखत गत व्यौहारा।→ सब० ८-२।

निजदरसन—यौ० [हि०] आत्मसाक्षात्कार।~कउवा कुबुधि निकट नहिं आवै, सो हंसा **निजदरसन** पावै।→ पद ३३४-५।

निजाई—भाव [हि० निज+आई (प्रत्य०)] निजत्व, स्वामित्व, अधिकार।~ सत्त सत्त कै बिस्नु दिठाई, तीनि लोक मँह राखि **निजाई**। → र० २७-२।

निठुर—वि० [सं० निष्ठुर] क्रूर।~ ठ ठा ठौर दूरि ठग नियरे, नितिकै **निठुर** कीन्ह मन घेरे। → ज्ञान चौं० (१) २७।

निड़ै—वि० [सं० निकट] निकट, नजदीक, पास।~कबीर चन्दन कै **निड़ै**, नींब भि चन्दन होइ। → सा० निगुणाँ० (५५) १२-१।

नित—वि० [सं० नित्य] सदैव, प्रतिदिन।~जल कै मंजन जो गति होई;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मीनां **नित** ही न्हावै। → पद ३०८-३।

नितहिं—वि० [सं० नित्य + हि० हि] दे० 'नित' और 'नित्त'। नित्य, सदैव, सर्वदा। ~ बुढ़िया हँसि बोलै मैं **नितहिं** बारि, मोहि अस तरुनि कहौ कौन नारि।→वसंत (४) ४-१।

नितिकै—अव्य० [हि०] अत्यन्त। ~ ठ ठा ठौर दूरि, ठग नियरे, **नितिकै** निठुर कीन्ह मन घेरे। →ज्ञान चौं० (१) २७।

नित्त—वि० [सं० नित्य] नित्य, सदैव, हमेशा। दे० 'नित'।~सब रग तंत रबाब तन, बिरह ब्रजावै **नित्त**। → सा०बिर० (३) २०-१, सब० १४४-४, सा० बीन० (५६) २-२।

निदले—क्रि० [हिं०] निद्रित कर दिया; सुला दिया। ~ ननदी गे तैं विषम सोहागिनि, तैं **निदले** संसारा गे। → कहरा (३) ११-१।

निदांन—अव्य० [सं० निदान] अंत में, आखिर। ~ लोग बटाऊ चलि गए, हँम तुम रहे **निदांन**।→सा० सूरा० (४५) ३३-२, सा० कामी० (२०) ६-२।

निदान—क्रि० वि० [सं०] अन्ततः, अन्ततोगत्वा। ~ दीपक जोति पतंग ज्यूं, पड़ता आप **निदान**।→सा०गु० (१) १६-२।

निदानि—अव्य० दे० 'निदाँन'।

निन्दई—क्रि० [सं० निन्दा] निन्दा करते हैं।~ लोग बिचारा **निन्दई**, जिनहूँ न पाया ग्यांन। → सा० निन्द्या० (५४) १-१।

निन्दक—संज्ञा पु० [सं०] निन्दा करने वाला। ~ **निन्दक** नियरे राखिए, आँगनि कुटी बँधाइ।→सा०निन्द्या० (५४) ३-१, ४-१।

निन्द्या—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] निन्दा। →सा० निन्द्या० (५४)।

निधड़क—क्रि० वि० [हि० नि = नहीं + धड़क] वेरोक, बेखटक, निश्चित। ~**निधड़क** बैठा रांम बिन, चेति न करै पुकार।→सा० काल० १३-१।

निधांन—संज्ञा पु० [सं० निधान] आश्रय। ~ सांचु कहि हम गाँठि दीन्हीं छोड़ि परम **निधांन**।→सब० १८७-४, पद २४५-१।

निधाना—संज्ञा पु० [सं० निधान] राशि, खजाना, निधि। → जाइ पाप सुख मिलै **निधाना**, निस्चै वचन कबीर कै माना।→र० ५८-५, पद २२८-३।

निधांनु—संज्ञा पु० दे० 'निधांन'।

निनारा—वि० [हि० न्यारा] पृथक्, भिन्न; अलग। ~ एकै जनी जना संसारा, कौन ग्यान ते भयो **निनारा**। →र० २-६, सब० ४-१०।

निनारी—वि० दे० 'निनारा'।

निपजी—क्रि० [सं० निष्पद्य] उत्पन्न हुआ।~**निपजी** मैं साझी घना, बाँटै नहीं कबीर। →सा० गुरु० (१) ३०-१।

निपजै—क्रि० [सं० निष्पद्यते] उप्पन्न होता है। ~ अमृत बरिसै हीरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निपजैं, घंटा पड़ै टकसाल ।→ सा० पर० (५) ४७-१ ।

निपजैं—क्रि० [सं० निष्पद्यते, प्रा० निपज्जई] बढ़ती है, पुष्ट होती है ।~ उपजै **निपजै** निपजि समाई, नैंनन देखत यह जगु जाई ।→पद २७६-३ ।

निपुन—वि० [सं० निपुण] चतुर, पूर्ण । ~संतो पांडे **निपुन** कसाई ।→ पद २६६-१ ।

निबल—वि० [सं० निर्बल] कमजोर । ~ इन्द्री सबल **निबल** मैं माधौ, बहुत करैं बरियाई ।→पद २६७-३ ।

निबहै—क्रि० [सं० निर्वाह] निर्वाह, संरक्षण होना या करना । ~ जैसी उपजै पेड़ सूँ, तैसी **निबहै** ओरि ।→ सा० उप० (३४) ७-१ ।

निबहै—क्रि० [सं० निर्वहन] निर्वाह होना, पार लगना । ~ निवरति कै **निबहै** नहीं, प्रवृत्ति परपंच मांहि ।→ सा० माया० (१६) २७-२ ।

निबांणा—संज्ञा पु० [सं० निम्न ?] नीचा स्थान । ~डूँगरि वूठा मेह ज्यूं, गया **निबांणा** चालि ।→ सा० मन० (१३) २२-२ ।

निबारहु—क्रि० [सं० निवारण] निवारण करना, हटाना । ~मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक, ह्रिदया बंध **निबारहु** हो ।→कहरा (३) २-१ ।

निबेरहु—क्रि० [सं० निवृत्त] निपटारा कीजिए । ~ झगरा एक **निबेरहु** राम ।→सब० १३३-१ ।

निबेरा—क्रि० [सं० निवृत्त] निवारण, अलगाव । ~ कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै **निबेरा** । →पद ३३४-६ ।

निबेरा—संज्ञा पु० [सं० निवृत्त] निपटारा या निबटारा । ~वंदे करिले आपु **निबेरा** । → सब० १८०-१, पद २१६-८ ।

निबेरा—संज्ञा पु० [सं० निवृत्त] स्पष्टीकरण, सुलझाना ।~जो या पद का करै **निबेरा** ।→सब० ३७-२ ।

निबेरि—क्रि० [सं० निवारण] निवारण करो । ~वह हालै वह चीरई, साकत संग **निबेरि** । →सा० कुसं० (२५) ४-२ ।

निबेरे—क्रि० [सं० निवृत्त] निवारण करे ।~कहै कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि **निबेरे** । → पद २६६-६ ।

निमसिले—क्रि० [हिं० निमसना] समाप्त हो जाना, बन्द हो जाना । ~कंसा नाद बजाइले, धुनि **निमसिले** कंसा । →सब० ५२-५ ।

निमाज—संज्ञा स्त्री०[फ़ा०नमाज] मुसलमानों की ईश्वर प्रार्थना, जो नित्य पाँच बार होती है । ~कर्म तो सो जो भव औतरिया, कर्म तो सो **निमाज** को धरिया। र० ३६-३, सब० ३१-८, पद ३२६-३ ।

निमिष—संज्ञा पु० [सं० निमेष] पल, क्षण । ~ **निमिष** एक जो निरखैं पावैं, ताहि **निमिष** मँह नैन छिपावै । → ज्ञान चौं० (१) १२, सब० ६८-४ ।

नियरा—क्रि० वि० [सं० निकट] निकट,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नजदीक, समीप। ~पारब्रह्म **नियरा** रहै, पल मैं करै निहाल। → सा० क० बि० क० (१८) २-२, सा० सूरा० (४५) १८-१, ज्ञान चौं० (१) २७, सा० माया० (१६) २१-२, र० ३०-८।

नियरायल—क्रि० [हि० नियर+आयल] निकट आ गया। ~ लालच लागे जनम सिराई, जरा मरन **नियरायल** आई।→र० २३-५।

नियरे—क्रि० वि० दे० 'नियरा'।

नियांना—क्रि० [?] समा गया। सिमट गया। ~ग्यारह मास कहौ क्यूँ खाली, एकहि मांहि **नियांना**। → सब० २३-८।

नियाई—संज्ञा पु० [सं० न्यायी] न्याय-कर्त्ता। ~ जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा राम **नियाई**। → पद २६८-२।

नियारा—वि० [सं० निराकृत] न्यारा, पृथक्, भिन्न। ~ कहत कबीर भले असवारा, बेद कतेब तैं रहहिं **नियारा**। →सब० ३-५।

निरंजन—संज्ञा पु० [सं०] अंजन अर्थात् कालिमा या दोष से रहित। यह परम तत्व का वाचक है। प्रारंभ में योगियों एवं संतों के मत में निरंजन की यही अवधारणा थी; किन्तु धीरे-धीरे उक्त अवधारणा में परिवर्तन हुआ और वह हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। यहाँ निरंजन का अर्थ है—यम अथवा काल। ~ जल थल नभ मँह रमि रहौं, मोर **निरंजन** नाउँ।→र० २१-८।

निरंजन—संज्ञा पु० [सं०] काल पुरुष। ~अजर अमर एक बिरिछ **निरंजन** डारा।→पद ३१६-३।

निरंजन—संज्ञा पु० [सं०] अंजन या कालिमा से रहित, ब्रह्म। ~ सेवक सो जो लागै सेव, तिनही पाया **निरंजन** देव। →पद २०२-६।

निरंजन—संज्ञा पु० [सं०] माया से अलिप्त, ब्रह्म।~पूजहु राम **निरंजन** देवा।→पद ३०८-२।

निरंजन—संज्ञा पु० [सं०] परमात्मा। ~ मन थिर होइत कंवल प्रकासै, कवँला माँहि **निरंजन** बासै।→सब० ५४-५, सब० १४३-८।

निरंतरि—वि० [सं० निरन्तर] सदैव, हमेशा। ~ कहै कबीर सुनौ हो अवधू, मैं अभै **निरंतरि** पाया। → सब० ६३-८।

निरंध—वि० [सं०] बिलकुल अंधा, महा अज्ञानी। ~ जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा **निरंध**।→ सा० गुरु० (१) १५-१।

निरअस्ति—वि० [सं० निर्+अस्ति] जिसका अस्तित्व नहीं है; मिथ्या। ~कहैं कबीर जो सपने जागै, **निर-अस्ति** अस्ति न होय। → र० ८४-११।

निरकारा—वि० [सं० निराकार] निर्गुण ब्रह्म।~पाठ पुरांन वेद नहीं सुमृत, तहाँ बसै **निरकारा**।→पद ३०८-६।

निरखत—क्रि० [सं० निरीक्षण] साक्षा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्कार होने पर। ~ निज निरखत गत ब्यौहारा।→सब० ८-२।

निरखत—क्रि० [सं० निरीक्षण] देखते-देखते। ~ ङ ङा निरखत निसु दिन जाई, निरखत रहा नैन रतनाई। →ज्ञान चौं० (१) ११।

निरखि—क्रि० [सं० निः +√ईक्ष] देखकर।~ ज्यों केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि पर्‌यो। → सब० ५-३, पद २२५-४।

निरगुन—संज्ञा पु० [सं० निर्गुण] निराकार ब्रह्म। ~ आपु निरगुन सगुन होय के झूलिया गोविंद।→ हिंडोला (८) १-६।

निरजिव—वि० [सं० निर्जीव] मिट्टी, पत्थर आदि के देवता, जड़, निष्प्राण। ~ निरजिव आगे सरजिव थापै, लोचन कछू न सूझै।→सब० १८८-४, वसंत (४) ८-२, पद २११-४।

निरजीउ—वि० दे० 'निरजिव'।

निरति—संज्ञा पु० [सं० नृत्य] नृत्य, नाच।~पग बिनु निरति करां बिनु बाजा, जिभ्या हींनां गावै।→ सब० ३७-५, सब० ४५-२, पद० ३३१-४।

निरदावै—वि० [सं० निर्+अ० दावा] अनधिकार, निष्काम। ~ जे नर निरदावै रहैं, ते गिनैं इन्द्र कौ रंक। →सा० बिर्क० (३७) ६-२।

निरधार—वि० [सं० निराधार] निराश्रय, आधार रहित, आलम्बनहीन। ~एक निस्प्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ। → सा० भेष० (२४) २२-२, सा० पर० (५) २२-१।

निरन्तर—वि० [सं०] शाश्वत, देश-काल के व्यवधान से रहित। ~ हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुवा निरन्तर वास।→सा० पर० (५) ५-१।

निरपख—वि० [सं० निष् + पक्ष] निष्पक्ष। ~पख छाड़ै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ। → सा० कुस० (३६) ३-२।

निरफल—वि० [सं० निष्फल] निष्फल, व्यर्थ।~कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ। → सा० साधु० (२८) १-१।

निरबहई—क्रि० [सं० निर्वाह] निर्वाह करते हैं। ~ अपने तुतुर और को कहई, एकै खेत दुनौ निरबहई। → ज्ञान चौं० (१) ६०।

निरबही—क्रि० [सं० निर्वाह] निर्वाह किया।~जासों बात राम की कही, प्रीति न काहू सो निरबही। → र० १७-२।

निरबान—संज्ञा पु० [सं० निर्वाण] मोक्ष। ~बुझ बुझ पंडित पद निरबान, सांझ परे कहवाँ बसे भान।→सब० १६५-१, सब० १५३-६।

निरबानु—संज्ञा पु० दे० 'निरबान'।

निरबाल्या—संज्ञा पु० [सं० निवारण] निस्तार या छुटकारा पाना। ~ जे मन लागै एक सौं, तौ निरबाल्या जाइ।→ सा० निह० पति० (११) १२-१।

निरबैर—वि० [सं० निर्वैर] द्वेष रहित। ~ तब निरबैर भया सबहिन थैं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कांम क्रोध गहिडारा। → सब० ११४-२ ।

निरबैंरता—संज्ञा स्त्री० [सं० निर् + वैरता] शत्रुता का अभाव ।→दया नरबै० (५१) ।

निरबैंरी—संज्ञा पु० [सं० निर्वैर + ई०] वह जो किसी से शत्रुता न रखता हो। ~ **निरबैंरी** निहकांमता, साँई सेती नेह ।→सा० साध सा० (२६) १-१ ।

निरभैं—वि० [सं० निर्भय] भय रहित, निडर । ~ **निरभैं** होइ निसंक भजु, केवल कहै कबीर । → सा० गुरु० (१) २३-२, सा० सुमि० (२) १०-१, सा० साधु म० (३०) ७-२, सब० १६३-२ ।

निरमया—क्रि० [सं० निर्माण] निर्मित किया, रचा । ~ जाकी जेता निर-मया, ताकौं तेता होइ ।→सा०बेसा० (३५) ८-१ ।

निरमल—वि० [सं० निर्मल] अमल, स्वच्छ, निर्विकार, पवित्र ।~**निरमल** नांव चुनै जस बोलै ।→पद ३३४-२, सब० १६३-१, पद ३०५-२, सा० चित्त क० (४२) ३-१ ।

निरमोलिक—वि० [सं० निर + मूल्य> मोल + इक (प्रत्य०)] अमूल्य, अमूल्य परम तत्व ।~गुन अतीत **निरमोलिक** लीजै । →पद २४७-२, सा० उपज० (५०) ८-१, सब० ६६-८ ।

निरमोलिया—वि० दे० 'निरमोलिक' ।

निरमोली—वि० [सं० निर्मूल्य] अमूल्य, बहुमूल्य । दे० 'निरमोलिक' । ~ चिंतामणि क्यूं पाइए ठोली, मन दे रांम लियौ **निरमोली** । → सब० २१-४ ।

निरवक—वि० [हि० निरा] निरा; मात्र, बिना मेल का ।~समुझि परी नहिं राम कहानी, **निरवक** दूध कि सरबक पानी ।→र० ४५-३ ।

निरषौं—क्रि० [सं० निरीक्षण] देखूं, अवलोकन करूँ ।~नैनाँ अंतरि आव तूं, निस दिन **निरषौं** तोंहि ।→सा० बिर० (३) ३३-१ ।

निराधार—१. वि० [सं०] निरालम्ब । २. संज्ञा पु० [सं०] परमतत्व, ब्रह्म । ~ **निराधार** अधार लै जानी, राम नाम लै उचरी बानी । → र० ७४-४ ।

निरालप—वि० [सं० निरालय] मलिन; दूषित ।~ ऐसनि देह **निरालप** बौरे, मुए छुवे नहिं कोई हो । → कहरा (३) ६-१ ।

निरासल—क्रि० [हि० निराश] निराश हो गया ।~फुल भल फुलल मलिनि भल गांथल, फुलवा बिनसि गो भवँर **निरासल** ।→पद २३६-४ ।

निरुआरा—संज्ञा पु० [हि०] निवारण, छुटकारा ।~दम दम की कोई खबरि न जानै, करि न सकै **निरुआरा** । →सब० ६४-१४ ।

निरुवार—क्रि० [सं० निवारण] मिटाओ; निवारण करो । ~ व वा निग्रह से करु नेहू, करु **निरुवार** छांडु संदेहू । →ज्ञान चौं० (१) २१ ।

निबंध—वि० [सं० निर्बन्ध] बंधन मुक्त।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ बंध तैं **निबंध** कीया तोरि सब तंगी ।→पद ३२८-६ ।

निर्वान—संज्ञा पु० [सं० निर्वाण] निर्वाण, मोक्ष । ~ कुल मरजादा खोय कै, खोजिनि पद **निर्वान**।→र० ३५-७।

निवरति—संज्ञा स्त्री० [सं० निवृत्ति] निवृत्ति ।~ **निवरति** कै निबहै नहीं, प्रवृत्ति परपँच मांहि।→सा० माया० (१६) २७-२ ।

निवाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाज़] नमाज़ । दे० 'निमाज'।~दिल माँहि कपट **निवाज** गुजारै, क्या हज कावै जाएं।→सब० २३-६; सा० साँच० (२२) ५-१, पद २२६-५ ।

निवाज—वि० [फ़ा० नवाज़] कृपा करने वाला ।~ जिनहिं **निवाज** साज सब कीन्हें तिनहि बिसारि और लगरी। →पद २४६-४ ।

निवाज—संज्ञा पु० [फ़ा० नवाज़] कृपा, अनुग्रह ।~रंक **निवाज** करै राजेसुर, भूपति करै भिखारी। → सब० २८-२ ।

निवाजा—संज्ञा स्त्री० दे० 'निमाज' ।

निवाजा—संज्ञा पु० [फ़ा० नेवाज] बजाने वाला, करने वाला ।~कहु रे मुल्ला बांग **निवाजा**।→सब० ७२-१ ।

निवारा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवार] मोटे सूत की चौड़ी पट्टी जिससे पलंग बुने जाते हैं; नेवार । ~ काहू दीन्हां पाट पटंबर काहू पलंघ **निवारा**। → पद २१६-५ ।

निवारि—क्रि० [सं० निवारण] निवारण करो, निकाल दो ।~ मारि करै तौ पिउ नहीं, पीव तौ मानि **निवारि**। →सा० चिता० (१२) ४२-२ ।

निवारि—क्रि० [सं० निवारण] छोड़ दो। ~ जीवन मरन बिचारि करि, कूरे काँम **निवारि**।→ सा० चिता० (१२) १४-१ ।

निवारी—क्रि० [सं० निवारण] निपटाना। ~ कहैं कबीर सुनो हो संतो, भैंसे न्याव **निवारी**।→पद ३००-८ ।

निवारै—क्रि० [सं० निवारण] दूर करे, अलग करे ।~गरब गुमांना सब दूरि **निवारै** करनी कौ बल नाहीं । → पद ३१५-१३ ।

निसंक—वि० [सं० निःशंक] संशय रहित । ~निरभै होइ **निसंक** भजु, केवल कहै कबीर। → सा० गुरु० (१) २३-२ ।

निसंक—वि० [सं० निःशंक] निर्भय, निडर । ~ होइ **निसंक** मगन होइ नाचै, लोभ मोह भ्रम छाँडै।→सब० १३७-३ ।

निसंगा—वि० [सं० निःसंग] शुद्ध ।~ बेधीले चक्र भुजंगा, भेटीले राइ **निसंगा**। →सब० १७१-६ ।

निस—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] रात्रि, रात । दे० 'निसि' । ~ **निस** अँधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद। → सा० गुरु० (१) १८-१, सा० पर० (५) ३०-२, सा० बिर० (३) २४-१, सब० ६१-२ ।

निसरिगौ—क्रि० [हि० निकसना] निकल गया । ~ कहँहि कबीर जब सांस **निसरिगौ**, मंदिल अनल जरी है गे। →कहरा (३) ११-८ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निसरैं—क्रि० [सं० निस्सरण] निकलता है। ~ कहौ कौन षिवै कहौ कौन गाजै, कहाँ थै पानी **निसरैं**।→सब० ८१-३।

निसहि—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] रात्रि। दे० 'निसि'।~आजि कि काल्हि कि **निसहि** मैं, मारगि माल्हंतांह।→ सा० काल० (४६) २-१।

निसांन—संज्ञा पु० [फ़ा० निशान] डंका। ~गुर परताप साध की संगति, हरि भजि चल्यौ **निसांन** बजाई।→सब० १२०-१०।

निसानी—संज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। ~ बड़ी **निसानी** नाँव राँम कौ, चढ़ि गयौ कीर कबीरा।→ पद २१७-८।

निसानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० निशान] चिह्न। ~ मेर **निसानी** मीच की, **कुसंगति** ही है काल।→ सा० कुस० (२५) ५-१।

निसाने—संज्ञा पु० [फ़ा० निशान] लक्ष्य। ~हालै करै **निसाने** घाऊ, जूझि परे तँह मनमथ राऊ।→ र० ८३-५।

निसानैं—संज्ञा पु० [फ़ा० निशान] एक प्रकार का अवनद्ध (चमड़े से मढ़ा हुआ) रणवाद्य, नगाड़ा। ~ गगन दमामाँ बाजिया, परा **निसानैं** घाव। →सा० सूरा० (४५) ६-१।

निसाफ—संज्ञा पु० [अ० इन्साफ] न्याय। ~मोलना माते पढ़ि मुसाफ, काजी माते दै **निसाफ**। → वसन्त (४) १०-४।

निसासा—संज्ञा पु० [सं० निः + श्वास] निश्वास, लम्बी साँस। ~ उर्ध **निसासा** उपजि तरासा, हकराइन्हि परिवारा हो।→ कहरा (३) ६-३।

निसि—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] रात, रात्रि।~अह **निसि** हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै द्रुलभ जोग।→सा०सुमि० (२) २८-२।

निसु—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] रात्रि। दे० 'निसि' ~**निसु** बासर नहिं होत बिरहुली, पौन पानी नहिं मूल बिरहुली।→बिरहुली (७) २।

निस्चल—वि० [सं० निश्चल] अटल, स्थिर, शान्त।~जहँवा धीर गंभीर अति **निस्चल**, तहँ उठि मिलहु कबीरा। →पद २०७-८।

निस्चै—संज्ञा पु० [सं० निश्चय] निश्चय। ~ ई **निस्चै** इन्हके बड़ भारी, वाहि करें वर्णन अधिकारी। →र० ८-२।

निस्चै—संज्ञा पु० [सं० निश्चय] असंदिग्ध। ~ जाइ पाप सुख मिलै निधाना, **निस्चै** बचन कबीर कै माना।→र० ५८-५।

निस्तरई—क्रि० [सं० निस्तरण] उद्धार होगा।~कंध न देइ मसखरी करई, कहु धौं कौनि भाँति **निस्तरई**। → र० ५६-२।

निस्तरिया—क्रि०[सं०निस्तारण]निस्तार होता है, उद्धार होता है।~ जाकी यहु जग घिन कर चालै, ता प्रसाद **निस्तरिया**।→सब० ३२-८।

निस्तार—संज्ञा पु० [सं०] छुटकारा। ~ मांगौं काहि रंक सभ देखौं, तुम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही तैं मेरो **निस्तार**। → सब० १४८-४।

निस्प्रेही—वि० [सं० निस्पृह] निष्काम। ~एक **निस्प्रेही** निरधार का, गाहक गोपीनाथ। → सा० भेष० (२४) २२-२।

निहकरमी—वि० [सं० निष्कर्मिन्] अनासक्त। दे० 'निहकर्मी'। ~**निहकरमी** कै निंदा कीजै, करम करे ताही चित दीजै। →विप्र० (२) १३।

निहकर्मी—वि० [सं० निष्कर्मिन्] निष्काम, विरत। दे० 'निहकाम'। →निह० पति० (११)।

निहकांमता—वि० [सं० निष्कामता] निष्काम होने का भाव।~ निरबैरी **निहकांमता**, साँई सेती नेह। → सा० साधसा० (२६) १-१।

निहकाम—वि० [सं० निष्काम] निष्काम, बिना फल की इच्छा के, कामना रहित। दे० 'निहकर्मी'। ~ कहैं कबीर ते राँम के, जे सुमिरैं **निहकाम**।→सा० कामी० (२०)७-२।

निहचल—वि० [सं० निश्चल] अक्षय, नष्ट न होने वाला, स्थिर, अटल, अचल। ~ **निहचल** निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर। → सा० गुरु० (१) ३०-१, सा० सूरा० (४५) २५-२, सब० ३४-६।

निहचैं—संज्ञा पु० [सं० निश्चय] निश्चित रूप से, अवश्य। ~ निज तत नांउं **निहचै** नहिं जांनां सब माया मैं खपसी।→पद ३१५-८,पद २०८-८।

निहफल—वि० [सं० निष्फल] व्यर्थ। ~ तोरउँ न पाती पूजउँ न देवा, रांम भगति बिनु **निहफल** सेवा।→ सब० १११-४।

निहसंक—वि० [सं० निःशंक] शंका रहित, निस्संदेह। ~ दावै दाझन होतु है, निरदावै **निहसंक**।→ सा० विर्क० (३७) ६-१।

निहार—क्रि० [हि० निहारना] ध्यानपूर्वक देखना, अनुभव करना। ~ लागै तौ भागै नहीं, सुख सिंधु **निहार** कबीर।→र० ६८-७।

निहाल—वि० [फ़ा०] पूर्णकाम, सन्तुष्ट। ~पारब्रह्म नियरा रहै, पल मैं करै **निहाल**। → सा० क० बि० क० (१८) २-२।

निहुरि—क्रि० [देश०] झुककर। ~एक से पूजा जैनि विचारा, एक से **निहुरि** निमाज गुजारा। → र० १४-७, कहरा (३) १-१४।

निहोरा—संज्ञा पु० [सं मनोहार] मनुहार, अनुनय, विनय, प्रार्थना। ~तब काहू का कवन **निहोरा**।→ सब० १६-२, सब० १६७-५।

निहोरा—संज्ञा पु० [सं० मनोहार] अनुग्रह, आसरा। ~ जउ कासी तनु तजहि कबीरा तौ रामहिं कौन **निहोरा**।→पद २८५-२।

नींब—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब] नीम का वृक्ष। दे० 'नीम'। ~अंम्रित लै लै **नींब** सिंचाई, कहै कबीर वाकी बांनि न जाई।→पद २६६-५, सा० निगु० (५५) १२-१।

नींव—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि, प्रा० नेइ] घर बनाने में गहरी नाली के रूप में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खुदा हुआ गड्ढा, जिसके भीतर से दीवार की जुड़ाई आरम्भ होती है। ~ **नींव** बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव। →सा० पर० (५) ४१-१।

नीकसी—संज्ञा स्त्री० [निष्क्रमण] निकल गई।~ सती जरन कौं **नीकसी** पिउ का सुमिरि सनेह। → सा० सूरा० (४५) ३६-१, ३७-१।

नीका—क्रि० वि० [सं० न्यक्त] अच्छी तरह।~रामचरन **नीका** गहो, जनि जा जनम ठगाइ। → सा० माया० (१६) १-२।

नीझर—संज्ञा पु० [सं० निर्झर] झरना। ~ नैना **नीझर** लाइया, रहट बहै निस घाम। → सा० बिर० (३) २४-१, सब० ११२-६, पद ३४४-७।

नीडर—वि० [सं० उप० नि + हि० डर] निर्भय, भय रहित। ~ ग्यांनी तौ **नीडर** भया, माँने नाँही संक। → सा० कामी० (२०) २६-१।

नीदड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] नींद। ~ रैनि न आवै **नीदड़ी**, अंगि न चढ़ई मास। → सा० साध० सा० (२६) ४-२।

नीपजै—क्रि० [सं० निष्पद्यते] उत्पन्न होता है, पैदा होता है, उपजता है। फलना, फूलना, विकसित होना। ~कबीर मोती **नीपजै**, सुन्नि सिखर गढ़माँहि।→ सा० पर० (५) ८-२, सा० कुस० (२५) ३-२; सब०१७-४।

नीम—संज्ञा पु० [सं० निम्ब] एक वृक्ष विशेष। दे० 'नींब'। ~चन्दन होसी बाँवना, **नीम** न कहसी कोइ। → सा० साधु० (२८) १-२।

नीर—संज्ञा पु० [सं०] जल। दे० 'नीरा'। ~ कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर **नीर** का करै निबेरा। → पद ३३४-६।

नीरखै—क्रि० [सं० निरीक्षण] देखता है। ~ सैयद सेख किताब **नीरखै**, पंडित सास्त्र बिचारै।→पद २२८-६।

नीरा—संज्ञा पु० [सं० नीर] जल। दे० 'नीर'। ~ थूल अस्थूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न **नीरा**। →सब १६६-२, पद २८४-५।

नील रँगाऊँ दंत—[मुहा०]. कलंकित होना, धिक्कार।~ जो हंसि बोलौं और सौं, तौ **नील रँगाऊँ दंत**।→ सा० निह० पति० (११) १-२।

नीलाज—वि० [सं० निर्लज्ज] लज्जाहीन।~झूठा कबहुँ न करिहै काज, हौं बरजौं तोहि सुनु **नीलाज**। → बसंत (४) १२-५।

नूर—संज्ञा पु० [फ़ा०] कान्ति, तेज, ज्योति। ~ काँम परे ही जांनिए, किसके मुख पर **नूर**।→सा० सूरा० (४५) १४-२, पद २८१-४।

नेक—क्रि० वि० [हि०] अच्छी तरह से। ~**नेक** निचोइ सुधा रस वाको कौन जुगति सौं पीजै।→सब० १७८-२।

नेकु—वि० [हि०] जरा भी, थोड़ा भी। ~अति भरमत भरम हिंडोलना **नेकु** नहीं ठहराय।→हिंडोला(८) २-६।

नेड़ा—वि० [सं० निकट >नियर >नेरा >नेड़ा] निकट, पास, समीप। ~ गाहक राजा राम हैं, और न **नेड़ा** आइ।→सा० चिता० (१२)५८-२,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० कस्तू० ग्रि० (५३) ६-२।

नेपै—क्रि० [सं० मापन] नापता है, हिसाब करता है।~गाउं कु ठाकुर खेत कु **नेपै**, काइथ खरच न पारै। →सब० १०-५।

नेम—संज्ञा पु० [सं० नियम] नियम, विधान।~बानिज एक सभन मिलि ठाना, **नेम** धरम संजम भगवाना। →र० ३६-३।

नेमी—वि० [सं० नियम से] नियम पालन करने वाला। ~ **नेमी** देखा धरमी देखा, प्रात करै असनाना। →पद २६७-३।

नेरी—वि० [सं० निकट] निकट। दे० 'नेड़ा'।~ तेरी बारी जीयरा, **नेरी** आवै नित।→ सा० काल० (४६) ६-२।

नेरे—क्रि० वि० दे० 'नेड़ा'। → पद ३४०-५।

नेरै—वि० दे० 'नेड़ा'।→पद २४४-२।

नेव—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि] दे० 'नींव'। →चाँचर (५) २-५।

नेवगी—संज्ञा पु० [सं० नैयमिक] नेगी, हिसाब लेने वाले कर्मचारी।~ तेरे **नेवगी** खरे सयांने हो राम। → सब० १०-२।

नेह—संज्ञा पु० [सं० स्नेह] स्नेह, तृष्णा, आसक्ति। ~ मंदिर तौ है **नेह** का, मति कोइ पैठे धाय।→ र० २२-८, सब० २१-३, पद ३०५-१५।

नेहरा—संज्ञा पु० [सं० स्नेह+हि० रा] प्रेम, मोह। ~ जारो जग का **नेहरा** मन बौरा हो।→चाँचर (५) २-१।

नैंन—संज्ञा पु० [हि० नयन] नेत्र, आँखें। ~ मेरी जिभ्या बिस्नु **नैंन** नाराइन हिरदै बसहि गोविंदा। → पद २३१-१।

नैं—क्रि० [सं०√नी] झुक कर। ~ साँचा एक अलह को नाम, जाको **नैं नैं** करहु सलाम। →सब० ४०-५।

नैनां—संज्ञा पु० [सं० नयन] नेत्रों से, आँखों से।~ मैं का जानौं राम को, **नैनां** कबहुँ न दीठ।→सा० जरणा० (८) १-२।

नैनूं—संज्ञा पु० दे० 'नैंन'। → सब० १०-४।

नैहरौ—संज्ञा पु० [हि० नैहर] पितृगृह। ~सहज सुंनि कौ **नैहरौ**, गगन मंडल सिरिमौर।→पद ३४२-७।

नौतम—वि० [सं० नवतम] नवीनतम, बिल्कुल नया। ~ तूं सतगुरु हउं **नौतम** चेला, कहै कबीर मिलु अंत की बेला।→पद २६१-५।

नौबति—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नौबत] राजाओं, बादशाहों, अमीरों के द्वार पर मंगल और वैभव-सूचक शहनाई और नगाड़े का वाद्य। ~ जिनके **नौबति** बाजती, मैंगल बंधते बारि। →सा० चिता० (१२) २-१, सब० १०५-१।

न्यारा—वि० [सं० निराकृत] पृथक्, अलग, भिन्न। ~ अमरलोक सचु पाइया, कबहुँ न **न्यारा** होइ। → सा० मन० (१३) १४-२, सब० ६६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यारी—संज्ञा स्त्री० [सं० निराकृत] पृथक्, भिन्न, विचित्र, अनोखी, विलक्षण। दे० 'न्यारा'। ~ अवधू कुदरति की गति **न्यारी**।→सब० २८-१, पद ३१४-१।

न्यारी—वि० [सं० निर्निकट] दूर।~ कहै कबीर सुनौं भाई साधौ हमसूं बाघिनी **न्यारी**।→पद ३१३-१०।

न्यारैं—वि०दे० 'न्यारा'।→सब० ५८-२।

न्यारो—वि०दे० 'न्यारा'।→पद २६६-३।

न्यारो—वि० [सं० निर्निकट, प्रा० निन्नियड़, हि० निन्यार] विचित्र।~राम गुन **न्यारो** न्यारो न्यारो। →पद २५२-१।

न्यारौ—वि० दे० 'न्यारा'।

न्याव—संज्ञा पु० [सं० न्याय] न्याय। ~ कहैं कबीर सुनो हो संतो, भैंसे **न्याव** निवारी।→पद ३००-८।

न्हावन—क्रि० [सं० स्नान] स्नान करना। ~ साँचा **न्हावन** गुरु की सेवा।→सब० १७७-२।

प

पंखा—संज्ञा पु० [सं० पक्ष] पंख।~ देव बिन देहुरा पत्र बिनु पूजा, बिनु **पंखा** भंवरा बिलंबिया। → सब० ११६-७।

पंखी—संज्ञा पु० [सं० पक्षी] पक्षी, चिड़िया। दे० 'पंखेरू'। ~ कबीर मन **पंखी** भया, उड़िकै चढ़ा अकासि। →सा० मन० (१३) २५-१।

पंखेरू—संज्ञा पु० [सं० पक्षालु] पक्षी। दे० 'पंखी'।~पसु **पंखेरू** जंतु जिव, तिनकी गाँठी किसा गरत्थ।→सा० बेसा० (३५) ६-२, सा० उप० (५०) ४-२।

पंगी—वि० [सं० पंगु] लँगड़ा। दे० 'पंगुल'। ~ चलत मनसा अचल कीन्हीं माँहि मन **पंगी**। → पद ३२८-७।

पंगुल—वि० [सं० पंगु] लँगड़ा।~पाऊँ तैं **पंगुल** भया, सतगुरु मारा बान। →सा० गुरु० (१) १०-२।

पंगुला—वि० [सं० पंगु] लँगड़ा। दे० 'पंगुल'।~ **पंगुला** मेर सुमेर उलंघै, त्रिभुवन मुकुता डोलै। → सब० २८-७, सा० सजी० (४७) ४-२।

पंचे बाइ—यौ० [सं० पंच वायु] पंच प्राण। ~ पहिले खोजौ **पंचे बाइ**, बाइ बिंदु ले गगन समाइ।→ सब० ५४-३।

पंजर—संज्ञा पु० [सं० पिञ्जर] पिंजड़ा। दे० 'पिंजर'। ~ चतुराई सूवै पढ़ी, सोई पंजर माँहि। → सा० चांण० (१७) १४-१।

पंजर—संज्ञा पु० [सं०] कंकाल, शरीर। ~कबीर पीर पिरावनी, **पंजर** पीर न जाइ।→सा०बिर० (३) १३-१।

पंडा—संज्ञा पु० [सं० पण्डित] पुजारी। ~ **पंडा** कै मूरति होइ बैठी; तीरथ हू मैं पांनी।→पद २२७-४।

पंडिआ—संज्ञा पु० [सं० पण्डित] शास्त्रज्ञ। ~ **पंडिआ** कवन कुमति तुम लागे। → सब० १६४-१, पद २५०-३।

पंथ—संज्ञा पु० [सं० पथ] मार्ग। ~ रहिगौ **पंथ** थकित भौ पौना, दसो दिसा उजारि भौ गौना।→र० ४५-४, सा० चिता० (१२) १४-२, कहरा (३) २-१०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंथा—संज्ञा पु० [सं० पथ] मार्ग, रास्ता। दे० 'पंथ'। ~ जिहिं **पंथा** तोहि चालनां, सोई पंथ सँवारि। → सा० चिता० (१२) १४-२।

पंथी—संज्ञा पु० [सं० पथिन्] विभिन्न पंथों या सम्प्रदायों के लोग।~राजा सँवरै तुरिया चढ़ी, **पंथी** सँवरै नाम लै बढ़ी।→र० ६-४।

पंथी—संज्ञा पु० [सं० पथिन्] पथिक, यात्री, पथ पर चलने वाला। ~ बिरहिनि ऊभी पंथ सिरि, **पंथी** बूझै धाइ। → सा० बिर० (३) ५-१, सा० निगु० (५५) १०-२, कहरा (३) २-१०।

पंन—संज्ञा पु० [सं० पर्ण] पान। ~ चंदन भागां गुन करै, जैसे चोली **पंन**।→ सा० बिर्क० (३७) ३-१।

पँबारिन—क्रि० [सं० प्रवारण] फेंका। ~हाड़ गोड़ लै घूर **पँबारिन**, आगि धुंवां नहिं खाई।→ पद ३१८-५।

पइहउ—क्रि० [सं० प्राप्त] पाओगे।~ बहुरि न **पइहउ** ऐसो थाना, साधु संग तुम नहिं पहिचाना। → र० ४४-२।

पउढ़े—क्रि० [सं० प्लवन] लेट गए, सो गए। ~ बिजुली चमकै होइ अनंद, तँह **पउढ़े** प्रभु बालगोविंद।→ सब० ४३-४।

पख—संज्ञा पु० [सं० पक्ष] पक्ष।~**पख** छाड़ै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ। → सा० कुसब० (३६) ३-२, पद ३०५-११।

पखारै—क्रि० [सं० प्रक्षालन] धोना, स्वच्छ करना। ~ कांम क्रोध मल भरि रहे, कहा देह **पखारै**।→ सब० ६५-४।

पखिआरी—[देश०] पीछे।~करि सिंगार बहै **पखिआरी**, संत की ठिठकी फिरै बिचारी।→ सब० ४६-६।

पखुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० पंखुड़ी] पुष्प-दल, पंखुड़ियाँ। ~ बारह **पखुरी** चौबिस पाता, घन बरोह लागे चहुँ पासा।→सब० १६६-३।

पगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पटक] पगड़ी, साफा, ऊष्णीष।~ सील धरम जप भगति न कीन्हीं हौं अभिमान टेढ़ **पगरी**।→पद २४६-२।

पगां—संज्ञा पु० [सं० पग] पैरों के। ~ और सबै सावन कै भुनगा, जगत **पगां** तलि पेलै।→सब० ६६-६।

पगु—संज्ञा पु० [सं० पदक] पैर। ~ सहज कै पांवड़ै **पगु** धरि लीजै। → सब० ३-२।

पचि—क्रि० [सं० पचन] प्रयत्न करके, प्रयास करके। ~ कबीर पकरी टेक राम की, तुरुक रहे **पचि** हारी।→ सब० ७६-१२, सब० ११३-४।

पचि मुए—मुहा० [हि० पच मरना] थककर हार गए। ~ बहुत सयाँने **पचि मुए**, फल निरमल पै दूरि।→ सा० सूरा० (४५) १७-२।

पचूं—संज्ञा स्त्री० [सं० पंच] पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ। ~गुरुमुखि कलमां ग्यांन मुखि छूरी, हुई हलाल **पचूं** पूरी।→ सब० २४-३।

पछराखा—संज्ञा पु० [हि०] अनुकूल।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ जाके देव वेद पछराखा, ताके होत अढाई हो। → कहरा (३) ४-४।

पछांनैं—क्रि० [हि० पहचान] पहचानता है।~सो बउरा जो आपु न **पछांनैं**, आपु पछानैं त एकै जानैं। → पद ३०६-६।

पछाड़ि लै—क्रि० [हि० पछाड़ना] पराजित कर दो। ~ यहु मन पटकि **पछाड़ि लै**, सब आपा मिटि जाइ। →सा० सजी० (४७) ४-१।

पछारिन—क्रि० [हि० पछाड़ना] मार डालते हैं।~ बरबस आनि कै गाय **पछारिन**, गला काटि जिव आपु लिआ।→पद २१०-२।

पछारी—क्रि० [हि० पछाड़ना] पछाड़ कर, परास्त कर।~नहीं बलिराजसे माँड़ी रारी, नहि हरिनाकुस बधल **पछारी**।→र० ७५-५।

पछिम—संज्ञा पु० [सं० पश्चिम] पश्चिम दिशा। ~ इनकै काजी मुलाँ पीर पैकंबर, रोजा **पछिम** निवाजा। → पद ३२६-३।

पछेवरा—संज्ञा पु० [सं० पक्षपट] चादर। ~ दिल मन्दिर मैं पैसि करि, तांनि **पछेवरा** सोइ।→सा० वेसा० (३५) ३-२।

पछोड़े—क्रि० [सं० प्रक्षालन] पछोरना, सूप में रख कर फटककर साफ करना। ~ सवै **पछोड़े** थोथरे, एक बिना बिस्वास।→सा० वेसा० (३५) १६-२।

पटंतर—संज्ञा पु० [सं० पट्ट+तल] तुलना, समता, बराबरी। ~ तास **पटंतर** नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारि। → सा० साधुम० (३०) ५-२।

पटंतरे—संज्ञा पु० [सं० पट्ट+तल] बराबरी, तुलना। दे० 'पटंतर'।~ राम नाम कै **पटंतरे**, देवे कौं कुछ नाहिं।→सा० गुरु० (१) ४-१।

पटंबर—संज्ञा पु० [सं० पाटम्बर] रेशमी वस्त्र। ~ काहू दीन्हां पाट **पटंबर** काहू पलंघ निवारा।→पद २१६-५।

पटकि—क्रि० [हि० पटकना] पटक कर। ~ यहु मन **पटकि** पछाड़ि लै, सब आपा मिटि जाइ। → सा० सजी० (४७) ४-१।

पटम—संज्ञा पु० [दे०] दिखावा, छद्म। ~ पिय के मन भावै नहीं, **पटम** किए क्या होइ।→ सा० भेष० (२४) २३-२।

पटरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० पटरी] दे० 'पटिया'। काठ का तख्ता।~करम **पटरिया** बैठिकै को को न झूलै आनि। →हिंडोला (८) १-५।

पटवारी—संज्ञा पु० [सं० पट्ट+हि० वारी] आय-व्यय का लेखा रखने वाला।~काग दुकाग कारगुन आगे, बैल करै **पटवारी**।→पद ३००-७।

पटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्टिका] तख्ती, पाटी।~ मोकउं कहा पढ़वसि आल जाल, मेरी **पटिया** लिखि देहु स्री गोपाल। → सब० १५६-४; पद २२२-२।

पटै—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] अधिकार-पत्र। ~ ब्रह्म गियांनी अधिक धियांनी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जम कै **पटै** लिखाया। → पद २२०-६।

पटोरा—संज्ञा पु० [सं० पाटम्बर] रेशमी वस्त्र। दे० 'पटंबर'। ~ कनक कामिनी घोर **पटोरा**, संपति बहुत रहै दिन थोरा।→र० २१-४, सा० बिर० (३) ४१-१।

पट्टन—संज्ञा पु० [सं० पत्तन] नगर। ~ कबीर **पट्टन** कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार। → सा० चिता० (१२) ७-१, १-२, सा० साधुम० (३०) २-१।

पडंत—क्रि० [हि० पड़ना] पड़ते हैं, गिरते हैं। ~माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं **पडंत**।→सा० गुरु० (१) २०-१।

पड़तां—क्रि० [हि० पड़ना] पड़ने पर, लगने पर।~ अनी सुहेली सेल की, **पड़तां** लेइ उसास।→ सा० कुसब० (३६) १-१।

पड़ै—क्रि० [हि० पड़ना] गिर पड़ती है। ~ बिरहिन ऊठै भी **पड़ै**, दरसन कारनि राम।→ सा० बिर० (३) ७-१।

पढ़नसाल—संज्ञा स्त्री० [हि० पाठशाला] पाठशाला। ~प्रहलाद पधारे **पढ़नसाल**, संगि सखा बहु लिए बाल। →सब० १५६-३।

पढ़िबा—क्रि० [राज०] पढ़ने से।~मैं जान्यौं पढ़िबौ भलौ, **पढ़िबा** तैं भल जोग। → सा० कथ० बि० क० (१६) १-१।

पढ़िया—वि० [हि०] शास्त्रज्ञ।~जाइ पूछौ गोविंद **पढ़िया** पंडिता, तेरा कौंन गुरू कौन चेला। → सब० ११६-१।

पतंग—वि० [देश०] कच्चा रंग, अस्थायी। ~ कहै कबीर मेरे रंग रांम राई, और **पतंग** रंग उड़ि जाई। → पद २५६-४।

पतंग—संज्ञा पु० [सं०] कीड़े-मकोड़े। ~ ढोर **पतंग** सरे घरिआरा, तेहि पानी सब करैं अचारा। → र० ७४-६।

पतंग—संज्ञा पु० [सं०] पतिङ्गा, शलभ। दे० 'पतंगा'।~ दीपक जोति **पतंग** ज्यूं, पड़ता आप निदान। → सा० गुरु० (१) १६-२, २ -१, पद २२८-४।

पतंगा—संज्ञा पु० [सं० पतंग] पतंग, शलभ। ~ जो चीन्हे तेहि निर्मल अंगा, अनचीन्हे नर भए **पतंगा**।→ र० ४-५, २०-२, २३-३, ६५-६।

पताल—संज्ञा पु० [सं० पाताल] पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में अंतिम, पाताल। ~ सरग **पताल** भूमि लै बारी, एकै राम सकल रखवारी। → र० ५६-३।

पति—संज्ञा स्त्री० [हि०] प्रतिष्ठा, इज्जत।~घालि रसरिया जब जम खैंचै, तब का **पति** रहै तुम्हारी। → सब० १०४-६, पद २८८-२, कहरा (३) ७-५।

पति—संज्ञा पु० [सं०] स्वामित्व, परिग्रह का भाव, संग्रह करने की लिप्सा। ~ छाँड़हु **पति** छाँड़हु लबराई, मन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिमान छूटि तब जाई। → र० ६०-१।

पतिअइअँ—क्रि० [सं० प्रत्यय + हि० आना] विश्वास किया जाय।~ कहे सुने कैसे **पतिअइअँ**, जब लग तहाँ आप नहिं जइअँ। → सब० १०३-५।

पतिआई—क्रि० [हि० (१) पतिआना] विश्वास कर लिया। [(२) हि० पति + आई] पति मान लिया।~ नाना रूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि भाई **पतिआई**।→पद ३१२-५, पद २३८-५।

पतिआय—क्रि० [हि० पतिआना] विश्वास करे।~ मैं कासे कहौं को सुने **पतिआय**, फुलवा के छुअत भँवर मरि जाय।→पद २३६-१।

पतिआरा—संज्ञा पु० [सं० प्रत्यय] प्रतीति; विश्वास। ~ पंच पहरुआ दर महिं रहते, तिनका नहीं **पतिआरा**। → सब० ११-५।

पतित—वि० [सं०] पापपूर्ण, भ्रष्ट। ~अजामेल गज गनिका **पतित** करम कीन्हें।→पद २७५-५।

पतिबरता—वि० [सं० पतिव्रता] पतिव्रता नारी।~**पतिबरता** नाँगी रहे, तौ उसहि पुरिस कौं लाज।→ सा० निह० पति० (११) १७-२।

पतियांनां—क्रि० [सं० प्रत्यय से] निष्ठा हो गई, विश्वास हो गया। ~ कहै कबीर मैं जांनां, मैं जांनां मन **पतियांनां**।→पद ३३६-११।

पतियाइ—क्रि० [सं० प्रत्यय] प्रतीति करना, विश्वास करना।~ दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को **पतियाइ**। सा० जरणा० (८) २-१; सा० जी० मृ० (४१) १०-२।

पतियाई—क्रि० [सं० प्रत्यय] विश्वास करेगा।~भाई रे अद्भुत रूप अनूप कथा है, कहौं तो को **पतियाई**। → पद २०४-१, पद २६१-१।

पतियाना—क्रि० [सं० प्रत्यय] विश्वास करता है। ~ साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग **पतियाना**। → पद २६७-२।

पतियार—वि० [सं० प्रत्यय + हि० आर] विश्वास करने वाला।~हमरा कहल के नहि **पतियार**, आपु बूड़े नर सलिल धार।→वसंत (४) १२-१।

पतियारा—क्रि० [सं० प्रत्यय] आजमाइश की।~ तीनि बेर **पतियारा** लीन्हां, मन कठोर अजहूँ न पतीनां।→सब० ४२-६।

पतियारा—संज्ञा पु० [सं० प्रत्यय] विश्वास करने वाला।~तीनि लोक भरपूर रहो है, नाहिन है **पतियारा**। →सब० १८८-८।

पतियाहु—क्रि० [सं० प्रत्यय] विश्वास करना। ~ झूठे जनि **पतियाहु** हो; सुनु संत सुजाना।→सब० १३५-१।

पतीजैं—क्रि० [हि० प्रतीति] विश्वास करने से। ~ लोक **पतीजैं** कछू न होवै नांहीं रांम अयांनां। → सब० १७७-४।

पतीजै—क्रि० [सं० प्रतीति से] भरोसा करे।~ पतियांना जौ न **पतीजै**, तौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंधे कौं का कीजै ।→पद ३३६-१२।

पतीनां—क्रि० [सं० प्रत्यय] प्रतीति किया, विश्वास किया ।~तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहँ न **पतीनां** ।→सब० ४२-६ ।

पद—संज्ञा पु० [सं०] परम पद, दर्जा। ~कहै कबीर सुनो हो संतो, जहँ **पद** तहइं समाहीं ।→ सब० १७०-८ ।

पदुमिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी] चार प्रकार (पद्मिनी, हस्तिनी शंखिणी, चित्रिणी) की स्त्रियों में सर्वोत्तम । ~ प्रथमै **पदुमिनि** रूप आहि, है सांपिनि जग खेदि खाहि। →वसंत (४) ५-३ ।

पनच—संज्ञा स्त्री० [सं० पतंचिका] धनुष की डोरी । ~ पैली पार कै पारधी ताकी धनुही **पनच** नहीं रे। सबद १२१-५ ।

पनह—संज्ञा पु० [फा० पनाह] शरण। ~ दासु कबीर तेरी **पनह** समांनां, भिस्ति नजीकि राखि रहिमांनां ।→ सब० १४१-८ ।

पनिया—संज्ञा पु० [हि० पानी] जल । ~ **पनिया** अंदर धरे न कोय, पौन गहै कसमलिन धोय ।→ वसन्त (४) १-३ ।

पनिहार—संज्ञा पु० [हि०] पानी भरने वाला ।~समुद कोटि जाके **पनिहार**, रोमावलि कोटि अठारह भार। → सब० १२८-८ ।

पनिहारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] पानी भरने वाली ।~तास पटंतर नाँ तुलै हरिजन की **पनिहारि** ।→सा० साधु म० (३०) ५-२ ।

पमाँवही—क्रि० [?] डींग मारते हैं। ~ कायर बहुत **पमाँवही**, बहकि न बोलै सूर । → सा० सूरा० (४५) १४-१ ।

पयंप्या—क्रि० [देश०] उल्लसित किया । ~ पंच सखी मिलि पवन **पयंप्या**, बाड़ी पानी मेल्ही । →पद २५३-६ ।

पयंबर—संज्ञा पु० [फा० पैगम्बर] धर्म प्रवर्तक । दे० 'पैगम्बर' ।~या माया सुर नर मुनि डंहके, पीर **पयंबर** कौं धरि खाई । →सब० १२०-७ ।

पयाँना—संज्ञा पु० [सं० प्रयाण] गमन, यात्रा । ~ कोटिक भए कहाँ लगि बरनौं, सभनि **पयांना** दीन्हां रे ।→ सब० ८४-४ ।

पयाँना—क्रि० [सं० प्रयाण] प्रयाण किया, प्रस्थान किया; चला गया । ~ उदया सूर निस किया **पयाँना**, सोवत थैं जब जागा ।→सब० १३-६ ।

पयाना—क्रि० [सं० प्रयाण] प्रयाण, यात्रा करना । ~ निकट **पयाना** जमपुर धावै, बोलै एकै बानी । → सब० १६१-८ ।

पयाना—क्रि० [सं० प्रयाण] गमन ।~ कँह लौं गनौ अनंत कोटि लौं, सकल **पयाना** कीन्हा हो। →कहरा (३) ८-४ ।

पयाना—संज्ञा पु० [सं० प्रयाण] प्रयाण (करना); गमन (करना) ।~ बूता पहिरि जम करै सुमाना, तीनि लोक मँह करै **पयाना** ।→र० १०-३ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पयाना—संज्ञा पु० [सं० प्रयाण] यात्रा । ~ कबीर चित्त चमंकिया, किया **पयाना** दूरि ।→सा० साँच० (२२) ३-१ ।

पयारा—संज्ञा पु० [सं० पलाल] पुवाल । ~ काहू गरी गूदरी नांहीं काहू सेज **पयारा** ।→पद २१६-६ ।

परंपुरिख—संज्ञा पु० [सं० परम पुरुष] परमात्मा ।~दीपक ग्यान सबद धुनि घंटा, **परंपुरिख** तहाँ देव अनंता ।→ सब० ५६-५ ।

पर—संज्ञा पु० [फा०] पंख ।~ पीया चाहै तौ लै खग सारी, उड़ि न सकै दोऊ **पर** भारी ।→पद ३११-३ ।

पर—संज्ञा पु० [सं०] दूसरा, जड़तत्व । आपा **पर** जब चीन्हिया, (तब) उलटि समाना माँहि ।→सा० विचा० (३३) ३-२ ।

परखत—क्रि० [सं० परीक्षण] देखने से । ~बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी, **परखत** खर परखावत खोटी ।→र० ७६-१ ।

परखनहारा—वि० [सं० परीक्षण>हि० परखना+हारा (प्रत्य०)] परखने वाला, मूल्य आँकने वाला ।~**परखनहारा** बाहिरा, कौड़ी बदले जाइ । →सा० अपा० (४८) २-२ ।

परखि—क्रि० [सं० परीक्षण] परीक्षा कर लो, परख लो । ~ **परखि** लेहु खरा खोट हो रमैया राम । →बेलि (६) १-३० ।

परगट—वि० [सं० प्रकट] प्रकट, व्यक्त । ~**परगट** कंथा मांहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै ।→ सब० ३४-५, पद ३१६-६, सा० साधसा० (२६) १८-२ ।

परगाता—क्रि० [सं० पर+गायन] गान करते हैं । ~ दुलहिन लीपि चौक बैठारे, निरभय पद **परगाता** । → सब० ३६-४ ।

परगासा—संज्ञा पु० [सं० प्रकाश] प्रकाशित, प्रकाशमान ।~जीव रूप यक अन्तरवासा, अन्तर ज्योति कीन्ह **परगासा** ।→र० १-१ ।

परगासा—वि० [सं० प्रकाश] प्रकाशित । ~ रज गति त्रिविध कीन्ह **परगासा**, कर्म धर्म बुधि केर बिनासा । →र० २६-४ ।

परगासा—क्रि० [सं० प्रकाश से] प्रकाशित हो गया । ~ घट की ज्योति जगत **परगासा**, माया सोक बुझाना । →पद ३०५-१६ ।

परगासु—संज्ञा पु० [सं० प्रकाश] प्रकाश । दे० 'परगासा' ।~ चेत सुचेत चित्त होइ रहु, तौ लै **परगासु** उजारा । →सब० ११-६ ।

परगासै—क्रि० [सं० प्रकाश] प्रकाशित होती है । ~ मंझा जोति राँम **परगासै**, गुर गमि बाँनि । → सब० १२-२ ।

परचा—संज्ञा पु० [सं० परिचय] परिचय, साक्षात्कार । ~ पूरे सूँ **परचा** भया, सब दुख मेल्या दूरि ।→ सा० गुरु० (१) ३५-१, पद ३१५-१० ।

परचाई—क्रि० [हि० परिचय] परिचय करता है । ~ ल ला तुतरे बात जनाई, तुतरे पाय तुतरे **परचाई** ।→ ज्ञान चौं० (१) ५६ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परचै—संज्ञा पु० [सं० परिचय] साक्षात्कार। दे० 'परचा'।~अपनैं **परचै** लागी तारी, अपन पैं आप समांनां। → सब० १३-१७; पद २ ५-१२।

परचै—संज्ञा पु० [सं० परिचय] परिचय, जान-पहचान। ~ बिनु **परचै** कस जानिहौं, झूठा है हंकार। → र० ५७-५।

परजरै—क्रि० [सं० प्रज्वलन] प्रज्वलित हो जाता है।~ देखे ही तैं **परजरै**, परसाँ ह्वै पैमाल।→सा० कामी न० (२०) १२-२, सब० ४७-४।

परजला—क्रि० [सं० प्र + ज्वलन] प्रज्वलित हुआ, जल गया। ~कबीर दरिया **परजला**, दाझै जल-थल झोल।→सा० दया० निर० (५१) १-१।

परजली—क्रि० [सं० प्रज्वलित] प्रज्वलित हुई। ~ पांनीं मांहीं **परजली**, भई अपरबल आगि।→ सा० ग्या० बि० (४) ६-१।

परजा—संज्ञा पु० [सं० प्रजा] प्रजा। ~राजा मूवा **परजा** मूवा मूवा बैद औ रोगी।→पद २६३-४।

परजा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रजा] साधारण जन।~अर्थ बिहूना सँवरै नारी, **परजा** सँवरै पुहुमी झारी। → र० ६-५।

परजा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रजा] शिष्य-शाखा। ~ वहु विधि **परजा** लोग तोर, तेहि कारन चित्त दीठ मोर। →वसंत (४) ११-४।

परजारि—क्रि० [सं० प्रज्वलित] जला दिया। ~ मेरु दंड पर डंक दीन्ह, अष्ट कवँल **परजारि** दीन्ह।→वसंत (४) २-२।

परजारी—क्रि० [सं० प्रज्वलित] प्रज्वलित किया, जलाया।~यहु रस तौ सब फीका भया, ब्रह्म अगनि **परजारी** रे। → सब० ८७-३, पद २०१-३; पद ३०३-३; पद ३४४-५।

परतछै—वि० [सं० प्रत्यक्ष] प्रत्यक्ष। ~ विद्या बेद पढ़ै पुनि सोई; बचन कहत **परतछै** होई।→र० ५७-२।

परताप—संज्ञा पु० [सं० प्रताप] ऐश्वर्य; प्रभुत्व।~नरकै संगि सुवा हरि बोलै हरि **परताप** न जांनै। →सब० १६८-५।

परति—संज्ञा स्त्री० [हिं० पर्त] पर्त, तह। ~हरत इहाँ ही हारिया, **परति** पड़ी मुखि धूलि।→सा० चिता० (१२) ३२-२।

परतीत—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतीति] प्रतीति, विश्वास। दे० 'परतीति'। ~ नहिं **परतीत** जो यहि संसारा; दरब की चोट कठिन कै मारा। → र० १३-१, पद २७२-७, सा० कस्तू० म्रि० (५३) ४-२; र० ४७-५।

परतीति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतीति] ज्ञान, जानकारी; विश्वास। दे० 'परतीत'।~मन **परतीति** न ऊपजै, जीव बेसास न होइ।→सा० चिता० (१२) ५५-२, सा० निह० प० (११) १६-१; सा० विचा० (३३) ६-२, सब० ५०-६, सब० १५६-१।

परतीति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतीति]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निश्चय। ~ कहत कबीर सुनौ रे लोई, अब तुम्हरी **परतीति** न होई। →पद ३५०-५।

परतीतैं—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतीति] श्रद्धा, विश्वास। दे० 'परतीत'।~ बिनु **परतीतैं** पाती तोरै, ग्यान बिना देवलि सिर फोरै।→सब० ९०-३।

परदा—संज्ञा पु० [फ़ा०] आवरण। ~कबीर यहु तौ एक है, **परदा** दीया भेष।→ सा० भेष० (२४) १८-१, पद ३०५-१०, पद ३३२-५; र० ८२-६।

परदास—संज्ञा पु० [सं० प्रदास] दासानुदास।~कबीर चेरा संत का, दासनि का **परदास**। → सा० जी० मृ० (४१) १३-१।

परदे—पु० [फा०] दे० 'परदा'।

परधा—वि० [सं० अपरार्ध] आधा, अर्ध। ~आधा **परधा** ऊबरै, चेति सकै तौ चेति।→सा०चिता०(१२) १५-२।

परनऊँ—क्रि० [सं० परिणय] विवाह किया; परिणय किया। ~ बिनर जानि **परनऊँ** परसोतम, कहि कबीर रंगि राता।→सब० ११२-९।

परनीं—वि० [सं०परिणीता] विवाहिता। ~नां हूँ **परनीं** नां हूँ क्वांरी, पूत जनमांवनहारी। →सब० २६-३।

परपँच—संज्ञा पु० [सं० प्रपंच] जंजाल, झमेला।~ निवरति कै निबहै नहीं, प्रवृत्ति **परपँच** मांहि।→सा० माया० (१६) २७-२, पद ३२४-१।

परपंच—संज्ञा पु० [सं० प्रपञ्च] माया। ~ननद भौज **परपंच** रच्यौ है, मोर नाम कहि लीन्हा।→ पद २९०-५।

परपंची—संज्ञा पु० [सं० प्रपंची] पाषण्डी।~राजा देस बड़ो **परपंची**; रइयत रहत उजारी। → सब० १५६-४।

परपाजा—संज्ञा पु० [हिं०] पितामह का पिता। ~ दादा बाबा औ **परपाजा**, जिन्ह के ई भुंई भाँड़े हो।→ कहरा (३) ५-३।

परबत—संज्ञा पु० [सं० पर्वत] पर्वत; पहाड़। ~ **परबत** परबत मैं फिरा, नैन गंवाये रोइ।→सा० बिर०(३) ४०-१, सब० १९५-२।

परबोधि—क्रि० [सं० प्रबोधन] उपदेश देकर। ~ जग **परबोधि** होत नर खाली, करते उदर उपाया। → पद ३४१-३।

परभाति—संज्ञा पु० [सं० प्रभात] प्रातः काल।~चकई बिछुरी रैंनि की, आइ मिली **परभाति**।→सा०बिर० (३) ३-१, सा० काल० (४६) १४-२।

परमान—संज्ञा पु० [सं० प्रमाण] प्रमाण। ~ कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही **परमान**।→सा० परचा०(५) ३-२, सब० १५२-६।

परमाना—संज्ञा पु० [सं० प्रमाण] प्रमाण। दे० 'परमान'। ~ बिबि अक्षर का कीन्ह बंधाना, अनहद सब्द जोति **परमाना**। →र० ५-३, र० ८-३।

परमारथ—संज्ञा पु० [सं० परमार्थ] मोक्ष।~जहाँ बारह मास बसंत होय, **परमारथ** बूझै बिरला कोय।→वसंत (४) १-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परमिति—संज्ञा स्त्री० [सं० पर + मिति] सीमा ।~जोजन एक **परमिति** नहिं जानैं, बातनि ही वैकुण्ठ बखानैं।→ सब० १०३-३ ।

परमेसुर—संज्ञा पु० [सं० परमेश्वर] परमेश्वर ।~ घरि **परमेसुर** पाहुना, सुनौ सनेही दास ।→सा० निह० प० (११) १८-१ ।

परमोध—संज्ञा पु० [सं० प्रबोध] उपदेश ।~ ग्यांन अंकूर न ऊगई, भावै निज **परमोध** ।→सा० कामी०(२०) २०-२ ।

परमोधता—क्रि० [सं०प्रबोधन] जगाता है, उपदेश देता है ।~औरां कौं **परमोधता**, गया मुहरकाँ माँहि।→सा० चाँण० (१७) १३-२ ।

परमोधिए—क्रि० [सं० प्रबोधन] अर्थ निकाल लें, समझ लें ।~ भावै त्यौं **परमोधिए**, ज्यूं बंसि बजाई फूक।→ सा० गुरु० (१) २१-२ ।

परमोधै—क्रि० [सं० प्रबोधन] उपदेश देता है ।~ फिरि **परमोधै** आँन कौं, आपन समझैं नांहि ।→सा० चाँण० (१७) १४-२ ।

परलय—संज्ञा पु० दे० 'परलै' ।

परले—संज्ञा पु० दे० 'परलै' ।

परलै—पु० [संज्ञा प्रलय] प्रलय, विनाश । ~ दुसर सयान को मरम न जाना, उतपति **परलै** रैनि बिहाना।→र० ३६-२, सब० ६०-७, र० ५८-३, ७, र० ४६-४, सा० चिता० (१२) ३८-२, पद ३१३-६ ।

परलौं—क्रि० [हि० पड़ना] पड़ी । ~ सासु ननद पटिया मिलि बँधलौं, भसुरहिं **परलौं** गारी । → पद २२२-२ ।

परवान—संज्ञा पु० [सं० प्रमाण] प्रमाण, निश्चय ।~धीरैं धीरैं पाव दे, पहुँचैंगै **परवान** । → सा० नर० (८) ४-२ ।

परषिये—क्रि० [सं० परीक्षा] परख होती है ।~सूरा तबही **परषिये**, लड़ै धनी कै हेत ।→सा० सूरा० (४५) ६-१ ।

परसंग—संज्ञा पु० [सं० प्रसंग] प्रसंग, रहस्य की बात । ~ सतगुर हम सूं रीझि करि, कहा एक **परसंग** । → सा० गुरु० (१) ३३-१ ।

परस—संज्ञा पु० [सं० स्पर्श] स्पर्श, सामीप्य ।~ दरस **परस** तैं दुरमति नासी, दीन रटनि लौ आई ।→ पद २६५-३ ।

परसत—क्रि० [सं० स्पर्शन] स्पर्श करता है । ~ सदा सरबदा संगि रहै जल **परसत** नाहीं ।→पद ३४५-२ ।

परसां—क्रि० [सं० स्पर्श] स्पर्श करने से । ~ देखे ही तैं परजरै, **परसां** ह्वै पैमाल । →सा० कामी० (२०) १२-२ ।

परसाद—संज्ञा पु० [सं० प्रसाद] अनुग्रह, कृपा । ~ सतगुर के **परसाद** तैं, सहज शील मत सार।→सा० सब० (४०) २-२ ।

परसादा—संज्ञा पु० [सं० प्रसाद] अनुग्रह, कृपा । दे० 'परसाद'। ~कहै कबीर मैं पूरा पाया, भया रांम **परसादा** । →सब० १५-८ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परसादि—संज्ञा पु० [सं० प्रसाद] अनुग्रह, कृपा। ~ गुर **परसादि** अकिलि भई अवरै नातरु था बेगांनां। → पद २१६-२, सब० ३०-८, सा० मधि० (३१) ६-१।

परसै—क्रि० [सं० स्पर्श] स्पर्श करे। ~ लोह हिरन्य होय धौं कैसे, जो नहि पारस **परसैं**।→पद २७२-५।

परसोतम—संज्ञा पु० [सं० पुरुषोत्ताम] परमेश्वर, ब्रह्म। ~ अपरंपार पार **परसोतम**, वा मूरति की बलिहारी। →सब० ३७-८।

परांन—संज्ञा पु० [सं० प्राण] प्राण। ~ बेगि मिलौ तुम आइ करि, नहिं तर तजौं **परांन**। → सा० सुन्दरि० (५२) १-२, पद २२६-४।

पराई—क्रि० [सं० पलायन] भाग जाती है, भाग जाना।~खूँटा गाड़ि डोरि दृढ़ बांधे, तइयो तोरि **पराई**।→पद २०६-४, ज्ञान चौं० (१) ६६।

पराना—संज्ञा पु० [सं० प्राण] प्राण, जीवन। दे० 'परांना'। ~ढढा ढूढ़त ही कत आना, हींडत ढूढ़त जाहि **पराना**।→ज्ञान चौं० (१) ३१।

पराया—वि० [सं० पर] दूसरे का। ~ मन रे कागद कीन **पराया**।→ पद २१७-१।

परिजरै—क्रि० [सं० प्रज्वलित] प्रज्व-लित करना, जलाना। ~ जौं कछु जुक्ति जानि **परिजरै**, घटही जोति उजियारी करै।→ ज्ञान चौं० (१) १८।

परिमल—संज्ञा पु० [सं०] सुगंध, सुवास।~जस खर चंदन लादे भारा, **परिमल** बास न जान गँवारा।→र० ३२-२, सब० ११६-६, वसंत (४) २-४।

परिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मिट्टी का छोटा बर्तन। ~ घूरि घूरि बरखा बरसावै, **परिया** बूंद न पानी। → पद १६६-२।

परिहरि—क्रि० [सं० परिहरण] छोड़ कर।~लपसी लौंग गनै एक सारा, **परिहरि** खाँड़ मुख फाँकै छारा। → र० ७१-६, सब० १८७-७, पद २६२-५, बेलि० (६) २-८।

परिहरिया—क्रि० [सं० परिहरण] छोड़ देता है। ~ निझरुहि नीरु जानि **परिहरिया**, करम क बाँधल लालच करिया। → र० २६-२।

परिहरी—क्रि० [सं० परिहरण] त्याग दिया।~ मन की दुविधा मन **परि-हरी**।→ सब० ५०-२।

परिहरु—क्रि० [सं० परिहरण] छोड़ो। ~ **परिहरु** लोभ अरु लोकाचारु, **परिहरु** कांम, क्रोध, हंकारु। →सब० १०१-४।

परिहरैं—क्रि० [सं० परिहरण] त्यागना, छोड़ना। ~ताहि न कबहूं **परिहरैं**, पलक न छाँड़ै पास।→सा० सुन्दरि० (५२) ३-२।

परी—क्रि० [हि० पड़ना] पीछे पड़ गई। ~ राजठगौरी बिस्नुहि **परी**, चौदह भुवन केर चौधरी।→र० ११-३।

परोजन—संज्ञा पु० [सं० प्रयोजन] स्वार्थ, प्रयोजन। ~ ग्रहन अमावस सायर

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूजा, सांती पाठ **परोजन** पूजा ।→ विप्र० (२) ४ ।

परोसनि—संज्ञा पु० [हि० पड़ोसी] पड़ोसी । दे० 'परोसी'।~तौ का **परोसनि** कैं हुलराए।→सब० १३०-२।

परोसी—संज्ञा पु० [सं० प्रतिवेशिन्] पड़ोसी ।~**पारोसी** सो रूठना, तिल-तिल सुख की हानि ।→सा० चाँण० (१७) १२-१ ।

परौं—क्रि० वि० [सं० परश्वः] (परसों आने वाला) । ~ कालिह **परौं** भुइं लोटना, ऊपरि जमिहै घास।→सा० चिता० (१२) १०-२ ।

पर्चा—संज्ञा पु० [सं० परिचय] परिचय, साक्षात्कार।~साहिब सौं **पर्चा** नहीं, पहुँचेंगे किस ठौर । → सा० सूषि० मा० (१४) ४-२ ।

पलंघ—संज्ञा पु० [सं० पल्यङ्क, हि० पलंग] पलंग । ~ काहू दीन्हां पाट पटंवर काहू **पलंघ** निवारा । → पद २१६-५ ।

पल—संज्ञा पु० [सं०] समय का एक पुराना मापक जो लगभग २४ सेकंड के बराबर होता है । ~ कबीर **पल** की सुधि नहीं, करै कालिह का साज। →सा० काल० (४६) ६-१ ।

पलक—संज्ञा० पु० [सं० पल] क्षण । ~ अलख जो लागी **पलक** में, पलकहि मंह डसि जाय । र० २६-७, पद २६६-४, सा० सुन्दरि० (५२) ३-२ ।

पलटाई—क्रि० [हि० पलटना] बदल दिया ।~ चंद चकोर की ऐसी बात जनाई; मानुस बुद्धि दीन्ह **पलटाई** । →र० २४-१ ।

पलटाया—क्रि० [हि० पलटाना] बहकाया, उलट फेर किया । ~ काया कंचन जतन कराया, बहुत भाँति कै मन **पलटाया** ।→र० ६४-१ ।

पलटे—क्रि० [सं० प्रलोठन] बदल गए । ~पलटे केस नैंन जल छाया, मूरिख चेत बुढ़ापा आया । → सब० ११७-४ ।

पलथि—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्य्यस्त, प्रा० पल्लत्थ] वह आसन जिसमें दाहिने पैर का पंजा बाएँ और बाएँ पैर का पंजा दाहिने पुट्ठे के नीचे दबा कर बैंठते हैं, पालथी । ~ खुर खुर खुर खुर चलै नारि, बैठि जोलाहिन **पलथि** मारि ।→वसन्त (४) ३-४ ।

पलांन—संज्ञा पु० [सं० पल्याण] गद्दी । ~ सहज **पलांन** चित कै चाबुक लौ की लगांम लगाऊँ जी । → पद ३०७-३ ।

पला पकड़ैं—[मुहा०] दामन पकड़ना । ~ उस चंगे दीवान मैं, **पला न पकड़ैं** कोइ ।→सा० साँच० (२२) २-२ ।

पलास—संज्ञा पु० [सं० पलाश] ढाक । ~ जिनि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक **पलास** ।→ सा० साधुम० (३०) ८-२, सा० साधु० (२८) ७-१ ।

पलीता—संज्ञा पु० [फ़ा० फतील:] रेशों को बटकर बनाई गई बत्ती जिससे बंदूक या तोप के भीतर आग लगाई जाती है । ~ काम क्रोध दोउ भया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पलीता तहाँ जोगनी जागी → सब० २६-४, सब० ६३-७, पद २१६-८ ।

पलुहावन—संज्ञा पु० [सं० पल्लवन] पल्लवित होना । ~ जन जो चोरी भिच्छा खाहीं, सो बिरवा **पलुहावन** जाहीं ।→र० ६०-२ ।

पलेटी—वि० [हि० लपेटना] लिपटी हुई ।~कहु धौं किहिं बिधि राखिए, रुई **पलेटी** आगि । → सा० माया० (१६) ३२-२ ।

पलेटे—वि० [हि० 'लपेटना' से वर्ण-विपर्यय होकर] लपेटी हुई ।~कबीर कहा गरबियो, चाँम **पलेटे** हाड़ । → सा० चिता० (१२) ११-१ ।

पल्लौ—संज्ञा पु० [सं० पल्लव] विस्तार। ~ रैनि दिवस न चंद सूरज तहाँ तत्त-**पल्लौ** नाहिं ।→ हिंडोला (८) १-१४ ।

पल्लौ—संज्ञा पु० [सं० पल्लव] पत्ता। ~ आदि अंत नहिं होत बिरहुली, नहिं जर **पल्लौ** पेड़ बिरहुली । → बिरहुली (७) १ ।

पल्लौ—संज्ञा पु० [सं० पल्लव] अंगुली । ~ कर **पल्लौ** के बल खेलै नारि, पंडित होय सो लेय बिचारि । → वसंत (४) ८-१ ।

पवन—संज्ञा पु० [सं०] प्राणायाम । ~ आसन **पवन** दूरि करि रउरा । →सब० ४१-१ ।

पवन—संज्ञा पु० [सं०] वायु, प्राण । ~ माटिक तन माटी मिलै, **पवनहिं पवन** समाय ।→ र० ६१-६, सब० १६१-२, पद २८९-४, सा० विचा० (३३) ४-१ ।

पवन—संज्ञा पु० [सं०] प्राण वायु । ~सोरह मंझै **पवन** झकोरै, आकासै फरु फरिया । →सब० ११९-६ ।

पवन कै सरीरा—[यौ०] पवन का शरीर, वह शरीर जिसमें पवन है, अर्थात् सूक्ष्म शरीर । ~ माटी कै देह **पवन कै सरीरा**, तेहि ठग सौं जनि डरै कबीरा ।→पद २४३-७ ।

पवना—संज्ञा पु० [सं० पवन] प्राण । दे० 'पवन' । ~मन **पवना** की गमि नहीं, तहाँ पहूँचे जाइ ।→ सा० सू० मा० ८-२ ।

पष—संज्ञा पु० [सं० पक्ष] पक्ष । ~ **पष** ले बूड़ी पिरथवी; झूठी कुल की लार ।→सा० भेष० (२४) २१-१ ।

पषां—संज्ञा पु० [सं० पक्ष] पक्ष, १५ दिन ।~उरध पाव अरध सीस, बीस **पषां** इम रखियौ । → सा० बेसा० (३५) १-३ ।

पषांन—संज्ञा पु० [सं० पाषाण] पत्थर । दे० 'पाहन' ।~फाटा फटिक **पषांन** ज्यौं, मिला न दूजी बार । → सा० बिर्क० (३०) १-२, पद २९२-१३ ।

पषानक—संज्ञा पु० [सं० पाषाण] पत्थर का ।~माटिक कोट **पषानक** ताला; सोई बन सोई रखवाला । → र० १२-१ ।

पसर—संज्ञा पु० [सं० प्रसार] इंद्रियों की विषयों की ओर जाने की प्रवृत्ति । ~ इन्द्री **पसर** मिटाइये, सहजि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलैगा सोइ ।→सा० मन० (१३) २-२ ।

पसरती—वि० [सं० प्रसरण] विषयों की ओर फैलती हुई ।~पाँचौ राखै **पसरती** सहज कहीजै सोइ ।→ सा० सहज० (२१) २-२ ।

पसर्यौ—क्रि० [सं० प्रसरित] फैल गया । ~ गुर गारडू मिल्यौ नहिं कबहूँ **पसर्यौ** बिख बिकरारा । → पद २२३-६ ।

पसाउ—संज्ञा पु० [सं० प्रसाद] अनुग्रह, कृपा । दे० 'परसाद' 'परसादा'। ~ सो बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि **पसाउ** मोहि दइहौ ।→पद २६४-२ ।

पसार—संज्ञा पु० [सं० प्रसार] प्रसार, कामधन्धा । ~ छांडि **पसार** रांम भजु बउरे कहै कबीर समझाई ।→ पद २७१-१० ।

पसार—संज्ञा पु० [सं० प्रसार] फैलाव (फैलाकर),विस्तार ।~ आदि अंत उतपति प्रलय, देखहु दिष्टि **पसार** । →र० ५८-७, र० २७-८ ।

पसारा—क्रि [सं० प्रसार] फैला दिया । ~ सकल ब्रह्म मँह हंस कवीरा, कागा चोंच **पसारा** ।→सब ६४-३ ।

पसारा—क्रि० [सं० प्रसार] फैलाया । ~ करम फाँस जम जाल **पसारा**, जस धीमर मछरी गहि मारा । → पद २२१-४

पसारा—क्रि० [सं० प्रसार] फैलाया है । ~एकै नारी जाल **पसारा**, जग महँ भया अंदेसा ।→पद २६१-४ ।

पसारि—क्रि० [सं० प्रसार] फैलाकर । ~मांसु **पसारि** गीध रखवारी ।→ सब० ८६-२, सब० १६३-६ ।

पसारिनि—क्रि० [सं० प्रसार] फैलाया, बढ़ाया । दे० 'पसारिन्हि' ।~आपन आपन झगरा **पसारिनि**, पिया सो प्रीति नसानी हो । → कहरा (३) २-७ ।

पसारिन्हि—क्रि० [सं० प्रसार] फैलाया । दे० 'पसारिनि' ।~अस जोलहा का मरम न जाना, जिन जग आय **पसारिन्हि** ताना ।→ र० २८-१ ।

पसारै—क्रि० [सं० प्रसार] फैलाता है । ~ जोरि जेवरी खेत **पसारै**, सब मिलि मोकौं मारै हो राम ।→सब० १०-६ ।

पसु—संज्ञा पु० [सं० पशु] पशु, जानवर ।~ बाँध्यो बारि खटीक कै, ता **पसु** केतिक आय । → सा० काल० (४६) २७-२, सा० उप० (५०) ४-२, पद २२८-४ ।

पसुवा—संज्ञा पु० [सं० पशु] पशु, जीव । ~ जब लग ऊँच नीच करि जाना, ते **पसुवा** भूले भ्रँम नाँना । →सब० ७-५ ।

पसू—संज्ञा पु० दे० 'पसु' ।

पहजन—क्रि० वि० [प्रा० प्रवज्जण] मानने को, अनुमानतः । ~ गजैं न मिनिऐ तौलि न तुलिऐ **पहजन** सेर अढ़ाई ।→पद २७१-५ ।

पहरिया—संज्ञा पु० [सं० प्रहरी] रक्षक, पहरेदार ।~ मूसा खेवट नाव बिलइया, सोवै दादुर सर्प **पहरिया** । → सब० ८६-४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहरैं—संज्ञा पु० [हि० पहरा] रखवाली ।~ कोइ एक राखै सावधान, चेतनि **पहरैं** जागि ।→ सा० उप० (३४) १०-१ ।

पहरैं—संज्ञा पु० [हि० पहरा] पहरे पर । ~ चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि **पहरैं** लागि रे । → सब० ११८-२ ।

पाँहि—अव्य० [हि०] निकट, पास । ~का सुनहां कौं सुम्रित सुनाएँ, का साकत **पाँहि** हरि गुन गाएँ । → पद २६६-३ ।

पहिराउँ—क्रि० [हि० पहनना] पहन लूं । ~ फारि पटोरा धज करूं, कामलिया **पहिराउँ** ।→ सा० बिर० (३) ४१-२ ।

पहुप—संज्ञा पु० [सं० पुष्प] पुष्प, फूल । ~ **पहुप** बिना एक तरवर फलिया, ब्रिन कर तूर बजाया । → सब० १३-६ ।

पहूँती—क्रि० [हि० पहुचीं] पहुँच गई । ~ बेलड़िया द्वै अनी **पहूँती**, गगन **पहूँती** सैली ।→पद २५३-३ ।

पहूँते—क्रि० [हि० पहुँचना] पहुँचे । ~अघटि चले सो नगरि **पहूँते**, बाट चले ते लूटे ।→सब० २५-३ ।

पाँइ—संज्ञा पु० [सं० पाद] पैर, पाँव । ~ आगि कहै दाझै नहीं, जे नहिं **चंपै** **पाँइ**।→सा० विचार०(३३) २-१। सा० अपारि० (४८) १-१; पद ३२८-३ ।

पाँऊँ—संज्ञा पु० [सं० पाद] पैर। दे० 'पाँइ' । ~ हंस उड़ाने ताल सुखाने, पहले ब्रिधा **पाँऊँ** ।→पद ३२३-५, पद २११-५ ।

पाँचौ—संज्ञा स्त्री० [सं० पंच] पंच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, रसना,त्वचा ।~**पाँचौ** राखै पसरती, सहज कहीजै सोइ । →सा० सहज० (२१) २-२ ।

पांडर—संज्ञा पु० [सं०] कुंद का पुष्प । ~ **पांडर** पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास ।→सा० बेसास०(३५) १६-१ ।

पाँत—संज्ञा स्त्री० [सं० पंक्ति] पंक्ति । ~नित्त अमावस नित संक्रान्त, नित नित नवग्रह बैठे **पाँत** । → सब० १६५-४ ।

पाँन—संज्ञा स्त्री० [दे०] माँड़ी । ~ उरझ्यो सूत **पाँन** नहिं लागै, कूच फिरै सब लाई ।→सब० १५४-३ ।

पाँवड़ै—संज्ञा पु० [हि०] घोड़े की काठी का पायदान जिसमें पाँव रखकर चढ़ते हैं, रिकाब । ~ सहज कै **पाँवड़ै** पगु धरि लीजै ।→सब० ३-२ ।

पांवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० पांव + री (प्रत्य०)] खड़ाऊँ । ~ सतजुग मैं हंम पहिरि **पांवरी**, त्रेता झोरी डंडा । →सब० ६३-५ ।

पांसि—संज्ञा स्त्री० [सं० पांशु] धूलि, रज ।~ **पांसि** बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल । → सा० गुरु० (१) २४-२, सा० बिर्क० (३०) ४-२ ।

पाइं—संज्ञा पु० दे० 'पाँइ' ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाइ—संज्ञा पु० [सं० पाद] पैर में। **पाइ** कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपनैं हाथि। → सा० चिता० (१२) ४३-२।

पाइक—संज्ञा पु० [सं० पावक] अग्नि। ~**पाइक** पंच पुहमि जाकै प्रकटै, सो क्यूँ कहिए दूरा।→सब० ८१-६।

पाइल—संज्ञा स्त्री० [हि० प.यल] नूपुर।~ का चूरा **पाइल** झमकाए, कहा भयों बिछुवा ठमकाए।→सब० १३०-३।

पाइसि—क्रि० [हि०] पाएगा, प्राप्ति होगी।~द्वादस दल अभिअंतरि म्यंत, तहाँ प्रभू **पाइसि** करिलै च्यंत। → सब० १४०-१२।

पाई—संज्ञा पु० [फा० पाई] पायँता या, पँताना। ~ सुरही तिन चरि अमृत सरबै, लेर भवंगहि **पाई**। → पद २६८-५।

पाई—क्रि० [हि० पाना] उपलब्ध होना। ~जग मैं देखौं जग न देखै मोहिं इहि कबीर किछु **पाई** हो।→पद२३७-६।

पाई—संज्ञा स्त्री० [दे०] पतली छड़ियाँ या बेंत का ढाँचा, जिस पर ताने के सूत को फैलाकर खूब माँजते हैं। ~**पाई** करि जब भरना लीन्हों, बै बाँधन को रामा। →सब० १२७-८, वसंत० (४) ३-२।

पाउ—संज्ञा पु० दे० 'पाँऊँ'।

पाऊँ—संज्ञा पु० [सं० पाद] पैर। दे० 'पाँइ'। ~ दिन दिन जरै जलन के **पाऊँ**, डाढ़े जाय न उमँगे काऊ।→ र० ५६-१, सा० गु० (१) १०-२।

पाकंपाक—वि० [फ़ा०] पवित्रों में पवित्र। ~ अल्लाह **पाकंपाक** है सक करउ जे दूसर होइ। → सब० १८१-५।

पाक—संज्ञा पु० [सं० पक्वान्न] पकवान, भोजन। ~ षड रस भोजन बिंजना बहु **पाक** मिठाई। →पद ३४५-११, सब० १२८-५।

पाक—वि० [फ़ा०] पवित्र।~ जाहि मासु को **पाक** कहत हो, ताकी उतपति सुनु भाई।→पद २१०-४।

पाकड़ै—क्रि० [हि० पकड़ना] पकड़ता है।~देखा देखी **पाकड़ै**, जाइ अपरचै छूटि। →सा० संगति० (२६) १-१।

पाकरि—क्रि० [हि० पकड़ना से] पकड़कर। ~ तिहि धेनु तैं इंछा पूगी; **पाकरि** खूँटै बाँधी रे।→सब०२७-५।

पाखर—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रक्षर, प्रा० पक्खर], लोहे का झूल, कवच।~ अस बिनु **पाखर** गज बिनु गुड़िया, बिनु षंडै संग्रामहि जुड़िया।→सब० ११६-४, सा० निगु० (५५) ५-१।

पागा—संज्ञा स्त्री० [हि०] पगड़ी। ~जो सिर रचि रचि बाँध्यो **पागा**, सो सिर रतन बिडारत कागा। → सब० ६-३, सब० १३६-४।

पाछै—क्रि० वि० [हि० पीछे] बाद में। ~ आंधी **पाछै** जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भींनां।→पद ३०२-५।

पाट—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] सिंहासन। ~ जैसी भित्ति तैसि है नारी, राज **पाट** सब गनै उजारी।→र०७१-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाट—[हि० पाटना] पाटना, बनाना। ~बाखरि एक विधातैं कीन्हा, चौदह ठहर **पाट** सो लीन्हा।→र० २-३।

पाट—संज्ञा पु० [सं०] वस्त्र। ~**पाट** न सुवस सभा बिनु अवसर, बूझहु मुनि जन लोई।→पद २७०-३।

पाट—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] रेशम।~ काहू दीन्हां **पाट** पटंवर काहू पलंघ निवारा।→पद २१६-५।

पाट—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] लकड़ी का पटरा।~द्वै थर चढ़ि गयौ रांड कौ करहा मनहं **पाट** की सैली रे।→ पद २५५-४।

पाट—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] पीढ़ा। ~ चोरन दीन्हा **पाट** सिंहासन, साहुन से भयो ओटा।→सब० १८८-६।

पाटन—संज्ञा स्त्री० [हि० पाटना] छत; ऊपर की मंजिल। ~ तन **पाटन** मैं कीन्ह पसारा, माँगि माँगि रस पिऐ बिचारा।→सब० १०८-४।

पाटन—संज्ञा पु० [सं० पट्टन] नगर। ~ वहि सुत वहि बित वहि पुर **पाटन**, बहुरि न देखै आइ।→सब० १०५-५।

पाड़ी—क्रि० [हि० पड़ना] पड़ी हुई है। ~ सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि **पाड़ी** भोल।→ सा० गुरु० (१) २४-१।

पाड़ै—क्रि० [सं० पारय] समर्थ। ~ आसा पास खंड नहिं **पाड़ै** यहु मन सुन्नि न लूटै।→सबद १५३-५।

पाड़ैगा—क्रि० [हि० पड़ना] पड़ेगा। ~ एक राम के नाँव बिन, जँम **पाड़ैगा** रौलि।→सा०काल० (४६) १८-२।

पातरा—वि० [सं० पात्रट] पतला, कृश।~ पानी हू तैं **पातरा**, धूवां हू ते झीन। → सा० मन० (१३) १२-१।

पातरी—वि० [हि० पतली] सूक्ष्म।~ समुझि न परै **पातरी** मोटी, ओछी गाँठि सबै भौ खोटी।→र० ८०-३।

पातसाह—संज्ञा पु० [फ़ा० पादशाह] बादशाह, नरेश, खुदा। ~ दर की बात कही दरबेसा, **पातसाह** है कौने भेसा।→र० ४६-१।

पाती—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र] पत्ती। ~ जैनी धर्म क मर्म न जाना, **पाती** तोरि देवघर आना।→ र० ३०-३, पद २११-३।

पाथर—संज्ञा पु० [सं० प्रस्तर] पत्थर। ~ **पाथर** घाटा लोह सब, (तब) पारस कौने काम। → सा० बि०० (३) ८-२, सब० १०१-५।

पाथा—संज्ञा पु० [सं० पथ] मार्ग, राह। दे० 'पंथ', 'पंथा'।→र० ६८-१।

पानि—संज्ञा पु० [सं० पानीय] पानी, जल।~अगिनि कहै मैं ई तन जारौं, **पानि** कहै मैं जरत उबारौं।→ र० ७८-६।

पानि—संज्ञा पु० [सं० पाणि] हाथ। ~सुभ असुभ बनाय डाँड़ी गहै दोनौ **पानि**।→हिंडोला (८) १-४।

पानीग्रहन—संज्ञा पु० [सं० पाणिग्रहण] विवाह। ~ **पानीग्रहन** भयो भव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंडन, सुखमनि सुरति समानी । → सब० ३६-६ ।

पानी-पौन—संज्ञा पु० समूह० [सं० पानीय + पवन] पंचभूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) के प्रतीक । ~**पानी-पौन** संजोय के, रचिया यह उतपात ।→र० ३६-५ ।

पापिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] पाप में ले जाने वाली, दुष्टा ।~ कबीर माया **पापिनी**, फंद ले बैठी हाटि ।→सा० माया० (१६) २-१ ।

पारख—संज्ञा पु० [हि०] विवेक । ~ कहैं कबीर भूल की औषध, **पारख** सब की भाई । → पद २६४-६, पद २६४-८ ।

पारख—संज्ञा पु० [हि०] पारखी, सद्गुरु। दे० 'पारीख' । ~गाँठी रतन मरम नहिं जानै, **पारख** दीन्हा छोरी हो । →कहरा (३) ६-६ ।

पारखी—संज्ञा पु० [सं० परीक्षक] परिचय प्राप्त करने वाला, परख करने वाला । ~ कबीर जुलाहा भया **पारखी**, अनुभौ उतर्‌या पार । → सा० परचा० (५) ४७-२ ।

पारखी—संज्ञा पु० [सं० परीक्षक] विवेकी । ~ भूल मिटै गुरु मिलै **पारखी**, पारख देहिं लखाई ।→ पद २६४-८ ।

पारधी—संज्ञा पु० [सं०] शिकारी । ~पैली पार कै **पारधी** ताकी धनुही पनच नहीं रे ।→सब० १२१-५ ।

पारन—संज्ञा पु० [सं० पारण] व्रत के बाद का भोजन । ~ अन को त्यागै मन नहिं हटकैं, **पारन** करैं सगोती । →पद ३०४-४ ।

पारस—संज्ञा पु० [सं० स्पर्श] स्पर्श मणि, एक कल्पित पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि उससे लोहा छुवाया जाय तो वह सोना बन जाता है । ~ लोह हिरन्य होय धौं कैसे, जो नहिं **पारस** परसैं । → पद २७२-५ ।

पारस धनी—संज्ञा पु० [सं० स्पर्श (मणि) + धनी] पारस जैसा सौभाग्यदायक । ~ तेज पुंज **पारस धनी**, नैननि रहा समाय । → सा० परचा० (५) ३८-२ ।

पारा—क्रि० [हि० पार] पार पाना । ~जिव दुर्मति डोलै संसारा, ते नहिं सूझै वार न **पारा** ।→र० ६५-१० ।

पारिकै—क्रि० [सं० पतन से] गिराकर, जीतकर । ~ पंच पियादे **पारिकै**, दूरि करै सब दूज । → सा० सूरा० (४५) ३-२ ।

पारिखू—वि० [सं० परीक्षक] पारखी । जब रे मिलैगा **पारिखू**, तब हीराँ की साटि ।→पारिख (४६) ३-२ ।

पारिष—संज्ञा पु० [सं० परीक्षण] परख, पहचान ।~लाधा है कछु लाधा है, ताकी **पारिष** को लहै । → पद २८०-१ ।

पारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] हाथी का पैर बाँधने वाला रस्सा । ~ पांच किसाना भाजि गये हैं, जीव धर बांध्यौ **पारी** हो राम । → सब० १०-१० ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पारी बाट—[मुहा०] बाट पारना; बिगाड़ दिया, नष्ट कर डाला। ~ पाँहनि बोई पिरथमी, पंडित **पारी बाट**।→ सा० भ्रमवि० (२३) २-२।

पारै—क्रि० [सं० पार] अंत होना। ~गाउं कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न **पारै**।→सव० १०-५।

पारै—क्रि० [हि० उपारना से] उपारता है, उखाड़ता है ~ खोटौ महतौ विकट बलाही, सिर कसदम का **पारै**। →सव० १०-७।

पारो—क्रि० [हि० पार जाना], पार हो जाओ। ~ ज जा ई तन जियतहिं जारो, जोवन जारि जुक्ति तन **पारो**। →ज्ञान चौं० (१) १७।

पालरैं—संज्ञा पु० [सं० पटल] तराजू का पलड़ा, तुलापट। ~ बिन डाँड़ी बिन **पालरै**, तौलै सब संसार। → सा० सम्र० (३८) ८-२।

पालवैं—क्रि० [सं० पल्लव] पल्लवित होना, पनपना। ~ दाधी देह न **पालवैं**, सद्गुरु गया लगाइ।→सा० ग्यान वि० (४) ६-२।

पाला—संज्ञा पु० [सं० प्रालेय] बर्फ, हिम, तुषार। ~ **पाला** गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि।→ सा० पर० (५) १८-२, सा० भेष० (२४) १-२।

पालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी रोकने वाला बांध। ~ सूखे सरबरि **पालि** वंधावै लूनें खेति हठि बारि करै। →पद २३३-५।

पाव—वि० [हि०] चतुर्थांश।~अढ़ाई मैं जे **पाव** घटै तौ करकच करै घर-हाई।→पद २७१-६।

पावक—संज्ञा पु० [सं०] अग्नि। ~ **पावक** रूपी राम है, घटि घटि रहा समाइ। → सा० साध० सा० (२६) १६-१, पद २५६-३, विप्र० (२) १०।

पावां—संज्ञा पु० [सं० पाद] पैर, पांव। ~कबीर ऐसा ह्वै रहा, ज्यौं **पावां** तलि घास।→सा०जी० मृ० (४१) १३-२।

पावा—क्रि० [हि० पाना] प्राप्त किया। ~तुम जियरा बहुतै दुख **पावा**, जल बिनु मीन कौन सचु पावा। → र० ६५-२।

पाषंड—संज्ञा पु० [सं०] झूठ, माया, छल।~**पाषंड** रूप रचो इन तिरगुन, तेहि **पाषंड** भूलल संसारा। → पद ३२४-२।

पासंग—संज्ञा पु० [फ़ा०] पसंघा, वह बोझ जिससे तराजू के पल्लों का वोझ बराबर करने के लिए हलके पल्ले में रख देते हैं। ~ सीस काटि **पासंग** किया, जीव सरभरि लीन्ह।→सा० सूरा० (४५) २२-१, पद २१४-४।

पास—संज्ञा पु० [सं० पाश] बंधन। ~ जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल की **पास**।→सा० सुमि० (२) ६-२, सा० वेसा० (३५) १६-१, सा० चिता० (१२) ६१-२, सव० १५३-५।

पासा—संज्ञा पु० [सं० पार्श्व] पास, निकट, समीप, ओर। दे० 'पासि'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ चातक जलहल भरे जो **पासा**। स्वाँग धरे भौसागर आसा। → र० ६५-३, ज्ञान चौं० (१) १५, र० ४४-३, सा० मन० (१३) २५-२, सा० विर० (३) ६-२, सब० १६६-३।

पासा—संज्ञा पु० [सं० पाशक] हाथी-दाँत या हड्डी के उँगली के बराबर छः पहले टुकड़े, जिनके पहलों पर बिन्दियाँ बनी होती हैं और जिन्हें चौसर के खेलने में खिलाड़ी बारी-बारी फेंकते हैं। जिस बल ये पड़ते हैं उसी के अनुसार बिसात पर गोटियाँ चली जाती हैं और अंत में हार-जीत होती है। ~ **पासा** पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर। → सा० गु० (१) ३२-१, सब० ६४-१३, पद ३१६-८।

पासारु—संज्ञा पु० [सं० प्रसार] प्रसार, फैलाव। दे० 'पसार'।~ जैसा रंग कुसुम्भ का मन बउरा रे त्यौं पसरचौ **पासारु**।→सब० १६३-६।

पासि—संज्ञा पु० [सं० पाश] बंधन। दे० 'पास'। ~सुर नर मुनि जन असुर सब, पड़े काल की **पासि**। →सा० काल० (४६) २६-२।

पासि—संज्ञा पु० [सं० पार्श्व] ओर। दे० 'पास'।~माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहुँ पासि। →पद २२६-६।

पासि—संज्ञा पु० दे० 'पांसि'।

पासि—संज्ञा पु० दे० 'पासा'।

पासी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाश] फांसी, पाश, बंधन, फंदा। दे० 'पास'।~ कोई जावै मक्का कोई जावै कासी, दोऊ कै गलि परि गई **पासी**। → सब० ३८-४, सब० ८४-७, सब० ११७-६, पद २६३-८, पद ३१६-८।

पासें—वि० [सं० पार्श्व] समीप, पास, नज़दीक। दे० 'पासा'। ~ चरन **पासें** निरति करि, जिभ्या बिना गुन गाइ।→सब० ४५-२।

पाहन—संज्ञा पु० [सं० पाषाण] पत्थर। ~ **पाहन** केरा पूतला, करि पूजै करतार। → सा० भ्रमवि० (२३) १-१, सा० निगु० (५५) २-२।

पाहनहुं—संज्ञा पु० [सं०पाषाण + हि०हुं] पत्थर से भी।~तू मेरौ पुरिखा हौं तेरी नारी, तोहरि चाल **पाहनहुं** तै भारी।→पद २४३-४।

पाहु—संज्ञा पु० [सं० प्राघूर्ण] दे० 'पाहुनाँ'। अतिथि, पाहुन। ~फिर हंसा **पाहु** भयो हो रमैया राम। → बेलि० (६) १-११।

पाहुनाँ—संज्ञा पु० [सं० प्राघूर्ण] दे० 'पाहुना'।

पाहुना—संज्ञा पु० [सं० प्राघूर्ण] अतिथि, मेहमान, पति। ~ घरि परमेसुर **पाहुना**, सुनौ सनेही दास। → सा० निह० पति० (११) १८-१, सा० सुमि० (२) १८-२, चाँचर (५) २-२१, पद २०६-१।

पिंजर—संज्ञा पु० [सं० पिञ्जर] पिंजड़ा, शरीर।~ पांडर **पिंजर** मन भँवर, अरथ अनूपम बास।→ सा० बेसा० (३५) १६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिंजरु—संज्ञा पु० [सं० पञ्जर] पिंजड़ा। दे० 'पिंजर'। ~ तूं **पिंजरु** हउँ सुअटा तोर, जमु मंजार कहा करै मोर।→पद २६१-४।

पिंड—संज्ञा पु० [सं०] शरीर।~प्रांन **पिंड** कौं तजि चलै, मुवा कहै सब कोइ। → सा० सूषि० ज० (१५) २-१, सब० ६-२, सा० वेसा० (३) १-१।

पिंड—संज्ञा पु० [सं०] पिण्डज।~ प्रगटे अण्ड **पिंड** ब्रह्मण्डा, प्रिथिमी प्रगट कीन्ह नौ खण्डा।→र० ३-४।

पिंड—संज्ञा पु० [सं०] गोल-मटोल टुकड़ा; यहाँ तात्पर्य है व्यष्टि। ~ तिन्ह पुनि रचल **पिंड** ब्रह्मण्डा, छव दरसन छानवे पाषंडा।→र० २-५, र० ७-४, सा० पर० (५, २०-१, सा० हैरा० (६) २-१, सब० ६८-२, सब० १७५-३।

पिंड परांइन—[मु० पिंड पड़ना] पीछे पड़ी रहती है। ~ साकत कै यहु **पिंड परांइन**, हमरी दृष्टि परै त्रिखि डांइनि।→सब० ४६-८।

पिंडरोग—संज्ञा पु० [सं० पाण्डुरोग] पाण्डु रोग, पीलिया।~पीलक दौड़ी सांइयाँ, लोग कहैं **पिंडरोग**।→सा० सा० साषी० (२६) १०-१।

पिंडु—संज्ञा पु० दे० 'पिंड'।

पिउ—संज्ञा पु० [सं० प्रिय] प्रियतम, परमात्मा। ~ मानि करै तौ **पिउ** नहीं, पीव तौ मानि निवारि। → सा० चिता० (१२) ४२-२, पद ३३६-१।

पिउरिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] सूत पूरने वाली तकुली। ~ मन मोर रहँटा रसना **पिउरिया**।→पद २१५-१।

पिचकारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार का नलदार यन्त्र जिससे पानी या तरल पदार्थ जोर से फेंका जाता है। ~ध्यांन जुगति की करि **पिचकारी** खिमा खेलावनहार। → पद ३०६-३, चाँचर (५) १-१६।

पिछाँड़त—क्रि० [हि० पहचानना] पहचानते हैं।~विधनाँ बचन **पिछाँड़त** नाहीं, कहु क्या काढ़ि दिखाऊँ। → पद २८०-८।

पिछाँणन—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यभिज्ञान] पहचान।→सा० पी० पिछाँ० (३६)। दे० 'पिछानी'।

पिछाँनि—अव्य० [हि० पीछा] पीछे, बाद में, पश्चात्। ~ हथलेवा हौंसैं लिया, मुसकल पड़ी **पिछाँनि**। → सा० भेष० (२४) २४-२।

पिछांनि—क्रि० [हि० पहचानना] पहचान करके।~खसम **पिछांनि** तरस करि जिय मैं माल मनीं करि फीकी। →पद २२६-७।

पिछांनि—क्रि० [सं० प्रत्यभिज्ञान] पहचानो। ~ बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति **पिछांनि**।→ सा० साध सा० (२६) १५-२, सा० भ्र० विधौं० (२३) १०-२।

पिछाणं—क्रि० [सं० प्रत्यभिज्ञान] पहचान करना।~आप **पिछाणं** बाहिरा, नेड़ा ही थै दूर।→सा० कस्तू० (५३) ६-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिछानि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यभिज्ञान] पहचान। दे० 'पिछानी'। ~ जहाँ नहीं तहाँ कछु जांनि, जहाँ नहीं तहाँ लेहु **पिछानि**।→सब० ५०-३, सा० गु० सि० हे० (४३) २-१।

पिछानी—संज्ञा पु० [सं० प्रत्यभिज्ञान] पहचान। दे० 'पिछानि'। ~तरवर एक अनंत मूरति, सुरताँ लेहु **पिछानी**। →सब० १२-३।

पिटारै—संज्ञा पु० [सं० पिटक] बाँस, बेंत आदि का बना ढक्कनदार पात्र। ~ सापिनि एक **पिटारै** जागै, अह-निसि सोवै ताकूँ फिरि फिरि लागै। →सबद १४५-४।

पिपीलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चींटी। ~ पाव न टिकै **पिपीलका**; लोगनि लादे बैल। → सा० सूषि० मा० (१४) ७-२।

पियरा—वि० [सं० पीत] पीला। ~ सेत स्याह की राता **पियरा**, अबरन वरन की ताता सियरा। → विप्र० (२) २८।

पियरी—वि० [सं० पीत] पीली, पियरं। ~ कारी **पियरी** दुहहू गाई, ताकर दूध देहु बिलगाई।→र० ६२-५।

पियारे—वि० [सं० प्रिय] प्रिय। ~ काल सिहाँनै यौं खड़ा, जाग **पियारे** मीत।→ सा० काल० (४६) ३-१।

पियाला—संज्ञा पु० [फ़ा० प्याला] छोटा कटोरा, प्याला। दे० 'पियालै'। ~ अब तो एक अनूपम बात भई, पवन **पियाला** साजा। → सब० ११२-७।

पियालै—संज्ञा पु० [फ़ा० प्याला] एक विशेष प्रकार का पात्र, प्याला। दे० 'पियाला'। ~बाझ **पियालै** अंम्रित अँचवै, नदी नीर भरि राखै। → सब० ३२-१३।

पियास—संज्ञा स्त्री० [सं० पिपासा] प्यास। ~ पानी माँही घर करैं, ते भी मरैं **पियास**। → सा० निह० पति० (११) ११-२।

पिरथमी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] पृथ्वी, धरती। दे० 'पिरथी' और 'पुहुमी'। ~ पाँहनि बोई **पिरथमी**, पंडित पारी बाट।→ सा० भ्रमवि० (२३) २-२।

पिरथी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] पृथ्वी। दे० 'पिरथमी' और 'पुहुमी'। ~**पिरथी** का गुन पांनीं सोखा पांनीं तेज मिलावहिंगे।→सब० १८४-३।

पिरीत—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रीति] प्रेम। ~ एक जु पीर **पिरीत** की, रही कलेजे छाइ। → सा० बिर० (३) १३-२।

पीआ—क्रि० [हि० पीना] आस्वादन किया। ~ राम रसु **पीआ** रे।→ पद २६६-१।

पीठासन—संज्ञा पु० [हि०] ऊँचा पीढ़ा। ~ ऐसी बिधि सुर विप्र भनीजै; नाम लेत **पीठासन** दीजै।→ विप्र० (२) २०।

पीपर—संज्ञा पु० [सं० पिप्पल] पीपल का वृक्ष।~**पीपर** पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्व भुलाना।→पद २६७-८।

पीयरी—वि० [सं० पीत] पीली। दे०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पियरी'। ~ कबीर हरदी **पीयरी,** चूना ऊजल भाइ। → सा० मधि० (३१) ६-१।

पीर—संज्ञा स्त्री० [सं० पीडा] पीड़ा। ~ एक जु **पीर** पिरीत की, रही कलेजे छाइ। → सा० बिर० (३) १३-२, सा० कथ० वि० क० (१६) ३-२, र० ६८-६, पद २६२-२।

पीर—संज्ञा पु० [फ़ा०] धर्मगुरु। ~ कबीर पुंगरा अलह राम का, सोइ गुर **पीर** हमारा।→सब० २३-१४, सब० ८४-३, सा०बी०(५६) ६-२।

पीर—संज्ञा पु० [फ़ा०] गुरु, उस्ताद। ~ इकइस **पीर** लिखे तेहि ठामा, खतमा पढ़ैं पैगम्बर नामा। → र० ४८-३, कहरा (३) ८-३।

पीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० पीड़ा] कष्ट, व्यथा। दे० 'पीर'।~उपजि बिनाँ कछु समुझि न परई, बाँझ न जानै **पोरा**।→सब० १६४-२।

पीरावती—वि० [सं० पीड़ा से] पीड़ा देने वाली।~कबीर पीर **पिरावनी,** पंजर पीर न जाइ। → सा० बिर० (३) १३-१।

पीलक—संज्ञा स्त्री० [सं० पीत] पीतिमा, पीलापन। ~ **पीलक** दौड़ी साँइयाँ, लोग कहैं पिंड रोग। → सा० सा० साषी० (२६) १०-१।

पीव—संज्ञा पु० [सं० प्रिय] प्रियतम। एकै आखर **पीव** का, पढ़ै सो पंडित होइ।→सा० क० बि० कर०(१६) ४-२।

पीव—संज्ञा पु० [सं० प्रिय] प्रिय, ब्रह्म। ~औसर बीता अलप तन, **पीव** रहा परदेस।→सा० बी० (५६) ४-१।

पीव—संज्ञा पु० [सं० प्रिय] ईश्वर, भगवान्, परमातमा। ~ लोहू सीचूं तेल ज्यौं, कब मुख देखौं **पीव**। → सा०बिर०(३) २३-२, पद २३४-२, सा० पी० पि० (३६)।

पीवत—क्रि० [सं० पान] पीने में। ~ राम रसाइन प्रेम रस, **पीवत** अधिक रसाल।→सा० रस० (६) २-१।

पीवन—क्रि० [सं० पान] पीना। ~ कबीर **पीवन** दुलभ है, माँगै सीस कलाल।→सा०रस० (६) २-२।

पीहर—संज्ञा पु० [सं० पितृगृह] पिता का घर, मायका, नैहर। ~ **पीहर** जाउँ न रहूँ सासुरै, पुरखहिं संग न लाऊँ।→सब० २६-७।

पुंगरा—संज्ञा पु० [सं० पौगण्ड] ५ से १० वर्ष की आयु का बालक। ~ कबीर **पुंगरा** अलह राम का, सोइ गुर पीर हमारा।→सब० २३-१४।

पुंज—संज्ञा पु० [सं०] ढेर या समूह; राशि। ~ कबीर अन्तर प्रगट्यो, बिरह अग्नि को **पुंज**।→सा० बिर० (३) १-२।

पुंन—वि० [सं० पुण्य] पवित्र, शुभ, अच्छा। दे० 'पुन्नि'। ~ पुहुप माँहि पावक परजरै, पाप **पुंन** दोऊ भ्रम टरै।→सब० ४७-४।

पुजारा—संज्ञा पु० [सं० पूजा+कारी] पुजारी।~ पूजि **पुजारा** लै गया दै मूरति कै मुहिं छार।→पद २११-८।

पुड़—संज्ञा पु० [सं० पुट] नासिका पुट-इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ। ~ दोइ **पुड़**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जोरि चिगाई भाठी, चुआ महारस भारी ।→सब० ३५-५ ।

पुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटिका] पुड़िया, गठरी, पिंड ।~ कबीर धूलि सकेलि करि, **पुड़ी** ज बाँधी एह । → सा० चिता० (१२) २०-१ ।

पुन्नि—संज्ञा पु० [सं० पुण्य] पुण्य ।~ अनेक जुग जो **पुन्नि** करै, नहीं राम बिन ठाउँ । → सा० सुमि० (२) २०-२; सा०पर० (५) ४-२, हिंडोला (८) १-२ ।

पुन्नैं—संज्ञा पु० [सं० पुण्य] पुण्य से । ~ **पुन्नैं** पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ ।→सा०चिता० (१२) ५६-२ ।

पुरइन—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटकिनी] कमल दल । ~ **पुरइन** नांहि कवँल मँह बाट ।→सब० १६७-८ ।

पुरई—क्रि० [सं० पूर्ण] पूर्ण किया, पूरा किया । ~ अविनासी मोहि ले चला, **पुरई** मेरी आस ।→सा०उप० (५०) २-२ ।

पुरई—क्रि० [हि० पूरना] निर्मित किया । ~ भवन चतुरदस भाठी **पुरई** ब्रह्म अगिनि परजारी ।→पद ३४४-५ ।

पुरख—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] पुरुष । दे० 'पुरिस' ।~काल **पुरख** का मरदै मांनु, तिस मुल्ला को सदा सलांम । →पद ४६-४ ।

पुरखहिं—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] पुरुष को । ~ पीहर जाउँ न रहूँ सासुरै, **पुरखहिं** संग न लाऊँ । → सब० २६-७ ।

पुरजा—संज्ञा पु० [फ़ा०] खण्ड, टुकड़ा । ~ **पुरजा** पुरजा होइ परै, तऊ न छाड़ै खेत । → सा० सूरा० (४५) ६-२ ।

पुरन्दर—संज्ञा पु० [सं०] इन्द्र ।~ब्रह्मा बरुन कुबेर **पुरन्दर**, पीपा औ प्रहलादा ।→सब० ६४-६ ।

पुरब—वि० [सं० पूर्व] पहले का । दे० 'पूरब' । ~ अब हम भयल बाहिरि जल मीना, **पुरब** जनम तप का मद कीना ।→सब० १६-१ ।

पुरया—क्रि० [हि० पूरना] पूरा हो गया । ~ अँमृत कूंपी साँचा **पुरया**; मेरी त्रिष्णां भागी रे । → सब० ८७-६ ।

पुरवन—वि० [सं० पूर्ण] पूर्ण ।~तुम्ह कहियतु त्रिभुवनपति राजा, मन वंछित सब **पुरवन** काजा । → सब० २-४ ।

पुरवन—क्रि० [सं० पूर्ण से] पूर्ण करना । ~भाँड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई **पुरवन** जोग ।→सा० बेसा० (३५) २-२ ।

पुराना—संज्ञा पु० [सं० पुराण] पुराण । ~अंध सो दरपन वेद **पुराना**, दरबी कहा महारस जाना ।→र० ३२-१ ।

पुरिख—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] पति । दे० 'पुरिस' । ~ कौन **पुरिख** को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी । → पद ३३५-३, पद २३८-७ ।

पुरिख—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] व्यक्ति । ~ कहै कबीर हंम ब्याहि चले हैं **पुरिख** एक अबिनांसी । → सब० १४६-८ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरिख—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] मनुष्य। ~बेद कतेब दीन अरु दुनियां, कौंन पुरिख कौन नारी।→सब० ५५-२।

पुरिखां—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] आप्त पुरुष। ~ धरती उलटि अकासहिं ग्रासै, यह **पुरिखां** कै बानीं।→सब० ३२-१२।

पुरिखा—संज्ञा पु० दे० 'पुरिस', 'पुरख', या 'पुरिख'।

पुरिस—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] पुरुष, पति। दे० 'पुरिख'। ~ पतिबरता नाँगी रहे, तौ उसहि **पुरिस** कौं लाज। → सा० निह० प० (११) १७-२, सब० १४३-४।

पुरिस—सं० पु० [सं० पुरुष] चैतन्य। दे० 'पुरुष'।~ प्रांन **पुरिस** काया पैं बिछुरै, राखि लेहु गुर चेला। →पद ३०५-१४।

पुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महल। ~ जाकी **पुरी** अंतरिछ छाई, सो हरिचन्द देखल नहिं जाई।→र० ५५-५।

पुरुष—संज्ञा पु० [सं०] चैतन्य पुरुष परमात्मा। ~एकै **पुरुष** एक है नारी, ताकर करहु बिचारा। →पद २६१-२।

पुर्षा—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] १. मनुष्य, २. आत्मा– 'पुरि शेते इति पुरुषः' अर्थात् देह रूपी पुरी में जो शयन करता है, वह पुरुष अर्थात् आत्मा है। ~ पुर्षहिं **पुर्षा** जो रचै, सो बिरला संसार।→र० ५०-६।

पुहुप—संज्ञा पु० [सं० पुष्प] फूल।~ तैं अनेक **पुहुप** का लियौ है भोग, सुख न भयौ तन बढ्यौ रोग। → सब० १०६-४, सा० पीव पि० (३६) ४-२, सब० १२-५, पद २११-६।

पुहमि—संज्ञा स्त्री० दे० 'पुहुमी'।

पुहुमी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] पृथ्वी; भूमि। ~ ब्रह्मा को दीन्हो ब्रह्मण्डा, सात दीप **पुहुमी** नव खण्डा।→ र० २७-१, सब० १४४-७, र० ६-५; सब० ८१-६; सब० १६६-४।

पूंगरा—संज्ञा पु० [सं० पौगंड] पाँच से दस वर्ष की अवस्था का बालक। दे० 'पुंगरा'। ~ हमरै पाछै **पूंगरा** तिन भी बाँधा भार।→सा० काल० (४६) ३२-२।

पूगी—क्रि० [सं० पूर्ण से] पूरी हुई। ~ तिहि धेनु तैं इंछा **पूगी**, पाकरि खूंटै बाँधी रे।→सब० २७-५।

पूजनहार—संज्ञा पु० [सं० पूजन+हार (प्रत्य०)] पूजने वाला, साधक या भक्त। ~ माँहै पाती माँहि जल, माँहै **पूजनहार**।→सा० पर० (५) ४२-२।

पूजि—क्रि० [हिं०] पूरा होना। ~ कुबुजा पुरुष गले एक लागा, **पूजि** न मन की सरधा।→सब० १५७-७।

पूजी—क्रि० [हिं० पूजना] पूरी हुई। ~ सांई संगि साध नहिं **पूजी** गयौ जोबन सुपिनैं की नाई। → पद २३८-२।

पूठि—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] पीठ, उपेक्षा।~ माया हमसौं यों कहै, तू मति दे रे **पूठि**। → सा० माया० (१६) २६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूठि—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] पीठ पर। ~पंथी ऊभा पंथ सिरि, बगुचा बाँधा **पूठि**।→सा०काल० (४६) २२-१।

पूत—संज्ञा पु० [सं० पुत्र] बेटा, लड़का, पुत्र। ~ इक लख **पूत** सवा लख नाती, तिहि रावन घर दिआ न बाती।→सब० ९२-३, पद ३३५-४, सा० वेली० (५८) ४-२।

पूतरा—संज्ञा पु० [सं० पुत्रक] पुतला। ~ पानी केरा **पूतरा**, राखा पवन संचारि। → सा० विचा० (२३) ४-१।

पूतला—संज्ञा पु० [सं० पुत्रक] मूर्ति। ~ पाहन केरा **पूतला**, करि पूजै करतार। → सा० भ्र० विधौं० (२३) १-१।

पूर—वि० [सं० पूर्ण] पूरा।~ जनम जनम कौ मारा बनियाँ अजहूँ **पूर** न तोलै।→पद २१४-३।

पूरन—वि० [सं० पूर्ण] पूर्ण। ~ कब मरिहूँ, कब देखिहूँ **पूरन** परमानंद। →सा० सूरा० (४५) १३-२।

पूरनहारा—वि० [सं० पूर्ण + हि० हारा प्रत्य०] पूर्ति करने वाला। ~कहत कबीर सुनहु मेरी माई, **पूरनहारा** त्रिभुवनराई।→सब० १३९-५।

पूरब—क्रि० वि० [सं० पूर्व] पहले का, पूर्व का। ~ देखौ करम कबीर का, कछु **पूरब** जनम का लेख। → सा० पर० (५) १२-१।

पूरबला—वि० [सं० पूर्व + ला] पूर्व जन्म का।~मन का चेता तब भया, कछू **पूरबला** लेख। → सा० पर० (५) १०-२, सा० कामी० (२०) २२-२।

पूरबला—वि० [सं० पूर्व + ला] पूर्व का, अनादि, नित्य। ~ सतगुर गुर बतलाइया, **पूरबला** भरतार। → सा० पी० पि० (३६) ३-२।

पूरा—संज्ञा पु० [सं० पूर्ण] ब्रह्म। ~ कहै कबीर मैं **पूरा** पाया, भया राँम परसादा।→सब० १५-८।

पूरि—वि० [सं० पूर्ण] पूर्ण पूरा। ~ कायथ कागद काढ़िया, दरगह लेखा **पूरि**।→सा० साँच० (२२) ३-२।

पूरिन—क्रि० [हि० पूरना] पूर्ण किया, सम्पन्न किया। ~ सहस तार लै **पूरिन** पूरी, अजहुं बिनब कठिन है दूरी।→र० २८-३।

पूरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] भरनी, जिसके भीतर से ताने का तार जाता है। ~सहस तार लै पूरिन **पूरी**, अजहुँ बिनब कठिन है दूरी।→र०२८-३।

पूरे—संज्ञा पु० [सं० पूर्ण] पूर्ण, ब्रह्म। ~ **पूरे** सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि। → सा० गुरु० (१) ३५-१, ग्या० वि० (४) ७-२।

पृथिमी—संज्ञा स्त्री० दे० '**प्रिथिमी**' और 'पुहुमी'।

पेखउँ—क्रि० [सं० प्रेक्षण] देखती हूँ। ~ सेजै रमत नैन नहिं **पेखउँ** यहु दुख कासौं कहउँ रे।→पद २३२-२।

पेखनाँ—क्रि० [सं० प्रेक्षण] दे० 'पेखना[१]'।

पेखनाँ—संज्ञा पु० [सं० प्रेक्षण] दृश्यमान जगत्। ~ तीनि लोक पूरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पेखनां, नांच नँचावै एकै जनां। → सब० १८५-४।

पेखनां—संज्ञा पु० [सं० प्रेक्षण] खेल। ~ नटवर पेखि **पेखनां** पेखै, अनहद बेन बजावै।→सब० ३२-१०।

पेखनाʼ—क्रि० [सं० प्रेक्षण] देखना; अनुभव करना। ~ गुणन बिहूना **पेखना**, का कहि लीजै नाँव।→र० ७-७, सा० चिता० (१२) १९-२।

पेखनि—संज्ञा पु० [सं० प्रेक्षण] दृश्य। ~नटवत बाजी **पेखनि** पेखै, बाजीगर की बाजी।→सब० ६०-१०।

पेखा—क्रि० [सं० प्रेक्षण] देखा, अनुभव किया। ~ कहै कबीर तासु मैं चेला, जिनि यहु बिरवा **पेखा**। → सब० ११९-८, र० ८२-५, सब० १४३-५, पद २८४-३, र० ४२-४। सब० १२-८।

पेखि—क्रि० [सं० प्र+√ईक्ष्] देखकर। ~नटवर **पेखि** पेखनां पेखै, अनहद बेन बजावै।→सब० ३२-१०।

पेखै—क्रि० [सं० प्रेक्षण] देखता है। ~ज्योतिहि देखि पतंग हूलसै, पसू न **पेखै** आगी। → पद २२८-४, सब० ५१-२।

पेड़—संज्ञा पु० [हि०] वृक्ष का तना। ~बीज बिनु अंकुर **पेड़** बिनु तरुवर, बिनु साखा तरवर फलिया। → सब० ११६-५।

पेरा—संज्ञा पु० [हि० पेला] आक्रमण। ~ सिरि प्रगटा जम का **पेरा**। → पद २६०-२।

पेलना—संज्ञा स्त्री० [हि०] नाव खेने वाली छोटी चौड़ी लकड़ी। ~**पेलना** अछत पेलि चलु बौरे, तीर तीर का टोवहु हो।→कहरा (३) १-२०।

पेलि—क्रि० [सं० प्रेरणा] फेंककर। ~ पाइं पदारथ **पेलि** करि, कंकर लीन्हा हाथि।→सा० अपा० (४८) १-१।

पेलि—क्रि० [सं० प्रेरण] प्रवेश कर जाओ, पार कर जाओ। ~ पेलना अछत **पेलि** चलु बौरे, तीर तीर का टोवहु हो।→कहरा (३) १-२०।

पेलै—क्रि० [सं० पीड़न] कुचला जाता है। ~ और सबै सावन कै भुनगा, जनत पगां तलि **पेलै**। → सब० ९६-६।

पेलै—क्रि० [हि०] फेंक देता है; ढकेल देता है।~कोटि क्रम **पेलै** पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।→सा० सुमि० (२) २०-१।

पेषा—क्रि० दे० 'पेखा'।

पेषै—क्रि० दे० 'पेखै'।

पैंड—संज्ञा पु० दे० 'पैंड़ा'।

पैंड़ा—संज्ञा पु० [हि०] मार्ग, रास्ता, पथ।~सतगुरु मिलिया फगुवा दीया **पैंड़ा** दिया बताइ।→ पद ३०६-९; सा० माया० (१६) १४-२, सा० मधि० (३१) ५-१।

पैंड़े--संज्ञा पु० [हि०] रास्ते में, मार्ग में। ~ **पैंड़े** मोती बीखरे, अंधा निकसा आइ।→सा० अपा० (४८) ४-१।

पैंड़ै—संज्ञा पु० दे० 'पैंड़ा'।

पैहैं—क्रि० [हि० पाना] पाएँगे, प्राप्त करेंगे। ~ ते दुख **पैहैं** इह संसारा;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जौ चेतहु तौ होय उबारा। → र० ६७-४।

पैकम्बर—संज्ञा पु० दे० 'पैगम्बर'।

पैकाकार—संज्ञा पु० [फ़ा० पैकार] सेवक। ~ स्वामी हूता संत का, **पैकाकार** पचास। → सा० चाँण० (१७) ४-१।

पैका-पैका—संज्ञा पु० [फ़ा० पैकार] थोड़ी थोड़ी रकम, पैसा-पैसा। ~ **पैका-पैका** जोड़ता, जुड़िसी लाख करोरि।→सा० उप० (३४) ७-२।

पैखड़ा—संज्ञा पु० [हि० पाँय+कड़ा] पैर की बेड़ी या बंधन।~ मेरी पग का **पैखड़ा**, मेरी गाल की पास। → सा० चिता० (१२) ६१-२।

पैगम्बर—संज्ञा पु० [फ़ा०] मनुष्यों के पास ईश्वर का सन्देश लेकर आने वाला, ईश-दूत। ~ असी सहस **पैगम्बर** नाहीं, सहस अठासी मूनी। → सब० ३१-५; सब० १४१-३, पद २९३-३, पद ३२९-३, र०४८-३।

पैठे—क्रि० [सं० प्रवृष्टि] प्रवेश करना। ~ जो कोइ **पैठे** धायके, बिनु सिर सेंतहि जाय।→र० २२-६।

पैमाल—वि० [फ़ा० पायमाल] पाँव तले रौंदा हुआ, दुर्दशाग्रस्त। ~ देखे ही तैं परजरै, परसां ह्वै **पैमाल**। → सा० कामी न० (२०) १२-२।

पैराऊँ—वि० [हि०] तैरने योग्य। ~ धरती न्रसै बादर भीजै, भींट भए **पैराऊँ**।→पद ३२३-४।

पैली पार—वि० [हि०] श्रेष्ठ।~**पैली पार** कै पारधी ताकी **धनुही** पनच नहीं रे।→सब० १२१-५।

पैसि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रविष्टि] घुसने का भाव, पैठ।~भगति मुकति निज ग्यान मैं, **पैसि** न सकई कोइ। → सा० का० न० (२०) १०-२।

पैसि—क्रि० [सं० प्रवेश] पैठकर, घुसकर। ~ बिरह भुवंगम **पैसि** करि, किया कलेजै घाव। → सा० बिर० (३) १९-१।

पैसिकै—क्रि० [सं० प्रवेश] प्रवेश करके। ~ बलिहारी ता दास की; **पैसि कै** निकसनहार।→ सा० संग० (२६) ८-२, सा० बेसा० (३५) ३-२, सब० १७२-८।

पैसीले—क्रि० [सं० प्रवेश] प्रवेश कर। ~ उलटीले सकति सहारं, **पैसीले** गगन मझारं।→सब० १७१-५।

पैसै—क्रि० [सं० प्रविश] प्रवेश करना, घुसना।~सीस उतारै हाथ सौं, तब **पैसै** घर माँहि।→सा०सूरा० (४५) १९-२।

पोई—क्रि० [सं० प्रोत] पिरोई, गूँथी। ~ हरि मोतिन की माल है, **पोई** काचै तागि। → सा० विचा० (३३) ८-१।

पोखर—संज्ञा पु० [सं० पुष्कर] तालाब। ~**पोखर** नहिं बाँधल तहँ घाट।→ सब० १९७-७।

पोच—वि० [फ़ा० पूच] निकृष्ट, नीच, क्षुद्र, बुरा।~संत सिधाये संत जहँ, मिलि रहा पोचहि **पोच**। → र० ६४-७, र० ६८-५, पद २०७-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पोट—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोटली, गठरी। दे० 'पोटली'।~पहिलै बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की **पोट**। → सा० सुमि० (२) १६-१, सा० चाँ० (१७) १७-२।

पोटली—संज्ञा स्त्री० [सं० पोटलिका] गठरी। दे० 'पोट'।~ सीस चढ़ाए **पोटली**, ले जात न देखा कोइ। → सा० माया० (१६) १३-२।

पोटि—संज्ञा स्त्री० [सं० पोट] पोटली, गठरी। दे० 'पोटली' या 'पोट'। ~क्या अपराध संत है कीन्हा, बाँधि **पोटि** कुंजर कौं दीन्हा। → सब० ४२-७।

पोतनहारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] ठण्डक लाने के लिए गीला कपड़ा लगाने वाली भपके की नली।~मुद्रा मदन सहज धुनि लागी सुखमन **पोतनहारी**। →पद ३४४-६।

पोयौ—क्रि० [सं० प्रोत] पिरोना, तागे आदि को छेद में डालना। ~ उन मोतियन मैं नीर **पोयौ**, पवन अंबर धोइ।→सब० ४५-४।

पौंड़ै—क्रि० [हि० पैरना] तैरती है। ~ आड़ अटक मांनै नहीं **पौंड़ै** जल-धारा।→पद ३४५-६।

पौन—संज्ञा पु० [सं० पवन] पवन, प्राणायाम। ~ पनिया अंदर धरे न कोय, **पौन** गहै कसमलिन धोय।→ वसंत (४) १-३।

पौन—संज्ञा पु० [सं० पवन] पवन, वायु। ~धरती कहै मोहिं मिलि जाई, **पौन** कहै सँग लेहुँ उड़ाई।→र० ७८-७।

पौना—संज्ञा पु० [सं० पवन] पवम, स्वास, प्राण। दे० 'पौन'।~रहिगौ पंथ थकित भौ **पौना**, दसो दिसा उजारि भौ गौना।→र० ४५-४।

पौलि—संज्ञा पु० [सं० पौल] द्वार, दरवाजा, डयोढ़ी, मुख्य द्वार। ~ ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी **पौलि**। →सा० पर० (५) ४८-१, सा० काल० (४६) १८-१, सब० १२८-६।

पौवा—संज्ञा पु० [सं० पाद] एक सेर का चौथाई भाग। ~ कानि तराजू सेर तिन **पौवा**, डहकै ढोल बजाई हो।→कहरा (३) ४-५।

प्रकासा—क्रि० [सं० प्रकाश] प्रकाशित हुआ। ~ ग्यान **प्रकासा** गुरु मिला, सों जिनि बीसरि जाइ।→सा०गुरु० (१) १३-१।

प्रगास—संज्ञा पु० [सं० प्रकाश] प्रकाश। ~ ब्रह्म अगिनि कियो **प्रगास**, अर्ध उर्ध तहँ बहै बतास।→ वसंत (४) २-३।

प्रगासा—संज्ञा पु० [सं० प्रकाश] प्रकाश। दे० 'प्रगास'। ~ कहै कबीर मनि भया **प्रगासा** उदै भानु जब चीनां। →पद ३०२-६।

प्रजल्यौ—क्रि० [सं० प्रज्वलन] प्रज्वलित होता है। ~ ज्वाला उठी अकास **प्रजल्यौ**, सीतल अधिक समाई। → पद ३०५-१२।

प्रजारी—क्रि० [सं० प्रज्वलन] जला दिया। ~ जठर अगिनि महँ दीन्ह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रजारी, तामे आपु भया प्रतिपाली। →र० २६-३।

प्रतखि—वि० [सं० प्रत्यक्ष] प्रत्यक्ष। दे० 'प्रतषि'। ~ तीन देव **प्रतखि** तोरहि करहि किसकी सेव।→ पद २११-१०।

प्रतषि—वि० [सं० प्रत्यक्ष] प्रत्यक्ष। दे० 'प्रतखि'। ~ साधू **प्रतषि** देव है, नहिं पाथर सूं कांम।→सा० भ्र० वि० (२३) ५-२।

प्रतिग्रह—संज्ञा पु० [सं० प्रतिग्रह] यज्ञ में प्राप्त दान।~ब्राह्मन होयकै ब्रह्म न जानै, घर मँह जग्य **प्रतिग्रह** आनै। →विप्र० (२) २।

प्रतिपारा—संज्ञा पु० [सं० प्रतिपालन] रक्षा। दे० 'प्रतिपाल'। ~ तीनि लोक जाकै हहि भारा; सो काहे न करै **प्रतिपारा**।→सब० १६-४।

प्रतिपाल—संज्ञा पु० [सं० प्रतिपालक] रक्षक। ~ अबिनासी दुलहा कब मिलिहौं, सभ संतन के **प्रतिपाल**। सब० २२-१, पद २६२-२; र० २६-३।

प्रतिपाल—संज्ञा पु० [सं०] पालन, रक्षा।~ कृसन कृपाल कबीर कहि, इम **प्रतिपाल** न क्यौं करै।→ सा० वेसा० (३५) १-६।

प्रतिपाला—संज्ञा पु० [सं० प्रतिपालन] प्रतिपालन, पालन-पोषण। ~ तात जननी कहै पुत्र हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह **प्रतिपाला**। →र० ७८-२।

प्रतिपालि—क्रि० [सं० प्रतिपालन] रक्षा करना, पालन करना।~कहैं कबीर कछु अछलो न तहिया, हरि बिरवा **प्रतिपालि** न जहिया। → सब० १६६-५।

प्रतिपाली—संज्ञा पु० [सं०] प्रतिपालक, रक्षक। ~ जठर अगिनि मँह दीन्ह प्रजारी, तामे आपु भया **प्रतिपाली**। →र० २६-३।

प्रतिपालै—क्रि० [सं० प्रतिपालन] रक्षा करते हैं।~छीजै साह चोर **प्रतिपालै**, संत जना की कूटि करै। → पद २७६-८।

प्रतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्ति, छाया, प्रतिबिम्ब।~ज्यों केहरि बपु निरखि कूपजल, **प्रतिमा** देखि पर्‌यो। → सब० ५-३।

प्रतिहार—संज्ञा पु० [सं०] द्वारपाल। ~नवग्रह कोटि ठाढ़े दरबार, धरम-राइ पौली **प्रतिहार**। → सब० १२८-६।

प्रथम चरन—संज्ञा पु० [सं०] सत्युग। **प्रथम चरन** गुरु कीन्ह विचारा, करता गावै सिरजनहारा। → र० ४-१।

प्रपँच—संज्ञा पु० [सं०] पाखण्ड, आडम्बर। ~ आपन आपन चाहैं मान, झूठ **प्रपँच** साँच करि जान। → वसंत (४) १२-४।

प्रमोधि—क्रि० [सं० प्रबोध] उपदेश देना। ~ कुबुधि न जाई जीव की; भावै स्यंभ **प्रमोधि**। → सा० कामी न० (२०) १६-२।

प्रलै—संज्ञा पु० [सं० प्रलय] विनाश। ~काल अकाल **प्रलै** नहीं तहाँ संत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिरलै जाहिं। → हिंडोला (८) १-१५।

प्रलै—संज्ञा पु० [सं० प्रलय] अवसान, अन्त। ~ जार्‌यौ जरै न काट्यौ सूखै, उतपति **प्रलै** न आवै।→ पद ३०५-७।

प्रवांनां—संज्ञा पु० [सं० प्रमाण] दृढ़ धारणा। ~ जीवत कछू न किया **प्रवांनां**, मुएं मरम को काकर जांनां। →सब० १३२-४।

प्रसाद—संज्ञा पु० [सं०] अनुग्रह।~ जा **प्रसाद** देवन कौ दुरलभ संत सदा ही पाहीं।→पद २०६-५।

प्रसूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसव, उत्पन्न।~नारी मोचित गर्भ **प्रसूती**, स्वाँग धरै बहुतै करतूती। → र० २-७।

प्रिथिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] पृथ्वी। दे० 'पुहुमी'।~ प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्डा, **प्रिथिमी** प्रगट कीन्ह नौ खण्डा।→र० ३-४, र० ७५-४, र० ३०-५; वसंत (४) ६-३।

प्रीतड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० 'प्रीतिड़ी'।

प्रीतिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रीति+ड़ी (प्रत्य०)] प्रेम।~ करि चिजारा सौं **प्रीतिड़ी**, ज्यूं ढहै न दूजी बार। →सा० चिता० (१२) १८-२; सा० निह० प० (११) १-१।

प्रेत-कनक—यौ० [सं०] श्राद्ध का अन्न। ~ **प्रेत-कनक** मुख अंतर बासा, आहुति सहित होम की आसा। → विप्र० (२) ५।

फ

फंद—संज्ञा पु० [सं० बंध] फंदा, बंधन। ~ कबीर माया पापिनी, **फंद** ले बैठी हाटि। →सा० माया० (२६) २-१, पद २६३-७, पद ३२४-८; सब० १३५-४, र० १७-४।

फंदा—संज्ञा पु० [सं० बंध] बंधन। दे० 'फंद'। ~ रामहि जानि जुक्ति जौं चलई, जुक्तिहिं तें **फंदा** नहिं परई।→र० २१-२, पद ३३७-२।

फंध—संज्ञा पु० [सं० बंध] बंधन। दे० 'फंद'। ~ बाड़ि चढ़ंती बेलि ज्यूं, उलझी आसा **फंध**। →सा० माया० (१६) २६-१।

फकीरा—संज्ञा पु० [अ० फकीर] साधु-सन्त। ~कहै कबीरा दास **फकीरा**, अपनी रहि चलि भाई। →पद ३२६-६।

फगुवा—संज्ञा पु० [हिं०] फाग के उपलक्ष में दिया जाने वाला उपहार। ~ सतगुरु मिलिया **फगुवा** दीया पैंड़ा दिया बताइ। → पद ३०६-६; वसंत (४) २-७।

फटिक—संज्ञा पु० [सं० स्फटिक] एक प्रकार का पारदर्शी पत्थर, बिल्लौर। ~ वैसे ही गज **फटिक** सिला पर, दसनन आनि अर्‌यो।→सब० ५-४, सा० बिर्क० (३७) २।

फनिंद्र—संज्ञा पु० [सं० फणीन्द्र] शेष नाग। ~ झूलैं नारद सारदा झूलैं व्यास **फनिंद्र**। →हिंडोला (८) १-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फरंकि—क्रि [अ०] अलग होकर, फड़क कर। ~भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े **फरंकि**। →सा० गुरु० (१) २५-२।

फर—संज्ञा पु० [सं० फल] फल। ~ यातै लौंगहिं **फर** नहि लागै, चंदन फूल न फूलै। →सब० २८-३।

फरमाया—क्रि० [फ़ा०] आदेश दिया। ~बकरी मुरगा किन **फरमाया**, किसके हुकुम तुम छुरी चलाया।→ र० ४६-५।

फरु—संज्ञा पु० [सं० फल] फल। ~ सोरह मंझै पवन झकोरै, आकासै **फरु** फरिया। →सब० ११६-६।

फांकै छारा—[मुहा०] धूल फाँकना। विद्या वेद पढ़ि करै हंकारा, अंत काल मुख **फांकै छारा**। →पद २५८-३।

फाँटि—संज्ञा पु० [दे०] कपड़े का थान। ~ जोलहा तान बान नहिं जानै, **फाँटि** बिनै दस ठाँई हो। →कहरा (३) १०-६।

फांदिया—क्रि० [हि० फँसाना] फंसा लिया। ~ काग लंगर **फांदिया** वटेरै बाज जीता।→पद ३४३-४।

फांसि—संज्ञा स्त्री० [सं० पाश] दे० 'फांसी'। फंदा, बन्धन। ~तिरगुन **फांसि** लिए कर डोलै, बोलै मधुरी वानी। पद २२७-२।

फांसी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाश] बंधन। दे० 'फंद'। ~तातै **फांसी** काल की, करहु आपनो सोच। →र० ६४-६, सब० ६३-११।

फाटा—क्रि० [हि० फटना] फट गया। ~ **फाटा** फटिक पषांन ज्यौं, मिला न दूजी बार। →सा० बिर्क० (३७) १-२।

फाटिसी—क्रि० [हि० फटना] फट जाएगा। ~ जो पहिरा सो **फाटिसी** नाम धरा सो जाइ। →सा० काल० (४६) १२-१।

फाबी—क्रि० [सं० प्रभवन] अच्छी लगी। ~ कहै कबीर **फाबी** मतिवारी, पियत राँम रस लगी खुमारी। →सब० १०८-५।

फारि—क्रि० [सं० स्फाटन] फाड़कर। **फारि** पटोरा धज करूं, कामलिया पहिराउँ। →सा० बिर० (३) ४१-१।

फिकरु—संज्ञा स्त्री० [अ० फिक्र] दे० 'फिकिर'। चिन्ता। ~ बेद कतेब इफतरा भाई दिल का **फिकरु** न जाई। →सब० १८१-३।

फिकिर—संज्ञा स्त्री० [अ० फिक्र] चिन्ता। ~ करि **फिकिर** दाइम लाइ चसमैं जहाँ तहाँ मौजूद। → सब० १८१-८।

फिटकी—वि० [दे०] सारहीन। ~ अनंत कोटि मन हीरा बेधौ, **फिटकी** मोल न पाई हो। →कहरा (३) १०-११।

फिरल—क्रि० [हि०] वापस आना। ~ काको रोऊँ गल बहुतेरा, बहुतक मुअल **फिरल** नहिं फेरा। →सब० ७५-१।

फिरायाँ—क्रि० [हि० फिराना] घुमाना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ जाहि **फिरायाँ** हरि मिलै, सो भी काठ कठोर। →सा० भेष० (२४) २-२।

फिरै—क्रि० [हि० फिरना] चक्कर लगाते हैं। ~ रामहि गावै औरहि समुझावै, हरि जाने बिनु सकल **फिरै**। →पद २७६-१।

फिल—क्रि० [सं०√पिल्] फेंक देना, ढकेल देना। ~ कोटि करम **फिल** पलक मैं, (जब) आया हरि की ओट। →सा० सुमि० (२) १६-२।

फिल करौं—क्रि० [हि० फिरना] नष्ट कर दूँ। ~ जोगी फेरी **फिल करौं** यौं बिननाँ वै सूति। →सा० मन० (१३) ३-२।

फीकी—वि० [सं० अपक्व] मन्द, स्वादहीन, नीरस।~खसम पिछांनि तरस करि जिय मैं माल मनीं करि **फीकी**। →पद २२६-७।

फुनि—अव्य० [सं० पुनः] पुनः, फिर। ~जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, **फुनि** रसना नहिं राम। →सा० सुमि० (२) १७-१, सब० ६८-६, पद २१६-५।

फुनिगा—संज्ञा पु० [हि०] पतंगा।~ **फुनिगा** कतहूँ गरुड़ भखत है। → पद ३४७-२।

फुर—वि० [हिं०] सत्य, सच्चा। ~ **फुर** फुर कहत मार सब कोई, झूठहिं झूठा संगति होई। →र० ४२-३।

फुरमाई—क्रि० [फ़ा० फ़रमाना] आज्ञा दिया। ~तब नहिं होते गाय कसाई तब कहुं बिसमिल किन **फुरमाई**। र० ४०-३, सा० सा० सा० (२६) २१-२, पद २२६-३।

फुरमाया—क्रि० दे० 'फरमाया'।

फुरे—वि० [हि० फुरना] सत्य, सच्चा। दे०'फुरो'। ~काहू के बचनहि **फुरे**, काहू के करामाती। →सब० १३५-७।

फुरो—वि० [हि० फुरना] सत्य। दे० 'फुर'। ~चारि अवस्था सपनै कहई, झूठी **फुरो** जानत रहई। →र० २४-२।

फुलल—क्रि० [भोज०] पुष्पित है। ~ फुल भल **फुलल** मलिनि भल गांथल, फुलवा विनसि गो भवँर निरासल। →पद २३६-४।

फूक—क्रि० [हि० फूंकना] फूंक कर। ~भावै त्यौं परमोधिए, ज्यूं बंसि बजाई **फूक**। →सा० गु० (१) २१-२।

फूटिम फूटि—क्रि० [हि० फूटना] टूट-फूट गया। ~झल ऊठी झोली जली, खपरा **फूटिम फूटि**। →सा० ज्ञान० (४) ४-१।

फूलल—क्रि० [हि० फूलना] पुष्पित हो गया। ~फूल एक भल **फूलल** बिरहुली, फूलि रहल संसार बिरहुली। →बिरहुली (७) ७।

फूला—वि० [सं० फुल्ल] प्रसन्न। ~ कबीर मन **फूला** फिरै, करता हूँ मैं धरंम। → सा० चाँण० (१७) २१-१।

फूला फूला—[मुहा०] प्रसन्न होना। ~कूर कपट की पासंग डारै **फूला फूला** डोलै। →पद २१४-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फूले फूले—[मुहा०] इतराते हुए, गर्व में ऐंठते हुए। ~ फिरहु का **फूले फूले**। →सब० १७६-१।

फूस—संज्ञा पु० [सं० तुष] तृण, तिनका। ~**फूस** कजौड़ा दूरि करि, ज्यूँ बहुरि न लागै लाइ।→सा० सूरा० (४५) ३६-२।

फेर—संज्ञा पु० [हिं० फेरना]। फेरा, चक्कर। ~ गगन मँडल मँह भौ उजियारा, उलटा **फेर** लगाया। → सब० १०६-६।

फेरा—संज्ञा पु० [हिं० फेरना] पुनरागमन।~अबकी वेर बकसि बंदे कौं बहुरि न भौजलि **फेरा**। → सब० १०-१२; सब० १३४-५।

फेरि—अव्य० [हिं० फेरना से] पुनः, फिर से।~औसर चले बजाइ करि, है कोइ लावै **फेरि**। →सा० चिता० (१२) ३-२।

फेरि—क्रि० [हिं० फेरना] वापस करो। ~जबही चालै पीठि दै, अंकुस दे दे **फेरि**।→सा० मन० (१३) १६-२।

फेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० फेरना] भाँवरी, चक्कर। ~ बारी **फेरी** बलि गई, जित देखौं तित तूँ। →सा० सुमि० (२) ६-२।

फेरी—क्रि० [हिं० फेरना] वापस कर दिया।~दास कबीर रांम कै सरनैं ज्यौं आई त्यौं **फेरी**।→पद २४४-८।

फेरी—वि० [हिं० फिरना] चक्कर लगाने वाला। ~जोगी **फेरी** फिल करौं, यौं बिननाँ वै सूति। →सा० मन० (१३) ३-२।

ब

बंका—वि० [सं० वक्र] टेढ़ा। ~ क्यौं लीजै गढ़ **बंका** भाई। →सब० ६३-१।

बंग—संज्ञा स्त्री० [अ० बाँग] नमाज की सूचना के शब्द, अज़ान। ~ **बंग** निमाज कलिमा नहिं होते, रामहु नाहिं खोदाई। →सब० ३१-८, पद २१०-६।

बंचै—क्रि० [हिं० बचना] बच पाना। ~माँगन मरन समान है, बिरला **बंचै** कोइ। →सा० बेसा० (३५) १५-१।

बंचै—क्रि० [हिं० बचना] बचते हैं। ~पर नारी पर सुन्दरी, बिरला **बंचै** कोइ। →सा० कामी न० (२०) ४-१।

बंच्या—क्रि० [हिं० बचना] बचना। ~हिरदै कठोर मरै बानारसि, नरक न **बंच्या** जाई। →पद ३०८-७।

बंछित—वि० [सं० वांछित] इच्छित। ~तुम्ह कहियतु त्रिभुवनपति राजा; मन **बंछित** सब पुरवन काजा। → सब० २-४।

बंद—संज्ञा पु० [सं० बन्ध] बन्धन।~ साधु संगति मिलि करि बसंत, भौ **बंद** न छूटै जुग जुगंत। →पद ३३८-४।

बंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वन्दना, प्रणाम, सलाम, सेवा। ~यह तो खून वह **बंदगी**, क्यों कर खुसी खोदाय। → र० ४६-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रणति। ~कै जागै विषई विष भरा, कै दास **बंदगी** होइ। →सा० साधसा० (२६) २०-२, सा० पर० (५) ४-२।

बंदगी—संज्ञा० स्त्री० [फ़ा०] बन्दना, पूजा। ~ यह सब झूठी **बंदगी**, त्रिरिया पाँच निवाज। → सा० साँच० (२२) ५-१।

बंदा—संज्ञा पु० [फ़ा०] भक्त, सेवक, दास। ~माया मोह कठिन है फंदा, होय विवेकी सो जन **बंदा**। →र० ७६-२, पद ८५-८, पद २२७-८; सा० बेसा० (३५) ११-२।

बंदि—संज्ञा पु० [फा० बन्दी] कारा-गृह। ~पूँजी बितड़ि **बंदि** लै दैहै, तब कहे कौन के छूटै। → पद २१७-६।

बंदि—संज्ञा पु० [सं० बंदिन्] बन्धन। ~बाँधे देव तेंतीस करोरी, सुमिरत **बंदि** लोह गै तोरी। →र० ६-३।

बंदिगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रणति। दे० 'बंदगी'। ~दीन गरीबी **बंदिगी** करतां होइ सु होइ। →सा० जी० मृ० (४१) ११-२।

बंदे—संज्ञा पु० [फ़ा० बन्दा] सेवक, दास। ~कहत कबीर भजन बिनु **बंदे**, जनम अकारथ जाइ' →सब० १०५-६, सब० १८१-१, पद २८१-३, सा० बीन० (५६) ७५-२, सब० १०-१२।

बंध—संज्ञा पु० [सं०] बन्धन, ग्रन्थि। ~मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक ह्रिदया **बंध** निबारहु हो। →कहरा (३) २-१।

बंधसि—क्रि० [सं० बन्धन] बाँध सकते हो। ~खंभा एक गयंद दोइ क्यों करि **बंधसि** बारि। →सा० चिता० (१२) ४२-१।

बंधाइ—संज्ञा स्त्री० [हि० बढ़ाइ] वृद्धि। ~ कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहै **बँधाइ**। →सा० चाँण० (१७) ७-१।

बँधाइ—क्रि० [सं० बंध] बनवाकर। ~ निन्दक नियरे राखिए, आँगनि कुटी **बँधाइ**।→सा० निन्द्या (निन्दा) (५४) ३-१।

बँधिप—संज्ञा पु० [सं० बन्धु] भाई-बन्धु। ~नांउँ मेरै **बंधिप** नांउँ मेरै भाई, अंत की बेरियां नांउँ सहाई। →पद ४६-५।

बंधी—क्रि० वि० [सं० बंध] बँधे हुए। ~ गुन औगुन बिहड़ैं नहीं, स्वारथ **बंधी** लोइ। →सा० अबि० (५६) २-२।

बंब—संज्ञा स्त्री० [अनु०] रणनाद, यशोगान। ~ धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न **बंब**। →सा० चिता० (१२) ३३-२।

बंब—संज्ञा स्त्री० [हि०] नगाड़ा, दुंदुभी। ~नारद कब बन्दूक चलाई, व्यास-देव कब **बंब** बजाई।→र० ६६-५।

बँबूर—संज्ञा पु० [सं० बब्बूर] एक काँटेदार वृक्ष। दे० 'बबूर'। ~ चन्दन की कुटकी भली, नाँ **बँबूर**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंबराँउँ। →सा० सा० म० (३०) १-१।

बंस—संज्ञा पु० [सं० वंश] १. बाँस, २. कुल, खानदान। ~ ऊँचा कुल कै कारनैं, **बंस** बढ़ा अधिकार।→ सा० निगु० (५५) ११-१।

बंस—संज्ञा पु० [सं० वंश] १. कुल, खानदान, परिवार, २. बाँस। ~ **बंस** आगि लगि बंसै जरिया, भर्म भूलि नर धंधे परिया। → र० ५०-२।

बंसा—संज्ञा पु० [सं० वंश] वंश। दे० 'बंस'। ~ हिरनाकुस रावन गौ कंसा, कृस्न गए सुर नर मुनि **बंसा**। → र० ४५-१।

बंसि—संज्ञा स्त्री० [सं० वंशी] वंशी, मुरली, बाँसुरी। ~ भावै त्यौं परमोधिए, ज्यूं **बंसि** ब्रजाई फूक। →सा० गुरु० (१) २१-२।

बउरे—वि० [सं० वातुल] पागल, विक्षिप्त। ~ कहत कबीर रांम भजु **बउरे**, जनम अकारथ जात। →सब० ७०-१०।

बक—संज्ञा पु० [सं० वक] बगुला। ~ ऊपर उज्जर देखो **बक** अनुमान। →सब० ८५-३।

बकतं-बकति—क्रि० [सं० वचन] व्यर्थ में कह कहकर। ~ मैं **बकतं बकति** सुनावा, सुरतं तहाँ कछू न पावा। →सब० १७१-६।

बकला—संज्ञा पु० [सं० वल्कल] छाल। परिहरि **बकला** ग्रहि गुन डारि, निरखि देखि निधि वार न पार।→ सब० ५०-१०।

बकवादी—वि० [हि० बकवाद + ई (प्रत्य०)] प्रलापी, बहुत बोलने वाला। ~ ते सब तिरे राँम रस स्वादी, कहै कबीर बूड़े **बकवादी**। →पद २४७-५।

बकसहु—क्रि०[फ़ा० बख्श + हु (प्रत्य०)] क्षमा करो। ~ काहे न अवगुन **बकसहु** मेरा। →पद ३३३-२।

बकसि—क्रि० [फ़ा० बख्श] क्षमा करना। दे० 'बकसिहैं'। ~ अबकी बेर **बकसि** बंदै कौं, बहुरि न भौजलि फेरा। →सब० १०-१२।

बकसिहैं—क्रि० [फ़ा० बख्श] क्षमा करना, माफ करना। ~और गुनह हरि **बकसिहैं**, काँमी डाल न मूल। →सा० का० न० (२०) १७-२।

बकि—क्रि० [सं० वचन] व्यर्थ की बातें बढ़ा-चढ़ा कर करते हुए।~निरमल तन मन सब करै, **बकि** बकि आँनहि आन। → सा० निन्द्या० (५४) ४-२।

बकिबो—क्रि० [सं० वचन] आदेश दिया। ~ काजी **बकिबो** हस्ती तोर। →सब० ४२-२।

बखतर—संज्ञा पु० [फ़ा०] कवच।~ र रा करि टोप म माँ करि **बखतर** ग्यान रतन करि षाग रे। →सब० ११८-३।

बखान—संज्ञा पु० [सं० व्याख्यान] प्रशंसा, सराहना। ~ दिया महौला पीव कौं, (तब) मरहट करै **बखान**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

→सा० सूरा० (४५) ३५-२ ।

बखान—संज्ञा पु० [सं० व्याख्यान] वर्णन, प्रशंसा । ~ बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करत **बखान** । →सब० १५२-५ ।

बग—संज्ञा पु० [सं० वक] बगुला ।~ उज्जल देखि न धीजिए, **बग** ज्यौं माँडै ध्यान ।→सा० असाधु० (२७) २-१ ।

बच्छ—संज्ञा पु० [सं० वत्स] बछड़ा । हरि आदर आगैं लिया, ज्यौं गऊ **बच्छ** की लार। →सा० जी० मृ० (४१) ३-२ ।

बछतलि—यौ० [वत्स् + तल] बछड़े के नीचे । ~सुरही चूषै **बछतलि**, बछा दूध उतारै । →सब० ५१-७ ।

बछरा—संज्ञा पु० [सं० वत्स] बछड़ा । दे० 'बच्छ' । ~**बछरा** था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ । →सा० अपा० (४८) ५-२ ।

बजगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बदकारी] अशिष्टता, बुरा काम । ~तुम दाते हंम सदा भिखारी, देउँ जवाब होइ **बजगारी** । →सब० १४१-७ ।

बजरपरौ—[मुहा०] बज्र गिरना, दुःख-दायी स्थिति । ~ **बजरपरौ** इहि मथुरा नगरी कांन्ह पियासा जाई रे । →पद २५५-६ ।

बटाऊ—संज्ञा पु० [हि० बाट + आऊ (प्रत्य०)] पथिक, राह चलने वाला । ~ हंस **बटाऊ** चलि गया, काढ़ौ घर की छोति ।→सा० काल० (४६) १७-२ ।

बटाऊवा—संज्ञा पु० [हि० बाट + आऊ (प्रत्य०)] पथिक, बटोही । दे० 'बटाऊ' । ~ जन कवीर **बटाऊवा**; जिनि मारग लियो चाइ । →सब० ४५-१० ।

बटोरा—क्रि० [हि० बटोरना] संग्रह किया । ~घोरा घोरी कीन्ह **बटोरा**, गाँव पाय जस चले करोरा । →र० ६६-८ ।

बड़—वि० [सं० वर्द्धन] बड़ा । ~ पारब्रह्म **बड़** मोतियाँ, झड़ि बाँधी सिषराँह । →सा० निगु० (५५) ३-१ ।

बड़ाई –संज्ञा स्त्री० [हि० बड़ा + ई (प्रत्य०)] महत्ता । ~ कांचै कुंभ उदिक ज्यौं भरिया या तन की इहै **बड़ाई** । →सब० १७६-४ ।

बड़ापना—संज्ञा पु० [हि० बड़ा + पन] बड़प्पन, विशालता । ~ जालौं इहै **बड़ापना**, सरलै पेड़ खजूरि ।→सा० निगु० (५५) १०-१ ।

बढ़वत—क्रि० [हि० बढ़ाना] बढ़ाने से, वृद्धि करने से । ~ **बढ़वत** बढ़ी घटावत छोटी, परखत खर परखावत खोटी । →र० ७६-१ ।

बतास—संज्ञा स्त्री० [सं० वातासह] वायु, हवा । ~ ब्रह्म अगिनि कियो प्रगास, अर्ध उर्ध तहँ बहै **बतास** ।→ वसंत (४) २-३ ।

बदउँगा—क्रि० [हि०] स्वीकार करूँगा । ~सकति सनेह पकरि करि सूनति; मै न **बदउँगा** भाई । → सब० ७६-३ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बदकर्मी—वि० [अ० बद+सं० कर्मी] कुकर्मी। ~ऐसो जोगिया है बदमर्की, जाके गगन अकास न धरनी। → सब० ६०-१।

बदत—क्रि० [सं० वदन] समझना। ~अति अभिमांन बदत नहिं काहू, बहुत लोग पचिहारे। → सब० ११३-४।

बदन—संज्ञा पु० [सं० वदन] मुख। ~नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हो कपि को रूपा। →सब० ४-७, चाँचर (५) १-६।

बदि के—[मुहा०] [हि० वद कर] निश्चय करके, ललकार करके। ~एक नाम मैं बदि के लेखौं, कहै कबीर पुकारी। →पद २२२-६।

बदै—क्रि० [सं० वद्] कहते हैं। ~ पंडित वाद बदै सो झूठा। → सब० १६८-१।

बदौं—क्रि० [सं० वद्] समझूं, मानूं। ~जौं तूं कूदि जाउ भवसागर कला बदौं मैं तेरी। → सब० १६०-६।

बधल—क्रि० [सं० वध] वध किया। ~ नहीं वलिराज से माँड़ी रारी, नहिं हरिनाकुस बधल पछारी।→ र० ७५-५।

बधावना—संज्ञा पु० [हि० बधावा] बधावा, उत्सव। दे० 'बधावा'। ~ जिहि घरि जिता बधावना, तिहि घरि तिता अँदोह।→सा० मा० (१६) २८-२।

बधावा—संज्ञा पु० [हि०] आनंद या मंगल के अवसर का गाना, मंगलाचार। ~सोग बधावा सम कै माना, ताकि बात इन्द्रहु नहिं जाना। → र० ७१-१।

बधिक—संज्ञा पु० [सं० वधिक] वध करने वाला। ~ घर के खसम बधिक वै राजा, परजा का धौं करै विचारा।→पद-३२४-३।

बधीर—संज्ञा पु० [सं० वधिर] बहरापन; अनसुनी। ~ सुनहु हमारी दादि गुसाँई, अब जिन करहु बधीर। →पद ३४६-५।

बधै—क्रि० [सं० वृद्धि] बढ़ रही है। ~ काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि। →सा० चिता० (१२) ४०-१।

बधै—क्रि० [सं० वृद्धि] बढ़ता है। ~झूठे को झूठा मिलै, दूनाँ बधै सनेह। → सा० साँच० (२२) १७-१।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] कपास। ~वालमीकि बन बोइया, चुनि लीन्ह सुखदेव। → पद २४८-२।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] वन। दे० 'बनराइ'। ~यह तन तौ सब बन भया, करम जु भए कुहारि।→सा० चिता० (१२) ४४-१।

बनजिया—संज्ञा पु० [सं० वाणिज्य] व्यापार। ~कबीर हीरा बनजिया, महँगे मोल अपार।→सा० सूरा० (४५) २८-१।

बनराइ—संज्ञा स्त्री० [सं० वनराजि] वनराजि, वन। ~ अंतरि भीगी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आतमाँ, हरी भई **बनराइ**। →सा० गु० (१) ३४-२।

बनराइ—संज्ञा स्त्री० [सं० वनराजि] वृक्ष। ~ सात समुंद की मसि करौं, लेखनि सब **बनराइ**।→सा० सम्र० (३८) ५-१।

बनमाली—संज्ञा पु० [सं०] कृष्ण, प्रभु। दे० 'बनवारी'। ~ **बनमाली** जानैं वन कैं आदि। → सब० १८२-१।

बनवारी—संज्ञा पु० [सं० वनमाली] कृष्ण। ~कहै कबीर सेवौ **बनवारी**, सींचौ पेड़ पिवैं सब डारी।→सब० १६-५।

बनांनीं—सं० स्त्री० [हिं०] वणिक् की स्त्री। ~ जाकै घर मैं कुबुधि **बनांनीं** पल पल मैं चित चोरै।→ पद २१४-२।

बनि—संज्ञा पु०[सं० वन + इ(प्रत्य०)] वन में। ~इहि **बनि** बाजै मदल भेरि रे वहि **बनि** बाजै तूरा रे। → पद २५५-६, १०।

बनिज—संज्ञा पु० [सं० वाणिज्य] व्यापार। ~ दूजा **बनिज** नहीं कछु बाषर, राँम नाम दोऊ तत आषर। →सब० १४-५, सब० १५६-२, बेलि (६) १-१६।

बनिजन—संज्ञा पु० [सं० वाणिज्य] वाणिज्य के लिए, व्यापार के लिए। ~इत पर घर उत घर, **बनिजन** आए हाट। →सा० चिता० (१२) ५७-१।

बनिजारा—संज्ञा पु० [हिं०] व्यापारी। ~ ओढ़न मेरा राम नाम, मैं रामहिं का **बनिजारा** हो। →कहरा (३) ४-१।

बनिजिया—संज्ञा पु० [सं० वाणिज्य से] व्यापारी। दे० 'बनिज'। ~ कबीर हीरा **बनिजिया**, मानसरोवर तीर। → सा० गु० (१) २६-२, कहरा (३) ४-२।

बनिता—संज्ञा स्त्री० [सं० वनिता] स्त्री। ~ मात पिता **बनिता** सुत संपति, अंति न चले संगात। सब० ७०-६; पद २७५-३, सा० संग० (२६) ६-२।

बनौरी—संज्ञा पु० [दे०] विवाह के अवसर का मंगल गीत। ~सब पंडित मिलि धंधे परिया, कबिरा **बनौरी** गावै। →पद ३१८-७।

बन्दहिं—क्रि० [सं० वन्दन] वन्दना करते हैं, पूजा करते हैं। ~सो फूल **बन्दहिं** भक्त बिरहुली, डसि गैल बैतल साँप बिरहुली। → बिरहुली (७) ६।

बयाई—संज्ञा पु० [हिं०] तौलाई, व्यापार। ~बिना हाट हटवाई लावै, करै **बयाई** लेखा। →सब० ६०-३।

बपु—संज्ञा पु० [सं० वपु] शरीर। ~ **बपु** बारी आनंद मीरगा, रुचि रुचि सर मेलै। → सब० ६५-२; सब० ५-३, सब० १००-२।

बपुरा—वि० [सं० वराक्] वेचारा। ~ तिनका **बपुरा** ऊबरा, गलि पूरे कै लागि। → सा० ज्ञा० वि०(४) ७-२, सा० गु० (१) २१-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बपुरी—वि० [हि०] बेचारी। ~छौ मास तागा वरिस दिन कुकुरी, लोग बोलैं भल कातल **बपुरी**। →पद २१५-४, पद ३३१-६।

बबूर—संज्ञा पु० [सं० वब्बूर] बबूल का वृक्ष। ~आंब चढ़ी अँबली रे अँवली **बबूर** चढ़ी नगवेली रे। पद-२५५-३।

बबेक—संज्ञा पु० [सं० विवेक] विवेक, ज्ञान। ~ बैसनौं भया तौ का भया, बूझा नहीं **बबेक**। →सा० भेष० (२४) १६-१, सब० ६७-६।

बमेक—संज्ञा पु० दे० 'बबेक'।

बर—१. संज्ञा पु० [सं० वर] पति, २. वि० श्रेष्ठ, असंग। ~ **बर** नहिं बरैं ब्याह नहि करई, पूत जनावन हारी। → सब० १६८-४, पद ३१३-७।

बरकस—क्रि० वि० [सं० बल+वश] बलपूर्वक। ~ दिन की बेठ खसम सौं **बरकस** तापर लगी तिहाई। →पद २७१-७।

बरजतां—क्रि० [सं० वर्जन] मना करने पर। ~गलका खाया **बरजतां**, अब क्यौं आवै हाथि। → सा० मन० (१३) १६-२।

बरजि—क्रि० [सं० वर्जन] रोकिये। ~वंदे पर जोरा हुवै, जम कौ **बरजि** गुसाँइ। →सा० बीन०(५६) ५-२।

बरजि—क्रि० [सं० वर्जन] विमुख करके। ~बारंबार **बरजि** बिखया तैं लै नर जौ मन तोलै। → पद २५४-४।

बरजेउँ—क्रि० [सं० वर्जन] मना किया। ~मैं तोहि **बरजेउँ** बार बार, तैं बन बन सोध्यो डार डार। →सब० १०६-३।

बरजौं—क्रि० [सं० वर्जन] रोकता हूँ। ~झूठा कबहुँ न करिहै काज, हौं **बरजौं** तोहि सुनु नीलाज। →वसंत (४) १२-५।

बरण—संज्ञा पु० [सं० वर्ण] वर्ण, जाति। ~सकल **बरण** एकत्र ह्वै सकति पूजि मिलि खाँहि। →सा० साँच० (२२) १४-१।

बरत—संज्ञा पु० [सं० व्रत] उपवास। ~तीरथ **बरत** जपै तप करि करि, बहुत भाँति हरि सोधै। →पद २५१-३, पद २७६-६, पद ३०४-३।

बरत—संज्ञा स्त्री० [हि० वटना > बरना से] मोटी रस्सी जिस पर नट चलता है। ~टूटै **बरत** अकास तैं, कौन सकत है झेल। →सा० सूरा०(४५) ३२-१।

बरतिया—वि० [सं० व्रतिन्] व्रतधारी जैन साधु। ~केस लूंचि लूंचि मुए **बरतिया**, इनमैं किनहूं न पाई। → पद २६०-६।

बरतौं—क्रि० [सं० वर्त] विद्यमान होना। ~तिरबिधि रहौं सभनि मां **बरतौं**, नाम मोर रमुराई हो। → कहरा (३) १०-७।

बरन—संज्ञा पु० [सं० वरुण] वरुण देव। ~जिनि ब्रह्मण्ड रच्यौं बहु रचना, बाव **बरन** ससि सूरा। → सब० ८१-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बरन—वि० [सं० वर्ण] सुन्दर। ~ अबरन **बरन** कछू नहिं वाके, खाद्य अखाद्यौ खाई। →पद २०६-१०।

बरन—संज्ञा पु० [सं० वर्ण] वर्ण, रंग। ~नाना रूप **बरन** यक कीन्हा, चारि **बरन** उन्ह काहु न चीन्हा। →र० ६३-१, सा० मधि० (३१) ६-२, विप्र० (२) २८, सब० १४०-६।

बरन—संज्ञा पु० [सं० वर्ण] १. वर्ण, जाति। २. रंग। ~वाको नाम काह कहि लीजै, वाके **बरन** न रूपा। → सब० १६७-३, र० ६२-१, सब० १२६-१।

बरनहुँ—क्रि० [सं० वर्णन] वर्णन करूँ। ~ **बरनहुँ** कौन रूप और रेखा, दोसर कौन आहि जो देखा। → र० ६-१।

बरनि—क्रि० [हि० वर्णन] वर्णन करना। ~ सोभा अदबुद रूप की, महिमा **बरनि** न जाय। →चाँचर (५) १-३।

बरने बाहिरा—वि० [सं० वर्णन + बहिः] वर्णन से परे, वर्णनातीत। ~अबरन **बरने बाहिरा**, करि करि थका उपाइ। →सा० सम्र० (३८) ६-२।

बर बर—यौ० [दे०] बकवास। ~ ब बा **बर बर** कर सभ कोई, **बर बर** करै काज नहिं होई। →ज्ञान चौं० (१) ४६।

बरबस—क्रि० वि० [सं० बल + वश] बलपूर्वक, जबर्दस्ती। ~ **बरबस** आनि कै गाय पछारिनि, गला काटि जिव आपु लिआ। →पद २१०-२।

बरात—संज्ञा पु० [दे०] संचय, ढेर। ~बहुत प्रताप गांउं सौ पाए, दुइ लख टका **बरात**। →सब० ७०-३।

बराता—संज्ञा स्त्री० [सं० वरयात्रा] बारात। → अवधू वैतत रावल राता, नाचै बाजन बाजु **बराता**। →सब० ३६-१।

बरि—क्रि० वि० [सं० वत्] बराबर, के समान। ~समंदहि तिनका **बरि** गिनै, स्वाँति बूंद की आस। →सा० निह० पति० (११) ५-२।

बरिआई—क्रि० वि० [सं० बलात्] जबर्दस्ती। ~ स सा सरा रचो **बरिआई**, सर बेधे, सभ लोग तवाई। →ज्ञान चौं० (१) ६७।

बरियाँ—संज्ञा स्त्री० दे० 'बरिया'।

बरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० वेला] बेला, समय। ~**बरिया** बीती बल गया, केस पलटि भए और। →सा० काल० (४६) २५-१, सा० साषी भू० (५७) २-१।

बरियाई—क्रि० वि० [सं० बलात्] बलपूर्वक। ~तीनि लोक के करता कहिए, बालि बधो **बरियाई**। → सब० ४-५।

बरियाई—क्रि० वि० [सं० बलात्] हठ पूर्वक। ~इन्द्री सबल निबल मैं माधौ, बहुत करैं **बरियाई**। →पद २६७-३।

बरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आजाद, अधिकारिणी। ~ देहरि लौं **बरी** नारि संग है आगै सजन सुहेला। →सब० १७६-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बरे—संज्ञा पु० [सं० वटी] उरद की पीसी हुई दाल का बना हुआ पक्वान्न। ~हरि के खारे **बरे** पकाए, जिनि जानें तिन खाए। →पद ३३१-१।

बरेडै—संज्ञा स्त्री० [हि० बेड़ा] बल्ली। ~औलौती का चढ़ा **बरेडैं** जिनि पीया तिनि जांनां।→पद २१६-६।

बरैं—क्रि० [हि० बरना] जलती है। ~ विनु दीपक **बरैं** अखंड जोति, तहां पाप पुन्नि नहिं लगै छोति। → पद २२५-७।

बरैं—क्रि० [सं० वरण] वरण करना, विवाह करना। ~बर नहिं **बरै** व्याह नहिं करई, पूत जनावनहारी। →सब० १६८-४।

बरोह—संज्ञा स्त्री० [सं० वट+रोह] वरगद की जटाएँ। ~बारह पखुरी चौबिस पाता, घन **बरोह** लागे चहुँ पासा। →सब० १६६-३।

बलंती—वि० [सं० ज्वलित] जलती हुई। ~ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी **बलंती** लाइ। →सा० पर० (५) ३१-२।

बलकल—संज्ञा पु० [सं० वल्कल] पेड़ की छाल।~**बलकल** वस्तर किता पहिरवा, क्या बन मद्धे बासा। → सब० १२२-३।

बलकवा—संज्ञा पु० [सं० बालक] वालक, लड़का। ~हमरे **बलकवा** के इहै ग्यान, तोहरा के समुझावै आन। →वसंत (४) ११-५।

बलकवै—संज्ञा पु० [सं० वालक] बच्चों को ही। ~कहँहि कवीर यह जगत पियारि, अपन **बलकवै** रहलि मारि। →वसंत (४) ५-५।

बलाइ—संज्ञा स्त्री० [अ० बला] आपत्ति, विपत्ति, दु:ख, कष्ट, रोग। ~मैं मैं बड़ी **बलाइ** है, सकै तौ निकसो भागि। → सा० चिता० (१२) ६०-१, सा० साध० सा० (२६) ६-२।

बलाही—संज्ञा पु० [सं० बलाधिकृत] लगान वसूल करने वाले कर्मचारी। ~खोटौ महतौ विकट **बलाही**, सिर कसदम का पारै। →सब० १०-७।

बलिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० बलि+√हार+ई (प्रत्य०)] न्यौछावर। 'बलि' शब्द 'देय' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु विशेषत: 'देवताओं के प्रति जो दिया जाय'—इस अर्थ में 'बलि' का प्रयोग अधिक देखने में आता है। 'बलि' के साथ 'हृ' धातु का प्रयोग संस्कृत में भी मिलता है। इसका अर्थ होता है—ले जाना। 'बलिहारी' शब्द का संस्कृत में अर्थ होता है—वलि को ले जाने वाला, वलि को देने वाला। हिन्दी में यह शब्द भाव वाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है—वलि देने का भाव अर्थात् उत्सर्ग। ~**बलिहारी** गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार। → सा० गुरु० (१) २-१।

बलीता—संज्ञा पु० [फ़ा० फतीलः] पलीता, आग लगाने वाली वत्ती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~काम क्रोध दोइ किया **बलीता**, छूटि गई संसारी। →सब० ३५-६।

बलेंडा—संज्ञा पु० [सं० वडभि] छाजन में बीच का वेड़ा या बल्ली, बड़ेर। ~ दुचिते की दोइ थूंनि गिरांनी मोह **बलेंडा** टूटा। →पद ३०२-३।

बलै—क्रि० [सं० ज्वलन] जलती है, दे० 'बरै'। ~ हिरदै भीतरि दौं **बलै**, धुवाँ न परगट होइ। →सा० ग्या० (४) ३-१।

बलैया—मुहा० [हि०] न्यौछावर होना। ~हो **बलैया** कब देखौंगी तोहि।→ पद ३४६-१।

बसन—संज्ञा पु० [सं० वसन] वस्त्र। ~नैन नासिका जिनि हरि सिरजै, दसन **बसन** विधि काया। →सब० ८१-७।

बसहि—संज्ञा पु० [सं० वश] वश में। ~कहैं कबीर सुनहु नर लोई, काल के **बसहि** परै मति कोई। →सब० ७५-४।

बसाइ—क्रि० [हि० वश] वश चलना। दे० 'बसाई'। ~ मेरी चपल बुद्धि सौं कहा **बसाइ**। →पद २२४-२।

बसाइगा—क्रि० [हि० वश] वश चलेगा। ~जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न **बसाइगा**। →पद २७४-५।

बसाई—क्रि० [सं० वश] वश चलना। ~लै धरि जाँहि तहाँ दुख पइए, बुधि बल कछु न **बसाई**। →पद २६७-४।

बसि—संज्ञा पु० [सं० वश] वश में। ~और हमारे **बसि** पड़े, गया कबीरा रूठि। →सा० माया० (१६) २६-२।

बसेरा—संज्ञा पु० [सं० वास] निवास। ~ आजु **बसेरा** नियरे हो रमैया राम। →वेलि० (६) १-५।

बसेरी—वि० [हि०] निवासी। ~ मानिकपुरहि कबीर **बसेरी**, मद्दति सुनी सेख तकी केरी।→र० ४८-१।

बस्त—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्तु] सामग्री। ~**बस्त** न बासन सूं खिसै, चोर न सकई लागि। →सा० उप० (३४) १०-२।

बस्त भाव—यौ० [हि० वस्तुभाव] सारभूत, कुण्डलिनी। ~षट चक्र की कनक कोठड़ी, **बस्त भाव** है सोई। →पद २१८-३।

बस्तर—संज्ञा पु० [सं० वस्त्र] कपड़ा। ~वलकल **बस्तर** किता पहिरवा, क्या बन मद्धे बासा। → सब० १२२-३।

बस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० वसति] आबादी।~बिनु जिभ्या गुन गाइया; बिनु **बस्ती** का गेह।→पद २४८-६।

बस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्तु] पूंजी। ~गाफिल होइ **बस्तु** मति खोवै, चोर मुसै घर जाई।→पद २१८-२; सा० माया० (१६) २४-२।

बहकि—क्रि० [हि० बहकना] बमककर बोलना, बढ़-बढ़ कर बात करना। ~कायर बहुत पमाँवहीं; **बहकि** न बोलै सूर। →सा० सूरा० (४५) १४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहनी—संज्ञा स्त्री [सं० वह्नि] अग्नि । ~ई **बहनी** कुल बहनि कहावैं, ई गृह जारैं वा गृह मारैं । → विप्र० (२) १८ ।

बहाइ—क्रि० [सं० वाह से] फेंक देना । ~ कबिरा पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देइ **बहाइ** । →सा० क० बि० क० (१६) २-१ ।

बहि बहि मरहु—[मुहा०] भटकता हुआ ।~**बहि बहि मरहु** पचहु निज स्वारथ, जम को दंड सह्यो । →सब० ६४-३ ।

बही—क्रि० [हि० बहना] बहना; भटकना; कुमार्गी होना । ~राही लै पिपराही **बही**, करगी आवत काहु न कही । →र० १०-१ ।

बहीर—संज्ञा स्त्री० [हि० भीड़] जन-समूह, भीड़ । ~ जिहिं पैंडे पंडित गए, दुनियाँ परी **बहीर** । →सा० मधि (३१) ५-१ ।

बहुरि—अव्य० [हि० बहुर] पुनः, फिर। पूरा किया बिसाहना, **बहुरि** न आंवौं हट्ट । → सा० गुरु (१) १२-२, पद ३१६-४, सब० १८४-१ ।

बहुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूटी] पत्नी । ~हरि मोरा पिउ मैं हरि की **बहुरिया** । →पद ३३६-१ ।

बहुरे—क्रि० [हि० बहुरना] वापस आए, लौट आए । ~गए ते **बहुरे** नहीं, कुसल कहै को आई । →सा० सू० मा० (१४) ६-२ ।

बहूता—वि० [सं० बहुतर] बहुत (लोग) । ~ बहुत खेल खेलै बहु बूता, जन भौंरा अस गये **बहूता** । →र० ८४-६ ।

बहोरि—अव्य० [हि० बहोर] पुनः; फिर । ~काया हांडी काठ की; ना ऊँ चढ़ै **बहोरि** । →सा० चिता० (१२) ३१-२, सा० मन० (१३) २४-२ ।

बहोरि—क्रि० [हि०] लौटा लो । ~ कबीर यहु तन जात है, सकै तो लेहु **बहोरि** । →सा० चिता० (१२) ३७-१ ।

बांका—वि० [सं० बंक] विरला । कहै कबीर यहु बास विकट अति ग्यांन गुरू लै **बांका** । → पद ३४४-८ ।

बांको—वि० [सं० वक्र] टेढ़ा । ~ एको बार न होइहै **बाँकों**, बहुरि जन्म नहिं होइहै ताको । → र० ५८-४ ।

बांग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नमाज की अजान । ~ कहु रे मुल्ला **बांग** निवाजा । → सब० ७२-१, पद ३०४-५ ।

बांचा—क्रि० [हि० बचना] बचा हुआ। संतो महंतो सुमिरों सोई, काल फांस जो **बांचा** होई । → पद २८६-१ ।

बांचनिहार—वि० [हि० बचना + हार] बचने वाले । ~ मरि गये ते मरि गये, बाँचे **बांचनिहार** । → र० ६६-६ ।

बांचिहौ—क्रि० [हि० बचना] बचोगे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~सार सबद गहि **बांचिहौ** मांनी इतबारा । → पद ३१६-१ ।

बांचु—क्रि० [हि० बचना] बचो । ~बिरवै **बांचु** हरि रांचु समझु मन बउरा रे । →सब १६३-१ ।

बांचै—क्रि० [हि० बचना] सुरक्षित । ~अटपट कुंभरा करै कुंभरैया, चमरा गाँव न **बाँचै** हो । →कहरा (३) २-२ ।

बांछा—संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा] बाञ्छा, इच्छा । ~ सुंनहि **बांछा** सुंनहि गैऊ, हाथा छाड़ि बेहाथा भैऊ । →र० १६-३ ।

बांछिअै—क्रि० [सं० वाञ्छा] कामना कीजिए । ~ सुरगवासु न **बांछिअै** डरिए न नरकि निवासु । → पद २४५-२ ।

बांझ—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्ध्या] स्त्री० जो सन्तानोत्पत्ति के लिए अक्षम हो । ~पारबती को **बांझ** न कहिए, ईस न कहिए भिखारी । →सब० ४-६, पद २७०-७, सब० १६४-२, सा० बेली (५८) ४-२, सब० ११६-३ ।

बांझ—संज्ञा स्त्री० [सं० वन्ध्या] असमर्थ । ~ बैल बियाइ गाइ भई **बांझ**, बछरहिं दूहै तीनिउं सांझ । →सब० ८६-३ ।

बाँधल—क्रि० वि० [सं० बद्ध] बँधा हुआ । ~ निझरुहि नीरु जानि परिहरिया, करम क **बाँधल** लालच करिया । →र० २६-२ ।

बांधल—क्रि० [भोज०] बांधा । ~ मूए चंद मुए रबि सेसा, मुए हनुमत जिन्हि **बांधल** सेता । →सब० ८६-४ ।

बांन—संज्ञा पु० [सं० वर्णक] बनावट, सजधज । ~जोलहै तनि बुनि **बांन** न पावल फारि बिनै दस ठांई हो । →पद २३७-७ ।

बाँनाँ—संज्ञा पु० [सं० वर्णक] आकार । ~जब थैं इनमन उनमन जाँनाँ, तब रूप न रेख तहाँ ले **बाँनाँ** । → पद २१२-४ ।

बांन—संज्ञा पु० [सं० वाण] बाण, तीर । ~ काया कसौं कमान ज्यौं, पंचतत्व करि **बाँन** । →सा० मन० (१३) ३०-१ ।

बाँन—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'बांनि' । स्वभाव । ~ इक तंत मंत ओषध **बाँन**, इक सकल सिध राखैं अपांन । →सब० ६१-६ ।

बांनां—संज्ञा पु० [सं० वर्णक] वेश । ~और सकल ए पेट भरन कौं; बहु बिधि **बाँनां** धारी । → सब० ६६-१२ ।

बांनि—संज्ञा स्त्री० [हि० बनना] स्वभाव, प्रकृति, आदत ।~मन के मते न चालिये, छाँड़ि जीव की **बांनि** । → सा० मन० (१३) १-१, पद २६६-५, पद २१४-१, सा० सूरा० (४५) ३१-१, सा० बेसा० (३५) ५-२, सब० ५६-४ ।

बांनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ण] सजधज, रूप । ~ कुम्भरा एक कमाई माटी बहु बिधि **बांनीं** लाई । →पद २१६-३ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाँनी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] उपदेश। ~ मंझा जोति राँम परगासैं; गुर गमि **बाँनी**। सब० १२-२।

बाँबि—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्मीक] साँप का बिल। दे० 'बांबी'। ~ मूसा पैठा **बाँबि** मैं, लारै साँपिनि धाई।→सब० ५१-३।

बांबी—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्मीक] साँप का बिल। ~**बांबी** मैं बिसहर बसै कोई पकरि न पावै। →पद-३४५-१३।

बाँम्हन—संज्ञा० पु० [सं० ब्राह्मण] ब्रह्म का ज्ञाता। ~सुइ पीवै **बाँम्हन** मतवाला, फल लागा बिन वाड़ी। →सब० ३०-४।

बाँवना—संज्ञा पु० [सं० वामन] बौना; छोटा। ~ चंदन होसी **बाँवना**, नीम न कहसी कोई। →सा० साधु० (२८) १-२।

बाँवरिया—वि० [सं० वातुल] बावला, पागल।~**बाँवरिया** बन मैं फँद रोपै संग मैं फिरै निचीता रे। → पद २६३-७।

बाँबै—वि० [सं० वाम] बाएँ। ~ झल **बाँबै** झल दाँहिनैं झलहि मांहि व्यौहार। → सा० सम्र० (३८) ७-१।

बाँहनहारा—वि० [सं० वहन + हारा (प्रत्य०)] बाण चलाने वाला ~**बाँहनहारा** क्या करै, वान न लागै ताहि। →सा० निगु० (५५) ५-२, सा० सूरा० (४५) १५-२।

बाँहि—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहु] भुजा में, हाथ में। ~जे छांड़ौं तौं बूड़िहौं, गहौं त डसिहै **बाँहि**। →सा० बिर० (३) ४३-२।

बांही—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहु] भुजा। ~लच्छ करोरि जोरि धन गाड़िनि, चलत डोलावत **बांही** हो। → कहरा (३) ५-२।

बाइक[1]—क्रि० वि० [सं० वार+इक] एक बार।

बाइक[2]—संज्ञा पु० [सं० वाक्य] वाक्य वचन। ~मन फाटा **बाइक** बुरै; मिटी सगाई साक। →सा० बिर्क० (३७) २-१।

बाई—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] वायु-दोष। ~झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी **बाई**। →सब० १-६।

बाउर—वि० [सं० बातुल] बावला; पागल। दे० 'बांवरिया'। ~ आपुहि **बाउर** आपु सयाना; हिरदय बसे सो राम न जाना। →र० ४१-४।

बाकी—वि० [अ०] शेष, अवशिष्ट। ~धरमराइ जब लेखा मांग्या, **बाकी** निकसी भारी। →सब० १०-६।

बाके—सर्व० [हि० वह से] उसके।~ नारि एक संसारहि आई, माय न **बाके** बाप न जाई। →र० ७२-१।

बाग—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्गा] लगाम। ~नारी कुंड नरक का, बिरला थांभै **बाग**। →सा० कामी० (२०) १५-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बागा—क्रि० [दे०] व्याप्त हुआ। ~साखा पत्र कछू नहिं वाकै, अष्ट गगन मुख **बागा**। → सब० ३७-४।

बागा—क्रि० [सं० वाक्] गूंजता है। ~दीपक बिनु जोति जोति बिनु दीपक, हद बिन अनाहद सबद **बागा**। → सब० ११६-६।

बागा—क्रि० [सं० वाक्] बोला, गूंजा। ~कहै कबीर जिय संसा नांहीं, सबद अनाहद **बागा**। →सब० २६-६।

बागुल—संज्ञा पु० [सं० वक] बगुला, सफेद रंग का एक पक्षी विशेष। ~ते बिधना **बागुल** रचे, रहे अरध मुखि झूलि। →सा० चिता० (१२) २८-२।

बागुलि—संज्ञा पु० [सं० वाग्जाल] वाग्जाल। ~नियरे न खोजै बतावै दूरि, चहुँ दिसि **बागुलि** रहलि पूरि। →बसन्त (४) ७-८।

बाचवंत—क्रि० [सं० वाचन] बाँचते हैं, बोलते हैं। ~सोई आखर सोइ बैन, जन जू जू **बाचवंत**। → सा० विचा० (३३) ७-१।

बाचाबंध—वि० [सं० वाचा+बद्ध] वचन बद्ध। ~टूटै पर छूटै नहीं, भई जो **बाचाबंध**।→सा० माया० (१६) २६-२।

बाछ—संज्ञा पु० [दे०] वस्त्र का किनारा। ~बिनै कबीरा चूनरी, बै नहिं बाँधल **बाछ**। →पद २४८-६।

बाछ—संज्ञा स्त्री० [सं० वांछा] आकांक्षा, अभिलाषा, इच्छा। दे० 'वांछा'। ~ कलिजुग हम सौं लडि पड़ा, मुहकम मेरा **बाछ**। → सा० गुरु० (१) ५-२।

बाजा—संज्ञा पु० [सं० वाद्य] वाजा। ~बिनु **बाजा** झनकार उठै जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै।→ पद २४६-३।

बाजिया—संज्ञा पु० [फ़ा० बाजी] खेल, तमाशा। ~ नटवत सारे साज साजिया, जो खेलै सो देख **बाजिया**। →र० ८२-४।

बाजी—संज्ञा पु० [फ़ा०] जादूगर। ~**बाजी** झूंठ बाजीगर सांचा, साधुन की मति ऐसी।→सब० १८-५।

बाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० बाजी] जुएँ का खेल।~**बाजी** है संसार कबीरा, चित्त चेति डारो पासा। → पद ३१६-८।

बाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] खेल, तमाशा। दे० 'बाजिया'। ~नटवत बाजी पेखनि पेखै, बाजीगर की **बाजी**।→ सब० ६०-१०।

बाजीगरी—संज्ञा पु० [फ़ा० बाजीगर] जादूगरी। ~ **बाजीगरी** संसार कबीरा, चेति ढारि पासा। →सब० १७५-८।

बाझ—अव्य० [सं० वर्ज] बिना, बाज, सिवाय। ~ भिस्त न मेरे चाहिए, **बाझ** पियारे तुज्झ। → सा० निह० पति० (११) ७-२, सब० ३२-१३, सब० ८-५।

बाझी—क्रि० [हि० बँधना] फँसेगी, बंधेगी। ~मुकुति की डोरि गाढ़ि;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनि खैंचहु, तब **बाझी** बड़ रोहू हो। →कहरा (३) १-५।

बाट—संज्ञा पु० [सं० बाट] मार्ग। ~अघटि चले सो नगरि पहूँते, **बाट** चले ते लूटे। →सब० २५-३, सब० १२९-३, सब० १९७-८, पद २०२-१०, पद ३१२-७, सा० जी० मृ० (४१) १४-१, सा० लै० (१०) ३-२, सा० चिता० (१२) ५७-२, सा० बिर० (३) ९-१, सा० सूषि० मा० (१४) ७-१, सा० पर० (५) ९-२।

बाटा—संज्ञा पु० [सं० वाट] मार्ग। दे० 'बाट'। ~ कहाँ लै कहौं जुगन की बाता, भूला ब्रह्म न चीन्है **बाटा**। →र० ५-१।

बाटी—संज्ञा पु० [सं० बाट+ई] मार्ग; रास्ता। दे० 'बाट'। ~चहुँ जुग भक्तन बाँधल **बाटी**, समुझि न परी मोटरी फाटी। → र० ५-६, पद २२१-२।

बाटैं—संज्ञा पु० [सं० बाट] गतिशील। ~घाटे **बाटैं** सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो। → सब० १३८-३।

बाड़—संज्ञा पु० [सं० वाट] वाड़ पर, फसल की रक्षा के लिए काँटे-बाँस आदि के बनाए हुए घेरे को बाड़ कहते हैं। ~**बाड़ि** चढ़ंती बेलि ज्यूं, उलझी आसा फंध। →सा० माया० (१६) २६-१।

बाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० वारी] वाटिका। ~यहु अंम्रित की **बाड़ी** है रे, तिनि हरि पूरी करिया। →सब० ११९-४, पद २५३-५, सब० ३०-४।

बाढ़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० वृद्धि, हि० बढ़ना] वृद्धि, प्रभाव। ~चले लोग सब मूल गँवाई, जम की **बाढ़ि** काटि नहिं जाई। → र० १३-३।

बाढ़ी—संज्ञा पु० [सं० वर्द्धकि, प्रा० वड्ढइ] बढ़ई। ~ जैसे **बाढ़ी** काष्ट ही काटै अगिनि न काटै कोई। → पद ३२५-५।

बाढ़ु—क्रि० [हि०] स्वच्छ करना। ~बड़े भोर उठि आँगनु **बाढ़ु**, बड़े खाँच लै गोबर काढ़ु। → बसन्त (४) ६-२।

बाती—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तिका] बत्ती। ~या तन का दिवला करूँ, **बाती** मेलों जीव। → सा० बिरह० (३) २३-१।

बाद—संज्ञा पु० [सं० वाद] वाक्य, ज्ञान, तर्क-वितर्क। ~पंडित **बाद** बदै सो झूठा। → सब० १६८-१, पद ३०९-३, पद २१६-१, पद ३२१-३।

बादर—संज्ञा पु० [सं० वारिद] मेघ, बादल। ~ उपजत बिनसत बार न लागै; ज्यौं **बादर** की छाँही हो। → कहरा (३) ५-६।

बादि—क्रि० वि० [सं० वादि] निरर्थक, व्यर्थ। ~ कहै कबीर रमता सौं रमनां, देहि **बादि** न खोई। →सब० ३३-१०, सब० १८२-२, पद २३९-८, सा० कामी० (२०) १८-२; सा० परचा० (५) ३३-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बादु—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०-बादः] शराब, मदिरा। ~ दरोगु पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबरु **बादु** बकाहि। →सब० १८१-५।

बाना—संज्ञा पु० [सं० बाण] बाण। ~संसय मिरगा तन बन घेरे, पारथ **बाना** मेलै। →पद १६६-७।

ाना—संज्ञा पु० [सं० वर्णक] वेश-विन्यास। ~मैं तोहिं पूछौं मूसलमाना, लाल जरद की नाना **बाना**। →र० ४६-३।

ना—संज्ञा पु० [सं० वर्णक] वेश, पहनावा। ~भये विरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावै **बाना**। →र० ६६-७।

बानारसि—संज्ञा पु० [सं० वाराणसी] वाराणसी नगर। ~ हिरदै कठोर मरै **बानारसि**, नरक न बंच्या जाई। →पद ३०८-७।

बानि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] आदत, स्वभाव। ~ तू रांम कहन की छांड़ि **बानि**, तुझ तुरत छुड़ाऊँ मेरो कह्यो मांनि। → सब० १५६-६।

बानि—संज्ञा स्त्री० [हिं० बान] १. सजधज, आभा। २. रहस्य, मर्म। ~परदे परदे चलि गए, समुझि परी नहिं **बानि**। →र० ८२-६।

बानि—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] वाणी, उपदेश ~गहनी बंधन **बानि** नहिं सूझा, थाकि परे तब फिछवो न बूझा। →र० १६-३।

बानिज—संज्ञा पु० [सं० वाणिज्य] व्यापार। दे० 'बनिज'। ~**बानिज** एक सभन मिलि ठाना, नेम धरम संजम भगवाना। →र० ३६-३।

बानियाँ—संज्ञा पु० [सं० वणिक्] बनिया, व्यापारी। ~साँई मेरा **बानियाँ**, सहजि करे व्योपार। → सा० सम्र० (३८) ८-१, पद २१४-१।

बानी—संज्ञा पु० [हिं० बनिया] वैश्य। दे० 'बानिया'। ~ ब्राह्मन छत्री **बानी**, तिनहु कहल नहिं मानी। →पद ३४८-३।

बानी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] वाणी; ग्रन्थ। ~खानी **बानी** खोजि देखहु फिर न कोउ रहाय। →हिंडोला (८) १-११।

बानी—संज्ञा स्त्री० [सं० बर्णक] स्वभाव। दे० 'बानि'। ~ फूलै न फलै वाकी है **बानी**, रैंनि दिवस विकार चुवै पानी। →सब १६६-४।

बानी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] उपदेश। ~ **बानी** सलिल रांम घन उनयाँ, वरिषै अंमृतधारा। →सब० ६७-३।

बाप—संज्ञा पु० [सं०] पिता, जनक। ~माँइ बिड़ांणी **बाप** बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह। → सा० चिता० (१२) ५६-१।

बापुरा—वि० [सं० वराक ?] बेचारा, दीन। दे० 'बपुरा'। ~ऐसा घा: **बापुरा**, जीवहि मारै झारि। →र० १८-६।

बापुरे—वि० [सं० वराक ?] बेचारा दे० 'बापुरा'। ~पार न पावहिं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बापुरे, भरमत फिरहिं उदास। → र० ८०-६, सा० विचार० (३३) ५-२।

बाब—संज्ञा स्त्री० [सं० वायु] वायु, हवा। दे० 'बाब'। ~बाजै **बाब** विकार की, भी मूदा जीवै। → सा० मन० (१३) २३-२।

बाम—वि० [सं० वाम] कुटिल, दुष्ट। ~गाँव बसत है गरब भारती, **बाम** काम हंकारा हो। →कहरा (३) ७-४।

बार—संज्ञा स्त्री [सं० वार] समय, काल; विलम्ब, देर।~धूंवाँ केरा धौलहर; जात न लागै **बार**। → सा० चिता० (१२) २७-२, सब० १४८-६, पद २१८-४, कहरा (३) ५-६, सा० काल० (४६) १३-२, पद २०३-५; र० ५५-२।

बार—संज्ञा पु० [सं० बाल] बालक। दे० 'बारा'। ~नां हम **बार** बूढ़ नांही हम ना हमरै चिलकाई हो। →पद २३७-४।

बार—संज्ञा पु० [हि० बाल] बाल, केश। ~एकौ **बार** न होइहै बाँको, वहुरि जन्म नहिं होइहै ताको। → र० ५८-४।

बार—संज्ञा स्त्री० [सं० बार] १. दफा, मरतबा। २. द्वार; दरवाजा। ३. विलम्ब, देर। ~ बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ **बार**। मानुष तैं देवता किया, करत न लागी **बार**। → सा० गुरु (१) २-१; २।

बारहु—संज्ञा पु० [सं० बालक] बालक से। ~**बारहु** ते पुनि वृद्ध हुआ जब; होनिहार सो होया। →पद ३१६-५।

बारा—क्रि० [हि०] जला दिया, नष्ट कर दिया। ~घसि चंदन बनखंडि **बारा**, बिनु नैंननि रूप निहारा। →सब० ८-७।

बारा—संज्ञा पु० [सं० बालक] दे० बालक। 'बारो'।~हिन्दू तुरुक की बूढ़ो **बारा**; नारि पुरुष का करहु बिचारा।→विप्र० (२) २६।

बारा[१]—क्रि० वि० [सं० वारम्] बारम्बार, पुनः पुनः।

बारा[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० वार] विलम्ब, देर। ~ नाँन्हीं मैदा पीसि लई है, छाँनि लई है **बारा**। कहैं कबीर तेल जब मेल्हा, बुनत न लागी **बारा**॥ →सब० १५४-१, २, र० १३-१०, पद २६८-३, र० ५५-२, र० ४३-२।

बारा—संज्ञा पु० [सं० वारि] जल, अमृत। ~पुहुप बास भँवरा एक राता, **बारा** ले उर धरिया। → सब० १२-५।

बारा—संज्ञा पु० [सं० वाट] बाड़ा; पशुशाला। ~गगन मंडल रोकि **बारा** तहाँ दिवस न राती।→ सब० १००-७।

बारा—पु० दे० 'बार'।

बारि—संज्ञा पु० [सं० द्वार] द्वार; दरवाजा। ~बाँध्यो **बारि** खटीक कै, ता पसु केतिक आय। →सा० काल० (४६) २७-२, पद १६३-७।

बारि—संज्ञा स्त्री० [सं० वारि] जल।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूखे सरवरि पालि बंधावैं लूनें खेति हठि **बारि** करैं । →पद २३३-५ ।

बारि—संज्ञा स्त्री० [सं० बाला] युवती । ~बुढ़िया हँसि बोलै मैं नितहिं **बारि**, मोहि अस तरुनि कहौ कौन नारि । →वसंत (४) ४-१ ।

बारि—संज्ञा पु० [सं० द्वारि] द्वार पर, दरवाजे पर । ~खंभा एक गयंद दोइ, क्यों करि बंधसि **बारि** । सा० चिता० (१२) ४२-१, सा० विचार० (३३) ५-१, सा० चिता० (१२) २-१ ।

बारिक—संज्ञा पु० [सं० वालक] लड़का । ~मुसि मुसि रोवै कबीर की माई, ए **बारिक** कैसे जीवहिं खुदाई । → सब० १३६-३, सब० १७५-५ ।

बारी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाटिका] वाटिका, बगीचा । ~नांऊँ मेरै खेती नांऊँ मेरै **बारी**, भगति करउँ जन सरनि तुम्हारी ।→सब० ४६-३, सा० सूरा० (४५) २१-१, सब० ६५-२, सब० १००-२ ।

बारी—संज्ञा स्त्री० [सं० बार] अवसर, पारी । ~तेरी **बारी** जीयरा, नेरी आवै नित । → सा० काल० (४६) ६-२ ।

बारी—संज्ञा स्त्री० [सं० बाला] किशोरी, नवयुवती । →हौं **बारी** मुख फेरि पियारे । →पद ३५०-१ ।

बारी—संज्ञा पु० [सं० वारि] जल । दे० 'बारि' । ~सरग पताल भूमि लै **बारी**, एकै राम सकल रखवारी । →र० ५६-३ ।

बारै—क्रि० [हि० बारना] जलाती है । ~साँझ सकार दिया लै **बारै**, खसम छोंडि सुमिरैं लगवारे । →र० ७३-४ ।

बारो—संज्ञा पु० [सं० बालक] बालक । ~ तन के बिरध कहा भौ बौरे, मनुआ अजहूँ **बारो** हो । → कहरा (३) ३-४ ।

बालन—वि० [सं० बाल] बाल बुद्धि वाले, नासमझ । ~हरि अस ठाकुर तजा न जाई, **बालन** भिस्त गाव दुलहाई ।→र० ३६-४ ।

बालम—संज्ञा पु० [सं० वल्लभ] प्रिय । ~**बालम** आउ हमारै गेह रे ।→ सब० १८६-१ ।

बालि—संज्ञा स्त्री० [हि० बाल] जौ, गेहूँ आदि पौधों की बाल, अन्न । ~**बालि** कबीरा ले गया, पंडित ढूढ़ै खेत । →सा० चाँणक० (१७) ६-२ ।

बाव—संज्ञा पु० [सं० वायु] हवा । ~जिनि ब्रह्मण्ड रच्यौ बहु रचना, **बाव** बरन ससि सूरा । → सब० ८१-५ ।

बावन—संज्ञा पु० [सं० वामन] वामनावतार ।~**बावन** रूप न बलि की जाँचो, जो जाँचै सो माया । →पद २६२-६ ।

बावरिया—वि० [सं० वातुल प्रा० बाउल] दे० 'बावरी' ।

बावरी—वि० [सं० वातुल] पागल ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~पिता के संगहि भई **बावरी,** कन्या रहलि कुँवारी। →पद २६०-२।

बावलिया—वि० [सं० वातुल] पागल। दे० 'बावरी'। ~कहै कबीर एक ही ध्यावो, **बावलिया** संसारा। → पद ३०८-१०, सब० १७७-१०।

बावैं—वि० [सं० वाम] बायाँ। ~ तजि **बावैं** दाहिनै बिकारा हरि पद दिढ़ करि गहिए।→पद ३३७-७।

बाषर—संज्ञा पु० [सं० प्राकार] घर, बखरी। ~ दूजा बनिज नहीं कछु **बाषर,** राँम नाम दोऊ तत आषर। →सब० १४-५।

बास—संज्ञा स्त्री० [सं० वास] सुगंध। ~पुहुप **बास** भंवरा एक राता, बारा ले उर धरिया। → सब० १२-५; सब० २८-५; १८२-४; पद ३४४-८, वसंत० (४) १-४, सा० बेली० (५८) ६-१, सा० बेसास० (३५) १६-१।

बास—संज्ञा पु० [सं० वास] निवास। ~ कबीर मन मधुकर भया, करै निरन्तर **बास**। → सा० परचा० (५) ६-१।

बास—क्रि० [सं० वास] निवास करना। ~जल मैं उतपति जल मैं **बास,** जल मैं नलिनी तोर निवास। → सब० ८३-३।

बास—वि० [सं० वास] शक्ति। ~प्रगटी बास वासना धोइ, कुल प्रगट्यो कुल घाल्यौ खोइ। → सब० ४७-५।

बासन—संज्ञा पु० [सं० वासन] वर्तन, थैली। ~ आपुहिं करता भया कुलाला, बहुविधि **बासन** गढ़ै कुंभारा। → र० २६-१, सा० उप० (३४) १०-२, सब० १६६-५।

बासर—संज्ञा पु० [सं० वासर] दिन। ~ निसु **बासर** नहिं होत बिरहुली, पौंन पानी नहिं मूल बिरहुली। → बिरहुली (७) २।

बासनाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० वासना] इच्छा।~एक निगंध **बासनाँ** प्रगटै, जग थैं रहै अकेला।→पद ३०५-१३।

बासा—संज्ञा स्त्री० दे० 'बास'।

बासा—संज्ञा पु० [सं० वास] निवास, आवास। ~जाका **बासा** गोर मैं, सो क्यौं सोवै सुक्ख। →सा० सुमि० (२) १३-२।

बासिग—संज्ञा पु० [सं० वासुकि] वासुकि नाग। ~पवन कोटि चउबारे फिरहिं, **बासिग** कोटि सेज बिसतरहिं। →सब० १२८-७।

बासी—वि० [सं० वास] देर का, जो ताजा न हो। ~ **बासी** पावस पड़ि मुए, दिषै बिलंबे जीव। →सा० उपजणि० (५०) ५-२, वसंत (४) ६-३।

बासुरि—संज्ञा [सं० वासर] दिन। 'दे० बासर'। ~**बासुरि** सुख नाँ रैंनि सुख, ना सुख सुपिनै माँह। → सा० बिरह० (३) ४-१, सब० ६१-२, सब० ११३-२; सा० मधि० (३१) ४-१, सा० परचा० (५) ३०-२।

बासै—संज्ञा पु० [सं० वास] मंजिल, ठहराव। ~बिच कै **बासै** रमि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा; काल रहा सिर पूरि। →सा० काल० (४६) २३-२।

बाहन—क्रि० [सं० वहन] फेंकना, चलाना। ~सतगुरु शब्द कमान ले, **बाहन** लागे तीर। → सा० गुरु० (१) ६-१।

बाहनों—संज्ञा पु० [सं० वाहन] सवारी। ~हाथी घोड़ा बैल **बाहनों**, संग्रह किया घनेरा। →सब० १३४-३।

बाहा—क्रि० [सं० वहन] फेंका; चलाया। ~एक जु **बाहा** प्रीति सों; भीतर बिंधा शरीर। →सा० गुरु० (१) ६-२।

बाहिरा—अव्य० [सं० बाह्य] बिना, बगैर। ~सतगुर परचै **बाहिरा**, अंतरि रहा अलेष। →सा० भेष० (२४) १६-२।

बाहिरा—क्रि० वि० [सं० बाह्य] बाहर; वंचित। ~सेख सबूरी **बाहिरा**, क्या हज काबै जाइ। →सा० साँच० (२२) ११-१।

बाहिरा—क्रि० वि० [सं० बाह्य] बाहर ही बाहर। ~राखनहारे **बाहिरा**, चिड़ियैं खाया खेत।→सा० चिता० (१२) १५-१।

बाहिरा—अव्य० [सं० वहिः] बिना, पराङ्मुख। ~राँम सनेही **बाहिरा**, (तूं) क्यों सोवै निहचिंत। →सा० काल० (४६) ३-२।

बाहिरा—क्रि० वि० [सं० बाह्य] रहित, बिना। ~ राँम सनेही **बाहिरा**, ऊँजड़ मेरे भाव। सा० साधुम० (३०) २-२, सा० अपा० (४८) २-२, सा० चाँण० (१७) ११-२।

बाहुड़ों—क्रि० [सं० प्रघूर्णन] लौट आता हूँ, वापस आता हूँ। ~ तो तो करै त **बाहुड़ों**, दुर दुर करै तो जाऊँ। → सा० निह० पति० (११) १५-१।

बाही—क्रि० [सं० वहन] जोत कर उत्पन्न किया। ~मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंवा, सतगुर **बाही** वेली। →पद २५३-५।

बाहुला—संज्ञा पु० [सं०√वह्] वहाव; नाला। ~कबीर मन का **बाहुला**; ऊँड़ा बहै असोस। → सा० साषी० (५७) ३-१।

बाहुड़ै—क्रि० [सं० प्रघूर्णन] बहुरना; लौटना, वापस आना। ~बिगड़ी बात न **बाहुड़ै**, कर छूटै नहिं ठौर। →सा० काल० (४६) २५-२।

बाहू—सर्व० [हि० वह से] उन्हें भी। ~पहुँची बात विद्या के पेटा, **बाहू** के भर्म भया संकेता।→र० ५७-३।

बाहौं—क्रि० [सं० भरण] भरूँ। ~ जब लगि तागा **बाहौं** बेही, तब लगि; बिसरै रांम सनेही। → सब० १३६-४।

बाहौ—क्रि० [सं० वहन] खोजते हो। ~भूलै भरम दुनीं कत **बाहौ**। → पद ३४१-२।

बाह्या—वि० [सं० वहन] फेंका, चलाया। ~सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु **बाह्या** एक। →सा० गुरु० (१) ७-१।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिंजना—संज्ञा पु० [सं० व्यञ्जन] भोजन। ~षड रस भोजन **बिंजना** बहु पाक मिठाई। →पद ३४५-११।

बिंद—संज्ञा पु० दे० 'विंदु'।

बिंदत—क्रि० [स० वेधन] खोजते हुए। ~मन **बिंदत** बिंदहि पावा, गुरमुख तैं अगम बतावा।→सब० १७१-३।

बिंदा—संज्ञा पु० [सं० विन्दु] वीर्य। दे० 'बिन्दु'। ~नहिं तारागन नहिं रवि चन्दा, नहिं कुछ होत पिता के **बिंदा**। →र० ६-३, र० ३०-६।

बिंदु—संज्ञा पु० [सं० विन्दु] वीर्य। ~**बिंदु** राखि जौं तरिऐ भाई, तौ खुसरै क्यूं न परम गति पाई। → सब ७७-५; सब० १६६-३, र० ४०-२।

बिंदू—संज्ञा पु० दे० 'बिंदु'।

बिंधा—क्रि० [सं० वेधन] विंध गया, फँस गया, छिद्र कर दिया। ~एक जु बाहा प्रीति सों, भीतर बिंधा शरीर। →सा० गुरु० (१) ६-२।

बिंधा—क्रि० [सं० विद्ध] फँसा हुआ। ~हंस उड़ाने ताल सुखाने, चहले **बिंधा** पाऊँ। →पद ३२३-५।

बिंब—संज्ञा पु० [सं० बिम्ब] चैतन्य। ~नव ग्रह मारि योगिया बैठे, जल मंहि **बिंब** प्रकासै। →सब० ३२-४।

बिआय—क्रि० [सं० व्ययन] बच्चा देना (पशुओं के सन्दर्भ में)। ~ बाप पूत की एकै नारी, ओ एकै माय **बिआय**। →र० १-६।

बिआपै—क्रि० [हि० व्यापना] व्याप्त होना। ~कांम क्रोध हंकार **बिआपै** नां छूटै माया। →पद २२३-२।

बिआस—संज्ञा पु० [सं० व्यास] व्यास या वेदव्यास।~नारद बचन **बिआस** कहत है सुक कौं पूछह जाई। → सब० १६४-६।

बिकरारा—वि०[सं० विकराल] भयङ्कर। ~गुर गारड़ू मिल्यौ नहिं कबहू पसर्यौ विख **बिकरारा**। → पद २२३-६।

बिकरै—संज्ञा [सं० विकार] विकार। दे० 'बिकारा'। ~कबीर मन **बिकरै** पड़ा, गया स्वादि के साथ। →सा० मन० (१३) १६-१।

बिकांनीं—क्रि० [हि० बिकना] बिक गई। ~दास कबीर साहब का बंदा, जाकै हाथ **बिकांनीं**। →पद २२७-८।

बिकाइ—क्रि० [सं० विक्रय] बिकता है, बेचा जाता है। ~प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि **बिकाइ**। → सा० सूरा० (४५) २१-१।

बिकारा—संज्ञा पु० [सं० विकार] दोष, अवगुण, विकार, बुराई। ~ कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं **बिकारा**। → सब० ७१-८; पद २००-३।

बिख—संज्ञा पु० [सं० विष] बिष, जहर। ~कामी अमीं न भावई, **बिख** ही कौं ले सोधि। →सा० कामी० (२०) १६-१, सब० १३१-४।

बिखया—संज्ञा पु० दे० 'बिखिया'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिखिया—संज्ञा पु० [सं० विषय] विषय। ~बिख **बिखिया** की बासनां, तजौं तजी न जाई। → सब० ६६-५; सब० १५६-७।

बिखिया—संज्ञा पु० [सं० विषय] विषय-भोग। ~ **बिखिया** अजहूँ सुरति सुख आसा। → सब० १६२-१।

बिखिया—संज्ञा पु० [सं० विष] विष। दे० 'बिख'।~मन जीतें जग जीतिऐ जौं **बिखिया** तैं रहै उदास। → पद ३१७-६।

बिखैं—संज्ञा पु० [सं० विषय] इन्द्रिय सुख।~ **बिखै** बांचु हरि रांचु समझु मन बउरा रे।→सब० १६३-१।

बिगतह—वि० [सं० विगत] पृथक्, अलग।~खंडित मूल विनास, कहौ किम **बिगतह** कीजै।→सा० विचार० (३३) ६-३।

बिगरांनां—क्रि० [सं० विगलित] नष्ट होना। ~ ज्यौं बिंबहि प्रतिबिंब समांनां उदकि कुंभ **बिगरांनां**।→ सब० १५३-६।

बिगर्‌यौ—क्रि० [हि०] बिगड़ गया। ~कबीरा **बिगर्‌यौ** रांम दुहाई।→ सब० ६६-१।

बिगसित—क्रि० [सं० विकसित] विकसित हो जाती है। ~क का कमल किरन मह पावै, ससि **बिगसित** संपुट नहिं आवै।→ज्ञान० चौं०(१) ३।

बिगाड़ियाँ—क्रि० [हि० बिगाड़ना] बिगाड़ डाला, नष्ट कर डाला। ~ ~कबीर भूलि **बिगाड़ियाँ**, (तूं) नाँ करि मैला चित्त।→सा० बीन० (५६) २-१।

बिगासा—क्रि० [सं० विकास] विकसित हो गया।~गुरु किरपाल कृपा जब कीन्ही, हिरदै कँवल **बिगासा**। →सब० १३-३।

बिगुरचनि—संज्ञा पु० [सं० विकुंचन] विनाश। ~काया **बिगुरचनि** अनबनि बाटी, कोई जारै कोइ गाड़ै माटी।→पद २२१-२।

बिगूचनि—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुंचन] असमंजस या अड़चन में पड़ना। दे० 'बिगूचा'।~खरी **बिगूचनि** होइगी, लेखा देती बार। → सा० सांच० (२२) १-२।

बिगूचनि—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुंचन] अड़चन, विघ्न, बाधा। ~ऐसा भेद **बिगूचनि** भारी।→सब० ५५-१।

बिगूचा—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुंचन] असमंजस, किंकर्त्तव्यविमूढ़ता। ~ ताकर हाल होय अधकूचा, छव दरसन मँह जैनि **बिगूचा**। → र० ३०-७।

बिगूचे—क्रि० [सं० विकुंचित] असमंजस में पड़ जाना। ~हरि बिन भरमि **बिगूचे** गंदा।→ पद ३३७-१।

बिगूचैं—संज्ञा स्त्री० [सं० विकुंचन] उलझन, संशय, किंकर्तव्यविमूढ़ता। दे० 'बिगूचा'। ~अजहूँ बेरा समुंद मैं, बोलि **बिगूचैं** काँइ। → सा० जर० (८) ५-२।

बिगूच—क्रि० [सं० विकुंचन] उलझन में डाल दिया, दबोचा।~मैं अनाथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रभु कहउँ काहि, को को न बिगूचै मैं को आहि ।→पद २२४-४ ।

बिगूता—क्रि० [सं० विगोपन] नष्ट हो गए, समाप्त हो गए । ~मोर-तोर मैं सबै **बिगूता**, जननी उदर गर्भ महँ सूता ।→र० ८४-५ ।

बिगूते—क्रि० [सं० विगोपन] नष्ट होते हैं । ~ मैं मेरी करि बहुत **बिगूते**, विषैं बाघ जग खाया । → पद २६७-८ ।

बिगूते—क्रि० [सं० विगोपन] ठगे जाते हैं । ~ बाँधे ज्यूं अरहट टीडरि, आवत जात **बिगूते** । → सब० १८६-६ ।

बिगोई—क्रि० [सं० विगोपन] नष्ट होना ।~मिथ्या बात न जानै कोई, यहि विधि सब गैल **बिगोई** । →र० २४-३, र० १७-७ ।

बिगोई—क्रि० [सं० विगोपन] नष्ट कर देना, खो देना । ~पँचये सयान न जानै कोई, छठवे मा सभ गैल **बिगोई** ।→र० ३७-३ ।

बिगोय—क्रि० [सं० विगोपन] नष्ट हो गया । ~ सोवत गैल **बिगोय** हो रमैया राम ।→ बेलि (६) १-४ ।

बिच—संज्ञा पु० [हि० बीच] मध्य । ~**बिच** कै बासै रमि रहा, काल रहा सिर पूरि । → सा० काल० (४६) २३-२ ।

बिचारिया—क्रि० [सं० विचारण] विचार किया, निश्चय किया । ~ हरि जी यहै **बिचारिया**, साखीं कहौ कबीर ।→सा० उप० (३४)१-१ ।

बिचि—संज्ञा पु० [सं० विच] बीच में । दे० 'बिच' । ~ अरध उरध **बिचि** लाइ ले अकास, तहँवा जोति करै परकास । →सब० १४०-७ ।

बिछुवा—संज्ञा पु० [हि०] पैर का आभूषण । ~ का चूरा पाइल झमकाए, कहा भयो **बिछुवा** ठमकाए । →सब० १३०-३ ।

बिछोह—संज्ञा पु० [हि० बिछुड़ना] वियोग । दे० 'बिजोग' ।~इक दिन ऐसा होइगा, सब सौं परै **बिछोह** । →सा० चिता० (१२) ६-१ ।

बिछोहा—वि० [हि०] वियुक्त, पृथक् । ~सिद्ध नाम तब पाइए, जे बेलि **बिछोहा** होइ । → सा० बेली० (५८) ५-२ ।

बिछोहिया—क्रि० [हि० बिछोह] वियुक्त हो गया । ~ रैंना दूर **बिछोहिया**, रहु रे संखम झूरि । →सा० बिर० (३) ४४-१ ।

बिजुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत] बिजली । ~ चमकै **बिजुरी** तार अनंत, तहाँ प्रभू बैठे कवलाकंत । →सब० १४०-४ ।

बिजोग—संज्ञा पु० [सं० वियोग] वियोग । दे० 'बियोग' । ~ पूरी किनहुँ न भोगई, इनका इहै **बिजोग** । →सा० माया० (१६) ३-२, र० ४०-६ ।

बिझुका—संज्ञा पु० [दे०] खेत में जंतुओं को डराने के लिए खड़ा किया गया पुतला । ~बुधि मेरी किरषी गुर मेरो **बिझुका**, अक्खिर दोइ रखबारे । →सब० ११३-५ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिटमाया—क्रि० [दे०] सुरक्षित किया। ~केतेहि रामचन्द्र तपसी से, जिन यह जग **बिटमाया**।→पद २५२-३।

बिटालिया—क्रि० [हि०] गंदा कर दिया। ~ बगुली नीर **बिटालिया**, सायर चढ़ा कलंक। →सा० माया० (१६) ३०-१।

बिड़—वि० [?] पराया, बेगाना। दे० 'बिड़ाँणीं'। ~ माँइ बिड़ाँणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह। →सा० चिता० (१२) ५६-१।

बिडरत—क्रि० [सं० वट्] भागते।~ टारे टरत नहीं निस बासुरि, **बिडरत** नांहिं बिडारे। →सब० ११३-२।

बिड़ाँणीं—वि० [?] बेगाना; पराया; गैर। ~ माँइ **बिड़ाँणी** बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह। → सा० चिता० (१२) ५६-१।

बिड़ाँह—वि० [?] पराये लोग। दे० 'बिड़'। ~माँइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भी मंझि **बिड़ाँह**। →सा० चिता० (१२) ५६-१।

बिड़ा—संज्ञा पु० [सं० विटप] वृक्ष। ~कबीर चंदन का **बिड़ा**, बेढ्या आक पलास।→सा० साधु० (२८) ७-१।

बिडारत—क्रि० [हि०] फाड़ता है, विदीर्ण कर देता है। ~ जो सिर रचि रचि बांध्यो पागा, सो सिर रतन **बिडारत** कागा। → सब० ६-३।

बिडारे—क्रि० [सं० वट्] भगाने से। ~ टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नांहिं **बिडारे**। → सब० ११३-२।

बिड़ाँहि—क्रि० [हि० बहना—प्रवाहित होना] बाहर निकलता है, व्यक्त होता है। ~ सोई आँसू साजनां; सोई लोक **बिड़ाँहि**। →सा० बिर० (३) २६-१।

बिढ़ता—संज्ञा पु० [सं० वृढ़] कमाई; लाभ।~परनारी राता फिरैं, चोरी **बिढ़ता** खाँहि। → सा० कामी० (२०) ३-१।

बित—क्रि० [हि० बीतना] नष्ट हो गए। ~ सब चकवे **बित** धरनि समाना, एको जीव परतीत न माना। →र० ४७-५।

बित—संज्ञा पु० [सं० वित्त] धन।~ वहि सुत वहि **बित** वहि पुर पाटन; बहुरि न देखैं आइ।→सब० १०५-५।

बितड़ि—क्रि० [सं० वितरण] वितरण करके, बाँट करके। ~पूंजी **बितड़ि** बंदि लै दैहै, तब कहे कौन के छूटै। →पद २१७-६।

बिथा—संज्ञा स्त्री० [सं० व्यथा] कष्ट। ~या बड़ **बिथा** सोई भल जाँनै, राँम बिरह सर मारी। →सब० १६४-३।

बिदारा—क्रि० [सं० विदारण] फाड़ डालते हैं। ~चहुँ दिसि गीध मुए तन लूटैं, जंबुक उदर **बिदारा** हो। →कहरा (३) ६-६।

बिदारा—क्रि० [सं० विदारण] चीरा, फाड़ा, नष्ट कर दिया।~हिरनाकुस नख उदर **बिदारा**, तिनहुँ को काल न राखा। →सब० ६४-१०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिदारि—क्रि० [सं० बिदीर्ण] फाड़कर। ~खंभा तैं प्रगट्यौं गिलारि, हिरनांकुस मारचौ नख **बिदारि**। → सब १५६-१०।

बिदारे—क्रि० [सं० विदीर्ण] फाड़ डाला। ~हिरनाकुस नख उदर **बिदारे**, सो कर्त्ता नहिं होई। → पद २६२-८।

बिदेही—संज्ञा पु० [वि+देह+ई० (प्रत्य०)] विगत हो गया है देह का भाव जिसमें से, अर्थात् केवली। ~अंकुर बीज नसाय कै; भए **बिदेही** थान। → र० ३५-८।

बिधनाँ—संज्ञा पु० दे० 'बिधना'।

बिधना—संज्ञा पु० [सं० विधि] स्रष्टा, कर्त्ता, ब्रह्मा। ~ते **बिधना** बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि। → सा० चिता० (१२) २८-२, पद २८०-८।

बिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० विधि] उपाय। ~सबही करि अलगा रहौ, सो **बिधि** देहु बताइ। →सा० साषीभू० १-२।

बिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० विधि] विहित। ~तजि भरम करम **बिधि** निखेध राम नामुं लेही। →पद २७५-६।

बिधि-बिधि—वि० [सं० विविध] विविध, भिन्न-भिन्न। ~**बिधि-बिधि** बाँणी बोलता, सो कत गया बिलाइ। → सा० उपदेश० (३४) ३-२।

बिनंठा—क्रि० [सं० विनष्ट] विनष्ट हुआ। दे० 'बिनसि'। ~पासि **बिनंठा** कापड़ा; कदे सुरंग न होइ। →सा० बिर्क० (३७) ४-१।

बिनंठी—क्रि० [सं० विनष्ट से] विनष्ट हो गई; बिगड़ गई। दे० 'बिनसि' ~राम नाम जाना नहीं, बात **बिनंठी**, मूलि। →सा० चिता० (१२) ३२-१।

बिनठे—क्रि० [सं० वि+नष्ट] विनष्ट हो गए। दे० 'बिनसि'। ते नर **बिनठे** मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं। →सा० चिता० (१२) २१-२।

बिनब—क्रि० [हि० बुनना] बुनना, बीनना (कपड़ा)।~सहस तार लै पूरिन पूरी, अजहुँ **बिनब** कठिन है दूरी। →र० २८-३।

बिनर—अव्य० [सं० विना] विना। ~**बिनर** जानि परनऊँ परसोतम, कहि कबीर रँगि राता। सब० ११२-६।

बिनसत—क्रि० [सं० वि+नाश] विनष्ट हो जाता है। ~यहु तन जल का बुदबुदा, **बिनसत** नाहीं बार। →सा० काल० (४६) १३-२।

बिनसनिहारा—वि० [हि०] विनाश होने वाला। द दा देखहु **बिनसनिहारा**, जस देखहु तस करहु बिचारा।→ ज्ञान चौं० (१) ३६।

बिनसि—वि० [सं० विनष्ट] नष्ट हो गई। ~फटि गया कुवां **बिनसि** गई बारी। →सब० ५७-५।

बिनसि—वि० [सं० विनष्ट], विनष्ट, समाप्त।~**बिनसि** गया तैं का नांव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धरिहौ, पढ़ि गुनि मरम न जांना। →सब० ५५-६।

बिनसे—क्रि० [सं० विनष्ट] नाश होने पर। ~घ घा घट **बिनसे** घट होई, घट ही में घट राखु समोई। →ज्ञान चौं० (१) ६।

बिनसे—क्रि० [सं० विनाश से] नष्ट हो जाता है। ~आतम राम पलक में **बिनसे**, रुधिर कि नदी बहाई। →पद २६६-४।

बिनसे—क्रि० [सं० विनाश] विनष्ट हो गए। ~जब तैं उलटि भया है राम, दुख **बिनसे** सुख किया बिसराम। →सब० २०-४, र० ४६-१, २; ३, ४।

बिनांवन—क्रि० [हि० बुनना] बुनने के लिए। ~रामुराय चली **बिनांवन** माहो। →पद २७१-१।

बिनै—क्रि० [हि० बीनना] बीनता है। ~**बिनै** कबीरा चूनरी, बै नहिं बाँधल बाछ। →पद २४८-६, कहरा (३) १०-६।

बिनौला—संज्ञा पु० [दे०] कपास का बीज। ~करम **बिनौला** होय रहा, सुत काते जैंदेव। →पद २४८-३।

बिन्द्राबन—संज्ञा पु० [सं० वृन्दावन] वृन्दावन। ~ निर्गुन ब्रह्म माते **बिन्द्राबन**, अजहूँ लागि खुमारी। → पद ३०३-१०।

बिपति—संज्ञा स्त्री० [सं० विपत्ति] दुःख, कष्ट। ~ संपै देखि न हरखिऐ **बिपति** देखि नां रोइ। →पद २४५-६, ७।

बिबाहल—क्रि० [सं० विवाह से] विवाह किया। ~ मड़ए के चारन समधी दीन्हा, पुत्र **बिबाहल** माता। → सब० ३६-३।

बिबि—वि० [सं० द्वि] दो। ~**बिबि** अक्षर का कीन्ह वंधाना, अनहद सब्द जोति परमाना। →र० ५-३।

बिबिचार—वि० [सं० वि+विचार] विचारहीन। ~गुरु द्रोही औ मनमुखी, नारि पुरुष **बिबिचार**। → र० ४३-६।

बिबिचारी—वि० [सं० व्यभिचारी] व्यभिचारी। ~भात्र तो भुवँग देखो, अति **बिबिचारी**। →सब० ८५-४।

बिबेका—संज्ञा पु० [सं० विवेक] विचार। ~उदै अस्त की बात कहतु हौ, सबका किया **बिबेका** हो। →सब० १३८-२।

बिभिचार—संज्ञा पु० [सं० व्यभिचार] व्यभिचार। ~भोलै भूली खसम कै, बहुत किया **बिभिचार**। →सा०पीव० (३६) ३-१, सा० सुन्द० (५२) २-१।

बिभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० विभूति[राख; भस्म। ~इक जंगम इक जटाधार; इक अंग **बिभूति** करै अपार। → पद ३३२-३।

बियाइ—क्रि० [सं० विजनन] जन्म देना। ~बैल **बियाइ** गाइ भई बांझ; बछरहिं दूहै तीनिउँ सांझ। →सब० ८६-३।

बियाधि—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] त्रिताप, आधिभौतिक—आधिदैविक; आध्यात्मिक। ~कहै कबीर भया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घट निरमल सकल **बियाधि** टरी । →पद ३२७-६ ।

बियाधि—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] रोग । ~ काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै **बियाधि** । → सा० चिता० (१२) ४०-१ ।

बियाने—क्रि० [सं० विजनन] पैदा हुए । ~ मच्छ कच्छ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया । →सब० १७४-६ ।

बियाहल—क्रि० [भोज०] विवाह किया गया । ~ तुम बूझहु पंडित कवनि नारि, काहु न **बियाहल** है कुँवारि । →वसंत (४) ५-१ ।

बियाही—क्रि० [सं० विवाह + हि० (ई) प्रत्य०] व्याही गई । ~ मेढ़क सर्प रहत एक संगे, बिलिया स्वान **बियाही** । →पद १६६-५ ।

बिरंचि—संज्ञा पु० [सं० बिरंचि] ब्रह्मा । ~सिव **बिरंचि** नारद मुनि ग्यांनी, मन की गति उनहूँ नहिं जांनीं । → सब० १४३-४; सब० १६२-४, हिंडोला (८) १-८ ।

बिरकत—वि० [सं० विरक्त] विरक्त । ~काँमिनि अंग **बिरकत** भया, रत भया हरि नाँइ । →सा० साधसा० (२६) १२-१, सा० उप० (३४) ६-१, सा० मधि० (३१) ३-२ ।

बिरचाया—क्रि० [सं० विरचन्] रचना किया । ~ लख चौरासी भूल ते कहिये, भूल ते जग **बिरचाया** । → पद २६४-६ ।

बिरछा—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] पेड़ । दे० 'बिरवा' । ~विना पवन जहँ पर्वत उड़ै, जीव जंतु सब **बिरछा** बूड़ै । →सब० १५२-३ ।

बिरथा—वि० [सं० व्यर्थ] निरर्थक । ~**बिरथा** जनमु गंवाया । →सब० १६०-२ ।

बिरध—क्रि० [सं० वृद्धि] बढ़ती है । ~ नाति सरूप न छाया जाकै, **बिरध** करै बिन पांनी । → पद २५३-२ ।

बिरध—वि० [सं० वृद्ध] वृद्ध । ~ तन के **बिरध** कहा भौ बौरे, मनुआ अजहूँ बारो हो । →कहरा (३) ३-४ ।

बिरला—वि० [सं० बिरल] कोई-कोई ही । ~परनारी पर सुन्दरी, **बिरला** बंचै कोई । →सा० कामी० (२०) ४-१; सब० ७८-८ ।

बिरलै—वि० [सं० विरल] अत्यल्प; एकाध । ~ भाई रे **बिरलै** दोस्त कबीर के यहु तत बार बार कासौं कहिए । →पद २०८-१ ।

बिरवा—संज्ञा पु० [सं० वीरुध्] वृक्ष; पौधा । ~जन जो चोरी भिच्छा खाहीं, सो **बिरवा** पलुहावन जाहीं । →र० ६०-२, र० २५५-११, सब० ११६-८ ।

बिरषा—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष । दे० 'बिरवा' । ~पंखी चले दिसावराँ, **बिरषा** सुफल फलंत । →सा० सजी० (४७) ७-२ ।

बिरही—संज्ञा पु० [सं० व्रीहि] अन्न । ~ सातौ **बिरही** मेरे नीपजै, पंचूं मोर किसानाँ । →सब० १७-४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिराजी—क्रि० सं० [वि + √राज्] स्थापित है; विराजमान है। ~ कहै कबीर सुनो हो संतो, भई सो राज **बिराजी**। →सब० ६०-११।

बिराने—वि० [फा० वेगाना] पराया, दूसरा। ~जैहो **बिराने** देस हो रमैया राम। →बेलि (६) १-७।

बिरिख—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष, पेड़। दे० 'बिरवा'।~ चंदन कै ढिंग **बिरिख** जु भैला, बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला। →सब० ६६-३, सा० निद्या० (५४) ७-२।

बिरिध—वि० [सं० वृद्ध] बूढ़ा; वृद्ध। दे० 'विरध'। ~तीस बरस तैं रांम न सुमिर्‌यौ फिरि पछितानां **बिरिध** भयौ। →पद २३३-४, सब० १७५-५।

बिरिया—संज्ञा पु० [सं० वार] बार। ~यह सब झूठी बंदगी, **बिरिया** पाँच निवाज। →सा० साँच० (२२) ५-१, सा० माया० (१६) ३१-१।

बिर्कताई—संज्ञा स्त्री० [सं० विरक्त + आई (प्रत्य०)] विरक्ति। →सा० विर्क० (३७)।

बिलंबा—क्रि० [सं० विलम्बन] रम गया। →मन कुंजर जाइ बाड़ी **बिलंबा**, सतगुर वाही वेली। → पद २५३-५।

बिलंबिया—क्रि० [सं० विलम्बन] मंडरा रहा है। ~देव बिनु देहुरा पत्र बिनु पूजा, बिनु पंखा भंवरा बिलंबिया। →सब० ११६-७।

बिलंबिया—क्रि० [सं० विलम्ब से] विलम्ब (देर) तक रुका हुआ है, ठहरा हुआ है, रमा हुआ है।~ कबीर तहाँ **बिलंबिया**, करै अलख की सेव। →सा० परचा० (५) ४१-२।

बिलंबिए—क्रि० [सं० विलम्बन] ठहरिए, रुकिए, अवलम्व लीजिए। ~ तरवर तासु **बिलंबिए**, वारह मास फलंत। → सा० सजी० (४७) ६-१।

बिलंबे—क्रि० [सं० वि + लम्बन] लगे हुए। ~बासी पावस पड़ि मुए, विषै **बिलंबे** जीव। → सा० उपजणि० (५०) ५-२।

बिलंब्बा—क्रि० [सं० वि + लम्बन] सहारा लेता रहता है; रमा रहता है। ~ जीव **बिलंब्बा** जीव सौं, अलख न लखिया जाइ। → सा० चाँण० (१७) १-१।

बिलग—वि० [हि०] पृथक्। ~ हौं सभहिन में, हौं ना हो मोंहि, **बिलग** बिलग बिलगाई हो।→कहरा (३) १०-१।

बिलगाई—क्रि० [सं० वि + लग] अलग करना, पृथक करना। ~ कारी पियरी दुहहू गाई, ताकर दूध देहु **बिलगाई**। → र० ६२-५, कहरा (३) १०-१, पद २३७-२।

बिलगि बिलगि—वि० [हि० विलगना] अलग-अलग।~मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो। →पद २३७-२।

बिललाई—क्रि० [हि० विलखना] बिल-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खते हैं। ~ एक खड़े ही ना लहैं, और खड़े **बिललाई**। →सा० सम्र० (३८) ४-१।

बिलाइ—वि० [सं० विलय] विलीन हो जाना। ~ बिधि-बिधि बाँणी बोलता, सो कत गया **बिलाइ**।→ सा० उपदे० (३४) ३-२।

बिलाइ—क्रि० [सं० विलय] विलीन हो गया। ~पानी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया **बिलाइ**। → सा० परचा० (५) १७-१।

बिलात—क्रि० [सं० विलयन] नष्ट हो गए। ~ रावन हूं तैं अधिक छत्र-पति, खिन महिं गए **बिलात**। → सब० ७०-६।

बिलानीं—क्रि० [सं० विलयन] नष्ट हो गई। ~ सोइ रावन की साहिबी छिन मांहि **बिलानीं** रे। → पद २७३-६।

बिलायत—संज्ञा पु० [अ०] देश, राज्य। ~ दावा किसही का नहीं, बिना **बिलायत** राज। → सा० बेसा० (३५) १३-२।

बिलारि—संज्ञा स्त्री० [सं० विडाल] बिल्ली। ~ माया के रस लेन न पाया, अंतर जम **बिलारि** होय धाया। → सब० ६-६, चाँचर (५) २-२०।

बिलैया—संज्ञा स्त्री० दे० 'बिलारि'।

बिलोइ—क्रि० [सं० विलोडन] मथो। ~हरि का विलोवनां **बिलोइ** मेरी माई। →पद ३३०-१, २, ३, ४।

बिलोवसि—क्रि० [सं० विलोडन] मथता है। ~ह्रिदै कपटमुखि ग्यांनीं, झूठै कहा **बिलोवसि** पांनीं। → सब० ७९-३।

बिबरजित—वि० [सं० विवर्जित] रहित। ~धंधा बधा किन्ह बेवहारा, करम **बिबरजित** बसै निआरा। → र० २२-३।

बिवोग—संज्ञा पु० [सं० वियोग] वियोग। ~गुन गाए, गुन ना कटै, रटै न; राम **बिवोग**। →सा० सुमि० (२) २८-१।

बिषम—वि० [सं० विषम] वक्र, टेढ़ी। ~कहै कबीर कछु समुझि न परई, **बिषम** तुम्हारी माया। → पद २६७-१०।

बिषै—संज्ञा पु० [सं० विषय] राज्य, विस्तार। ~बारह योजन कै **बिषै** चले छत्र की छहियाँ रे। →पद २७३-७।

बिसंभर—संज्ञा पु० [सं० विश्वम्भर] प्रभु, ईश्वर। ~ बिसमिल मेटि **बिसंभर** एकै, और न दूजा कोई। →पद ३२९-२।

बिसतरहिं—क्रि० [सं० विस्तरण] बिछाते हैं। ~पवन कोटि चउबारे फिरहिं, बासिग कोटि सेष **बिसतरहिं**। → सब० १२८-७।

बिसनूं—संज्ञा पु० [सं० विष्णु] विष्णु। ~पाती ब्रह्मां पुहुप **बिसनूं** मूल फल महादेव। →पद २११-९।

बिसमल—वि० [फ़ा० बिस्मिल] आहत, क्षत, घायल। ~ इस मन कौं **बिसमल** करौं, दीठा करौं अदीठ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

→सा० मन० (१३) ९-१, पद ३०४-५; सब० ७२-४ ।

बिसमिल—वि० दे० 'विसमल' ।

बिसमिल—संज्ञा पु० [अ० बिस्मिल्लाह] ईश्वर । ~**बिसमिल** मेटि बिसंभर एकै; और न दूजा कोई । →पद ३२९-२ ।

बिसमिल—क्रि० [फ़ा० विसमिल] बलि देना । ~सरजी आँनैं देह बिनासैं माटी **बिसमिल** कीआ । → पद २३०-३ ।

बिसमिल—संज्ञा पु० [फ़ा० विस्मिल] घायल करना, काटना । ~तब नहिं होते गाय कसाई, तब कहु **बिसमिल** किन फुरमाई । →र० ४०-३ ।

बिसरा—क्रि० [सं० विस्मृत] भुला दिया । ~जहँ ते उपजे तहँई समांने हरि पद **बिसरा** जवहीं । →पद ३३७-६ ।

बिसराम—संज्ञा पु० [सं० विश्राम] शांति का अनुभव । ~ सहज समाधें सुख में रहिबो, कोटि कलप **बिसराम** । →सब० १३-२ ।

बिसराम—संज्ञा पु० [सं० विश्राम] विश्राम, आराम । ~ जिव तरसै तुझ मिलन को, मन नाहीं **बिसराम** । → सा० बिर० (३) ६-२, पद ३४२-२ ।

बिसरि—क्रि० [सं० विस्मरण] विस्मृत हो गए । भुला गए । ~तातैं **बिसरि** गए रस और । → पद २६६-२ ।

बिसरु—क्रि० [सं० विस्मरण] भूल जाना । ~ जिहि मुख बेदु गाइत्री उचरै, सो क्यूं ब्राह्मन **बिसरु** करै । → सब० ८२-३ ।

बिसरैं—क्रि० [सं० विस्मरण] भुला देना । ~ऐसी कला अनंत है जाकैं, सो हँम कौं क्यूं **बिसरैं** । → सब० ८१-४; ८ ।

बिस्तरी—क्रि० [सं० विस्तार] बिखर गई । ~झूठी अनभै **बिस्तरी**, सब थोथी बाई । → सब० १-६ ।

बिसर्‌यो—क्रि० [सं० विस्मरण] भुला दिया ।~ अपुनपौ आपुहि **बिसर्‌यो** । → सब० ५-१ ।

बिसवास—संज्ञा पु० [सं० विश्वास] विश्वास । ~धोखे कियहु **बिसवास** हो रमैया राम ।→वेलि (६) २-२ ।

बिसवासा—संज्ञा पु० [सं० विश्वास] निष्ठा । ~ कहैं कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौं राम उपज्यौं **बिस-वासा** । →सब० २१-६ ।

बिसहर—संज्ञा पु० [सं० विषधर] सर्प । ~कउवा कहा कपूर खवाए, का **बिसहर** कौं दूध पिआए । →पद २६९-४, पद ३४५-९ ।

बिसारि—क्रि० [सं० विस्मरण] भुला-कर । ~जिनहिं निवाज साज सब कीन्हें तिनहि **बिसारि** और लगरी । → पद २४९-४ ।

बिसारिया—क्रि० [सं० विस्मरण] विस्मृत कर दिया, भुला दिया । ~दिल तैं दीन **बिसारिया**, करद लई जब हाथि ।→सा० सांच० (२२) ७-२ ।

बिसारौं—क्रि० [सं० विस्मरण] विस्मृत करना, भूलना । ~धड़ सूली सिर

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कंगुरै; तऊ न **बिसारौं** तुज्झ । → सा० सूरा० (४५) २६-२ ।

बिसास—संज्ञा पु० [सं० विश्वास] विश्वास । दे० 'बिसवासा' ।~मेरि मिटी मुकता भया,पाया ब्रह्म **बिसास**। →सा० वेसा० (३५) १७-१ ।

बिसास—वि० [सं० अविश्वास] अविश्वसनीय, कपटी, छली । ~ हरि बिचि घालै अन्तरा, माया बड़ी **बिसास** । →सा० माया० (१६) ५-२ ।

बिसाहना—क्रि० [हि०] क्रय-विक्रय करना । ~पूरा किया **बिसाहना**, बहुरि न आँवौं हट्ट । → सा० गु० (१) १२-२ ।

बिसुवा—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्या] वेश्या । ~अंध कहै अंधा पतियाय, जस **बिसुवा** के लगन धराय । → वसंत (४) १२-२ ।

बिसूरनाँ—क्रि० [सं० विसूरण] सिसक-सिसक कर भीतर ही भीतर दुःख का अनुभव करना । ~मनही माँहि **बिसूरनाँ**, ज्यूँ घुन काठहिं खाइ । →सा० विर० (३) २८-२ ।

बिसूरी--क्रि० [सं० विसूरण] शोक करना, चिंता करना । ~ माया मोह रहा जग पूरी, माया मोहहिं लखहु **बिसूरी** । → ज्ञान चौं० (१) ५४ ।

बिहड़ै—क्रि० [सं० विघटन, प्रा० विहंडन] अन्तर करना, अलग करना । ~ गुन औगुन **बिहड़ै** नहीं, स्वारथ बँधा लोइ । →सा० अवि० (५६) २-२ ।

बिहने—संज्ञा पु० [सं० विभात या वि+अहन्] प्रातःकाल, सबेरा । दे० 'बिहान' । ~लाबरि **बिहने** लाबरि संझा, इक लाबरि बस हिरदया मंझा । → र० ६१-२ ।

बिहाँनी—क्रि० [सं० वि+√हा] बीत गई । ~सोइ सोइ सब रैनि **बिहाँनी**, भोर भयो तब जागे । → सब० १८६-२ ।

बिहाइ—क्रि० [दे०] व्यतीत होती है; बीतता है । ~सेजरिया बैरिनि भई मोकौं, जागत रैनि **बिहाइ** । →सब० २२-७, सा० साध सा० (२६) ५-२, ६-१ ।

बिहाइ—क्रि० [सं० वि०+√हा] बीत गया । ~कबीर टुक-टुक चोषताँ, पल-पल गई **बिहाइ** । →सा० काल० (४६) ७-१ ।

बिहाइ—क्रि० [सं० वि० + √हा] व्यतीत हो जाती है । ~तातैं जियरै डर गह्या, जागत रैंनि **बिहाइ** । →सा० काल० (४६) २८-२ ।

बिहान—संज्ञा पु० [सं० विभात या वि+अहन्] प्रातःकाल, सुबह । ~माई मोर मनुसा अति सुजान, धंधा कुटि-कुटि करै **बिहान** । →वसंत (४) ६-१ ।

बिहानीं—क्रि० [सं० वि + √हा] व्यतीत हो गई । ~जाकौ भाव होत हरि ऊपरि, जागत रैंनि **बिहानीं** । →सब० ४४-२ ।

बिहुरै—क्रि० [हि० बिछुड़ना] छोड़ना । ~ज्यौं मांखी सहतैं नहिं **बिहुरै**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जोरि-जोरि धन कीन्हां । →सब० १७६-५ ।

बिहुरैं—क्रि० [सं० छोरण] छोड़ता है । ~मरकट मूंठी स्वाद न **बिहुरैं**, घर-घर नटत फिर्‌यो । →सब० ५-५ ।

बिहूँनां—वि० दे० 'बिहूना' ।

बिहूना—वि० [सं० विहीन] विहीन; बिना; रहित । ~ गुणन **बिहूना** पेखना, का कहि लीजैं नाँव । →र० ७-७, सब० १५३-७, सा० परचा० (५) ४१-१, सा० परचा० (५) १५-२, सब० १२१-२, पद २७०-४ ।

बींद—संज्ञा पु० [फ़ा० खाविंद] वर, दूल्हा । ~काल खड़ा सिर ऊपरैं, ज्यों तोरन आया **बींद** । →सा० काल० (४६) ४-२ ।

बी—अव्य० [सं० अपि] भी ।~मृतक कूं धी जौं नहीं, मेरा मन **बी** है । →सा० मन० (१३) २३-१ ।

बीका—क्रि० [हि० बिकना] बिक गया । ~यहु हीरा निरमोलिया, कौड़ी लगि **बीका** । → सब० ६६-८ ।

बीखरी—क्रि० [सं० विकीर्ण] बिखर गया, नष्ट हो गया । ~कबीर गुदरी **बीखरी**; सौदा गया बिकाइ ।→सा० अपा० (४८) ३-१ ।

बीच—संज्ञा पु० [सं० √विच्] अन्तर । ~जोरू जूठनि जगत की, भले बुरे का **बीच** । →सा० कामी० (२०) १४-१, सब० २-१ ।

बीछड़ियाँ—क्रि० [हि० बिछुड़ना] बिछुड़ने पर, अलग हो जाने पर ।~**बीछड़ियाँ** मिलिबो नहीं, ज्यों काँचली भुवंग । → सा० चिता० (१२) ६-२ ।

बीछुटे—क्रि० [हि० बिछुड़ना] वियुक्त हो गए, दूर हो गए, अलग हो गए । ~जिन ते गोविंद **बीछुटे**, तिनकौं कौन हवाल । → सा० बिर० (३) २-२ ।

बीछुरा—क्रि० [सं० विच्छेद] बिछुड़ गया, वियुक्त हो गया । ~जाका सँग तैं **बीछुरा**, ताही के संग लागि । →सा० सुमि० (२) १२-२ ।

बीजक—संज्ञा पु० [सं० बीजक] १. गुप्त धन बताने वाली सूची, २. परमार्थ का रहस्य बताने वाला । ~**बीजक** बिन बतावई, जो बित गुप्ता होय । →र० ३७-५ ।

बीझ—वि० [सं० विजन] एकांत; निर्जन । ~भील लुका बन **बीझ** मैं; ससा सर मारै । →सब० ५१-६ ।

बीठुला—संज्ञा पु० [सं० बिट्ठल] विष्णु का एक नाम, कृष्ण, गोविंद । ~ राखि-राखि मेरै **बीठुला**, जन सरनि तुम्हारी । →सब० ६६-२ ।

बीडरि—क्रि० [सं० √विट्] पशुओं का बिदक जाना । ~कौली घाल्या **बीडरि** चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै । →सब० २७-४ ।

बीती—क्रि० [सं० व्यतीत] व्यतीत हो गया । ~बड़ छली रावन सो गौ **बीती**, लंका रहल कंचन की भीती । →र० ४७-२ ।

बीन—संज्ञा स्त्री० [सं० वीणा] जगत; संसार । ~रजगुन सतगुन तमगुन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन, पंच तत्त से साजा **बीन**। → सब० १८५-३।

बीनती—संज्ञा स्त्री० [सं० विनति] विनय, प्रार्थना। ~कबीर करत है **बीनती**, भौसागर के ताँइ। →सा० बीन० (५६) ५-१।

बीनहु—क्रि० [हि० बुनना] बुनो। ~जोलहा **बीनहु** हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरैं ध्याना। →सब० १२७-१।

बीनि—क्रि० [सं० विनयन] चुन लो। ~कबीर औगुन नाँ गहै, गुन ही कौं ले **बीनि**। →सा० सार० (३२) ३-१।

बीर—संज्ञा पु० [सं० वीर] शैव साधु। ~मौंनी **बीर** डिगम्बर मारे जतन करंता जोगी। →पद २४४-३।

बीरज—संज्ञा पु० [सं० वीर्य] वीर्य। ~रज **बीरज** की कली, तापर साजा रूप। → सा० माया० (१६) १६-१।

बीरा—वि० [सं० वीर] वीर। ~ राम नाम को सेवहु **बीरा**। दूरि नाहिं, दुरि आसा हो। →कहरा (३) ३-१।

बीरा—वि० [सं० वीर] जितेन्द्रिय। ~सकल कबीरा बोलै **बीरा**, अजहूँ हो हुसियारा। →सब० ६४-१६।

बीरू—वि० [सं० वीर] वीर। दे० 'बीरा'। ~बाँधे पौन पावक नभ नीरू, चाँद सुरुज बाँधे दोउ **बीरू**। →र० १०-५।

बीसरा—क्रि० [सं० विस्मरण] भूल गया। ~तत पाया तन **बीसरा**, जब मनि धरिया ध्यान। → सा० पर० (५) ३२-१।

बीसरिं—क्रि० [सं० विस्मरण] भूलना। दे० 'बीसरैं'। ~ग्यान प्रकासा गुरु मिला, सों जिनि **बीसरिं** जाइ। → सा० गु० (१) १३-१।

बीसरैं—क्रि० [सं० विस्मृति, विस्मरण] भूलना, विस्मृत करना। ~हरि सागर जिनि **बीसरैं**, छीलर देखि अनंत। → सा० सुमि० (२) ३०-२।

बीसारैं—क्रि० [सं० विस्मरण] भुलाने से। ~**बीसारैं** नहिं बीसरैं, जौं गुन होइ सरीर। → सा० हे० प्री० (४४) २-२।

बीहर—वि० [हि० बीहड़] अचर, जड़। ~रवि के उदै तार भौ छीना, चर **बीहर** दोनों मँह लीना। → र० २६-५।

बीहो—क्रि० [दे०] डरते हो। ~काहे **बीहो** मेरे साथी, हूँ हाथी हरि केरा। →सब० ८१-१।

बुंदका—संज्ञा स्त्री० [हि०] टिकुली, बिंदी। ~ चन्द्रबदनि मृगलोचनि माया, **बुंदका** दियो उघार।→ चाँचर (५) १-४।

बुत—संज्ञा पु० [फ़ा] मूर्ति। ~**बुत** पूजि पूजि हिन्दू मुए, तुरुक मुए हज जाई। →पद २६०-३।

बुताइ—क्रि० [हि० बुझाना] बुझाकर। ~चूल्है अगिनि **बुताइ** करि चरखा दियौ दिढ़ाइ। →पद २३५-८।

बुदबुदा—संज्ञा पु० [स० बुद्बुद] बुलबुला, पानी का बुल्ला। ~यहु तन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार। → सा० काल० (४६) १३-२।

बुध—वि० [सं०] ज्ञानी। ~ दिना सात लौं बाकी सही, बुध अदबुध अचरज का कही।→र० ७२-३।

बुधि—संज्ञा स्त्री० [सं० बुद्धि] उपाय, मार्ग। ~कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिलै राम राई। →पद ३११-५।

बुरहा—वि० [हि० बुरा + हा (प्रत्य०)] बुरा, खराब, असुन्दर। ~बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलतान। सा० बिर० (३) २१-१।

बुहारा—क्रि० [सं० बहुकरण] झाड़ू से साफ करना। ~खेत बुहारा सूरिवाँ, मुझ मरने का चाव। → सा० सूरा० (४५) ६-२।

बूंद—संज्ञा स्त्री० [सं० विंदु] वीर्य। ~एक बूंद तैं सृष्टि रची है, कौन बाँह्मन कौन सूदा। →सब० ५५-४, सब० १७५-३।

बूझनिहारा—वि० [हि० बूझना + हारा (प्रत्य०)] समझने वाला। ~चोर एक मूसै संसारा, बिरला जन कोइ बूझनिहारा। →र० ५६-२।

बूझा—क्रि० [हि० बूझना] समझ में आया। ~ गहनी बंधन बानि नहिं सूझा; थाकि परे तब किछवो न बूझा। →र० १६-३।

बूटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] औषध, दवा। ~सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवन होइ। →सा० बिर० (३) ४०-२।

बूठा—वि० [सं० वृष्टि] बरसा, बरसा हुआ। ~डूँगरि बूठा मेह ज्यूं, गया निवाँणा चालि। → सा० मन० (१३) २२-२, सा० निगु० (५५) १-२।

बूड़ता—क्रि० [हि० डूबना] डूबता। ~जिहि सरि घड़ा न बूड़ता, मैंगल मलि-मलि नहाइ। → सा० रस० (६) ७-१।

बूड़सी—क्रि० [हि० डूबना] डूब जाएगी, नष्ट हो जाएगी। ~कूर बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालि। → सा० चिता० (१२) ५२-२।

बूड़हुगे—क्रि० [हि० डूबना] डूब जाओगे। ~बूड़हुगे परिवार सकल सिउँ राम न जपहु अभागे। →सब० १६४-२।

बूड़ा—क्रि० [हि० डूबना] नष्ट हो गया। ~बूड़ा बाँस बड़ाइया, यौं जनि बूड़ै कोइ। → सा० निगु० (५५) १२-२।

बूड़ि—क्रि० [हि० बूड़ना = डूबना] डूब कर। ~हरि कि भगति जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार। → र० ७४-६।

बूड़िहौं—क्रि० [प्रा० बुड्डुण] डूब जाऊँगा, डूब जाता हूँ। ~जे छाँड़ौ तौं बूड़िहौं, गहौ त डसिहै बाँहि। → सा० बिर० (३) ४३-२।

बूता—संज्ञा पु० [हि०] शक्ति; सामर्थ्य; ला० स्वाँग। ~ आई करगी भौ अजगूता, जन्म जन्म जम पहिरे बूता। →र० १०-२, र० ८४-६; सब० १५१-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बे—अव्य० [फ़ा०] बिना । ~आब बे आब मुझे हरि को नाम, और सकल तजु कौने काम । →सब० ४०-१ ।

बे—अव्य० [फ़ा०] छोटों के लिए तिरस्कार सूचक सम्बोधन । ~भूले बे अहमक नादाना, तुम हरदम रामहिं ना जाना ।→पद २१०-१ ।

बेकाम—वि० [फा० बे + हि० काम] व्यर्थ, निरर्थक ।~ते नर इस संसार में, उपजि षये **बेकाम** । →सा० सुमि० (२) १७-२ ।

बेखबरु—वि० [फा०] निश्चिन्त, बेसुध । ~दरोगु पढ़ि पढ़ि खुसी होइ **बेखबरु** बादु बकाहिं । →सब० १८१-५ ।

बेगांनां—वि० [फा० बेगाना] पराया । ~गुर परसादि अकिलि भई अवरैं नातरु था **बेगांनां** ।→पद २१६-२ ।

बेठ—संज्ञा पु० [सं० वेष्टि] कामकाज । ~दिन की **बेठ** खसम सौं वरकस तापर लगी तिहाई ।→पद २७१-७ ।

बेढ़ई—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की रोटी या कचौड़ी जिसके भीतर पोस्ता का दाना अथवा पीठी और अन्य गरम मसाले भरे जाते हैं, यह स्वादिष्ट; किन्तु अपकारक होती है । कचौड़ी ।→कलह बिना मोहि रहल न जाई, **बेढ़ई** लै लै कूकुर खाई । →र० ७६-३ ।

बेढ़िया—क्रि० [सं० वेष्टित] वेष्टित रहना, लिपटे हुए होना । ~चँदन भुवंगम **बेढ़िया**, तउ सीतलता न तजंत । →सा० साधसा० (२६) २-२ ।

बेढ़्या—वि० [सं० वेष्टित] घिरा हुआ । ~ कबीर चंदन का बिड़ा, **बेढ़्या** आक पलास । →सा० साधु० (२८) ७-१ ।

बेढ़े—संज्ञा पु० [हि० बेढ़ना] घिरा हुआ स्थान । ~नऊँ दुवार नरक धरि मूंदे दुरगंधि ही के बेढ़े । → सब० १०२-२ ।

बेधिया—वि० [सं० विद्ध] बिद्ध जिसे बेधा गया हो । ~हरि रस जे जन **बेधिया**, सर गुण सींगणि नांहि । → सा० सब० (४०) ५-१ ।

बेधी—क्रि० [सं० बेधन] बिद्ध हो गया । ~प्रेम प्रीति **बेधी** अंतरगति, कहूँ काहि को मांनैं । →पद २५१-८ ।

बेधीले—क्रि० [हि० वेधना] बेधकर । ~**बेधीले** चक्र भुअंगा, भेटीले राइ निसंगा । →सब० १७१-६ ।

बेध्यौ—क्रि० [सं० वेधन] आहत होना । ~ ज्यूं मृग नादैं **बेध्यौ** जाइ, पिंड परे वाकौ ध्यान न जाइ । →सब० ५६-३ ।

बेन—संज्ञा पु० [सं० वेणु] वंशी । ~ नटवर पेखि पेखनां पेखै, अनहद **बेन** बजावै । → सब० ३२-१०, पद २२५-४ ।

बेपरवाँही—वि० [बे + फा० परवाह + ई] निश्चिन्त ।~साहिब सेवा मांहि है; **बेपरवाँही** दास । →सा० पर० (५) २-२ ।

बेरहिं बेरा—क्रि० वि० [सं० बारंबार] बार-बार, कई बार । ~ नित उठि नौवा नाव चढतु है, **बेरहिं बेरा** बोरै हो । →कहरा (३) २-४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बेरा—संज्ञा पु० [हि० बेड़ा] नाव।~ अजहूँ **बेरा** समुंद मैं बोलि बिगूचैं काँइ।→सा० जर० (८) ५-२।

बेरा—संज्ञा पु० [सं० बेड़ा] बेड़ा, जहाज।~राम नाम लैं **बेरा** धारा, सो तौ लैं संसारहि पारा।→र० ७६-३।

बेरियाँ—संज्ञा पु० [सं० बेला] समय, वक्त।~नांउँ मेरैं बंधिप नांउँ मेरै भाई, अंत की **बेरियाँ** नांउँ सहाई। →सब० ४६-५।

बेरियाँ—संज्ञा पु० [सं० वेला] वेला, अवसर।~कहै कबीर अब चरन न देइहौं, **बेरियाँ** भली संभारे।→ सब० ११३-६।

बेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० बटी] बेड़ी, बंधन। ~जेहि घरको घर कहै गँवारा, सो **बेरी** है गले तुम्हारा। → र० ७८-८।

बेलंत—क्रि० [सं० वलन ?] छटपटाते हुए। ~ ज्यौं जल टूटै माछरी यूं **बेलंत** बिहाइ। → सा० साषी० (२९) ५-२।

बेलड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्लरि] लता। दे० 'बेली'। ~ तीरथ ब्रत विष **बेलड़ी**, सब जग मेल्या छाइ। → सा० भ्र० वि० (२३) ९-१; सा० वेली० ५८-१; पद २५३-१।

बेली—संज्ञा स्त्री० [सं० वेलि] लता। ~कहै कबीर स्वांमीं तुम्हरै मिलन कौं **बेली** है पर पात नहीं रे।→ सब० १२१-८।

बेसबांनां—यौ० [हि०] वेशभूषा। ~आदि कौ उदेस जांनैं तासु **बेस बांनां**।→पद ३४३-६।

बेसाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० वेश्या] वेश्या। ~जग हटबारा स्वाद ठग, माया **बेसाँ** लाइ। →सा० माया० (१६) १-१।

बेसास—संज्ञा पु० [सं० विश्वास] विश्वास, प्रतीति। दे० 'बिस्वास'। ~जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत **बेसास**। →सा० भ्र० वि० (२३) ८-१, सा० चिता० (१२) ५५-२।

बेसूधा—वि० [हि० बे (बिना) + सं० शुद्ध] १. अशुद्ध, २. नीच। ~कहा भये नर सुध **बेसूधा**, बिनु परचै जग बूड़ न बूझा।→र० ११-९।

बिस्वास—संज्ञा पु० [सं० विश्वास] विश्वास, यकीन। ~जिनि गाया **बिस्वास** सौं, तिन राम रहा भरपूरि। →सा० वेसा० (३५) २१-२, १९-२, १६-२।

बेह—संज्ञा पु० [सं० वेध] छिद्र, छेद। ~पाहन टाँकि न तोलिए, हाड़ि न कीजै **बेह**। →सा० संग० (२६) ५-१।

बेहद—वि० [फा०] असीम, अपरिच्छिन्न। ~हद्द छाड़ि **बेहद** गया, किया सुन्नि असनान।→सा० पर० (५) ११-१; सा० पर० (५) ५-१।

बेहाथा—वि० [सं० वि० + हस्त] १. हाथ में प्राप्त वस्तु को खो देने वाला, २. निराश्रय।~सुंनहि बांछा सुंनहि गैऊ, हाथा छाड़ि **बेहाथा** भैऊ। →र० १९-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बेहाल—वि० [फ़ा०] बेचैन। ~अब तौ **बेहाल** कबीर भए हैं बिनु देखें जिउ जाइ रे। →सब० १८६-८।

बेही—संज्ञा पु० [सं० वेध] छिद्र।~ जब लगि तागा बाहौं **बेही**, तब लगि बिसरै राम सनेही। → सब० १३६-४।

बैंसिकरि—क्रि० [हि० बैठना] बैठकर। ~चेतनि चौकी **बैंसिकरि**, सतगुरु दीन्ही धीर। → सा० गुरु० (१) २३-१, सा० चाँण० (१७) १६-१।

बैं—संज्ञा स्त्री० [सं० वाय] कंघी। ~बिर्न कबीरा चूनरी, **बैं** नहिं बाँधल बाछ।→पद २४८-६।

बैं—संज्ञा स्त्री० [सं० वाय] जुलाहों के करघे में सूत का एक जाल। ~ पाई करि जब भरना लीन्हो, **बैं** बाँधन की रामा। →सब० १२७-८।

बैकुंठ—संज्ञा पु० [सं० वैकुंठ] स्वर्ग, विलास का लोक। ~चलु रे **बैकुंठ** तुझहि लै तारउं हिचहि त प्रेम ताजनैं मारउं।→सब० ३-४, सब० १०३-२, पद २६४-२।

बैंठावन—संज्ञा पु० [हि०] लकड़ी का वह औजार जिससे बाना बैठाया जाता है।~आदि पुरुष **बैंठावन** बैठे, कबिरा जोति समाना। → सब० १२७-११।

बैंतल—वि० [दे०] विष को धारण करने वाला। ~सो फूल बन्दहिं भक्त बिरहुली, डसि गैल **बैंतल** साँप बिरहुली। →बिरहुली (७) ६।

बैंता—संज्ञा पु० [फ़ा० बैत] कविता, शायरी। ~ दरद न जानहु पीर कहावहु, **बैंता** पढ़ि पढ़ि जग भरमावहु। →र० ४६-६।

बैंद—संज्ञा पु० [सं० वैद्य] वैद्य। ~ **बैंद** मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार। →सा० जी० मृ० (४१) ६-१।

बैंन—संज्ञा पु० [सं० वाणी] वाणी, वचन। ~ माया मिलै महोबंती, कूड़े आखै **बैंन**। → सा० गु० सि० हे० (४३) १०-१।

बैंपार—संज्ञा पु०[सं० व्यापार] व्यापार। ~सहज कियहु **बैंपार** हो रमैया राम। →बेलि (६) १-१८।

बैंराग—वि० [सं० विरक्त] विरक्त। कहै कबीर जग्या ही चाहिए, क्या गृह क्या **बैंराग** रे। → सब० ११८-६।

बैंरागी—संज्ञा पु० [सं० वैरागी] साधक, तपस्वी। ~आवै न जाइ मरै नहिं जीवै ताहि खोजि **बैंरागी**। →पद २१६-४।

बैंरिनि—वि० [सं० वैरिणी] शत्रु, दुश्मन (स्त्री)।~सेजरिया **बैंरिनि** भई मोकौं, जागत रैनि बिहाइ। → सब० २२-७।

बैंरी—वि० [सं० वैरी] शत्रु, दुश्मन। ~**बैंरी** उलटि भए हैं मीता, साकत उलटि सजन भए चीता। →सब० २०-५, सा० सूरा० (४५) २६-१।

बैंसंदर—संज्ञा पु० [सं० वैश्वानर] अग्नि। ~जिहि **बैंसंदर** जग जलै, सो मेरे उदक समान। → सा० कुस० (३६) ४-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बैंस—संज्ञा स्त्री० [सं० वयस्] उम्र, यहाँ अर्थ है युवावस्था । ~नैंन गैल मोर कजरा देत, **बैंस** गैल पर पुरुष लेत । →वमंत (४) ४-३ ।

बैंसनौं—संज्ञा पु० [सं० वैष्णव] विष्णु का भक्त, वैष्णव । ~**बैंसनौं** भया तौ का भया, बूझा नहीं बवेक । → सा० भेष० (२४) १६-१, सा० चित्तक० (४२) २-२ ।

बैंसा—क्रि० [हि० बैठना] बैठा । ~ है कछु रहनि गहनि की बाता, **बैंसा** रहे चला पुनि जाता । → र० ५१-३ ।

बैंसि—क्रि० [सं० वेशन] बैठ कर ।~ अगिनि भी जूठी पांनी जूठा, जूठैं **बैंसि** पकाया । →सब० ७१-५, पद ३३१-८, सब० १-५, सा० साँच० (२२) १३-१ ।

बैंसे—क्रि० [सं० वेशन] बैठे हुए । ~ बालू के घरवा महिं **बैंसे** चेतत नांहि अयांनां । →सब० १०२-६ ।

बोंहड़ा—संज्ञा पु० [दे०] बीज । ~ रांम नांम करि **बोंहड़ा**, बोही बीज अघाइ । →सा० वेसा० (३५) ४-१ ।

बोइनि—क्रि० [सं० वपन] बो दिया । ~मास असाढ़े सीतल बिरहुली; **बोइनि** सातो बीज बिरहुली । → बिरहुली (७) ४ ।

बोइया—क्रि० [सं० वपन] बोया ।~ मासु मछरिया तब तुम खइयो, जो खेतन में **बोइया** जी । → सब० ११५-४ ।

बोइये—क्रि० [सं० वपन] बोने; बोना । ~जोतिये न **बोइये** सिंचिये न सोई, डार पात बिनु फुल एक होई । → पद २३६-३ ।

बोई—वि० [सं० वपन] बिछाई, फैलाई हुई । ~ पाँहनि **बोई** पिरथमी, पंडित पारी बाट । →सा० भ्रमवि० (२३) २-२ ।

बोई—क्रि० [सं० वपन] फँस जाना; समा जाना । ~ताली पीटैं सिरि धुनैं, मीठैं **बोई** माइ । →सा० कुसं० (२५) ६-२ ।

बोकला—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्कल] छिलका, आवरण । ~फल अलंकृत बीज नहिं **बोकला**, सुख पंछी रस खायो । →सब० ८८-२ ।

बोध—संज्ञा पु० [सं०] चतुर लोग, ज्ञान । ~ बिख अंम्रित फर फरे अनेक, वेद अरु **बोध** कहैं तरु एक । →सब० १३१-४ ।

बोय—संज्ञा स्त्री० [फा० बू] गन्ध, वास । दे० 'बास' । ~सनकादिक भूले भँवर **बोय**, लख चौरासी जोनिन जोय । →वसंत (४) १-५ ।

बोरैं—क्रि० [हि० डुबोना] डुबोना ।~ नित उठि नौवा नाव चढ़तु है, बेरहिं बेरा **बोरैं** हो । →कहरा (३) २-४ ।

बोल—संज्ञा पु० [हि० बोलना] वचन, वाणी, नाम मात्र । ~सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहि **बोल** । → र० ११-१२ ।

बोलनहारु—संज्ञा पु० [हि० बोलना + हारु(प्रत्य०)] बोलने वाला, चेतन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~मनु करि मका किबला करि देही, **बोलनहारु** परम गुर एही । →सब० ७२-३ ।

बोलनां—संज्ञा पु० [हि० बोलना] बोलने वाले । ~जेता मीठा **बोलनां** तेता साधु न जान ।→सा० असाधु० (२७) ३-१ ।

बोल्यां—क्रि० [हि० बोलना] बोला; बोलना । ~मीयां तुम्ह सौं **बोल्यां** बनि नहिं आवै । →पद २२६-१ ।

बोहित—संज्ञा पु० [सं० बोहित्थ] जहाज, नौका । ~कहौं तातपर्ज एक ऐसा, जस पंथी **बोहित** चढ़ि बैसा । →र० ५१-२ ।

बोहौ—क्रि० [सं० वपन] बोओ । ~ राँम नाँम करि बोंहड़ा, **बोहौ** बीज अघाइ । →सा० बेसा० (३५) ४-१ ।

बौरांनां—क्रि० दे० 'बौराना' ।

बौरा—वि० [सं० वातुल] पागल, मूर्ख, सनकी, बावला । ~राम वियोगी ना जिअै, जिअै न **बौरा** होइ । → सा० बिर० (३) १८-२, सब० ४१-२, पद ३०६-१, चांचर(५) १ ।

बौराई—क्रि० [हि० बौरा+आई] बावला होने की क्रिया करते हैं ।→ जौ रे कसावै अनतै जाई, सो बाउर अपनै **बौराई** । → र० ६४-५ ।

बौराना—क्रि० [हि०] पागल हो गया है । ~संतो देखत जग **बौराना** ।→ पद २६७-१, पद २०८-५ ।

बौराया—क्रि० [हि० बौरा] पागल हो गया; बावला हो गया । ~करमै कै कै जग **बौराया**; सवित भक्ति लै बाँधिनी माया । →र० ४-२, पद २०८-५ ।

बौरी—वि० [हि० बौरा] बावली; पगली । ~ जाड़न मरै सपेदी सौरी, खसम न चीन्है घरनि भौ **बौरी** ।→र० ७३-३, सब० ७८-१ ।

ब्याई—क्रि० [?] जन्म देना, उत्पन्न करना, पैदा करना । ~जल की मछरी तरवरि **ब्याई**, कूता कौ लै गई बिलाई । →सब० ४८-४ ।

ब्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] रोग, शारीरिक रोग । ~जुगन-जुगन की त्रिखा बुझांनीं करम भरम अघ **ब्याधि** टरै । →पद २४६-७; पद २०७-७ ।

ब्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याधि] विपत्ति । ~काहू महिं मोती मुकताहल काहू **ब्याधि** लगाई । →पद २१६-४ ।

ब्यावै—क्रि० [?] बच्चा पैदा करना । ~जौ **ब्यावै** तौ दूध न देई, गाभिन अमृत सरवै । →सब० २७-३ ।

ब्यौंतै—क्रि० [सं० व्यवस्था] कहते हैं । ~बात **ब्यौंतै** असमान की, मुद्दति नियरानी ।→सब० १३५-६ ।

ब्यौसाई—क्रि० [सं० व्यवसाय] व्यवसाय करेगा । ~माया जोरि जोरि करै इकठी, हँम खैहैं लरिका **ब्यौसाई** । →सब० १२०-३ ।

ब्यौहारा—संज्ञा पु० [सं० व्यवहार] सांसारिक प्रपंच या व्यवहार । ~ निज निरखत गत **ब्यौहारा** । → सब० ८-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्यौहारो—संज्ञा पु० [सं० व्यौहार] आचरण। ~बाबू ऐसा है संसार तिहारो, ई है कलि **ब्यौहारो**। → सब० १८८-१।

ब्रम्हनालि—संज्ञा स्त्री० [सं० ब्रह्मनालि] सुषुम्ना नाड़ी। ~**ब्रम्हनालि** जे संमि करि राखै, आवागमन न होई। →पद ३०५-१७।

ब्रह्म अगनि—संज्ञा पु० [सं० ब्रह्माग्नि] ज्ञान की अग्नि। ~**ब्रह्म अगनि** मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै। →३४-७।

ब्रह्मांड—संज्ञा पु० [सं०] चौदह भुवनों का समूह; यहाँ तात्पर्य है समष्टि। ~तिन्ह पुनि रचल पिंड **ब्रह्मंडा**; छव दरसन छानवे पाषंडा। →र० २·५।

ब्राह—संज्ञा पु० [सं० वराह] वराह अवतार। ~वै करता नहिं **ब्राह** कहाया, धरनि धरो नहिं भारा।→ पद २६२-५।

ब्रिछ—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष; पेड़; तरु। दे० 'बिरवा'। ~पड़ा पुकारै **ब्रिछ** तरि, आजि मरै कै काल्हि। →सा० ज्ञान० (४) २-२।

भ

भँगारि—संज्ञा पु० [हि० भाँग] कूड़ा-करकट, मल। ~बाहरि ढोल्या हींगलू, भीतरि भरी **भँगारि**। → सा० भेष० (२४) ७-१।

भंजन—संज्ञा पु० [सं०] नष्ट करना, तोड़-फोड़। ~ भांड़ा **भंजन** करैं सबहिं का, कछू न सूझै, आँधी रे। →सब० २७-२।

भंजनां—वि० [सं० भंजक] नष्ट करने वाला। ~हरि किन सुमिरै दुख **भंजनां**। →सब० ५३-२।

भंडार—संज्ञा पु० [सं० भण्डागार] भाण्डार, कोष, खजाना, निधि। ~ लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम **भंडार**। → सा० सुमि० (२) २६-१।

भँवर—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] भौंरा, अलि, भ्रमर। ~कबीर भया है केतकी, **भँवर** भए सब दास। → सा० साधुम० (३०) ११-१, सा० बेसा० (३५) १६-१।

भँवरा—संज्ञा पु० [हि०] हिंडोले की एक लकड़ी जो मयारी (धरन) में लगी रहती है और जिसमें डोरी तथा डण्डी बँधी रहती है। ~लोभ मरुवा विषै **भंवरा** काम कीला ठानि। → हिंडोला (८) १-३।

भए—क्रि० [सं०√भू] हुए, हो गए। ~यह तन तौ सब बन भया, करम जु **भए** कुहारि। →सा० चिता० (१२) ४४-१।

भक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णवों की नवधा भक्ति। ~करमै कै कै जग बौराया, सक्ति **भक्ति** लै बाँधिनि माया। →र० ४-२।

भखै—क्रि० [सं० भक्षण] भोजन करना। ~पसु के मांसु **भखै** सब कोई, नरहि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न भखै सियारा जी। →सब० ११५-२, पद ३१८-१।

भक्खिन—संज्ञा पु० [सं० भक्षण] भोजन। ~सूकर स्वाँन काग को **भक्खिन** तामैं कहा भलाई। → सब० १०२-४।

भग—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। ~ कबीर **भग** की प्रीतड़ी, केते गए गडंत। → सा० कामी० (२०) १३-१।

भगत—संज्ञा पु० [सं० भक्त] शिष्य। ~जाति पांति न लखै कोई **भगत** भौ भंगी।→पद ३२८-४।

भगतबछल—वि० [सं० भक्तवत्सल] भक्तों पर कृपा या स्नेह करने वाला। ~दीनदयाल क्रिपाल दमोदर, **भगत-बछल** भौ हारी। → सब० ६८-६, पद २०६-६।

भगतां—संज्ञा पु० [सं० भक्त] भक्त। दे० 'भगत'। ~**भगतां** कै भगतिनि होइ बैंठी, तुरकां कै तुरकांनीं।→ पद २२७-७।

भजई—क्रि० [सं०√भज्] भजता है। उपासना करता है। ~सो झूठा जो सत कहँ तजई, गुर की दया राम को **भजई**।→र० ६६-३।

भजाऊ—क्रि० [हि० भागना] भागो। ~नहिं देखिए, नहिं आपु **भजाऊ**, जहाँ नहीं तहँ तन मन लाऊँ।→ ज्ञान चौं० (१) २३।

भजिगौ—क्रि० [सं० भग्न] नष्ट हो गया। ~जरि गौ कंथा धजा गयौ टूटी, **भजिगौ** डंड खपर गयौ फूटी। →सब० १२६-४।

भज्यौ—क्रि० [सं० भजन] उपासना की। ~ (तैं) **भज्यौ** न जगपति राजा।→पद २२०-२।

भटका—क्रि० [हि०] भटकना। ~ लखि नहिं परै नाम साहेब का फिरि फिरि **भटका** खाया हो। → पद २८७-६।

भट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्राष्ट्र प्रा० भट्ठ] भट्ठी। ~अरध उरध ले **भट्ठी** रोपिनि, ब्रह्म अगिनि परजारी।→ पद ३०३-३।

भठछार—संज्ञा पु० [सं० भ्राष्ट्र+क्षार] भट्ठे की राख। ~मूल बिनंठा माँनवी, बिनु संगति **भठ-छार**।→सा० कुसं० (२५) १-२।

भतार—संज्ञा पु० [सं० भर्तार] पति। दे० 'भरतार'।~कहहिं कबीर सब नारि के अविचल पुरुष **भतार**। → र० २७-६।

भनीजं—क्रि० [सं० भणन्] कहते हैं। ~ऐसी बिधि सुर विप्र **भनीजं**, नाम लेत पीठासन दीजै। →विप्र० (२) २०।

भभूका—संज्ञा पु० [दे०] लपट, चिन-गारी।~पानी मँह पखान की रेखा, ठोंकत उठै **भभूका**।→सब० १६१-३।

भमरि—क्रि० [सं० भ्रम] भयभीत होना, भ्रम में पड़ना। ~भ भा **भमरि** रहा भरपूरी, भभरे ते है नियरे दूरी।→ज्ञान चौं० (१) ५१।

भया—क्रि० [सं०√भू] हो गया। ~यह तन तौ सब बन **भया**, करम जु भए कुहारि। → सा० चिता० (१२) ४४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भया—संज्ञा पु० [सं० भय] भय। ~ पहुँची बात विद्या के पेटा, बाहू के भर्म **भया** संकेता। →र० ५७-३।

भर—वि० [सं० वर] श्रेष्ठ। ~ई **भर** जुवती वै बार नाह; अति रे तेज त्रिय रैनि ताहि। → वसंत (४) ५-४।

भरतार—संज्ञा पु० [सं० भर्त्तार] पति। ~ताहि न कबहूँ आदरै; परम पुरुष **भरतार**। →सा० सुन्दरि० (५२) २-२, सब० २२-८, सब० १४६-२।

भरतारा—संज्ञा पु० [सं० भर्ता] भरण पोषण करने वाला। दे० 'भरतार'। ~तीनि लोक ब्रह्मंड मैं, सब के **भरतारा**। →सब० ६५-२।

भरना—संज्ञा स्त्री० [हि०] करघे की ढरकी। →पाई करि जब **भरना** लीन्हो, बै बाँधन की रामा। → सब० १२७-८।

भरपूरा—वि० [हि० भरा + पूरा] परिपूर्ण, व्याप्त। दे० 'भरपूर'।~ हंम नांहीं तुम नांही रे भाई, रहै रांम **भरपूरा** रे। →सब० ८४-६।

भरपूरी—वि० [हि० भरा + पूरा] परिपूर्ण, व्यापक। ~जोगिया ने एक ठाठ कियो है, राम रहा **भरपूरी**। सब० ६०-८।

भरम—संज्ञा पु० [सं० भ्रम] भ्रम, धोखा। ~बिसमिल तांमसु **भरम** कंदूरी, भखि लै पंचैं होइ सबूरी। →सब० ७२-४, सा० चाँण० (१७) २१-२, सा० उप० (३४) ४-१; सा० सूरा० (४५) १-२, सब० ५०-८।

भरमत—क्रि० [सं० भ्रमण] भटकते हुए। ~जौ पै रसनां रामुं न कहिवौ; तौ उपजत बिनसत **भरमत** रहिवौ। →सब० १३२-१।

भरमैं—क्रि० [सं० भ्रम] भ्रमित होना। ~जो कछु खोजौ सो तुमहीं मांहि; काहै कौ **भरमैं** बाहरि। →सब० ३३-२।

भरल—वि० [हि० भरना] भरा हुआ, परिपूर्ण। ~कबहुँ **भरल** बहै कबहुँ सुखाय। →सब० १६७-२।

भरांति—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रांति] भ्रम। दे० 'भरम'। ~बाहर भीतर रमि रहा, तातैं छूटि **भरांति**। → सा० सब० (४०) १-२।

भरिष्ट—वि० [सं० भ्रष्ट] भ्रष्ट।~ करम असौच उच्छिष्टा खाहीं, मति **भरिष्ट** जम लोकहिं जाहीं। → विप्र० (२) ८।

भर्म—संज्ञा पु० [सं० भ्रम]। दे० 'भरम'। ~**भर्म** के बाँधल ई जग, यहि विधि आवै जाय। →र० २३-६; र० ५७-३।

भर्म—संज्ञा पु० [सं० भ्रम] १. अधर्म को धर्म समझना। २. भ्रम। ~ कहैं कबीर सुनो हो संतो, **भर्म** भुली दुनियाई। →सब० १६५-७।

भर्मा—संज्ञा पु० [सं० भ्रम] धोखा। दे० 'भरम।' ~वेद कितेब छाँडि देहु पांड़े, ई सब मन के **भर्मा**। →सब० १७४-१०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र्भमित—वि० [सं० भ्रमित] भ्रम में पड़ा हुआ। ~जैसे स्वान कांच मंदिर में, **र्भमित** भूंकि पर्‌यो। → सब० ५-२।

भल—वि० [सं० भद्र; प्रा० भल्ल] अच्छी तरह। ~**भल** सुम्रिति जहड़ा-यहु हो रमैया राम। →वेलि० (६) २-१।

भल—१. वि० [सं० भद्र; प्रा० भल्ल] अच्छा, श्रेष्ठ। २. अव्य० [सं० भद्र प्रा० भल्ल] भले ही, चाहे। ~राँम नाँम सूं प्रीति करि; **भल** भल नींदौ लोग। सा० क० बि० क० (१६) १-२; पद २३६-४।

भलका—संज्ञा पु० [दे०] बाण या भाले का फलक। दे० 'भलाका'। ~ साँठी साँठी झड़ि पड़ी, **भलका** रहा सरीर। →सा० सब० (४०) ६-२।

भलाका—संज्ञा पु० [हि०] तीर का फलक, गाँसी। दे० 'भलका'। ~ भरम **भलाका** दूरि करि, सुमिरन सेल सँबाहि। →सा० सूरा० (४५) १-२।

भलो—वि० [हि० भला] ठीक, उचित। ~धींगा धींगी **भलो** न माना; जो काहू मोहि हिरदय न जाना। → र० ६७-२।

भवंगम—संज्ञा पु० [सं० भुजंगम] सर्प। ~संसार **भवंगम** डसिले काया, अरु दुखदारन व्यापैं तेरी माया। → सब० १४५-३।

भवंगहि—संज्ञा पु० [सं० भुजंग + हि० हि] सर्प। दे० 'भवंगम'। ~सुरही तिन चरि अमृत सरबैं, लेर **भवंगहि** पाई। →पद २६८-५।

भव—संज्ञा पु० [सं०] संसार, जगत्। ~गुड़ करि ग्यांन ध्यांन कर महुवा; **भव** भाठी करि भारा। → सब० ३५-३, र० ३६-३।

भव—संज्ञा पु० [सं०] संसरण, आवा-गमन। ~**भव** अस गरुआ दुःख अतिभारी, करु जिन जतन जे देसु विचारी। →र० २०-४।

भवन—संज्ञा पु० [सं०] मकान। ~ केसव कै कंवला होइ बैठी; सिव के **भवन** भवांनीं। →पद २२७-३।

भवांनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० भवानी] पार्वती। ~केसव कै कंवला होइ बैठी, सिव के भवन **भवांनीं**। → पद २२७-३।

भसम—संज्ञा पु० [सं० भस्मन्] भस्म, राख। ~जे जारैं तौ होइ **भसम** तन गाड़े क्रिमि कीट खाई। → सब० १०२-३; पद ३१७-५, सब० १६३-३।

भाँजै—क्रि० [सं० भंजन] तोड़ना, विनष्ट करना। ~मैवासा **भाँजै** नहीं, होन चहै निज दास। →सा० भेष० (२४) २५-२।

भांड़—संज्ञा पु० [सं० भण्ड] विनाश; बरबादी। ~सतगुर की किरपा भई, नहीं तौ करती **भांड़**। →सा० माया० (१६) ७-२।

भांड़ा—संज्ञा पु० [सं० भाण्ड] बर्तन, पात्र। ~दुनियाँ **भांड़ा** दुख का;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरी मुहाँमुह भूष । →सा० चिता० (१२) ४७-१, पद ३०२-४ ।

भाँड़े—संज्ञा पु० [सं० भाण्ड] बर्तन दे० 'भाँड़ा'। ~तेहि मटिया के **भाँड़े** पाड़े, बूझि पियहु तुम पानी । →सब १७४-५, कहरा (३) ५-३ ।

भांड़ै—संज्ञा पु० [सं० भाण्ड] बर्तन । दे० 'भाँड़ा'। ~एकै खाक गढ़े सब **भांड़ै** एकै कोंहरा सांनां । →पद ३२५-४, पद ३४९-६ ।

भांनन—क्रि० [सं० भञ्जन] विनाश करना । ~**भांनन** गढ़न सवांरन संम्रथ ज्यौं राखै त्यौं रहिए । → पद २०८-२ ।

भाँमिनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० भामिनि] स्त्री । ~तन मन डस्यौ भुजंग **भाँमिनीं** लहरइं वार न पारा । → पद २२३-५ ।

भांवता—वि० [हि० भावन] अच्छा लगने वाला; प्रिय । ~कबीर हरि का **भांवता**, दूरै तैं दीसंत । →सा० साधसा० (२९) ३-१ ।

भांवनीं—संज्ञा स्त्री० [स० भामिनी] स्त्री । दे० 'भाँमिनीं' । ~सात सूत मिलि बनिज कीन, करम **भांवनीं** संगि लीन । →पद २३९-५ ।

भांवरि—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] विवाह के समय परिक्रमा करना । ~रांम देव संगि **भांवरि** लेइहौं धंनि धंनि भाग हमारा ।→सब० १४९-६; पद ३१२-५ ।

भाइ—संज्ञा पु० [सं० भाव] भाव । ~ ~साँई सेती साँच चलि, औरों सौं सुध **भाइ** । →सा० भेष० (२४) ११-१, पद ३२१-१, सा० चित्त (४२) ३-१; सब० १७-६, सा० कस्तू० (५३) ७-१, सा० हे० प्री० (४४) ४-२ ।

भाइ—संज्ञा पु० [सं० भाव] प्रकार, ढंग । ~कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल **भाइ** । →सा० मधि० (३१) ९-१ ।

भाइ—संज्ञा पु० [सं० भाग] भाग, हिस्सा, अंश । ~भगति दुवारा साँकरा, राई दसएँ **भाइ** । →सा० मन० (१३) २६-१ ।

भाइ—संज्ञा पु० [सं० भाव] परिणाम । ~कदली सीप भुवंग मुख, एक बूंद तिहुँ **भाइ** । → सा० कुसं० (२५) २-२ ।

भाइ—संज्ञा पु० [सं० भाव] समान, भांति, तरह । ~एक **भाइ** दीसैं सब नारी, नां जांनौं को पियहिं पियारी । → पद २६२-४, सा० चित० (४२) २-१ ।

भाई—१. संज्ञा पु० [सं० भ्रातृ] बन्धु । २. [हि० भाना] प्रिय लगी । ~ नाना रूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि **भाई** पतिआई । → पद ३१२-५ ।

भाई—क्रि० [सं० भान] अच्छा लगा, पसंद आया । ~ हरिहर ब्रह्मा के मन **भाई**, बिबि अच्छर ले जुक्ति बनाई । →र० ५-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाए—क्रि० [सं० भान], प्रिय लगे। ~राम चरन मनि भाए रे। → पद २५५-१।

भाए—क्रि० [सं० भान] अच्छा लगना; प्रिय लगना। ~जौ पै पिय के मनि नाहीं भाए। →सब० १३०-१।

भाखि—क्रि० [सं० भाषण] बोलकर। ~कहै कबीर अक्खर दुइ भाखि; होइगा रांम त लेइगा राखि। → पद २५६-५।

भाखो—संज्ञा पु० [हि० भासना] ज्ञान। ~गुर-परताप जिन्हैं जस भाखो, जन बिरले सुधि पाई हो। → कहरा (३) १०-१०।

भाग—संज्ञा पु० [सं० भाग्य] भाग्य। ~मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ। →सा० सू० मा० (१४) १०-२।

भाग—संज्ञा पु० [सं० भाग्य] प्रारब्ध। ~मानुख तन पायौ बड़ें भाग। → पद २२५-१, सब० १४९-६; पद २०९-१।

भागां—क्रि० वि० [सं० भग्न] टूटने पर, अलग होने पर। ~चंदन भागां गुन करै, जैसे चोली पंन। →सा० बिर्क० (३७) ३-१।

भाजई—क्रि० [हि० भागना] भागती है, दूर होती है, चली जाती है। ~ओसों प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ। →सा० सुमि० (२) २१-२।

भाजन—क्रि० [सं० भाज्] भागना। ~पग तौ पाला मैं गिला; भाजन लागी सूल। → सा० भेष० (२४) १-२।

भाजिसी—क्रि० [हि० भागना] भाग सकती है। ~अँदेसौ नहिं भाजिसी; संदेसौ कहियाँ। → सा० बिर० (३) ९-१, २।

भाठी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्राष्ट्र] भट्ठी। ~गुड़ करि ग्यांन ध्यांन कर महुवा, भव भाठी करि भारा। → सब० ३५-३, पद ३४४-५; पद २५०-५; पद २०१-३, सब० ११२-५; सब० ८७-५।

भाठी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्राष्ट्र] शराब की भट्ठी। ~कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ। → सा० रस० (६) ३-१।

भातं—संज्ञा पु० [सं० भक्त] पकाया हुआ चावल, ओदन। ~भातं उलटि बरातै खायो, भली वनी कुसलाता। →सब० ३६-५।

भानु—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य। ~कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां। →पद ३०२-६।

भानौं—क्रि० [सं० भंजन] दूर कर दो, नष्ट कर दो, भंजन करो। →कलंक उतारौ साँइयाँ, भानौं भरम अँदेस। →सा० बीन० (५६) ४-२।

भाय—क्रि० [सं० भास] भासता है, प्रतीत होता है। ~अगम अपार रूप बहु, औ अरूप बहु भाय। → र० ७७-५।

भार—संज्ञा पु० [हि०] वजन। वह बोझ जो बहँगी के दोनों ओर लाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर ले जाया जाता है। ~समुद कोटि जाके पनिहार, रोमावलि कोटि अठारह **भार**। →सब० १२८-८।

भारती—संज्ञा पु० [सं०] संन्यासियों के दस भेदों में एक। ~गाँव बसत है गरब **भारती** बाम काम हंकारा हो। →कहरा (३) ७-४।

भारी—वि० [हि० भार] कठोर। ~तू मेरी पुरिखा हौं तेरी नारी, तोहरि चाल पाहनहुँ तै **भारी**। ~ पद २४३-४।

भालि—संज्ञा स्त्री० [सं० भल्ल] भाला। ~मारा है जे मरैगा, बिन सर थोथी **भालि**। →सा० ज्ञान वि० (४) १-१।

भाव—संज्ञा पु० [सं०] प्रेम।~जाकी **भाव** होत हरि ऊपरि, जागत रैंनि बिहानीं। →सब० ४४-२, सब० १६०-६।

भाव—क्रि० [हि० भाना] अच्छे लगते हैं, प्रिय लगते हैं।~कहहिं कबीर जो रामहिं जानैं, सो मोहि नीके **भाव**। →र० ६७-७।

भाव—संज्ञा पु० [सं०] विचार, दृष्टि। ~रांम सनेही बाहिरा, ऊजँड़ मेरे **भाव**। →सा० साधुम० (३०) २-२।

भावई—क्रि० [सं० भावन] प्रिय लगना, अच्छा लगना। ~ कामी अमीं न **भावई**, बिख ही कौं ले सोधि। →सा० कामी न० (२०) १६-१।

भावता—वि० [हि०] प्रिय। ~जो जाही का **भावता**, सो ताही कै पास। →सा० हे० प्री० स० (४४) १-१; ३-१।

भावै—क्रि० [सं० भावन] (जैसा) चाहें, (जैसा) अच्छा लगे। ~ **भावै** त्यौं परमोधिए, ज्यूं बंसि बजाई फूक। →सा० गुरु० (१) २१-२।

भावै—अव्य० [हि०] भले ही, चाहे। ~कुबुधि न जाई जीव की, **भावै** स्यंभ प्रमोधि। ~सा० कामी० (२०) १६-२, सा० भेष० (२४) ११-२, पद २०२-१२।

भावै—क्रि० [हि० भाना] प्रिय लगे; अच्छा लगे। ~रे मन जाहि जहाँ तोहि **भावै**। →पद २७७-१।

भिख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] भीख। दे० 'भीख'। ~ता सुख तैं **भिख्या** भली, हरि सुमिरत दिन जाइ। →साधुम० (३०) ४-२।

भिच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] जीवनयापन का साधन, अन्न। ~ जन जो चोरी **भिच्छा** खाहीं, सो बिरवा पलुहावन जाहीं। → र० ६०-२।

भितियन—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति] दीवार, फलक। ~पाहन होयके सब गये, बिनु **भितियन** को चित्र। → र० ५६-४।

भित्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] दीवार। → जैसी **भित्ति** तैसि है नारी, राजपाढ सब गनै उजारी। →र० ७१-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भिदै—क्रि० [सं० भेदन] बिंध जाते हैं। ~सुधबुध कै हिरदै **भिदै**, उपज विवेक विचार। →सा० निगु० (५५) ७-२।

भिद्या—क्रि० [सं०√भिद्] घुस गया, प्रविष्ट कर गया। ~भीतरि **भिद्या** सुमार ह्वै, जीवै कि जीवै नाँहि। →सा० बिर० (३) १५-२।

भिधा—क्रि० [सं० वेधन] बिंध गया। ~कहै कबीर भीतरि **भिधा**, सतगुरु कै हथियार। →सा० गुरु० (१) ६-२।

भिरै—क्रि० [हि० भिड़ना] लड़ता है। ~सो मुल्ला जो मन सौं लरै, अहनिसि काल चक्र सौं **भिरै**। →पद ३४६-३।

भिस्त—संज्ञा पु० [फ़ा० बिहिश्त] स्वर्ग; शान्ति का प्रतीक। ~होय **भिस्त** जौ चित न डोलावै, खसमहि छोड़ि दोजख को धावै। → र० ५-८, सा० निह० प० (११) ७-२, सब० ४०-६; पद ३०४-६, र० ३६-४, र० ४०-४।

भिस्ति—संज्ञा पु०[फा० बिहिश्त] स्वर्ग। दे० 'भिस्त'। ~दिल महिं खोजि देखि खोजा दे, **भिस्ति** कहाँ तैं आई। →सब० ७६-१०, सब० १४१-८, सब० २२६-५, ८, १०।

भींगी – वि० [हि० भीगना] भीगी हुई, जर्जर। ~**भींगी** पुरिया घर ही छांड़ी चला जुलाह रिसाई। →पद २७१-८।

भींनां—क्रि० [हि० भींगना] भींग गया। दे० 'भीनौं'। ~आंधी पाछै जो जल बरसै तिहिं तेरा जन **भींनां**। →पद ३०२-५।

भीख—संज्ञा स्त्री० [सं० भिक्षा] भिक्षा। ~स्वांग जती का पहिरि करि; घरि घरि माँगै **भीख**।→सा० गुरु० (१) २७-२।

भीजे—क्रि० [सं० अभ्यंजन] मर कर लीन हो गए। ~छपन कोटि जादव जंह **भीजे**, मुनि जन सहस अठासी। →सब० १७४-३।

भीति—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति] दीवाल। दे० 'भित्ति'। ~काहे कूं **भीति** बनाऊँ टाटी, का जानूं कहाँ परिहै माटी। →सब० ८०-१।

भीती—संज्ञा स्त्री० [सं० भित्ति] दीवार। दे० 'भित्ति'। ~बड़ छली रावन सो गौ बीती, लंका रहल कंचन की **भीती**। →र० ४७-२।

भीनौं—क्रि० [हि० भींगना] भींग गया। ~ प्रेम भगति मेरौ मन **भीनौं**। →सब० २१-२।

भीरि—संज्ञा स्त्री० [हि० भीड़]। ~ भीड़, पुंज, समूह। ~भगवंत **भीरि** सकति सुमिरन की काटि काल की फांसी। →सब० ६३-११।

भुंइ—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि] जमीन; पृथ्वी। ~कहै कबीर नर गरब न कीजे, जेता तन तेती **भुंइ** लीजै। →सब० ८०-४, सब० २३-३, कहरा (३) ५-३; सब० १७८-६।

भुंई—संज्ञा स्त्री० दे० 'भुंइ'।

भुइं—संज्ञा स्त्री० दे० 'भुंइ'।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भुक्ती—संज्ञा पु० [सं० भुक्ति] भोग्य पदार्थ। ~सींगी पात्र कछू नहिं वाके, काहे को माँगै **भुक्ती**। → सब० ६०-५।

भुगतें—क्रि० [सं० भोग] भोग करने से। ~नारि पराई आपनी, **भुगतें** नरकहिं जाइ। →सा० कामी० (२०) २४-१।

भुगुति—संज्ञा स्त्री० [सं० भुक्ति] आसक्ति।~भोगी भोग **भुगुति** जनि भूलहु, जोग जुगुति तन साधहु हो। →कहरा (३) १-८।

भुगुति—संज्ञा स्त्री० [सं० भुक्ति] भोग। ~ कहै कबीर संसा नहीं, **भुगुति** मुकुति गति पाइ रे। → सब० ६७-१६।

भुतवा—संज्ञा पु० [सं० भूत] प्रेत। ~**भुतवा** के पूजे भुतवै होई। → पद २४२-८।

भुनगा—संज्ञा पु० [अनु०] पतिंगा। ~और सबै सावन कै **भुनगा**, जगत पगां तलि पेलै। →सब० ६६-६।

भुवंग—संज्ञा पु० [सं० भुजंग] सर्प, साँप। ~भाव तो **भुवँग** देखो, अति बिबिचारी। →सब० ८५-४, सा० चिता० (१२) ६-२, सा० कुसं० (२५) २-२।

भुवंगम—संज्ञा पु० [सं० भुजंगम] सर्प, साँप। दे० 'भुवंग'। ~बिरह **भुवंगम** तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ। →सा० बिर० (३) १८-१, सा० साधसा० (२६) २-२।

भुसैं—क्रि० [हि० भौंकना] भौंकना, कुत्तों का बोलना। ~हस्ती चढ़ि नहि डोलिए, कूकुर **भुसैं** जु लाख। →सा० वेसा० (३५) १२-२।

भूंकि—क्रि० [हि० भौंकना] भौंक कर। ~जैसे स्वान कांच मंदिर में, भ्रमित **भूंकि** मर्‍यो। →सब० ५-२।

भूंजै—क्रि० [सं० भोग] भोगता है। ~इन्द्री केरे बसि पड़ा, **भूंजै** विखै निसंक। →सा० कामी० (२०) २६-२।

भूँभुरि—संज्ञा स्त्री० [दे०] गर्म रेत। ~ऊपर के घाम तरे कै **भूँभुरि**, छाँह कतहुँ नहि पायहु हो।→कहरा (३) १-२२।

भू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। दे० 'भुंइ'। ~ऐस भगत भया **भू** ऊपरि गुरु पै राज छुड़ाया। → पद ३१४-६।

भूखन—संज्ञा पु० [सं० भूषण] आभूषण, गहना। ~जैसे बहु कंचन के **भूखन** एकहिं घालि तवावहिंगे। →सब० १८४-५।

भूत—संज्ञा पु० [सं०] प्रेतात्मा। ~ ते घट मरहट सारिखे, **भूत** बसैं ता माँहि। → सा० साधु म० (३०) ३-२।

भूप—संज्ञा पु० [सं०] श्रेष्ठ। ~उदधि **भूप** ते तरुवर डाहै, मच्छ अहेरा खेलै। →पद १६६-८।

भूभुरि—संज्ञा स्त्री० [सं० भू+भुर्ज] पृथ्वी का मल। ~पानी माँहि तलफि गौ **भूभुरि**, धूरि हिलोरा देई। →पद ३२३-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी । ~ पूरब जन्म **भूमि** के कारन, बीज काहे को बोयो । →पद ३१६-२ ।

भूलल—क्रि० [हि० भूलना] भूल गया । ~पाषंड रूप रचो इन तिरगुन, तेहि पाषंड **भूलल** संसारा ! → पद ३२४-२ ।

भूलि—क्रि० [प्रा० भुल्ल] भूल करके, अज्ञानवश । ~कबीर **भूलि** बिगाड़ियाँ, (तूं) नाँ करि मैला चित्त । →सा० बीनती० (५६) २-१ ।

भूष—संज्ञा स्त्री० [सं० बुभुक्षा] भूख, तृष्णा, चाह । ~दुनियाँ भांड़ा दुख का, भरी मुहाँमुह **भूष** । →सा० चिता० (१२) ४७-१ ।

भृंगी—संज्ञा पु० [सं० भृंग + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का भौंरा । ~रामनाम लौ लाय सो लीन्हा, **भृंगी** कीट समुझि मन दीन्हा । → र० २०-३ ।

भेउ—संज्ञा पु० [सं० भेद] भेद, रहस्य । ~अब हम इसका पाया **भेउ**, हुए क्रिपाल मिले गुर देव । →सब० ४६-६, सब० १४३-६; र० ३६-४ ।

भेऊ—संज्ञा पु० दे० 'भेउ' ।

भेख—संज्ञा पु० [सं० वेष] रूप, रूपात्मक योनियाँ । ~माटी एक **भेख** धरि नांनां तामैं ब्रह्म समांनां । → पद २२६-६ ।

भेख—संज्ञा पु० [सं० वेष] बाहरी ठाट-बाट, बाह्याडम्बर । ~कबीर माला मनहि की, और संसारी **भेख** । →सा० भेष० (२४) ६-१, सब० ३१४-१ ।

भेटीले—क्रि० [हि०] भेट कर ले, मिल जाय । ~ बेधीले चक्र भुअंगा, **भेटीले** राइ निसंगा । → सब० १७१-६ ।

भेद—संज्ञा पु० [सं०] रहस्य, मर्म । दे० 'भेउ' । ~नष्ट गए जिन्ह वेद बखाना, वेद पढ़ै पै **भेद** न जाना । →र० ६३-३, सब० ६५-६; र० ३५-१ ।

भेदा—संज्ञा पु० दे० 'भेद' ।

भेदै—क्रि० [सं० भेदन] वेधना, सुगंध समाना । ~चंदन बास **भेदै** नहीं, जारा सब परिवार ।→सा० निगुणाँ० (५५) ११-२ ।

भेरा—संज्ञा पु० [सं० बेड़ा] एक प्रकार की नाव, बेड़ा, भेला । ~ **भेरा** देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि । →सा० गुरु० (१) २५-२, सा० बिर० (३) ४३-१, पद २३१-१०, सब० १०-११ ।

भेरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यह मृदंग जाति की लगभग दो हाथ लम्बी; हाथ से बनी हुई दो मुख वाली होती है, जिसका एक मुख एक हाथ लम्बे व्यास का बना होता है। ये मुख चमड़े से मढ़े और डोरियों से कसे रहते हैं जिनमें काँसे के कड़े पड़े रहते हैं। इसे दाहिनी ओर लकड़ी से और बाँयीं ओर हाथ से बजाते हैं, डंका । ~ढोल दमामा डुगडुगी, सहनाई औ **भेरि** । →सा० चिता० (१२) ३-१, पद २५५-६ ।

भेरैं—संज्ञा पु० [सं० बेड़ा] बेड़ा, नौका । दे० 'भेरा' । ~**भेरैं** चढ़े

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सो अधधर डूबे, निराधार भए पारं। →सब० २५-२।

भेला—संज्ञा स्त्री० [हि० भेंट] भेंट। ~भुजा बाँधि भेला करि डार्‌यौं, हस्ती कोपि मूंड मंहि मार्‌यौ। → सब० ४२-३।

भेलिसी—क्रि० [राज०] नष्ट कर देगा, भेदेगा। ~जम राना गढ़ भेलिसी, सुमिरि लेहु करतार। → सा० चिता० (१२) ७-१।

भेव—संज्ञा पु० [सं० भेद] रहस्य। दे० 'भेद'। ~तपसी माते तप के भेव, संन्यासी माते करि हमेव। → वसंत (४) १०-३।

भेव—संज्ञा पु० [सं० वेष] रूप, आकार। ~परम पुरख देवाधि देव, भगति हेत नरसिंघ भेव। →सब० १५६-११।

भेवा—वि० [सं० भेद] भिन्न-भिन्न। ~खोजहि गन गंधर्व मुनि देवा, अमित लोक खोजहिं बहु भेवा। → र० २५-४।

भेषां—संज्ञा पु० [सं० वेश] वेश में। जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराऊँ। →सा० बिर० (३) ४१-२।

भेसा—संज्ञा पु० [सं० वेश] वेश; स्वरूप। ~दर की बात कहौ दर-वेसा, पातसाह है कौने भेसा। → र० ४६-१।

भैं—संज्ञा स्त्री० [सं० भू] भूमि, मिट्टी। ~लागत ही भैं मिलि गया; पड़्या कलेजै छेक। →सा० गुरु० (१) ७-२।

भैं-भैं—अव्य० [उद्‌गार वाचक शब्द] व्याकुल होकर। ~भैं-भैं प्रिथिमी दहुँ दिसि धावैं, अस्थिर होय न औषध पावै। →र० ५-७।

भैं—संज्ञा पु० [सं० भेद; प्रा० भेव] भिन्न। ~सभ घटि एक एक करि लेखैं भैं दूजा करि मारैं। →पद २३०-६।

भैं—संज्ञा पु० [सं० भय] भय, डर; आतंक। ~जब लग मोर तोर करि लीन्हां, भैं भै जनमि जनमि दुख दीन्हा। →सब० ७-३।

भैं पड़्या—क्रि० [सं०√भू + हि० पड़ना] हो गया। ~भली भई जु भैं पड़्या गई दसा सब भूलि। →सा० पर० (५) १८-१।

भैं हारी—वि० [सं० भव + हि० हारी] भव सागर का हरण करने वाले; आवागमन से छुटकारा देने वाले। ~दीनदयाल क्रिपाल दमोदर, भगत बछल भैं हारी। →सब ६८-६।

भोजन—संज्ञा पु० [हि०] विषय। ~न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पांचो अधिक सवादी। →पद २६६-३।

भोती—संज्ञा पु० [सं० भौतिक] सांसारिक। ~व्यापी एक सकल में जोती, नाम धरे का कहिए भोती। → विप्र० (२) २५।

भोर—संज्ञा पु० [हि०] प्रातःकाल। ~सोइ सोइ सब रैंनि बिहांनी, भोर भयो तब जागे। →सब० १८६-२।

भोरा—वि० [हि० भोला] भोले, सरल।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~लोगा तुम हौ मीत के **भोरा**।→ पद २८५-१।

भोरै—वि० [हि० भोला] भोले, सरल, सीधे। ~कहै कबीर जौ रहै सुभाइ **भोरै** भाइ मिलै रघुराइ। →सब० १०१-६।

भोल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० भुल्ल] भूल। ~सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी **भोल**। →सा० गुरु० (१) २४-१।

भोलै—भाव० [हि० भूलना] भोलेपन में, अज्ञान में। ~**भोलै** भूली खसम कै, बहुत किया बिभिचार। →सा० पीवपि० (३६) ३-१।

भौ—संज्ञा पु० [सं० भव] भवसागर। ~मन ग्यांन जांनि कै करि बिचार, रांम रमत **भौ** तिरिबौ पार। → पद २२४-८।

भौ—क्रि० [सं० √भू] उत्पन्न हुआ। ~**भौ** बालक भग द्वारे आया, भग भोगे ते पुरुष कहाया। → र० २-१०।

भौ—क्रि० [सं० √भू] हो गया। ~रहिगौ पंथ थकित **भौ** पौना, दसो दिसा उजारि **भौ** गौना। →र० ४५-४, ५, पद २३६-२।

भौ—संज्ञा पु० [सं० भय] डर। ~बालापन गयौ जौबन जासी, जरा मरन **भौ** संकट आसी। →सब० ११७-३।

भौ—क्रि० [सं० भू धातु] हुआ। ~गगन मँडल मँह **भौ** उजियारा, उलटा फेर लगाया। →सब० १०६-६।

भौ—संज्ञा पु० [सं० भव] संसार। ~कुसलहि कुसल करत जग खींनां, पड़ै काल **भौ** पासी रे। सब० ८४-७, पद ३३८-४, सा० उपज० (५०) ६-१, सा० माया० (१६) १६-१।

भौजलि—संज्ञा पु० [सं० भवजल] संसार सागर, भवसागर। ~**भौजलि** अध-धर थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत अपार। सब० ७३-६, सब० १०-१२।

भौ भंगी—यौ० [हि० भवभंगी] संसार का भंजन करने वाला। ~जाति पांति न लखै कोई भगत **भौ भंगी**। →पद ३२८-४।

भौसागर—संज्ञा पु० [सं० भव+सागर] संसार-सागर। ~भेरा पाया सरप का, **भौसागर** के माँहि। →सा० बिर० (३) ४३-१, र० ६५-३।

भ्रमंत—क्रि० [सं० भ्रम] भटकते हुए, चक्कर काटते हुए। ~लख चौरासी जीअ जोनि महि **भ्रमंत** भ्रमंत नंद थाकौ रे। →पद २८२-३।

भ्रमाय—वि० [सं० भ्रम] भ्रमित, भ्रम में पड़े हुए। ~गुनातीत के गावते, आपुहिं गये **भ्रमाय**। →र० ६१-५।

भ्रमि—संज्ञा पु० [सं० भ्रम] धोखे में। ~ चितामणि प्रभु निकटि छाड़ि करि, **भ्रमि** भ्रमि मति बुधि खोई। →पद २५१-२।

भ्रमि भ्रमि—क्रि० [सं० भ्रम] भ्रमित होकर, मँडराकर। ~माया दीपक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नर पतंग; भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत। →सा० गुरु० (१) २०-१।

भ्रम्यौ—क्रि० [सं० भ्रमण] भ्रमण करना, चक्कर लगाना। ~सो साँई तन मैं बसै, **भ्रम्यौ** न जांनै तास। →सा० कस्तू० (५३) ३-१।

भ्रिग—संज्ञा पु० [सं० भृङ्ग] एक प्रकार का कीड़ा जो दूसरे कीड़ों को भी अपने समान बना लेता है। दे० 'भृंगी'। ~मोहिं तोहिं कीट **भ्रिग** की नाईं, जैसे सलिता सिंधु समाई। →पद २४०-५, पद ३२८-१।

भ्रिगी—संज्ञा स्त्री० [सं० भृङ्गी] विलनी नामक कीड़ा, जो और कीड़ों को भी अपने समान बना लेता है। दे० 'भृंगी'। ~ **भ्रिगी** कीट रहे ल्यौ लाइ, ह्वै लौलीन भ्रिग ह्वै जाइ। →सब० ५६-५, पद ३२८-१।

म

मंगल—संज्ञा पु० [सं०] विवाह के गीत। ~सखी सहेली **मंगल** गावैं, दुख सुख माथे हलदी चढ़ावै। → पद ३१२-४, पद २३८-४।

मंगलचार—संज्ञा पु० [सं० मंगलाचरण] मांगलिक कृत्य के समय गाया जाने वाला गान। ~दुलहिनीं गावहु **मंगलचार**। →सब० १४६-१।

मंछर—संज्ञा पु० [सं० मत्सर] ईर्ष्या। ~कांम क्रोध माया मद **मंछर**, ए संतति मों मांही। →सब० ६८-७।

मंजन—संज्ञा पु० [सं० मञ्जन] स्नान। ~क्या ऊजू जप **मंजन** कीए, क्या मसीति सिरु नाएं।→सब० २३-५, पद ३०८-३।

मंजन करै—क्रि० [सं० मञ्जन + हि० करना] सफाई करना, धोना, स्नान करना। ~काया **मंजन** क्या **करै**; कपड़ा धोइम धोइ। →सा० चिता० (१२) ५३-१।

मंजार—संज्ञा पु० [सं० मार्जार] बिलाव। ~तूं पिंजरु हउँ सुअटा तोर, जमु **मंजार** कहा करै मोर। → पद २६१-४।

मँजारी—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जारी] बिल्ली। ~सुरति सचान तेरी मति तौ **मँजारी**। →सब० ८५-५।

मंजूसा—संज्ञा स्त्री० [सं०मंजूषा] पिटारी, गुफा। ~मूड़ मुड़ाय फूलि का वैठे; मुद्रा पहिरि **मंजूसा** हो। →कहरा (३) ७-२।

मंजूसा—संज्ञा पु० [सं० मंजूषा] मुद्रा, शीशे की वालियाँ। ~मूंड मुड़ाइ फूलि का वैठे, कांननि पहिरि **मंजूसा**। →सब० १०४-३।

मंझन—संज्ञा पु० [दे०] माँजा, मादक-फेन। ~बगुला **मंझन** जांनई, हंसा चुनि चुनि खाइ। →सा० पारि० (४६) २-२।

मंझरिया—संज्ञा पु० [हि०] भीतर विद्यमान सच्चिदानन्द आतमा। ~ मांझ **मंझरिया** वसै जो जानै, जन होइहैं सो थीरा हो। →कहरा (३) ७-६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंझा—क्रि० वि० [सं० मध्य] मध्य में। ~लाबरि बिहने लाबरि संझा, इक लाबरि बस हिरदया **मंझा**। → ६१-२, पद ३३६-३।

मँझारि—क्रि० वि० [सं० मध्य] मध्य में, बीच में। साथ में। दे० 'मंझा'। ~कामिनि काली नागिनी, तीनो लोक **मँझारि**। →सा० कामी० (२०) १-१, पद २४५-८।

मंझि—कारक चिह्न [सं०] में। ~ माँइ बिड़ाँणी बाप बिड़, हम भी **मंझि** बिड़ाँह। →सा० चिता० (१२) ५६-१।

मंझै—क्रि० वि० [सं० मध्य] बीच में। दे० 'मँझा'। ~सोरह **मंझै** पवन झकोरै, आकासै फरु फ़रिया। → सब० ११९-६।

मंड—संज्ञा पु० [सं० मण्डप] मण्डप। दे० 'मंडप'। ~अखंड मंडल मंडित **मंड**, त्रि स्नान करै त्रीखण्ड। → सब० १४०-५।

मंडन—संज्ञा पु० [सं०] बंधन। ~ पानी ग्रहन भयो भव **मंडन**, सुखमनि सुरति समानी। →सब० ३६-६।

मंडप—संज्ञा पु० [सं०] मण्डप। ~ पांच जनां मिलि **मंडप** छायो चारि जनां मिलि लगन लिखाई। →पद २३८-३।

मंडल-मंडित—यौ० [सं०] मंडलों से सुसज्जित। ~अखंड **मंडल-मंडित** मंड, त्रि स्नान करै त्रीखण्ड। → सब० १४०-५।

मंडलिक—संज्ञा पु० [सं० माण्डलिक] मण्डलाधीश; राजा। ~छत्र चकवै **मंडलिक** झारि, अजहूं हो नर देख बिचारि। →वसंत (४) ६-४।

मंडान—वि० [सं० मंडन] विस्तार, फैलाव। ~झूठहि की **मंडान** है, धरती असमाना। →सब० १३५-३।

मँड़ान—संज्ञा पु० [सं० मंड] मंडप, साज-सज्जा के आयोजन। ~कबीर थोड़ा जीवना; माड़ै बहुत **मँड़ान**। →सा० चिता० (१२) ५-१।

मंत—संज्ञा पु० [सं० मंत्र] मंत्र। दे० 'मंतर'। ~कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि **मंत**। →सा० सुमि० (२) ३०-१, सा० बिर्क० ५-१, सब० ४३-१०।

मंतर—संज्ञा पु० [सं० मन्त्र] मन्त्र। ~घर घर **मंतर** देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना। → पद २९७-१३।

मंत्र—संज्ञा पु० [सं०] मननात् त्रायते इति मंत्रः—मनन करने से जो त्राण करे। ~ साँच **मंत्र** बाँधिनि सब झारी, अमृत वस्तु न जानै नारी। →र० १०-६।

मंद—वि० [सं०] मूर्ख, बेवकूफ। ~ अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं **मंद**। →सा० गुरु० (१) १८-२।

मंदर—संज्ञा पु० [सं० मंद्र] गंभीर ध्वनि। ~तुम यहि विधि समुझहु लोई, गोरी मुख **मंदर** बाजै। → सब० १४४-१।

मंदल—संज्ञा पु० [सं० मर्दल] मृदंग जाति का एक वाद्य। ~कबीर सब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जग हेरिया, **मंदल** कंधि चढ़ाइ।→ सा० बिर्क० (३७) १०-१।

मंदला—संज्ञा पु० [सं० मर्दल] एक विशेष प्रकार का वाद्य, मर्दल। दे० 'मंदल'। ~सुंनि मंडल मैं **मंदला** बाजै, तहां मेरा मन नाचै।→सब० ३५-७, १५-२।

मंदलिया—संज्ञा पु० [सं० मर्दल से] मर्दल बजाने वाला। ~घोल **मंदलिया** बैल रबावी कउवा ताल बजावै। →पद ३३१-३।

मंदिर—संज्ञा पु० [सं०] घर, मकान। ~ते **मंदिर** खाली पड़े, बैठन लागे काग। → सा० चिता० (१२) ४-२, ज्ञानचौं० (१) ३८; कहरा (३) ११-८।

मंदिल—संज्ञा पु० दे० 'मंदिर'।

मंदे—वि० [सं० मन्द] तुच्छ। ~एक नूर तैं सब जग कीआ कौन भले कौन **मंदे**। →पद २८१-४।

मंन—संज्ञा पु० [सं० मनस्] मन।~ दोइ जो भागा ना मिलै, मुकताहल अरु **मंन**। →सा० बिर्क० (३७) ३-२।

मकसूद—संज्ञा पु० [अ० मक़सद] उद्देश्य। ~क्या **मकसूद** मच्छ कछ होना, संखासुर न संहारा। →पद २६२-३।

मका—संज्ञा पु० [अ० मक्का] अरब का एक प्रसिद्ध नगर, जो मुसलमानों का तीर्थ-स्थान है। ~ मनु करि **मका** किबला करि देही, बोलनहारु परम गुर एही। →सब० ७२-३।

मग—संज्ञा पु० [सं० मार्ग] मार्ग; रास्ता, पथ। ~मैं बिरहिनि ठाढ़ी **मग** जोऊँ, राम तुम्हारी आस। → सब० २२-३।

मगन—वि० [सं० मग्न] मग्न, आनंदयुक्त, प्रसन्न। ~ उनमनि चढ़ा **मगन** रस पीवै, त्रिभुवन भया उजिआरा। →सब० ३५-२।

मगन—वि० [सं० मग्न] लीन, डूबा हुआ, निमज्जित। ~ कहै कबीर स्वामी सुख सागर, राम **मगन** सो पावै। →सब० ८८-७।

मगन—वि० [सं० मग्न] आनन्दित; प्रसन्न। ~होइ निसंक **मगन** होइ नाचै, लोभ मोह भ्रम छांड़ै। → सब० १३७-३।

मचाइ—क्रि० [सं० मंच] सजाकर। ~दरिया पार हिंडोलना, मेल्या कंत **मचाइ**। → सा० सुन्द० (५२) ५-१।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य; प्रा० मच्छ] मत्स्यावतार। ~सूर्य चन्द्र तारागन नाहीं, **मच्छ** कच्छ नहिं दूनी। →सब० ३१-६, पद २६२-३।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य, प्रा० मच्छ] मछली। ~**मच्छ** रूप माया भई, जबरहिं खेले अहेर। → र० ४६-५; सब० १७४-६।

मछ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] मछली; मत्स्यावतार। दे० 'मच्छ'। ~ गण्डक सालिगराम न सीला, **मछ** कछ होय जल नहीं हीला। →र० ७५-८।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मछरिया—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] मछली। दे० 'मच्छ'। ~मासु **मछरिया** तब तुम खइयो, जो खेतन में बोइया जी। →सब० ११५-४।

मजकण—संज्ञा पु० [सं० मध्यकण] दाने के बीच का सार। ~विषै विलंबी आतमाँ, ताका **मजकण** खाया सोधि। → सा० कामी० (२०) २०-१।

मजलिसि—संज्ञा स्त्री० [अ० मजलिस] सभा। ~**मजलिसि** दूरि महल को पावै। →सब० १४१-२।

मज्जनु—संज्ञा पु० [सं० मज्जन] लय। ~जब नख सिख यहु मन चीन्हा, तब अंतरि **मज्जनु** कीन्हा। →सब० १७१-४।

मझारं—क्रि० वि० दे० 'मझार'।

मझार—क्रि० वि० [हि०] मध्य में, बीच में। ~आतम ब्रह्म जो खेलन लागे काया नग्र **मझार**। → पद ३०६-४, सब० १७१-५।

मझारी—क्रि० वि० [हि० मज्झ+आरी (प्रत्य०)] मध्य में। दे० 'मझार'। ~जोगिया फिरि गयौ गगन **मझारी**। →सब० १२६-१।

मझूरि—क्रि० [म+दे० झूरि] चिंतित मत हो, संतप्त मत हो। ~रैंना दूर बिछोहिया, रहु रे संख **मझूरि**। →सा० विर० (३) ४४-१।

मटकावै—क्रि० [हि० मटकाना] मटकाती है। ~कागज टीकि चसम **मटकावै** कसि कसि बाँधै गाढ़ी। → पद ३१३-३।

मटिया—संज्ञा स्त्री० [हि० मिट्टी] मिट्टी में। ~उतानैं खटिया गड़िले **मटिया**, संगि न कछु लै जाइ। →सब० १०५-२।

मटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्तिका] मिट्टी। ~जेहि **मटिया** के घर मँह बैठै, तामे सृष्टि समानी। →सब० १७४-२।

मटुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० मटकी] मिट्टी का घड़ा। ~तनु करि **मटुकी** मनहिं बिलोइ, ता मटुकी महिं सबद संजोइ। →पद ३३०-३।

मड़ए—संज्ञा पु० [सं० मण्डप] मण्डप। दे० 'मंडप'। ~ **मड़ए** के चारन समधी दीन्हा, पुत्र बिबाहल माता। →सब० ३६-३।

मड़हट—संज्ञा पु० [हि० मरघट] मरघट, श्मशान। ~**मड़हट** देखें डरपती, चौड़े दीया जालि। →सा० काल० (४६) १६-२।

मतवाली—वि० [सं० मत्त+हि० वाली] मस्ती। ~बाँधि मारि डाँड़ि सभ लैहैं, छुटि है सभ **मतवाली** हो। → कहरा (३) १-११।

मतसर—संज्ञा पु० [सं० मत्सर] ईर्ष्या। ~त्रिसनां कांम क्रोध मद **मतसर** काटि काटि कस दीन्हां। →पद ३४४-४।

मता—संज्ञा स्त्री० [सं० माता] माता। दे० 'मांइ'। ~जब दस मास **मता** के गर्भे, वहुरि के लागल माया। → पद ३१६-४।

मति—क्रि० वि० [सं० मा] नहीं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत । ~मैं बिगर्‌यौ बिगरै मति औरा । →पद ३०६-२, ५ ।

मति—अव्य० [सं०] ऐसा न हो कि । ~तब हरि सेवा आपै करै, **मति** दुख पावै दास । →सा० जी० मृ० (४१) १-१ ।

मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपरोक्ष अनुभूति । ~लोग बोलैं दूरि गए कबीर, या **मति** कोइ कोइ जानै धीर । →पद २८४-१ ।

मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मत, सिद्धांत । ~रामहुँ केर मरमु नहिं जाना, लै **मति** ठानिन्हि वेद पुराना । →र० ६१-३ ।

मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा । ~जे बन जलै त जल कूँ धावै, **मति** जल सीतल होई । →सब० ६६-५ ।

मति—अव्य० [सं०] मकु, शायद, संभव है ।~**मति** वै राम दया करैं, बरसि बुझावैं अग्गि । →सा० बिर० (३) ११-२ ।

मति धीर—वि० [सं०] स्थितप्रज्ञ, वस्तु-तत्व, निश्चयवती, बुद्धि में स्थित । ~जाति जुलाहा **मति** का **धीर**, सहजि सहजि गुन रमै कवीर । → सब० १६३-५ ।

मतिवारा—वि० [हि० मतवाला] मत-वाला, मदमस्त । ~छाकि पर्‌यो आतम **मतिवारा** ।→सब० १०८-१, सब० ३५-१ ।

मते—संज्ञा पु० [सं० मत] नाना प्रकार के मतों में । ~संतो **मते** मातु जन रंगी । →पद ३०३-१ ।

मते—अव्य० [सं० मत से] अनुसार । ~मन के **मते** न चालिये, छाँड़ि जीव की बांनि । → सा० मन० (१३) १-१ ।

मथन—क्रि० [हि० मथना] मंथन करना । ~त्रास **मथन** दधि मथन कियो हो रमैया राम । →बेलि० (६) ६ ।

मथिआ—क्रि० [सं० मंथन] मथ डाला; मर्दन किया । ~सहसबाह कै हरे परांन; जरजोधन का **मथिआ** मांन । →सब० १२८-१६ ।

मद—संज्ञा पु० [सं०] मदिरा, शराब । ~पापी पूजा वैसि करि; भखैं माँस **मद** दोइ । →सा० साँच० (२२) १३-१ ।

मद—संज्ञा पु० [सं०] गर्व; अहंकार । ~अब हम भयल बाहिरि जल मीना; पुरब जनम तप का **मद** कीना । → सब० १६-१; सब० ६८-७; पद ३४४-७ ।

मदन—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रेम, २. मोम । ~मुद्रा **मदन** सहज धुनि लागी सुखमन पोतनहारी । →पद ३४४-६ ।

मदन—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव । दे० 'मनमथ' । ~इसु तन मन मद्धे **मदन** चोर, जिनि ग्यांन रतन हरि लीन मोर । →पद २२४-३; पद ३०३-४ ।

मदपी—वि० [सं० मद्यपी] शराबी । ~जैसे **मदपी** गांठि अरथ दै; घरहु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कैं अकिल गवाँई हो। →कहरा (३) ६-३।

मदमाते—वि० [सं० मदमत्त] उन्मत्त, मतवाले। ~सबै **मदमाते** कोइ न जाग, सँगहि चोर घर मूसन लाग। →वसंत (४) १०-१।

मदल—संज्ञा पु० [सं० मर्दल] वाद्य-विशेष। दे० 'मंदल'। ~इहि बनि बाजै **मदल** भेरि रे वहि बनि बाजै तूरा रे। →पद २५५-६।

मदु—संज्ञा पु० [सं० मद्य] शराब, मदिरा। ~एक बूंद भरि देइ रांम रस ज्यूं **मदु** देइ कलाली। →पद ३४४-२।

मद्दति—संज्ञा स्त्री० [अ० मद] प्रशंसा। ~मानिकपुरहि कबीर बसेरी, **मद्दति** सुनी सेख तकी केरी।→र० ४८-१।

मद्धिम—वि० [सं० मध्यम] नीच, छोटा।~कहै कबीर **मद्धिम** नहिं कोई, सो मद्धिम जा मुखि रांम न होई। →सब० १२९-५।

मद्धे—अव्य० [सं० मध्य] मध्य में, भीतर। →इसु तन मन **मद्धे** मदन चोर, जिनि ग्यांन रतनु हरि लीन मोर। →पद २२४-३।

मधि—संज्ञा पु० [सं० मध्य] १. द्वन्द्वातीत, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे—इसी अवस्था को नाथ सम्प्रदाय और कबीर ने सहजावस्था कहा है। इसी को सामरस्य की अवस्था भी कहते हैं। २. इड़ा और पिंगला के मध्य सुषुम्ना का मार्ग—मध्य मार्ग।~कबीर **मधि** अंग जे को रहै, तौ तिरत न लागै बार।→सा० मधि० (३१) १-१।

मधिम—वि० [सं० मध्यम] क्षुद्र, नीच। ~कुल उत्तिम जग मांहि कहावैं, फिरि फिरि **मधिम** करम करावैं।~विप्र० (२) ६।

मधुकर—संज्ञा पु० [सं०] भ्रमर। ~कबीर मन **मधुकर** भया, करै निरन्तर बास। → सा० परचा० (५) ६-१।

मधुप—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधु का पान करने वाली, मधुमक्षिका, मधुमक्खी। ~घट-घट महुँ के **मधुप** ज्यौं, परमातम ले चीन्हि। →सा० सार० (३२) ३-२।

मधूकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मधुकर] भिक्षान्न। ~मीठा खाँड़ **मधूकरी**, भाँति भाँति कौ नाज। →सा० बेसास० (३५) १३-१।

मन करि—क्रि० [सं० मन+√कृ] मन लगाकर, दत्तचित्त होकर। ~मन नहिं मारा **मन करि**, सकै न पंच प्रहारि। →सा० मन० (१३) १५-१।

मनमथ—संज्ञा पु० [सं० मन्मथ] 'मनः मथ्नाति इति मन्मथः', मन को मथने वाला, काम, कामदेव।~हालै करै निसाने घाऊ, जूझि परे तहँ **मनमथ** राऊ। →र० ८३-५, सब० ६४-४, र० ३०-६।

मनमुखी—वि० [सं० मन+मुखिन्] मन के संकेत पर चलने वाला, स्वेच्छाचारी। ~माला फेरै **मन-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुखी, तातैं कछू न होइ। →सा० भेष० (२४) ३-१; र० ४३-६।

मनवाँ—संज्ञा पु० [सं० मनस्] संकल्प-विकल्पात्मक मन। ~आगम निगम एक करि जानाँ, ते **मनवाँ** मन माँहि समाना। →सब० ७-४।

मनसा—संज्ञा स्त्री० [अ० मनशा] कामना, अभिलाषा, वासनायुक्त मन, इच्छा। →कलि का स्वामी लोभिया, **मनसा** रहै बंधाइ। →सा० चाँणक० (१७) ७-१, सा० मन० (१३) ३-१।

मनसा—संज्ञा पु० [सं० मनस्] मन। ~चलत **मनसा** अचल कीन्हीं मांहि मन पंगी। →पद ३२८-७।

मनसा—संज्ञा पु० [सं०] मन से, मन द्वारा। ~ **मनसा** वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार। →सा० सुमि० (२) ४-२।

मनहं—संज्ञा पु० [सं० मन + हि० हं] मन में। ~द्वै थर चढ़ि गयौ रांड कौ करहा **मनहं** पाट की सैली रे। →पद २५५-४।

मना—संज्ञा पु० [सं० मन] मन से। ~**मना** उतारी झूठ करि, (तब) लागी डोलै साथि। →सा० माया० (१६) ६-२।

मनि—संज्ञा पु० [सं० मनस्] मन में। →तत पाया तन बीसरा; जब **मनि** धरिया ध्यान। → सा० पर० (५) ३२-१, पद ३०२-६; सा० माया० (१६) ५-१।

मनि—संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] प्रकाश। ~भ्रम बिनु गंजन **मनि** बिनु निरखन, रूप बिना बहु रूपा। →पद २०४-५।

मनिषा—संज्ञा पु० [सं० मनुष्य] मानव; मनुष्य। ~बार बार नहिं पाइए; **मनिषा** जन्म की मौज। →सा० चिता० (१२) ३५-२, पद २०२-२।

मनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० मणि] मणि। दे० 'मनि'। ~खसम पिछांनि तरस करि जिय मैं माल **मनीं** करि फीकी। →पद २२६-७, सब ५४-८।

मनुसा—संज्ञा पु० [सं० मनुष्य] मनुष्य; पति। दे० 'मनिषा'। ~माई मोर **मनुसा** अति सुजान, धंधा कुटि कुटि करै बिहान। →वसंत (४) ६-१।

ममिता—संज्ञा स्त्री० [सं० ममता] ममत्व, अहंभाव। ~मन मार्‍या **ममिता** मुई, अहं गई सब छूटि। → सा० जी० मृ० (४१) ७-१।

ममिता—संज्ञा स्त्री० [सं० ममता] ममत्व, मोह। ~स्वाद सनांह टोप **ममिता** कौ कुबुद्धि कमांन चढ़ाई। →सब० ६३-५।

मरकट—संज्ञा पु० [सं० मर्कट] बन्दर। ~**मरकट** मूंठी स्वाद न बिहुरै, घर घर नटत फिर्‍यो। →सब० ५-५; सब० १६३-६, चाँचर (५) २-११।

मरजाद—संज्ञा स्त्री० [सं० मर्यादा] मर्यादा, प्रतिष्ठा, मान, गौरव। ~भौ **मरजाद** बहुत सुख लागा, यहि लेखे सब संसय भागा। →र० १३-६; पद ३४०-७; सब० १३७-५।

मरद—संज्ञा पु० [फ़ा० मर्द] आदमी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~जैते औरति मरद उपानें, सो सभ रूप तुम्हारा। →सब० २३-१३।

मरदन—क्रि० [सं० मर्दन] मसलना। ~जंह की उपजी तहँ रची पीवत-मरदन लाग। →पद २६६-७।

मरदन—क्रि० [सं० मर्दन] लगाते हैं। ~चोआ चंदन मरदन अंगा, सो तन जलै काठ कै संगा। →पद २७६-५।

मरदनु—क्रि० [सं० मर्दन] मर्दन करती है, दमन करती है। ~दुरगा कोटि जाकै मरदनु करैं, ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरैं। →सब० १२८-४।

मरदै—क्रि० [सं० मर्दन] नष्ट करता है। ~काल पुरख का मरदै मांनु, तिस मुल्ला को सदा सलांम। →पद ३४६-४।

मरना—संज्ञा पु० [हि०] मृत्यु। ~मरना मुंह आगै खड़ा, जीवन का सब झूठ। →सा० काल० (४६) २२-२।

मरम—संज्ञा पु० [सं० मर्मन्] रहस्य, तत्व। ~उलटि पवन कहां राखिए, कोई मरम बिचारै। →सब० ५२-३, पद २८४-२, र० ३६-२।

मरम्म—संज्ञा पु० [सं० मर्मन्] मर्म। दे० 'मरम'। ~लागी चोट मरम्म की, गई कलेजे छाँनि। →सा० बिर० (३) १६-२।

मरहट—संज्ञा पु० [हि० मरघट] मरघट, श्मशान। दे० 'मसान'। ~ते घट मरहट सारिखे, भूत बसैं ता माँहि। →सा० साधुम० (३०) ३-२, सब० १०५-४; सा० जी० मृ० (४१) ३-१; सा० सूरा० (४५) ३५-२, सब० १७६-८।

मरुआ—संज्ञा पु० [सं० मरुव] बन-तुलसी। ~दौना मरुआ चंपा कै फूला, मानहुँ जीव कोटि सम तूला। →र० ३०-४।

मरुवा—संज्ञा पु० [सं० मेरु] वह लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाया जाता है। ~लोभ मरुवा विषै भँवरा काम कीला ठानि। →हिंडोला (८) १-३।

मरोरिया—क्रि० [देश०] दो तागों को आपस में जोड़ने की क्रिया, जिसमें गांठ का प्रयोग नहीं होता; केवल दोनों सिरों को मिलाकर मरोड़ देते हैं। ~त्रिभुवन नाथ जो माँजन लागे स्याम मरोरिया दीन्हा। →सब० १२७-७।

मरोरी—क्रि० [हि० मरोड़ना] मरोड़ दिया, ऐंठ दिया। ~सींगी रिखि औ गुर कनफूंका बाधिनि सभै मरोरी। →पद ३१३-६।

मलनां—वि० [सं० मलिन] गंदगी; अपवित्रता। ~ घट भीतरि है मलनां। →सब० ७६-२।

मलनि—क्रि० [हि० मलना] मिलाना, गूंथना, रौंदना। ~माटी मलनि कुँभार की, घनी सहै सिरि लात। → सा० चिता० (१२) २६-१।

मलयागिरि—संज्ञा पु० [सं० मलय+गिरि] मलयगिरि में उत्पन्न चंदन। ~एरंड रुख करै मलयागिरि, चहुँ दिसि फूटै बासा। →सब० २८-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मसकला—संज्ञा पु० [अ०] धातुओं को रगड़कर चमकाने वाला एक औजार। ~सबद **मसकला** फेरि करि, देह दर्पन करै सोइ। →सा० सब० (४०) ३-२।

मसकीन—वि० [अ० मिसकीन] दीन, असहाय। ~हंम **मसकीन** खुदाई बंदे तुम्हरा जस मनि भावै। → पद २२६-२।

मसखरा—संज्ञा पु० [फ़ा०] भोंड़ी बातों से दूसरों का विनोद करने वाला। ~कामी लोभी **मसखरा**, तिनका आदर होइ। → सा० चाँणक० (१७) ८-२।

मसखरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उपहास, हँसी-मजाक।~कंध न देइ **मसखरी** करई, कहु धौं कौनि भाँति निस्तरई। →र० ५६-२।

मसले—संज्ञा पु० [अ०] विचारणीय विषय। ~मन **मसले** की खबरि न जानै, मति भुलान दुइ दीन बखानै। →र० ४०-५।

मसांनां—संज्ञा पु० [सं० श्मशान] श्मशान, मरघट। दे० 'मसान'। ~ काल्हि जु बैठा माड़िया, आज मसाँनां दीठ। → सा० काल० (४६) १५-२।

मसांनि—संज्ञा पु० [सं० श्मशान] श्मशान पर। ~तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरहिं **मसांनि**। → सा० चिता० (१२) ४६-२।

मसान—संज्ञा पु० [सं० श्मशान] श्मशान।~जा घट बिरह न संचरै, सो घट सदा **मसान**।→सा० विरह० (३) २१-२।

मसि—संज्ञा स्त्री० [सं० मसि] स्याही, कालिमा, कालुष्य, पाप। ~थाकी सौंज संग के बिछुरे, रांम नांम **मसि** धोई। →सब० १५-६।

मसि—संज्ञा स्त्री० [सं० मसि] स्याही; भस्म। ~यह तन जारौं **मसि** करौं, ज्यूं धूवाँ जाइ सरग्गि। ~सा० विरह० (३) ११-१ पद २७०-८; सा० सम्र० (३८) ५-१, पद २८८-४; सा० भ्रमवि० (२३) २-१।

मसीति—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मस्जिद] मस्जिद। ~एक **मसीति** दसो दरवाजा। → सब० ७२-२, सब० ४०-४, सब० २३-५; सा० सांच० (२२) ६-२; पद ३२६-५; ६।

मस्टि—संज्ञा पु० [हि०] मौन। ~ संत मिलहिं कछु सुनिए कहिए; मिलहिं असंत **मस्टि** करि रहिए।→ पद २००-४।

महँगे—वि० [सं० माहार्घ] महँगा; अधिक मूल्य पर बिकने वाला। → बहुत मोलि **महँगे** गुड़ पावा, लै कसाव रस रांम चुवावा। →सब० १०८-३, सा० सूरा० (४५) २८-१।

महंत—संज्ञा पु० [सं० महत्] गद्दीधारी साधु, मठाधीश। ~महादेव को पंथ चलावै; ऐसो बड़ो **महंत** कहावै। →र० ६६-२।

महतारी—संज्ञा स्त्री० [सं० माता]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माता। ~पार परोसिनि करौं कलेवा, संगहि बुधि **महतारी**। → पद २२२-५, सब० १२४-३।

महतो—वि० [सं० महत्] महान्, श्रेष्ठ। ~हरिहर ब्रह्मा **महतो** नाऊँ, तिन्ह पुनि तीनि बसावल गाऊँ। →र० २-४, पद २८६-१।

महमहीं—क्रि० [हि०] सुगंध करने लगी। ~ मुखि कस्तूरी **महमहीं**, बानी फूटी बास। →सा० परचा० (५) १४-२।

महरा—संज्ञा पु० [हि०] १. श्रेष्ठ, प्रधान। २. कहार नामक जाति। ~दास कबीर कीन्ह यह कहरा, **महरा** माहिं समाना हो। →कहरा (३) २-१५।

महल—संज्ञा पु० [अ०] भवन, घर। ~गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल **महल** दिवाना। →सब० ६४-२।

महल—संज्ञा पु० [अ०] स्थान। ~ मुनि जन **महल** न पावहीं, तहाँ किया विसराम। → सा० पर० (५) ११-२।

महातम—संज्ञा पु० [सं० माहात्म्य] माहात्म्य। ~माँनि **महातम** प्रेम रस, गरवातन गुण नेह। →सा० वेसा० (३५) १४-१।

महादेव को पंथ—संज्ञा पु० [सं०] शैव मत। ~**महादेव को पंथ** चलावै, ऐसो बड़ो महंत कहावै। →र० ६६-२।

माँहि—अव्य० [सं० मध्य] में। ~ पनिआँ **माँहि** पावक जरै अंधै आँखिन सूझै। →पद ३४३-२।

महिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० महिमन्] महत्व, बड़ाई, गौरव। ~घर घर मन्तर देत फिरत हैं, **महिमा** के अभिमाना। →पद २६७-१३।

महियाँ—अव्य० [सं० मध्य] में। दे० 'माँहि'। ~सोइ जिरजोधन कँह गए मिलि माटी **महियाँ** रे। पद→ २७३-८।

महिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस। ~ और सकल ए भार लदाऊ, **महिषी** सुत कै गोती। →सब० ६६-४।

महुँ—संज्ञा पु० [सं० मधु] शहद। ~ घट घट **महुँ** के मधुप ज्यौं, परमातम ले चीन्हि। →सा० सार० (३२) ३-२।

महुवा—संज्ञा पु० [सं० मधूक] एक विशेष प्रकार का वृक्ष तथा उसका फल। ~गुड़ करि ग्यांन ध्यांन करि **महुवा**; भव भाठी करि भारा। →सब० ३५-३।

महेसर—संज्ञा पु० [सं० महेश्वर] शिव। ~ब्रह्मां विष्णु **महेसर** दुखिया, जिन यहु राह चलाई हो। → सब० १३८-८।

महोबंती—संज्ञा पु० [अ० मोहब्बत + ई] प्रेमी। ~माया मिलै **महोबंती** कूड़े आखै बैन। →सा० गु० सि० हे० (४३) १०-१।

महौला—संज्ञा पु० [दे०] रस, सार-तत्व। ~दिया **महौला** पीव कौं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(तब) मरहट करै बखान। →सा० सूरा० (४५) ३५-२।

माँइ—संज्ञा स्त्री० [सं० माता] माता, माँ, जननी। ~**माँइ** बिड़ाँणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह। →सा० चिता० (१२) ५६-१।

मांखी—संज्ञा स्त्री० [सं० मच्छिका] मधुमक्खी। ~ ज्यौं **मांखी** सहतैं नहिं बिहुरै जोरि जोरि धन कीन्हाँ। →सब० १७६-५।

माँग—संज्ञा स्त्री० [हि०] सिर के बीच की रेखा जो बालों को विभक्त करती है। ~जारौं **माँग** मैं तासु नारि की जिन सरवर रचल धमारी। →पद २२२-३।

मांजत—क्रि० [सं० मज्जन] साफ करना, स्वच्छ रखना। ~जौ दरसन देखा चहिए, तौ दरपन **मांजत** रहिए। →पद ३६६-७।

मांजसि—क्रि० [सं० मज्जन] साफ करना, स्वच्छ करना, मल-मल कर धोना। दे० 'मांजत'। ~काया **मांजसि** कौन गुनां। →सब० ७६-१।

मांझ—अव्य० [सं० मध्य] भीतर। ~**मांझ** मंझरिया बसै जो जानै, जन होइहैं सो थीरा हो। →कहरा (३) ७-६।

माँझहिं—अव्य० [सं० मध्य] बीच में। ~भगता भगतनि कीन्ह सिंगारा, बूड़ि गैल सब **माँझहिं** धारा। →र० ५-१०।

माँझा—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का ढाँचा जो गोड़ई के बीच में रहता है और पाई को जमीन पर गिरने से रोकता है। ~चाँद सुरुज दुइ गोड़ा कीन्हा, माँझदीप **माँझा** कीन्हा। →सब० १२७-६।

माँझी—अव्य० [सं० मध्य] मध्य। ~मानुष जन्म चूके जग **माँझी**, एहि तन केर वहुत हैं साँझी। →र० ७८-१।

माँड—संज्ञा पु० [म+सं०अण्ड] ब्रह्माण्ड। ~सकल **माँड** मैं रमि रहा, साहिब कहिए सोइ। →सा० पीव पि० (३६) १-२।

माँड़ा—क्रि० [सं० मण्डन] लगाया, रचा। ~भौंर जाल मँह आसन **माँड़ा**, चाहत सुख, दुःख संग न छाँड़ा। →र० ४१-२।

मांड़ि के—क्रिया [सं० मण्डन] रचकर, सजाकर। ~नारद को मुख **मांड़ि के** लीन्हों बदन छिनाय। →चाँचर (५) १-६।

मांडिय—क्रि० [सं० मण्डित] मंडित करना, सजाना। ~हरि हीरा जन जौहरी, ले ले **मांडिय** हाटि। →सा० पारि० (४६) ३-१।

माँडी—क्रि० [सं० मंडन] मंडित किया, सजाया। दे० 'माड़ै' ~चौपड़ि **माँडी** चौहटे, अरध उरध बाजार। →सा० गुरु० (१) ३१-१।

मांडी—क्रि० [सं० मंडन] मची हुई है। ~अवधू ग्यान लहरि धुनि **मांडी** रे। →सब० ३०-१।

माँड़ी—क्रि० [हि० मांडना] ठानी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मचाई। ~नहीं बज्रिराज से माँड़ी रारी, नहिं हरिनाकुस बधल पछारी। →र० ७५-५।

माँड़ै—क्रि० [सं० मर्दन] प्रहार करना। ~जासों हिरदा की कहूँ, सो फिरि माँड़ै कंक। → सा० गु० सि० हे० (४३) ६-२।

माँडै—क्रि० [सं० मंडन] लगाता है, केन्द्रित करता है। ~उज्जल देखि न धीजिए, बग ज्यौं माँडै ध्यान। सा० असाधु० (२७) २-१।

माँड़ै—क्रि० [सं० मण्डन] ठाने, ठान ले। ~कबीर सोई सूरिवाँ, मन सो माँड़ै जूझ। →सा० सूरा० (४५) ३-१।

मांन—संज्ञा पु० [सं० मान] सम्मान, प्रतिष्ठा। ~मानि बड़े मुनिवर गिले, मांन सबनि कौं खाइ। → सा० माया० (१६) १७-२।

माँनवी—संज्ञा पु० [सं० मानव] मनुष्य।~माया राता माँनवी, तिन सों किसा सनेह। →सा० संग० (२६) ५-२; सा० कुसं० (२५) १-२।

माँनि—संज्ञा पु० [सं० मान] सम्मान दे० 'मांन'। ~माँनि महातम प्रेम रस, गरवातन गुण नेह। →सा० वेसास० (३५) १४-१।

मांनै—क्रि० [हि०] आदर करना। ~यहु मन वड़ा कि जेहि मन मांनै; रांम बड़ा कि रामहिं जांनै। → सब० १३३-४।

मांसु—संज्ञा पु० [सं० मांस] गोश्त। मांस। ~जस मांसु पसु की तस मांसु नर की; रुधिर रुधिर एक सारा जी। →सब० ११५-१, २।

माँह—अधि० चिह्न [हि० में] में। ~ऐसी विधि जो मो कहँ ध्यावै, छठये माँह दरस सो पावै। →र० ५२-३।

मांह—संज्ञा पु० [सं० मास] महीना। ~ब्राह्मन ग्यारसि करै चौबीसौं; काजी मांह रमजांना। →सब० २३-७।

माँहि—अव्य० [सं० मध्ये > माँझ > माँहि] भीतर, अंदर। ~कर कमान सर साँधि करि, खैंचि जु मारा माँहि। →सा० बिर० (३) १५-१।

मांही—अव्य० [सं० मध्य] मध्य में। ~उतर कि दच्छिन पुरुब कि पच्छिम, सरग पताल कि माँही। → सब० १७०-३।

माँहै—अव्य० [हि० में ही] में ही। ~सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषही माँहै चूक। →सा० गुरु० (१) २१-१।

माँहैं—अव्य० [सं० मध्य] भीतर। ~माँहैं पाती माँहि जल, माँहैं पूजन-हार। →सा० परचा (५) ४२-२।

मांहैं—अव्य० [सं० मध्य] भीतर। ~वाहरि दीसै साधु गति, माँहैं महा असाध। →सा० असाधु० (२७) १-२।

माइ—अव्य० [सं० मध्य] भीतर, अंदर। ~बिरहिन पिउ पावै नहीं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जियरा तलपै माइ। →सा० बिरह (३) ३४-२।

माइ—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] माता, माँ। दे० 'माइ'। ~साईं माइ सास पुनि साईं, साईं याकी नारी। → सब० २७-७, सा० सम्र० (३८) ११-१, सब० ६७-२।

माइ—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] सखी। ~ताली पीटै सिरि धुनैं, मीठै बोई माइ। →सा० कुसंग० (२५) ६-२।

माखा—संज्ञा पु० [सं० मक्षिका से] पति। ~ वहि माखी को माखा नाहीं, गर्भ रहा बिनु पानी। → →पद ३०१-६।

माचा—क्रि० [हि०] आरम्भ होता है, संचालित होता है। ~एक सगुन षट चक्रहि बेधै, बिन वृषभ कोल्हू माचा। →सब० १४४-२।

माटिक—वि० [सं० मृत्तिका से] मिट्टी का, पार्थिव। ~माटिक तन माटी मिलै, पवनहिं पवन समाय। →र० ६१-६, र० १२-१।

माटी—संज्ञा स्त्री० [हि० मिट्टी] शरीर की मिट्टी।~काहे कूं भीति बनाऊँ टाटी, का जानूं कहाँ परिहै माटी। →सब० ८०-१।

माटी—संज्ञा स्त्री० [हि० मिट्टी] मिट्टी, उपादान कारण। ~माटी एक भेख धरि नांनां तामैं ब्रह्म समांनां। →पद २२६-६।

माटी—संज्ञा स्त्री० [हि० मिट्टी] मिट्टी का शरीर। ~सरजी आंनैं देह बिनासैं माटी बिसमिल कीआ। →पद २३०-३।

माटी—संज्ञा स्त्री० [हि० मिट्टी] मिट्टी। ~माटी का पिंड सहज उतपनां, नाद अरु बिंद समांनां। →सब० ५५-५, सा० चिता० (१२) २६-१।

माड़ि—क्रि० [सं० मंडन] सुसज्जित करना, मंडित करना। ~मांड़ी का तन माड़ि रहो है, माड़ी बिरलै जाना। →सब० १२७-५।

माड़िया—संज्ञा पु० [सं० मंडप] मंडप में, उत्सव। ~काल्हि जु बैठा माड़िया, आज मसांनां दीठ। →सा० काल० (४६) १५-२।

माड़ैं—क्रि० [सं० मंडित] मंडित किया, सुसज्जित किया। ~कबीर थोड़ा जीवना, माड़ैं बहुत मँड़ान।→सा० चिता० (१२) ५-१।

माता—क्रि० [सं० मत्त] मस्त हो गया। ~अउर दुनीं सभ भरमि भुलांनीं मैं रांम रसांइन माता। →पद २५०-१०।

माता—वि० [सं० मत्त] मस्त, उन्मत्त। ~रांम अमलि माता रहै, गिनै इन्द्र कौ रंक। →सा० बिर्क० (३७) ८-२।

माता—वि० [सं० मत्त] मद में मस्त। ~राम अमलि माता रहै, जीवन मुकुति अतीति। →सा० रस० (६) ६-२।

माता—क्रि० [सं० मत्त] मस्त हुआ। ~अबहिं न माता सु कबहुँ न माता,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कह कबीर रामैं रंगि राता। →पद ३०६-७, सब० १४५-१।

मातु—क्रि० [सं० मत्ता] मस्त रहते हैं। ~संतो मते **मातु** जन रंगी। →पद ३०३-१।

माते—वि० [सं० मत्ता] उन्मत्ता। ~जोगी **माते** धरि जोग ध्यान, पंडित माते पढ़ि पुरान। →वसंत (४) १०-२, ३, ४, ५, ६, ७।

माते—[संज्ञा मत्त] मस्त, मतवाले। ~रामानंद रामरस **माते**, कहैं कबीर हम कहि कहि थाके। → सब० ३६-४।

माथौ—संज्ञा पु० [सं० मस्तक] सिर। ~**माथौ** मुंछ मुड़ाइ करि, चला जगत के साथि। → सा० भेष० (२४) १०-२।

माधौ—सज्ञा पु० [सं० माधव] ईश्वर, परमात्मा। ~**माधौ** दारुन दुख सह्यौ न जाइ। →पद २२४-१, पद ३४६-७।

मानि—संज्ञा पु० [सं० मान] सम्मान, प्रतिष्ठा, अहंभाव। दे० 'मान'। ~**मानि** बड़े मुनिवर गिले, मान सबनि कौं खाइ। →सा० माया० (१६) १७-२।

मानि—संज्ञा पु० [सं० मान] अहं भाव। ~**मानि** करै तौ पिउ नहीं, पीव तौ मानि निवारि। →सा० चिता० (१२) ४२-२।

मानिक—संज्ञा पु० [सं० माणिक्य] माणिक्य। ~जहँ जहँ देखौं, तँह तँह सोई, मन **मानिक** वेध्यो हीरा। → पद २६५-६।

मानियाँ—क्रि० [हि० मानना] मान गया, स्वीकार कर लिया। ~तन भीतरि मन **मानियाँ**, बाहरि कहा न जाइ। → सा० पर० (५) ३१-१।

मानु—संज्ञा पु० [सं० मन] मन। ~कबिरा तेरो बन कंदला में, **मानु** अहेरा खेलै। →सब० ६५-१।

मानुख—संज्ञा पु० [सं० मनुष्य] मनुष्य, मानव। ~**मानुख** नहीं ते स्वान गति, बाँधे जमपुर जाँहि। →सा० क० बि० क० (१८) ३-२।

माप—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाप। ~ तोल न मोल **माप** कछु नाहीं, गिनती ग्याँन न होई। →पद २८०-३।

मामा—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्त्री०। ~ आदम आदि सुद्धि नहिं पाई, **मामा** हौवा कहाँ ते आई। →र० ४०-१।

माय—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] माता, माँ, जननी। ~बाप पूत की एकै नारी, ओ एकै **माय** बिआय। → र० १-६, र० ७२-१।

माया—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैभव। ~ यह **माया** कहौ कौन की काकै संग लागी रे। →पद २७३-३।

माया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामान्यतया माया आवरण और विक्षेप करने वाली शक्ति मानी गयी है। किन्तु कबीर ने माया को विशेष रूप से मोहक और आकर्षक शक्ति के रूप में लिया है, जिससे वह जीव को सांसारिक विषयों की ओर आकृष्ट करके उन्हीं में फँसाए रहती है। →सा०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माया (१६) १-१, २-१, ३-१, ४-१, ५-२, ६-१, ७-१, ८-१, ६-१, १०-१, ११-१, १७-१, १८-२, २०-१, २१-१, २४-१ २५-१, २८-१, २६-१, ३१-१, ३२-१ ।

मार—संज्ञा पु० [हिं०] बटमार, डाकू, लुटेरा । ~लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु **मार**। →सा० सुमि० (२) २७-१ ।

मारग—संज्ञा पु० [सं० मार्ग] ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग । ~ओहु **मारग** पावै नहीं, भूलि परे एहि माँहि ।→सा० सू० मा० (१४) १-२ ।

मारगि—संज्ञा पु० [सं० मार्ग] मार्ग में, राह में । ~नांव न जानै गाँव का, भूला **मारगि** जाइ । →सा० उप-जणि० (५०) १-१, सा० काल० (४६) २-१ ।

मारनहारा—वि० [हिं० मारना + हारा] मारने वाला । ~**मारनहारा** जानिहै, कै जिहिं लागी सोइ । → सा० बिरह (३) १४-२ ।

मार्‍या—क्रि० [हिं० मारना] मारा या मारने पर । ~ मन **मार्‍या** ममिता मुई, अहं गई सब छूटि । →सा० जी० मृ० (४१) ७-१ ।

मालिम—वि० [अ० मुअल्लिम] ज्ञान देने वाला । ~ मन मसीति मैं किनहूँ न जांनां, पंच पीर **मालिम** भगवाना । →सब० २४-४ ।

माल्हंतांह—क्रि० [?] झपट पड़ता है, मार डालता है । ~ आजि कि काल्हि कि निसहि मैं, मारगि **माल्हं-तांह** । →सा० काल० (४६) २-१ ।

मावासी—संज्ञा स्त्री० [सं० मवास से] दुर्ग, किला । ~कब दत्तै **मावासी** तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी । →र० ६६-४ ।

माषी—संज्ञा स्त्री० [सं० मक्षिका] मक्खी । ~**माषी** गुड़ मैं मड़ि रही, पंष रही लपटाइ । →सा० कुसंग० (२५) ६-१ ।

मासा—संज्ञा पु० [सं० माश] आठ रत्ती के बराबर का एक बाट या मान और १२ माशे का एक तोला होता है, किंचित् । ~ **मासा** घटै न तिल बढ़ै, जौ कोटिक करै उपाइ । →सा० बेसा० (३५) ७-२, सब० १७३-३ ।

मिताई—संज्ञा स्त्री० [सं० मित्रता] मित्रता, दोस्ती, मित्र का धर्म । ~जासों कियहु **मिताई**, सो धन भया न हित्त । →र० ५६-५ ।

मितंयो—संज्ञा स्त्री० [हिं० मित्रता] मित्रता । ~मानू मीत **मितंयो** न छोड़ै, कबहुँ गाँठि न खोलै हो । →कहरा (३) १-७ ।

मित्त—संज्ञा पु० [सं० मित्र] मित्र । ~बिन रोए क्यों पाइए, प्रेम पियारा **मित्त**।→सा० बिरह० (३) २७-२ ।

मिथ्या—वि० [सं०] झूठा, व्यर्थ । ~राम नाम बिनु राम नाम बिनु, **मिथ्या** जनम गवाँई हो । →कहरा (३) ६-१ ।

मिनिऐ—क्रि० [दे०] गज से नापना ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~गजैं न मिनिऐ तौलि न तुलिऐ पहजन सेर अढ़ाई। →पद २७१-५।

मियाना—वि० [फ़ा०] मध्यम आकार का। ~ वहि जोगिया के उल्टा ज्ञाना, कारा चोला नाहिं **मियाना**। →सब० १२५-२।

मिरगा—संज्ञा पु० [सं० मृग] पशु। ~बपु बारी अनंगु **मिरगा** रुचि रुचि सर मेलै। →सब० १००-२, सब० ६५-२; पद १६६-७।

मिरतक—वि० [सं० मृत] मरा हुआ। ~**मिरतक** पीर न जानई, जानैंगी वह आगि। →सा० बिर० (३) ३८-२, सब० १३-५; सा० जी० मृ० (४१) १-१।

मिरिग—संज्ञा पु० [सं० मृग] मृग, हिरण। दे० 'मिरगा'। ~मारौं तो मन **मिरिग** कौं; नहीं तो मिथ्या जांन। →सा० मन० (१३) ३०-२, सा० गु० सि० हे० (४३) ३-२, पद १६६-७।

मिवाँणाँ—संज्ञा पु० [सं० निम्न से] नीची जमीन; पहाड़ की तलहटी। ~नीर **मिवाणां** ठाहरै, नाँ कछु छापरडांह।→सा० निगुणाँ० (५५) ४-२।

मिसकीन—वि० [अ०] दीन; विनम्र, असहाय। ~खून करै **मिसकीन** कहावै, अवगुन रहै छिपाएं। → सब० २३-४, पद २७२-२।

मिसिर—संज्ञा पु० [सं० मिश्र] पण्डित, ब्राह्मण। ~अरथ करंता **मिसिर** पछाड़ा गल महिं घालि लगांनी। →पद २४४-६।

मिहर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दया करुणा। ~मीराँ मुझसूँ **मिहर** करि; इब मिली न काहू साथि। →सा० परचा० (५) १६-२।

मिहिरबांना—वि० [फ़ा० मेहरबान] कृपालु। ~जब बस कियौ पांचौ थांनां, तब रांम भया **मिहरबांना**। →पद २०५-६।

मिहरि—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मिह्र] दया, कृपा। दे० 'मिहर'। ~बंदै ऊपरि **मिहरि** करौ मेरे सांई। →सब० २३-२।

मींनु—संज्ञा पु० [सं० मीन] मछली। 'दे० 'मीना'। ~ तूँ जलनिधि हउँ जल का **मींनु**, जल महिं रहउँ जलहिं बिनु खींनु। →पद २६१-३।

मीच—संज्ञा स्त्री [हि०मृत्यु] मौत,मृत्यु। ~कै बिरहिन कौं **मीच** दे, कै आपा दिखलाइ। →सा० बिरह० (३) ३५-१, सा० सजी० (४७) १-१; सा० कुसंग० (२५) ५-१।

मीचौं—क्रि० [सं० मिष्] बन्द करना। ~आँखि न **मीचौं** डरपता, मत सपना ह्वै जाइ। → सा० उप० (५०) ६-२।

मीजैं हाथ—[मु०] हाथ मीजना; पछ-ताना। ~रहु रहु मुगध गहेलड़ी; अब क्यों **मीजैं हाथ**। →सा० बिरह (३) ३६-२।

मीठ—वि० [सं० मिष्ट] मीठा, सुख। ~कबीर यहु जग कुछ नहीं, खिन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खारा खिन **मीठ**। →सा० काल० (४६) १५-१।

मीत—संज्ञा पु० [सं० मित्र] मित्र, प्रेमी। ~कबीर कलियुग आइ करि, किये बहुत जो **मीत**।→सा० निह० पति० (११) १३-१; कहरा (३) १-७, पद २४३-३, सा० गु०सि०हे० (४३) ३-१, सब्र० २०-५, सब० ६-१, सा० सूरा० (४५) ३३-१।

मीता—संज्ञा पु० दे० 'मीत'।

मीनहि—संज्ञा पु० दे० 'मीना'।

मीना—संज्ञा पु० [संज्ञा मीन] मछली। ~अब हम भयल बाहिरि जल **मीना** पूरब जनम तप का मद कीना। → सब० १६-१; सब० ३०८-३, ४, पद २८४-५।

मीनीं—संज्ञा स्त्री० [सं० मक्षिका] मधुमक्खी। ~कामिनी **मीनीं** खाँड़ की, जे छेड़ौ तौ खाइ। →सा० कामी (२०) २-१।

मीयाँ—संज्ञा पु० [फा०] मुल्ला। ~ **मीयां** तुम्ह सौं बोल्यां बनि नहिं आवै। →पद २२६-१।

मीरगा—संज्ञा पु० दे० 'मिरगा'।

मीरां—संज्ञा पु० [फ़ा० मीर का बहुवचन] बड़े लोग। ~सुर नर मुनि जति पीर अवलिया; **मीरां** पैदा कीन्हां रे। →सब० ८४-३, सा० बीन० (५६) ६-२।

मीरां—संज्ञा पु० [अ० अमीर] मालिक, स्वामी, ईश्वर। ~ **मीरां** मुझसूं मिहर करि; इब मिलौं न काहू साथि। →सा० पर० (५) १६-२, सा० साधसा० (२६) २१-२।

मीरा—संज्ञा पु० [फ़ा० मीर] सरदार, प्रधान। ~सुर नर मुनि जति पीर औलिया, **मीरा** पैदा कीन्हा हो। →कहरा (३) ८-३।

मुंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० श्मश्रु] मूंछ। ~माथौ **मुंछ** मुड़ाइ करि, चला जगत के साथि। →सा० भेष० (२४) १०-२।

मुंडित—संज्ञा पु० [सं०] मूड़ मुड़ाए संन्यासी। ~ लुंचित **मुंडित** मोनि जटाधर एहि कहहिं सिधि पाई। →पद ३३७-४।

मुंडित—वि० [सं०] सिर मुंड़ाने वाले; संन्यासी। ~ लुंचित **मुंडित** मोनि जटाधर अंति तऊ मरनां। →सब्र० १४२-८।

मुअल—क्रि० [हि०] मर गए। दे० 'मुए'। ~काको रोऊँ गल बहुतेरा; बहुतक **मुअल** फिरल नहिं फेरा। →सब० ७५-१।

मुए—क्रि० [सं० मृत] मर गए। ~ उतर दखिन के पंडिता, **मुए** बिचारि बिचारि। →सा० ग्या० वि० (४) ५-२, पद २६०-३।

मुए—क्रि० [सं० मृत से] मरने पर। ~जन्मत सूद्र भुए पुनि सूद्रा; कृतम जनेउ डारि जग मुद्रा। → र० ६२-२।

मुकता—वि० [सं० मुक्त] मुक्त, पृथक्, अनासक्त। ~मेरि मिटी **मुकता** भया, पाया ब्रह्म बिसास। →सा० बेसा० (३५) १७-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुकता—क्रि० वि० [सं० मुक्त] मुक्त होकर, स्वच्छंद होकर, छूट कर। ~**मुकताहल मुकता** चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहि। → सा० पर० (५) ३६-२।

मुकताहल—संज्ञा पु० [सं० मुक्ताफल] मोती। ~दोइ जो भागा ना मिलै, **मुकताहल** अरु मंन। →सा० बिर्क० (३७) ३-२, पद ३३४-४, पद २१६-४।

मुकरबा—संज्ञा पु० [फ़ा०] कब्र या समाधि। ~सुनत बोल मोहि रहा न जाई, देखि **मुकरबा** रहा भुलाई। →र० ४८-४।

मुकांमा—संज्ञा पु० दे० 'मुकामा'।

मुकामा—संज्ञा पु० [अ० मुकाम] पड़ाव, स्थान। ~कहाँ कूच कहँ करै **मुकामा**, कवन सुरति के करहु सलामा। →र० ४६-२, सब २३-११।

मुकुता—वि० [सं० मुक्त] मुक्त (पुरुष)। ~पंगुला मेर सुमेर उलंघै, त्रिभुवन **मुकुता** डोलै। →सब० २८-७।

मुकुति—संज्ञा स्त्री० [सं० मुक्ति] मोक्ष। ~नरक माँहि जन्मै मरै, **मुकुति** न कबहूं होइ। →सा० निन्द्या० (५४) ५-२, सब० ७७-३ र० ३४-१।

मुकुती—संज्ञा स्त्री० दे० 'मुकुति'।

मुकुन्दा—सज्ञा पु० [सं० मुकुन्द] विष्णु, भगवान्। ~जम दुवार जब लेखा मांगै तब का कहसि **मुकुन्दा**। →पद २३१-२।

मुक्ति—स्त्री० दे० 'मुकुति'।

मुख में पड़िया रेत—[मुहा०] मुंह में धूल पड़ना, अपमानित होना, विनाश को प्राप्त होना। ~औरों को परमोधता, **मुख में पड़िया रेत**। → सा० चाँण० (१७) १५-२।

मुखाँ—संज्ञा पु० [सं० मुख] मुख से। ~कबीर हद के जीव सौं हित करि **मुखाँ** न बोलि। →सा० चिता० (१२) ५०-१; पद ३४०-३; सा० बीनती (५६) ६-२।

मुखि—संज्ञा पु० [सं० मुख] मुख में। ~**मुखि** कस्तूरी महमहीं, बानी फूटी बास।→सा० पर० (५) १४-२।

मुगदर—संज्ञा पु० [सं० मुद्गर] गदा। दे० 'मुदगर'। ~कहैं कबीर नर अजहुँ न जागा, जम का **मुगदर** सिर बिच लागा। →सब० ६-७।

मुगध—वि० [सं० मुग्ध] मुग्धा, मूर्ख, अनजान, अबोध। दे० 'मुग्ध'। ~ रहु रहु **मुगध** गहेलड़ी, अब क्यों मीजै हाथ। →सा० बिर० (३) ३६-२, पद २१६-७, सब० १२२-४; सब० १८७-६, पद २८३-५, पद २७६-७।

मुगधा—वि० दे० 'मुग्धा'।

मुगुध—वि० दे० 'मुग्ध'।

मुग्ध—वि० [सं०] मूर्ख, अविवेकी। दे० 'मुग्ध'। ~ काल फांस नर **मुग्ध** न चेतै, कनक कामिनी लागी। →पद २२८-५।

मुचि—क्रि० [सं० मोचन] गिराकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~मुचि मुचि गरभ भई किन बांझ, सूकर रूप फिरै कलि मांझ। →सब० १२४-४।

मुज्झ—सर्व० [सं० अस्मद्] मुझे। ~नाँ तूँ मिलै न मैं सुखी; ऐसी वेदन **मुज्झ**। →सा० विर० (३) ४२-२।

मुदगर—संज्ञा पु० [सं० मुद्गर] मुगदर, गदा। दे० 'मुगदर'। ~धीर गंभीर खड़्ग लिए **मुदगर** माया कै कोट ढहाऊँ जी। →पद २०७-५, सब० ११७-६।

मुदिगर—संज्ञा पु० दे० 'मुदगर'।

मुद्दति—संज्ञा स्त्री० [अ०] अवधि, आयु। ~बात ब्यौंते असमान की **मुद्दति** नियरानी। → सब० १३५-९।

मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगियों द्वारा धारण किया जाने वाला कान का कुण्डल। ~मन **मुद्रा** जाके गुर कौ ग्याँन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान। →पद ३२१-४; कहरा (३) ७-२, पद ३१४-५।

मुद्रा—क्रि० [हि० मूंदना] बंद कर दिया। →**मुद्रा** मदन सहज धुनि लागी सुखमन पोतनहारी। →पद ३४४-६।

मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुण्डल; कान की बालियाँ। ~का सींगीं **मुद्रा** चमकाए, का विभूति सब अंग लगाए। →सब० ४१-३।

मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिह्न, प्रतीक। ~जन्मत सूद्र मुए पुनि सूद्रा, कृतम जनेऊ डारि जग **मुद्रा**। → र० ६२-२।

मुनियर—वि० [सं० मुनिवर] मुनि; मौन रहने वाले साधु। ~इक **मुनियर** इक मनहुँ लीन; ऐसैं होत होत जग जात खीन। → पद ३३२-४।

मुनियर—संज्ञा वि० [सं० मुनिवर] श्रेष्ठ मुनि, सन्त। ~कबीर कलि खोटी भई; **मुनियर** मिलै न कोइ। →सा० चाँण० (१७) ८-१।

मुनिस—संज्ञा पु० [सं० मुनीश] मुनीश। ~न्यौति जियांउँ अपनी करहा छार **मुनिस** की दाढ़ी रे।→ पद २५५-८।

मुरदन—संज्ञा पु० [फा० मुर्दः] मरणशील। ~संतौ ई **मुरदन** कै गांउँ। →पद २९३-१।

मुरसिद—संज्ञा पु० [अ० मुर्शिद] गुरु; पथ प्रदर्शक। ~**मुरसिद** पीर तुम्हारै है को कहौ कहाँ तै आया। →पद २२६-४।

मुराड़ा—संज्ञा पु० [दे०] जलती हुई लकड़ी, लुकाठी। ~हम घर जारा आपनां; लिया **मुराड़ा** हाथि। →सा० गु० सि० हे० (४३) १३-१।

मुरादी—वि० [फ़ा०] अभिलाषी। ~कोई काहु को हटा न मानै; आपुहि आप **मुरादी**। → पद २९६-४।

मुरारि—संज्ञा पु० [सं०] मुर नामक दैत्य को मारने वाले कृष्ण अर्थात् भगवान्। ~कबीर सूता क्या करै;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जागि न जपै **मुरारि** । →सा० सुमि० (२) ११-१ ।

मुरीद—संज्ञा पु० [अ०] शिष्य । ~कै **मुरीद** तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ज्ञाना । →पद २६७-६ ।

मुर्दा—संज्ञा पु० [फा० मुरदा] मृत । ~जियत जीव **मुर्दा** करि डारा, तिसको कहत हलाल हुआ । →पद २१०-३ ।

मुलकिया—क्रि० [सं० पुलकित] पुलकित होकर हँसे । ~आगैं तैं हरि **मुलकिया**, आवत देखा दास । →सा० सूरा० (४५) २३-२ ।

मुलां—संज्ञा पु० [अ० मुल्ला] मस्जिद में अजान देने वाला, मौलवी । दे० 'मौलवी' । ~इनके काजी **मुलां** पीर पैंगंबर; रोजा पछिम निवाजा । →पद ३२९-३ ।

मुल्लाँ—संज्ञा पु० दे० 'मुल्ला' ।

मुल्ला—संज्ञा पु० [अ०] मस्जिद में अजान देने वाला, मौलवी । ~कहु रे **मुल्ला** बांग निवाजा । →सब० ७२-१, पद ३४६-३, सा० सांच० (२२) ७-१ ।

मुलुक—संज्ञा पु० [अ० मुल्क] संसार, देश, प्रदेश, स्थान । ~जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है, और **मुलुक** किस केरा । →सब० २३-९ ।

मुवलि—क्रि० [भोज०] मर गई । ~अपने **मुवलि** और लै मुवली, लोग कुटुम संग साथी जे । →कहरा (३) ११-६ ।

मुवली—क्रि० दे० 'मुवलि' ।

मुवा—क्रि० [सं० मरण] मर गया । दे० 'मूवा' । ~दुनियाँ के धोखै **मुवा**, चलै जु कुल की कांनि । →सा० चिता० (१२) ४६-१; सब० ८९-१, पद २९३-३; सा० जी० मृ० (४१) ५-२ ।

मुवा—वि० [सं० मृत] मरा हुआ; मृत । ~प्रांन पिंड कौं तजि चलै, **मुवा** कहै सब कोइ । →सा० सू० ज० (१५) २-१ ।

मुसकल—वि० [अ० मुश्किल] कठिन; दुष्कर । ~हथलेवा हौंसैं लिया; **मुसकल** पड़ी पिछांनि । →सा० भेष० (२४) २४-२ ।

मुसवन—संज्ञा पु० [सं० मूषक] चूहा । ~मछरी मुख जस केंचुवा, **मुसवन** मुख गिरदान । →र० ४५-७ ।

मुसहि—क्रि० [सं० मूषण] चोरी करना । दे० 'मूसन' । ~बैठे ते घर साहु कहावैं, भितर भेद मन **मुसहि** लखावैं । →विप्र० (२) १९ ।

मुसाफ—संज्ञा पु० [अ० मुसहफ] कुरान शरीफ । ~मोलना माते पढ़ि **मुसाफ**, काजी माते दै निसाफ । →वसंत (४) १०-४ ।

मुसि गए—क्रि० [सं० मूषण] लुट गए । ~जे सूते ते **मुसि गए**, रहे बस्तु कौं रोइ । →सा० माया० (१६) २४-२ ।

मुसि-मुसि—क्रि० वि० [सं० मुषित] ठगी-सी । ~**मुसि मुसि** रोवैं कबीर की माई, ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई । →सब० १३९-३ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुसि-मुसि—वि० [सं० मुषण] धीरे धीरे; चुपके से । ~कहै कबीर मैं भया दिवांनां; **मुसि-मुसि** मनुवा सहजि समांनां । →सब० ७२-५ ।

मुसियत—क्रि० [सं० मुषण] लूटते हैं । ~चोर तुम्हारा तुम्हरी अग्या; **मुसियत** नगर तुम्हारा । →सब० १७२-५ ।

मुसै—क्रि० [सं० मूषण] चुरा ले जाता है। ~गाफिल होइ बस्तु मति खोवै; चोर **मुसै** घर जाई । →पद २१८-२ ।

मुसै—क्रि० [सं० मूषण] चुरा कर उठा ले जाता है। ~गाफिल होइ कै जनमु गंवायौ, चोर **मुसै** घरु जाई । →सब ११-२ ।

मुहकम—वि० [अ०] दृढ़, मजबूत, टिकाऊ । ~कलिजुग हम सौं लड़ि पड़ा, **मुहकम** मेरा बाछ (बाँच) । →सा० गुरु० (१) ५-२; पद ३३६-४ ।

मुहर—संज्ञा स्त्री० [फा० मोहर] मुद्रा; अशर्फी । ~मन की **मुहर** धरौं गुरु आगैं ग्यान कै घोड़ा लाऊँ जी । →पद ३०७-२ ।

मुहरकाँ—भाव० [अ० मुहर्रिक] नेता-गिरी, अगुआगिरी । ~औरां कौं परमोधता, गया **मुहरकाँ** मांहि । → सा० चाँण० (१७) १३-२ ।

मुहरा—संज्ञा पु० [हि० मुंह+रा (प्रत्य०)] घोड़े के मुख पर पहनाया जाने वाला साज । ~दै **मुहरा** लगाम पहिरावउँ, सिकली जीन गगन दौरावउं । →सब० ३-३ ।

मुहाँमुह—क्रि० वि० [सं० मुख से] मुंह तक, लबालब । ~दुनियाँ भाँड़ा दुख का, भरी **मुहाँमुह** भूष । →सा० चिता० (१२) ४७-१ ।

मूंठी—संज्ञा स्त्री दे० 'मूठी' ।

मूंड—संज्ञा पु० [सं० मुण्ड] मस्तक, शिर । ~भुजा बाँधि भेला करि डार्यो, हस्ती कोपि **मूंड** मँहि मार्यो । → सब० ४२-३, पद २१६-८, सब० १३६-६; र०३१-३; र० ७२-२ ।

मूंड—वि० [सं० मूढ़] मूर्ख, अज्ञानी । ~कारे **मूंड** को एक न छांड्यो, अजहूँ अकन कुंवारी । →सब० २६-४ ।

मूंदे—क्रि० [सं० मुद्रण] मुद्रित कर दिया, छिपा लिया । ~नऊँ दुवार नरक धरि **मूंदे** दुरगंधि ही के बेढ़े । →सब० १०२-२ ।

मूंएँ—क्रि० [सं० मृत्यु] मरना; मृत्यु को प्राप्त होना । ~सो जीवन भला कहाही; बिनु **मूंएँ** जीवन नांहीं । →सब० ८-६ ।

मूका—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टिका] मुट्ठी । दे० 'मूठी' । ~कोई ले भरि सकै न **मूका**, औरन पहि जांनां चूका । →सब० ८-४ ।

मूठी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुष्टि] मुट्ठी । ~मरकट **मूठी** स्वाद की मन बौरा हो । → चांचर (५) २-११; सब० ५-५ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मूड़—संज्ञा पु० दे० 'मूंड' ।

मूड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्ड] सिर । दे० 'मूड़' । ~क्या लै मूड़ी भुइं सौं मारे, क्या जल देह न्हवाएँ । →सब० २३-३ ।

मूढ़क—वि० [सं० मूढ़] विवेकहीन, मोहांध । ~कबीर **मूढ़क** करमियाँ, नख सिख पाखर आहि । →सा० निगुणाँ (५५) ५-१ ।

मूतर—संज्ञा पु० [सं० मूत्र] पेशाब । ~एक रुधिर एकै मल **मूतर**, एक चांम एक गूदा । →सब० ५५-३ ।

मूदा—संज्ञा पु० [फा० मुरदा] मृत । दे० 'मुर्दा' । ~बाजै बाब विकार की, भी **मूदा** जीवै । →सा० मन० (१३) २३-२ ।

मूनी—संज्ञा पु० [सं० मुनि] ऋषि । ~असी सहस पैगम्बर नाहीं, सहस अठासी **मूनी** । →सब० ३१-५ ।

मूर—संज्ञा पु० [सं० मूल] जड़ी, बूटी । ~तनु महिं खोजौं चोट न पावौं, ओषद **मूर** कहाँ घसि लावौं । →पद २६२-३ ।

मूरति—संज्ञा स्त्री० [सं० मूर्ति] मूर्ति । ~पंडा कै **मूरति** होइ बैठी, तीरथ हू मैं पानी । →पद २२७-४ ।

मूरिष—वि० दे० 'मूरुख' ।

मूरुख—वि० [सं० मूर्ख] अज्ञानी, बेवकूफ । ~पण्डित सो बोलिये हितकारी, **मूरुख** ते रहिये झख मारी । →र० ७०-४, सा० कुसं० (२५) २-१ ।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] मूल धन, पूंजी । ~लोभ बड़ाई कारनैं, अछता **मूल** न खोइ । →सा० चिता० (१२) ४१-२, पद २३६-२ ।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] सार, परमार्थ, सत्य, आत्मा । ~चले लोग सब **मूल** गँवाई, जम की बाढ़ि काटि नहिं जाई । →र० १३-३, ५ ।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] जड़ । ~चित्त तरउवा पवन खेदा सहज **मूल** बाँधा । →सब० १००-३, पद २३६-२ ।

मूलहि—संज्ञा पु० [सं० मूल+हि० हि] मूलाधार चक्र । ~चेतत रावल पावन खेड़ा, सहजै **मूलहि** बाँधै । →सब० ६५-३ ।

मूला—संज्ञा पु० [सं० मूल] उत्पत्ति का हेतु । ~तहिया होत कली नहिं फूला, तहिया होत गर्भ नहिं **मूला** । →र० ७-२ ।

मूला—संज्ञा पु० दे० 'मूल' ।

मूलि—संज्ञा पु० [सं० मूल] मूल से, जड़ से । ~ते नर बिनठे **मूलि**, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं । →सा० चिता० (१२) २१-२, ३२-१ ।

मूवाँ—क्रि० [सं० मृत्यु से] मर जाने के उपरान्त । ~**मूवाँ** पीछैं देहुगे, सो दरसन किहि काम । →सा० बिरह (३) ७-२ ।

मूवा—क्रि० [सं० मृत्यु] मर गया । ~अब मन उलटि सनातन हूवा, तव जांनां जब जीवत **मूवा** । →सब० २०-७ ।

मूसन—क्रि० [सं० मूषण] चोरी करना । ~सबै मदमाते कोइ न जाग,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सँगहि चोर घर **मूसन** लाग। → वसंत (४) १०-१।

मूसल—क्रि० [सं० मूषण] चुरा लिया। ~जागत चोर घर **मूसल** हो रमैया राम। →वेलि (६) १-२।

मूसा—क्रि० [सं० मूषण] चोरी की। ~तेहि ऊपर कछु छार लपेटे, भितर भितर घर **मूसा** हो। →कहरा (३) ७-३।

मूसा—क्रि० [सं० मूषण] चुराया, अपहृत। ~बाहरि देह खेह लपटानीं, भीतरि तौ घर **मूसा**। → सब० १०४-४।

मूसिन—क्रि० [सं० मूषण] चुरा लिया। ~नाग फांस लीये घट भीतर, **मूसिन** सब जग झारी। →पद २६१-६।

मूसैं—क्रि० [सं० मूषण] चोरी करता है। ~चोर एक **मूसैं** संसारा, बिरला जन कोइ बूझनिहारा। → र० ५६-२।

मेंडुक—संज्ञा पु० [सं० मंडूक] मेढक। ~जल कै मज्जनि ते गति होवै नित नित **मेंडुक** न्हावै। → सब० १७७-५, ६।

मेखुली—संज्ञा स्त्री० [सं० मेखला] मेखला, कटिबन्ध, करधनी। ~सुर नर गण गंध्रव जिनि मोहे त्रिभुवन **मेखुली** लाई। →पद २५०-४।

मेघ—संज्ञा पु० [सं०] बादल। ~ चातिक जलहल आसहि पासा, **मेघ** न बरसै चलै उदासा। →र० ६५-४।

मेदनीं—संज्ञा स्त्री० दे० 'मेदिनी'।

मेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। ~ब्रह्म कुलाल **मेदिनी** भइया; उपजि बिनसि कित गइया जी। → सब० ११५-३, सा० सूरा० (४५) ४१-१।

मेर—भाव० [हि० मेरा] मेरापन; आपा। ~ऊंचा चढ़ि असमान कूं, **मेर** ऊलंघे ऊड़ि। →सा० उपज० (५०) ४-१।

मेर—संज्ञा पु० [सं० मेरु] सुमेरु। दे० 'मेरु'। ~पंगुला **मेर** सुमेर उलंघै; त्रिभुवन मुकुता डोलै। → सब० २८-७।

मेर—संज्ञा पु० [हि० मेरा] मेरापन; ममत्व; अहंभाव। ~**मेर** निसानी मीच की, कुसंगति ही है काल। → सा० कुसंग० (२५) ५-१।

मेर डंड—संज्ञा पु० [सं० मेरुदण्ड] सुषुम्ना नाड़ी। ~उलटे पवन चक्र षट बेधा, **मेर डंड** सरपूरा। → सब० १५८-५।

मेरि—संज्ञा स्त्री० [हि० मेरा] मेरापन; अहन्ता। ~**मेरि** मिटी मुकता भया; पाया ब्रह्म बिसास। →सा० बेसा० (३५) १७-१।

मेरी-मेरी—यौ० [हि०] ममत्व। ~ **मेरी-मेरी** करतां जनम गयौ। → पद २३३-१।

मेरु—संज्ञा पु० [सं० मेरु] सुमेरु पर्वत। ~ए उपमां हरि किती एक ओपैं, अनेक **मेरु** नख ऊपरि रोपै। →पद २८३-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरु—संज्ञा पु० [सं०] हिंडोले के दोनों खम्भों के बीच की लकड़ी। ~पाप पुन्नि के खंभा दोऊ **मेरु** मायां मांनि →हिंडोला (८) १-२।

मेरुदंड—संज्ञा पु० [सं०] पीठ के बीच की हड्डी-रीढ़; यहाँ तात्पर्य है सुषुम्ना नाड़ी। ~**मेरुदंड** पर डंक दीन्ह, अष्ट कवँल परजारि दीन्ह। →वसंत (४) २-२।

मेलि—क्रि० [हि० मेलना] पनपते हुए। ~जालन आंनी लाकड़ी, ऊठी कूंपल **मेलि**। →सा० बेली० (५८) १-२।

मेली—वि० [हि० मिली हुई] मिली हुई, विकार युक्त। ~**मेली** सिष्टि चराचित राखहु, रहहु दिस्टि लौ लाई हो। →कहरा (३) १-२।

मेलै—क्रि० [हि० मेलना] फेंकता है, चलाता है। ~संसय मिरगा तन बन घेरे, पारथ बाना **मेलै**। →पद १६६-७।

मेलै—क्रि० [हि० मेल्हना] चला रहा है। ~बपु बारी अनंगु मिरगा रुचि रुचि सर **मेलै**। →सब० १००-२।

मेलै—क्रि० [हि०] मेल्हना। ~बपु बारी आनन्द मीरगा, रुचि रुचि सर **मेलै**। →सब० ६५-२।

मेल्या—क्रि० [हि० मेलना] डाल रखा है। ~दरिया पार हिंडोलना, **मेल्या** कंत मचाइ। → सा० सुन्द० (५२) ५-१।

मेल्या—क्रि० [हि० मेलना] फेंक दिया, निकाल दिया। ~पूरे सूं परचा भया, सब दुख **मेल्या** दूरि। →सा० गुरु० (१) ३५-१।

मेल्या छाइ—क्रि० [हि०] आच्छादित कर डाला है, छा गया है। ~तीरथ ब्रत विष बेलड़ी, सब जग **मेल्या छाइ**। →सा० भ्र० वि० (२३) ६-१।

मेल्ह्या—क्रि० [दे० मेल्हना] बेचैन कर दिया। ~हँसै न बोलै उन्मनी चंचल **मेल्ह्या** मारि। →सा० गुरु० (१) ६-१।

मेल्हि गया—क्रि० [दे०] मिट गया, नष्ट हो गया। ~सबही ऊभा **मेल्हि गया**, राव रंक सुलतान। →सा० चिता० (१२) ५-२।

मेल्ही—क्रि० [हि० मेल्हना] पनपी, निकली। ~सहज बेलि जब फूलन लागी, डाली कूपल **मेल्ही**। →पद २५३-४।

मेल्हे—क्रि० [हि०] फेंक दिया। ~सदा अनंदी राँम के, जिनि सुख-दुख **मेल्हे** दूरि। →सा० मधि० (३१) ८-२।

मेषली—संज्ञा स्त्री० [सं० मेखला] करधनी। दे० 'मेखुली'। ~ग्यांन **मेषली** सहज भाइ, बंकनालि कौ रस खाइ। →पद ३२०-६।

मेंह—संज्ञा पु० [सं० मेघ] बादल। ~सूखा काठ न जानई, कबहूं बूठा **मेंह**। → सा० निगु० (५५) १-१, २-१, पद २०३-४।

मेंहतर—संज्ञा पु० [सं० महत्तर] १. श्रेष्ठ पुरुष, सद्गुरु। २. [फा०] बुजुर्ग। ~मैं आयों **मेंहतर** मिलन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तोहिं, रितु बसंत पहिरावहु मोहि। →वसंत (४) ३-१।

मेहर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दया। ~ हिन्दु कि दया **मेहर** तुरकन की, दूनो घट से त्यागी।→पद ३०४-७।

मेंहरबान—वि० [फा०] कृपालु, दयालु। ~**मेंहरबान** सबहिन को साहब, ना जीता ना हारा।→पद २६२-१६।

मेंहररुआ—संज्ञा स्त्री० [सं० मेहना] स्त्री, पत्नी। ~मोरे बाप के दुइ **मेंहररुआ**, मैं अरु मोर जेठानी गे। →कहरा (३) ११-३।

मेहरिहिं—संज्ञा स्त्री० [सं० मेहना] स्त्री को। ~घालि जनेऊ ब्राह्मन होता, **मेहरिहिं** का पहिराया। → सब० ७६-७।

मेहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० मेहना] स्त्री, औरत। ~देहरी बैठी **मेंहरी** रोवै, द्वारै लगि सगी माइ। →सब० १०५-३।

मेहाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० मेघ] वृष्टि। ~जावासा के रूष ज्यूं, घन **मेहाँ** कुम्हिलाइ। →सा० माया० (१६) १५-२।

मैं—भाव० [सं० आत्मन्] आपा, अहं-भाव। ~जब **मैं** था तब हरि नहीं, अब हरि हैं **मैं** नाँहि। →सा० पर० (५) ३५-१।

मैं—संज्ञा स्त्री० [अ०] शराब। ~ तन पाटन **मैं** कीन्ह पसारा, माँगि माँगि रस पिऐ बिचारा। →सब० १०८-४।

मैंगल—संज्ञा पु० [सं० मदकल] मत-वाला हाथी। ~ जिनके नौबति बाजती, **मैंगल** बँधते बारि।→सा० चिता० (१२) २-१, सा० रस० (६) ७-१।

मैंमाती—वि० दे० 'मैमंता'।

मैं मैं—भाव० [हि०] अहं भाव या बुद्धि। ~**मैं मैं** बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भागि। → सा० चिता० (१२) ६०-१।

मैगर—संज्ञा पु० [सं० मदकल] जिसमें मद का अंश हो, हाथी। दे० 'मैंगल'। ~अलप सुख दुख आदि औ अंता, मन भुलान **मैगर** मैमंता। →र० २३-१।

मैदा—संज्ञा पु० [फ़ा०] बहुत महीन आटा। ~इस मन कौं **मैदा** करौं, नान्हाँ करि करि पीस। →सा० सुन्द० (५२) ४-१, सा० मधि० (३१) १०-२।

मैमंता—वि० [सं० मदमत्त] मदमत्त; मतवाला। ~**मैमंता** घूमत फिरै, नाहीं तन की सार। →सा० रस (६) ४-२, सा० मन० (१३) १६-१, सब० १४६-४।

मैमंता—वि० [सं० मदमस्त] अहंकारी। अलप सुख दुख आदि औ अंता, मन भुलान मैगर **मैमंता**।→र० २३-१।

मैवासा—संज्ञा पु० [सं० मवास] १. दुर्ग, किला। २. स्वामित्व, अहंभाव। ~ **मैवासा** भाँजै नहीं, होन चहै निज दास। →सा० भेष० (२४) २५-२।

मैवासी—संज्ञा पु० [सं० मवास+ई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(प्रत्य०)] गढ़पति, किलेदार, नायक। ~मन मैवासी मूड़ि ले, केसहिं मूड़े कांइ। →सा० भेष० (२४) १३-१, सब० ६३-४, पद ३०७-६ ।

मोई—वि० [दे०] विनष्ट। ~मैवासा **मोई** किया, दुरजन काढ़े दूरि। → सा० भेष० (२४) २६-१।

मोचित—वि० [सं०√मुच्] मुक्त किया गया, पैदा किया गया। ~ नारी **मोचित** गर्भ प्रसूती, स्वाँग धरै बहुतै करतूती। →र० २-७।

मोट—संज्ञा पु० [हि०] चमड़े का वह थैला जिससे पानी फेंका जाता है। ~संगति छोड़ि करै असरारा, उबहै **मोट** नर्क कर धारा।→र० ४३-५।

मोटरी—संज्ञा स्त्री० [?] गठरी। ~ चहुँ जुग भक्तन बाँधल बाटी, समुझि न परी **मोटरी** फाटी।→र० ५-६।

मोटी—वि० [सं० मुष्ट] स्थूल। ~ समुझि न परै पातरी **मोटी**, ओछी गाँठि सबै भौ खोटी।→र० ८०-३।

मोटे—वि० [हि०] बड़े। ~**मोटे** भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ। → सा० सू० मा० (१४) १०-२।

मोड़हीं—क्रि० [हि० मोड़ना] मोड़ता है, हटाता है। ~साधू अंग न **मोड़हीं**, ज्यौं भावै त्यौं खाव। → सा० विर० (३) १६-२।

मोतियां—संज्ञा पु० [सं० मौक्तिक] मोती, पानी की बूंद। ~पारब्रह्म बड़ **मोतियाँ**, झड़ि बाँधी सिषराँह। →सा० निगु० (५५) ३-१।

मोद—संज्ञा पु० [सं०] प्रसन्नता, आनंद, सुख। ~झूठे सुख कौं सुख कहैं, मानत हैं मन **मोद**। →सा० काल० (४६) १-१।

मोनि—वि० [सं० मौनिन्] मौन धारण करने वाले, मौनी।~लुंचित मुंडित **मोनि** जटाधर एहि कहहिं सिधि पाई। → पद ३३७-४; सब० १४२-८।

मोम—संज्ञा पु० [फा०] मोम। ~ जिभ्या तार नासिका चरई, माया **मोम** लगाया। → सब० १०६-५।

मोर—संज्ञा पु० [हि० मेरा] ममत्व। ~ननद भौज परपंच रच्यौ है, **मोर** नाम कहि लीन्हा। →पद २६०-५।

मोलना—संज्ञा पु० [अ० मौलाना] मौलाना, मुल्ला। ~**मोलना** माते माया के धार, राजा माते करि हंकार। →वसंत (४) १०-४।

मोहड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँह + ड़ी] घोड़े के मुख पर पहनाया जाने वाला साज। ~आयौ चोर तुरंगहि लै गयौ **मोहड़ी** राखत मुगध फिरै। → पद २३३-६।

मोहन—संज्ञा पु० [हि०] आसक्ति युक्त मन। ~**मोहन** जहाँ तहाँ लै जइहैं, नहिं पति रहै तोहरा हो।→ कहरा (३) ७-५।

मोहम्मद—संज्ञा पु० [अ० मुहम्मद] इस्लाम धर्म के प्रवर्तक, पैगम्बर। ~नहीं महादेव नहीं **मोहम्मद**, हरि हजरत तब नाहीं। → सब० ३१-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोहित—वि० [सं०] मुग्ध; आसक्त। ~माया मोहै **मोहित** कीन्हा, ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा। →पद २२८-१।

मोहै—सर्व० [सं० मह्यम] मुझको। ~माया **मोहै** मोहित कीन्हा, ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा। →पद २२८-१।

मौंज—संज्ञा स्त्री० [अ०] आनन्द।~ चरन कँवल की **मौंज** मैं, रहौं अंति अरु आदि। →सा० मधि० (३१) ६-२।

मौंनी—संज्ञा पु० [सं० मुनि] तपस्वी, साधु। ~**मौंनी** बीर डिगम्बर मारे जतन करंता जोगी।→पद २४४-३।

मौना—वि० [सं० मौन] मौन, शान्त। ~जीव सीव का आहि नसौना, चारिउ वेद चतुर गुन **मौना**। → र० ३०-२।

मौर—संज्ञा पु० [सं० मुकुट] विवाह के अवसर पर वर के शिर पर बाँधा जाने वाला मुकुट। ~**मौर** के माथे दुलहा दीन्हा, अकथा जोरि कहाता। →सब० ३६-२।

म्यंत—सप्तमी कारक चिह्न (में),बीच में। ~द्वादस दल अभिअंतरि **म्यंत**, तहाँ प्रभू पाइसि करिलै च्यंत। → सब० १४०-१२।

म्यांनैं—अव्य० [सं० मध्य] मध्य में, बीच में। ~असमांन **म्यांनैं** लहंग दरिया गुसल करदः बूद। →सब० १८१-७।

म्रिग—संज्ञा पु० [सं० मृग] हिरण। दे० 'मिरगा'। ~कस्तूरी कुण्डलि बसै, **म्रिग** ढूढ़ै बन माँहि। →सा० कस्तू० (५३) १-१।

य

यक—वि० [सं०] एक, अखण्ड, देश-काल भेद से रहित। ~जीव रूप **यक** अन्तर-वासा, अन्तर ज्योति कीन्ह परगासा। →र० १-१।

यतनी—वि [हि० इतनी] इतनी। ~ स सा के घर सुनगुन होई, **यतनी** बात न जानै कोई। →ज्ञान चौं० (१) ६८।

र

रंक—वि० [सं०] दरिद्र। ~तब सनकादिक तत्तु विचारा, ज्यौं धन पार्वाहि **रंक** अपारा। →र० १३-८, पद ३२०-४, सब० १४८-४, सा० बिर्क० (३७) ८-२।

रंक—वि० [सं०] तुच्छ। ~आपनपौ न सराहिए, और न कहिए **रंक**। →सा० निन्द्या० (५४) ७-१।

रंग—संज्ञा पु० [सं०] रति। ~ नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती **रंग**। →सा० कामी० (२०) ६-१।

रंग—संज्ञा पु० [सं०] अनुराग प्रेम। ~हरि **रंग** लागा हरि **रंग** लागा। → पद ३४०-१, पद २५६-१; २, ३, ४।

रंग—संज्ञा पु० [सं०] रुचि। ~अपने-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने **रंग** के राजा; मानंत नाहीं कोइ। →सब० ७३-२।

रंग—संज्ञा पु० [सं०] उल्लास, आनंद, उत्सव। ~क्या जानूं उस पीव सों, कैसे रहसी **रंग**। →सा० निह० पति० (११) १६-२।

रंगी—वि० [सं० रंग + हि० ई (प्रत्य०)] अनुरागी। ~संतो मते मातु जन **रंगी**। →पद ३०३-१।

रंचक—वि० [सं० न्यंच] रंच मात्र, थोड़ा भी। ~कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे **रंचक** आवै नाउँ। →सा० सुमि० (२) २०-१।

रंजित—वि० [सं०] अनुरक्त; आसक्त। ~तन **रंजित** तब देखियत दोई, प्रगट्यौ ग्यान जहाँ तहँ सोई। →पद २७७-४।

रइयत—संज्ञा स्त्री० [अ० रअय्यत] प्रजा। ~राजा देस बड़ो परपंची **रइयत** रहत उजारी। →सब० १५६-४।

रउरा—सर्व० [हि०] आप। ~आसन पवन दूरि करि **रउरा**। →सब० ४१-१।

रखवारा—संज्ञा पु० [रख + वाला (प्रत्य०)] रक्षक, रखने वाला। ~खसम मरै तौ नारि न रोवै, उस **रखवारा** अउरो होवै। →सब० ४६-३।

रखवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० रक्षण] रखवाली, रक्षा। ~सरग पताल भूमि लैं बारी, एकै राम सकल **रखवारी**। →र० ५६-३।

रखियौ—क्रि० [सं० रक्षण] रक्षा किया। ~उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम **रखियौ**। →सा० बेसा० (३५) १-३।

रखवारे—संज्ञा० पु० [हि० रखवाला] रक्षक, पहरेदार। ~हमं गोरू तुम गुआर गुसांईं जनम-जनम **रखवारे**। →पद २३१-७।

रग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नस या नाड़ी। ~सब **रग** तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त। →सा० बिर० (३) २०-१।

रगत—संज्ञा पु० [सं० रक्त] खून। ~सो सावज किन मारै कंता जाकै **रगत** मांस नां होई रे। →सब० १२१-४।

रचंते—क्रि० [सं० रंजन] अनुरक्त होना। ~नारि **रचंते** पुरुषा, पुरुष रचंते नार। →र० ५०-५।

रचनहार—वि० [हि०] रचने वाला, कर्त्ता, अहंकारी जीव। ~नहीं ग्रिह द्वार कछू नहिं तहियां **रचनहार** पुनि नाहीं। →पद २६८-५।

रचनहार—संज्ञा पु० [सं० रचना + हार] रचयिता, स्रष्टा। ~**रचनहार** कौं चीन्हि लै, खावे कौं क्या रोइ। →सा० बेसा० (३५) ३-१।

रचि—क्रि० [सं० रचन] बनाकर। ~माई मोर मुअल पिता के संगे, सरा **रचि** मुअल संघाती गे। → कहरा (३) ११-५।

रची—क्रि० [सं० रत] अनुरक्त होना। ~जँह की उपजी तहँ **रची** पीवत मरदन लाग। →पद २६६-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रचैं—क्रि० [सं० रचना] अनुरक्त हो, प्रेम करे। ~पुर्षहिं पुर्षा जो **रचैं**, सो बिरला संसार। →र० ५०-६।

रच्यौ—क्रि० [सं० रचन] बनाया है। ~करन कोटि की ग्रेह **रच्यौ** रे, नेह गए की आस रे। →सब० ६७-३।

रज गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजोगुण। ~**रज गति** त्रिविध कीन्ह परगासा, कर्म धर्म बुधि केर बिनासा। →र० २६-४।

रजु—संज्ञा स्त्री [सं० रज्जु] रस्सी। ~जेहि जिव जानि परा जस लेखा, **रजु** को कहे उरग सम पेखा। → पद २८४-३।

रतंन—संज्ञा पु० [सं० रत्न [रत्न, मोती, मुक्ता। ~आई सूति कबीर की, पाया राम **रतंन**। →सा० सुमि० (२) ७-२।

रत—वि० [सं०] अनुरक्त। ~काँमिनि अंग बिरकत भया, **रत** भया हरि नाँइ। →सा० साध सा० (२६) १२-१।

रतड़ियाँ—क्रि० [सं० रक्त] रक्त वर्ण या लाल वर्ण हो गई है। ~राम सनेही कारने, रोइ-रोइ **रतड़ियाँ**। →सा० बिर० (३) २५-२।

रतनाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] लालिमा। ~ङ ङा निरखत निसु दिन जाई, निरखत रहा नैन **रतनाई**। →ज्ञान चौं० (१) ११।

रता—क्रि० [सं० रत] अनुरक्त रहता है। ~मैमंता अविगत **रता**, अकलप आसा जीति। →सा० रस० (६) ६-१।

रती—संज्ञा स्त्री० [सं० रत्तिका] एक मासे का आठवाँ भाग। दे० 'रत्ती' ~मासा माँगै **रती** न देऊँ, घटे मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊँ। →सब० १७३-३।

रती—वि० [हि० रत्ती] रंच-मात्र। ~नैन हमारे तुम्ह कूं चाहैं, **रती** न मानैं हारि। →पद ३४६-३।

रत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० रत्तिका] आठ रत्ती का एक माशा होता है; थोड़ा, अल्प। ~**रत्ती** घटै न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोई। →सा० बेसा० (३५) ८-२।

रन—संज्ञा पु० [सं० रण] रण-क्षेत्र; युद्ध-भूमि। ~कबिरा **रन** में पैठिकै पीछैं रहै न सूर। →सा० सूरा० (४५) ५-१।

रन—संज्ञा पु० [सं० अरण्य] वन। ~हम भी पाहन पूजते, होते **रन** के रोझ। →सा० भ्र० वि० (२३) ४-१।

रपटि—क्रि० [हि०] फिसलकर। ~**रपटि** पांव गिरि परे अधर तैं आइ परे भुइं मांहीं। →सब० १७८-६।

रबाब—संज्ञा पु० [फ़ा०] वाद्य विशेष —आधुनिक सरोद और सारंगी के मध्य का बाजा, जिसमें प्रायः चार तार होते हैं। यह दो प्रकार का होता है—एक तो सारंगी के समान गज से बजाया जाता है, दूसरा जवा या त्रिकोण से बजाया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह बाजा भारत में मुसलमानी काल में ईरान से आया । ~सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त । → सा० बिर० (३) २०-१ ।

रबाबी—वि० [अ० रबाब + ई (प्रत्य०)] रबाब बजाने वाला । ~धौल मंदलिया बैल **रबाबी** कउवा ताल बजावै । →पद ३३१-३ ।

रमइया—संज्ञा पु० [सं० राम] प्रभु । ~रमइया गुन गाइऐ रे जातैं पाइऐ परम निधांनु । →पद २४५-१ ।

रमइया—संज्ञा पु० [सं०√रम् + इया (प्रत्य०)] रमण करने वाला, प्रियतम । ~नैंननि **रमइया** रमि रहा, दूजा कहाँ समाइ । →सा० निह० पति० (११) ४-२ ।

रमजांना—संज्ञा पु० [अ० रमजान] मुसलमानी नवाँ महीना, जिसमें मुसलमान दिन भर रोजा रखते हैं और रात को तसबीह (नमाज़) पढ़ते हैं । इस महीने में वे पूरा कुरान सुनते हैं । ~ब्राह्मन ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी मांह **रमजांना** । →सब० २३-७ ।

रमता—संज्ञा पु० [सं० रमण] तत्व जो सबमें रमण कर रहा है, अर्थात् आत्मा । ~कहै कबीर **रमता** सौं रमगां, देही बादि न खोई । →सब० ३३-१० ।

रमसि—क्रि० [हिं० रमना] रमता है । ~राम न **रमसि** कौन डंड लागा, मरि जैवे का करिबे अभागा । → पद २५८-१ ।

रमि—क्रि० [सं० √रम्] १. रमण करना, २. व्याप्त होना । ~राम तौ भीतरि **रमि** रहा, जो आवै परतीत । →सा० कस्तू० (५३) ४-२ ।

रमि—क्रि० [सं० रमण] तन्मय होकर ~रसनाँ रांम गुन **रमि** रस पीजैं । →पद २४७-१ ।

रमि गया—क्रि० [सं० √रम्] रम गया, ब्रह्म में मिल गया । ~जोगी था सो **रमि गया**, आसनि रही विभूति । →सा० ग्या० वि० (४) ४-२ ।

रमुराई—संज्ञा पु० [सं० रमण] सर्वव्यापी, रमने वाला, आत्माराम । ~तिरबिधि रहौं सभनि मां बरतौं, नाम मोर **रमुराई** हो । →कहरा (३) १०-७ ।

रमैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० √रम् + ऐनी] गुणानुवाद, कथा । ~जाकर नाम अकहुआ रे भाई, ताकर काह **रमैनी** गाई । →र० ५१-१ ।

रमैनी—संज्ञा स्त्री० [राम + अइनि] १. वह जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है, २. एक छंद विशेष जिसके चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं, ३. वेद-शास्त्र के विचारों में रमण कराने वाली । ~अद्बुद रूप जाति की बानी, उपजी प्रीति **रमैनी** ठानी । →र० ४-३ ।

रलि गया—क्रि० [सं० ललन + √गम्] मिल गया । ~कबीर गुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गरवा मिल्या, **रलि गया** आटैं लौंन →सा० गुरु० (१) १४-१ ।

रवन—संज्ञा पु० [सं० रमण] रमण, बिहार । ~प्रिथिमी **रवन** दवन नहीं करिया, पैठि पताल नहीं बलि छलिया । →र० ७५-४ ।

रविसुत—संज्ञा पु० [सं०] यमराज । ~लख चौरासी जीव झूलहि **रविसुत** धरिया ध्यान । →हिंडोला (८) ३-५ ।

रवै—संज्ञा स्त्री० [फा० रवाँ] गति, प्रसार, वृद्धि । ~संयोगे का गुन **रवै**, बिजोगे का गुन जाय । →र० ४०-६ ।

रस—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मानन्द का स्वाद । ~कबीर हरि **रस** यौं पिया, बाकी रही न छाकि । →सा० रस० (६) १-१ ।

रसन—संज्ञा पु० [सं० रस] रस से । ~कहा कहौं कछु कहत न आवै अम्रित **रसन** भरी । →पद ३२७-२ ।

रसनाँ—संज्ञा स्त्री० दे० 'रसना' ।

रसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस लेने वाली इंद्रिय अर्थात् जिह्वा । ~जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि **रसना** नहिं राम । →सा० सुमि० (२) १७-१, सब० १३२-१, वसंत (४) २-१; पद २४७-१, सब० १०-४ ।

रसनूं—संज्ञा स्त्री० दे० 'रसना' ।

रसरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी, डोरी । ~घालि **रसरिया** जब जम खैंचै, तब का पति रहै तुम्हारी । →सब० १०४-६ ।

रसाइन—संज्ञा पु० [सं० रसायन] वह औषध जो जरावस्था को युवावस्था में परिणत कर देता है । ~राम **रसाइन** प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल । →सा० रस० (६) २-१ ।

रसातल—संज्ञा पु० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में छठा लोक । ~लिंग रूप तब संकर कीन्हा; धरती कीलि **रसातल** दीन्हा । →र० २७-३ ।

रसाल—वि० [सं०] रसयुक्त, मधुर । ~राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक **रसाल** । → सा० रस० (६) २-१, पद २२५-३; सा० चिता० (१२) ४९-२ ।

रसिक—सं० पु० [सं०] प्रेमी । ~भाई रे नयन **रसिक** जो जागै । →पद २०७-१ ।

रसिक—संज्ञा पु० [सं०] विषयी । ~जब हम अइलीं **रसिक** के जग में, तबहिं बात जग जानी गे । →कहरा (३) ११-४ ।

रहँटा—संज्ञा पु० [हि० रहंट] सूत कातने का चरखा । ~मन मोर **रहँटा** रसना पिउरिया । →पद २१५-१ ।

रह—संज्ञा स्त्री० [फा० राह] मार्ग । ~हिन्दू तुरुक दोऊ **रह** तूटी, फूटी अरु कनराई । →पद ३२९-७ ।

रहट—संज्ञा पु० [सं० आरहट्ट] कुएँ से पानी निकालने का यंत्र, जिसमें बाल्टियों की एक माला पड़ी रहती हैं । ज्यों-ज्यों चरखी घूमती है, क्रमशः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक-एक बाल्टी से जल भर कर आता रहता है। ~नैंसा नीझर लाइया, रहट वहै निस धाम। → सा० बिर० (३) २४-१।

रहनि—संज्ञा स्त्री० [हि० रहना से] आचरण, रहने का ढंग। ~है कछु रहनि गहनि की बाता, बैसा रहे चला पुनि जाता। →र० ५१-३, सा० सू० मा० (१४) ३-१, २।

रहनि रहउँ—यौ० [हि०] जीवन यापन करना। ~मेरी मति बउरी मैं रांम बिसार्‍यौ केहि बिधि रहनि रहउँ रे। →पद २३२-१।

रहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० रहना से] स्थिति। ~कोई कहै मैं जुगती जांनौं कोई कहै मैं रहनी। →पद ३१५-६।

रहनु—क्रि० [हि०] स्थित हो जाना, ठहरना। ~पवनपति उनमनि रहनु खरा। →सब० १७१-१।

रहमाँन—वि० दे० 'रहिमाना'।

रहलीं—क्रि० [भोज०] थीं। ~जब हम रहलीं हठिल दिवांनी तब पिय मुखां न बोला। →पद ३४०-३।

रहस—संज्ञा पु० [सं० रहस्] आमोद-प्रमोद, आनन्दमय लीला। ~थिति विनु सुरति रहस बिनु आनंद, ऐसो चरित अनूपा। →पद २०४-६।

रहसी—क्रि० [हि० रहना] रहेगा। ~क्या जानूं उस पीव सों, कैसे रहसी रंग। →सा० निह० पति० (११] १६-२।

रहसै—क्रि० [सं० रहस्य] रहस्य का अनुभव करता है। →सैन करै मनही मन रहसै, गूंगै जानि मिठाई। →सब० १३-८।

रहाईले—क्रि० [हि० रहना] रहता है। ~आकासि गगनु पातालि गगनु है दह दिसि गगनु रहाईले। →पद २४१-३।

रहिते—वि० [सं० रहित] बिना। ~वह बिरवा चीन्हें जो कोई, जरा मरन रहिते तन होई। → पद २८६-१।

रहिमांनां—वि० दे० 'रहमाँन'।

रहिमाना—वि० [अ० रहीम] कृपालु; दयालु। ~हिन्दू कहै मोहि राम पियारा; तुर्क कहै रहिमाना। → पद २६७-११, सब० १४१-८, सा० लांबि० (७) २-२, पद ३२६-१; सब० २३-१२।

रहीम—वि० दे० 'रहिमाना'।

रहीमां—संज्ञा पु० [अ० रहीम] ईश्वर, प्रभु। ~दिल मांहि खोजि, दिलै दिलि खोजहु, इहंई रहीमां रामां। →सब० २३-१२।

रांचु—क्रि० [सं० रंजन] रंग जा; अनुरक्त हो जा। ~बिरवै बांचु हरि रांचु समझु मन बउरा रे। → सब० १६३-१।

राँड—वि० [सं० रण्डा] विधवा। ~अरघा दे लै चली सुआसिनि, चौके राँड भई संग साँई।→पद ३१२-६, पद २३८-६।

राइ—संज्ञा पु० [सं० राजा] स्वामी; राम, प्रभु। ~कबीर पूछै रांम सों,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकल भुवनपति राइ। → सा० साषीभू० (५७) १-१, सब० १२-१।

राइ—संज्ञा पु० [सं० राजन्] राजा। ~अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ। →सा० पर० (५) २६-२, पद ३२६-८।

राई—संज्ञा स्त्री० [सं० राजिका] एक प्रकार की बहुत छोटी सरसों। ~भगति दुवारा साँकरा, राई दसएँ भाइ। → सा० मन० (१३) २६-१।

राई—संज्ञा पु० दे० 'राइ'।

राउर—वि० [हि०] आप, आत्मतत्व। ~**राउर** की कछु खबरि न जानहु; कैसे क झगरा निबेरहु हो। → कहरा (३) २-५।

राऊ—संज्ञा पु० [सं० राजन्] राजा। दे० 'राइ'। ~हालै करै निसाने घाऊ, जूझि परे तँह मनमथ **राऊ**। →र० ८३-५।

राखताँ—क्रि० [सं० रक्षण] रक्षा या रखवाली करते हुए। ~रासि पराई **राखताँ**, खाया घर का खेत। → सा० चाँण० (१७) १५-१।

राखनहारे—संज्ञा पु० [सं० रक्षण> राखन+हारा (प्रत्य०)] रक्षक, रक्षा करने वाला। ~**राखनहारे** बाहिरा, चिड़ियैं खाया खेत। → सा० चिता० (१२) १५-१।

राखनहारौ—संज्ञा पु० [सं० रक्षण+हार] रखवाला, रक्षक। दे० 'राखन-हारे'। ~तब काढ़ि खड्ग कोप्यो रिसाइ, तोहि **राखनहारौ** मोहि बताइ। →सब० १५६-६।

राखि—वि० [सं० रक्षित से] सुरक्षित। ~काम मिलावै राम कौं, जो कोई जानै **राखि**। → सा० साध्र सा० (२६) ११-१।

राखि—क्रि० [हि० रखना] निरोध-कर। ~गोरख पवन **राखि** नहिं जाना, जोग जुक्ति अनुमाना। → पद २८६-४।

राचनैं—क्रि० [सं० रंजन] अनुरक्त होना। ~परनारी कै **राचनैं**, औगुन है गुन नाँहि। →सा० कामी० (२०) ५-१।

राचिया—क्रि० [सं० रंजन] अनुरक्त हो गया। ~जे हरि चरणाँ **राचिया** तिनके निकट न जाइ। →सा० कामी० (२०) २-२।

राचे—क्रि० [सं० रंजन] अनुरक्त हो गए। ~जे **राचे** बेहद्द सौं, तिन सौं अंतर खोलि। →सा० चिता० (१२) ५०-२।

राछ—संज्ञा पु० [सं० रक्ष] जुलाहों के करघे का एक औजार, जिसमें ताने का तागा ऊपर-नीचे उठता-गिरता रहता है। ~चारि वेद कैंडा कियो, निराकार कियो **राछ**। → पद २४८-८।

राजठगौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० राज+ठगना] मुख्य या प्रधान ठगिनी। **राजठगौरी** बिस्नुहि परी, चौदह भुवन केर चौधरी। →र० ११-३।

राजा—संज्ञा पु० [सं० राजन्] राज-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगी ।~**राजा** सँवरै तुरिया चढ़ी, पंथी सँवरै नाम लै बढ़ी । →र० ६-४ ।

राजा—संज्ञा पु० [सं० राजन्] श्रेष्ठ । ~**राजा** रांम अनहद किंगरी वाजै । →पद २५०-१ ।

राजेसुर—संज्ञा पु० [सं० राजेश्वर] सम्राट् ।~रंक निवाज करै **राजेसुर** भूपति करै भिखारी । → सब० २८-२ ।

राजै—क्रि० [सं०√रज्] सुखपूर्वक रहता है, सुशोभित होता है । ~वाँधि अकास पतालि पठावै, सेस सरग पर **राजै** । →सब० २८-६ ।

राता—वि० [सं०√रत] अनुरक्त, लीन । दे० 'रत' । ~पुहुप बास भंवरा इक **राता,** बारह लै उर धरिया । →सब० ११६-५, सा० कामी० (२०) ३-१; सब० १२-५, सब० २५०-६, सा० संग० (२६) ५-२, सा० चिता० (१२) २६-१, सा० निन्द्या० (५४) १-२ ।

राता—वि० [सं० रक्त] लाल (रग) । ~जालूं कली कनीर की, तन **राता** मन सेत ।→सा० चित्त क० (४२) १-२, विप्र० (२) २८ ।

राता—क्रि० [सं० रत] अनुरक्त हुआ । ~अर्वाहिं न माता सु कबहुँ न माता, कह कबीर रामैं रंगि **राता** । →पद ३०६-७ ।

राता—क्रि० [सं० रत से] अनुरक्त हो गया । ~अवधू वैतत रावल **राता;** नाचै बाजन बाजु बराता । →सब० ३६-१ ।

राती—क्रि० [सं० रत] अनुरक्त होना । ~पुरता में **राती** है गइया, स्वेत सींग है भाई । →पद २०६-६ ।

राती—संज्ञा स्त्री० [सं० रात्रि] रात भर । ~**राती** रूनी बिरहिनी, ज्यौं बच्चों को कुंज । →सा० बिर० (३) १-१ ।

राते—क्रि० [सं० रत] अनुरक्त हुए । ~खसमहि छाँड़ि विषय रंग **राते,** पाप के बीज बयो । →सब० ६४-५ ।

रानां—संज्ञा पु० [सं० राणा] राजा । ~**रानां** राव रंक कौं व्यापै, करि करि प्रीति सवाई । →पद ३२०-४ ।

रामकहानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मा की जीवन-यात्रा । ~समुझि परी नहिं **रामकहानी,** निरवक दूध कि सरबक पानी । →र० ४५-३ ।

रामरसु—यौ० [सं०] परमात्मा के साक्षात्कार का आनन्द, तुरीयावस्था, उन्मनी अवस्था, सहजावस्था ।~**रामरसु** पीआ रे । →पद २६६-१ ।

रामानंद—संज्ञा पु० [सं०] राम नाम में आनंद लेने वाले; रामानंद स्वामी । ~**रामानंद** रामरस माते, कहैं कबीर हम कहि कहि थाके । →सब० ३६-४ ।

रामुरा—संज्ञा पु० [हिं०] राम जिसके राजा हैं, अर्थात् जीव । ~**रामुरा** झीं झीं जंतर बाजै, कर चरन बिहूना नाचै । →पद २७०-१ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रारि—संज्ञा पु० [सं० राटि, प्रा० राडि] संघर्ष, झगड़ा, विवाद। ~ घरहि में बाबू बढ़लि **रारि**, उठि उठि लागै चपल नारि। → वसंत (४) ७-१, पद २६६-६, पद २३६-६, ज्ञान चौं० (१) ५७।

रारी—संज्ञा स्त्री० [सं० राटि] झगड़ा, युद्ध, संघर्ष। दे० 'रारि'। ~ नहीं बलिराज से माँड़ी **रारी**, नहिं हरिनाकुस बधल पछारी। → र० ७५-५।

राव—संज्ञा पु० [सं० राजा] राजा। ~ दशरथ कुल अवतरि नहीं आया, नहिं लंका के **राव** सताया। → र० ७५-२, कहरा (३) ६-८।

रावल—संज्ञा पु० [सं० राजकुल] राजा, जीव। ~ अवधू वैतत **रावल** माता, नाचै बाजन बाजु बराता। → सब० ३६-१, सब० ६५-३।

रास—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपियों की एक क्रीड़ा जिसमें घेरा बाँधकर कृष्ण के साथ सभी नाचती थीं। ~ बहु विधि चित्र बनाय के हरि रच्यौ क्रीडा **रास**। → हिंडोला (८) २-१।

रासि—संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] समूह, ढेर। ~ अंबु कि **रासि** समुद्र की खाँई, रवि ससि कोटि तैंतिसो भाई। → र० ४१-१, सा० काल० (४६) २६-१।

रासि—संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] अन्न का ढेर। ~ **रासि** पराई राखतां, खाया घर का खेत। → सा० चाँण० (१७) १५-१।

राह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रास्ता, मार्ग। ~ जौ तुह ब्राह्मन ब्रह्मनी के जाया, और **राह** ते काहे न आया। → र० ६२-३; पद ३०४-१।

राह—संज्ञा पु० [फ़ा०] मार्ग, सम्प्रदाय। ~ अच्छर पढ़ि गुनि **राह** चलाई, सनक सनंदन के मन भाई। → र० ५-४।

राही— संज्ञा पु० [फा० राह + ई] यात्री, पथिक, कर्मपंथी। ~ **राही** लै पिपराही बही, करगी आवत काहु न कही। → र० १०-१।

राही—संज्ञा स्त्री० [हि० राधिका] राधा। ~ इहि बनि खेलै **राही** रुकमिनि वहि बनि कांन्ह अहीरा रे। → पद २५५-१०।

रिदा—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय। ~ कदली पुहुप दीप परकास, **रिदा** पंकज मैं लिया निवास। → सब० १४०-११।

रिदै—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय। दे० 'रिदा'। ~ परम गुर देखौ **रिदै** बिचारी। → सब० १७२-१।

रिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋद्धि] समृद्धि। ~ **रिधि** सिधि संगम बहुतेरा, पार ब्रह्म नहिं जाना। → पद २८६-५।

रिपु—संज्ञा पु० [सं०] शत्रु। ~ **रिपु** कै दल मैं सहजहि रौंदौं अनहद तबल घुराऊं जी। → पद ३०७-७।

रिसाइ—क्रि० [सं० रोष] रुष्ट होते हैं; खिन्न होते हैं। ~ जौ रोऊँ तौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बल घटै, हंसौं तो राम रिसाइ। → सा० बिर० (३) २८-१।

रिसाई—क्रि० [हि० रीसना] क्रुद्ध होकर। ~ भींगी पुरिया घर ही छाँड़ी, चला जुलाह **रिसाई**। →पद २७१-८।

रिसाल—संज्ञा पु० [सं० रसाल] आम। ~ निगम **रिसाल** चारि फल लागे, तामे तीन समाई। → सब० ८८-४।

रिसियाना—क्रि० [हि० रिसि से ना० धा०] क्रुद्ध होना, रुष्ट होना, खीझना। ~ चलत चलत अति चरन पिराना, हारि परे तहाँ अति **रिसियाना**। → र० १६-१।

रीझि करि—क्रि० [सं० रंजन] प्रसन्न होकर। ~ सतगुर हम सूं **रीझि करि**, कहा एक परसंग। → सा० गुरु० (१) ३३-१।

रीता—वि० [सं० रिक्त], खाली। ~दुहुँ चूका **रीता** पड़ै; ताको वार न पार। →सा० उपदे० (३४) ६-२, पद २६३-६।

रुकमिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्मिणी] रुक्मिणी, श्रीकृष्ण की पत्नी। ~ इहि वनि खेलै राही **रुकमिनि** वहि वनि कांन्ह अहीरा रे। →पद २५५-१०।

रुत—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतु] ऋतु। ~फूल जु फूले **रुत** बसंत, जामैं मोहि रहे सब जीव जंत। →सब० १८२-३।

रुधिर—संज्ञा पु० [सं० रक्त] खून, रक्त। ~जस मांस पसु की तस मांसु नर की, **रुधिर** रुधिर एक सारा जी। →सब० ११५-१, पद २६६-४, सब० ५५-३।

रुधिर—संज्ञा पु० [सं०] स्त्री का रज। ~नादे बिंदु **रुधिर** के संगे, घटही में घट सपचै। → सब० १६६-३; र० ४०-२।

रुसवा—वि० [सं० रुष्ट] नाराज, क्रुद्ध। ~ आपु आपु चेतै नहीं, कहौं तौ **रुसवा** होय। →र० ८४-१०।

रूँड—संज्ञा पु० [सं० रुण्ड] धड़, स्कंध। ~जानै बूझैं कछु नहीं, यों ही अंधा **रूँड**। →सा० क० बि० क० (१८) ५-२।

रूँधै—क्रि० [सं० रुद्ध] घेरती है, त्रस्त करती है। ~तीनि बार **रूँधै** इक दिन मैं, कबहुँक खता खवाई। → पद ३२०-२।

रूँधै—क्रि० [सं० रुद्ध] अवरुद्ध करना; बंद करना। ~काल कंठ तैं गहेगा, **रूँधै** दसों दुवार। →सा० सुमि० (२) २६-२।

रूख—संज्ञा पु० [सं० रुक्ष] वृक्ष, पेड़। ~एरंड **रूख** करै मलयागिरि; चहुँ दिस फूटै बासा। →सब २८-५, सा० माया (१६) १५-२।

रूखा—वि० [सं० रुक्ष] रूखा; बिना घी चुपड़े। ~पांनी मैं घी नीकसै, तौ **रूखा** खाइ न कोइ। →सा० मन० (१३) २६-२।

रूखड़ा—संज्ञा पु० [सं० रुक्ष + ड़ा (प्रत्य०)] वृक्ष। दे० 'रूख'। ~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जानैं हरिअर रूखड़ा, उस पानीं का नेह। →सा० निगु० (५५) १-१।

रूठि—वि० [सं० रुष्ट] रुष्ट, विमुख। ~और हमारे बसि पड़े, गया कबीरा **रूठि**। →सा० माया० (१६) २६-२।

रूठड़ा—वि० [सं० रुष्ट] रुष्ट, विरक्त। ~तन खीनां मन उनमनां, जग **रूठड़ा** फिरंत। →सा० साध सा० (२६) ३-२।

रूनी—क्रि० [सं० रुदन] रोती रही। ~राती **रूनी** बिरहिनी, ज्यौं बच्चों को कुंज।→सा० बिर० (३) १-१।

रूप—संज्ञा पु० [सं०] साकार (ब्रह्म)। ~**रूप** अरूप जाय नहिं बोली, हलुका गरुआ जाय न तोली। → र० ७७-३।

रूम—संज्ञा पु० [फ़ा०] टर्की का एक नगर। ~चारि दिग महि मंड रचो है, **रूम** साम बिच डिल्ली। →सब० ६४-१५।

रूष—संज्ञा पु० [सं० रुक्ष] दे० 'रूख'।

रेख—संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा] चिह्न। ~बिछुरे तत फिरि सहजि समांनां रेख रही नहिं आसा। →सब० ६१-४।

रेख—संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा] भेद, अंतर। ~तन मन सौंपां पीव कौं, (तब) अंतर रही न रेख। →सा० सूरा० (४५) ३७-२।

रेष—संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा] रेखा। ~जब थैं इनमन उनमन जांनां, तब रूप न **रेष** तहाँ ले बाँनां। → पद २१२-४।

रैंना—संज्ञा स्त्री० दे० 'रैंनि'।

रैंनि—संज्ञा स्त्री० [सं० रजनि] रात, रात्रि। ~दिवस न भूख **रैंनि** नहिं निद्रा, घर अंगना न सुहाइ। → सब० २२-६, कहरा (३) १०-५, सा० काल० (४६) २८-२, र० ३६-२, सा० सूरा० (४५) २६-१, सा० मधि० (३१) ४-१, सा० साध सा० (२६) ४-२, सा० चिता० (१२) २२-१, सा० बिर० (३) ४-१, र० १६-६, सा० बिर० (३) ४४-१।

रैंनाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० रेणु] धूलि। ~अष्ट कुली परबत जाके पग की **रैंनाँ**; सातौं सायर अंजन नैंनां।→ पद २८३-३।

रोंपिया—क्रि० [सं० रोपण] रोप दिया। ~ग्यान गाड़ लै **रोंपिया**, त्रिगुन लियो है हाथ। →चाँचर (५) १-१८।

रोजा—संज्ञा पु० [फ़ा०] व्रत, उपवास, महीने भर का उपवास, जो मुसलमानों द्वारा रमजान के महीने में किया जाता है। ~ जिन दुनिया में रची मसीद, झूठा **रोजा** झूठी ईद। →सब० ४०-४, पद २२६-५, पद २१०-६, पद ३२६-३, र० ४६-८।

रोझ—संज्ञा स्त्री० [दे०] नील गाय। ~हम भी पाहन पूजते, होते रन के **रोझ**। → सा० भ्र० वि० (२३) ४-१, वसंत (४) १२-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोड़ा—संज्ञा पु० [सं० लोष्ठ] कंकड़, ढेला। ~रोड़ा ह्वै रहु बाट का, तजि पाषँड अभिमान। →सा० जी० मृ० (४१) १४-१।

रोपिनि—क्रि० [सं० रोपण] लगाया। ~अरध उरध ले भट्ठी रोपिनि, ब्रह्म अगिनि परजारी। →पद ३०३-३।

रोपं—क्रि० [हि० रोपना] टिकाता है। ~ए उपमाँ हरि किती एक ओपै, अनेक मेरु नख ऊपरि रोपै। →पद २८३-४।

रोपैं—क्रि० [सं० रोपण] लगाते हैं। ~बाँवरिया वन मैं फंद रोपैं संग मैं फिरैं निचीता रे। →पद २६३-७।

रोम—संज्ञा पु० [सं०] रोम, बाल, तृण आदि (पृथ्वी के पक्ष में)। ~ औ प्रिथिमी के रोम उचारैं, देखत जन्म आपनो हारैं। →र० ३०-५।

रोलैं—संज्ञा स्त्री० [सं० रवण] १. रेला, बहाव, प्रवाह। २. रोर, जनरव। ~गाँगी रोलैं बहि गया; हरि सौं किया न हेत। →सा० भेष० (२४) ४-२।

रोवनहारे—वि० [सं० रुदन + हार (प्रत्य०)] रोने वाले व्यक्ति। ~ रोवनहारे भी मुए, मुए जलावनहार। →सा० काल० (४६) ३१-१।

रोहू—संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिष्] एक प्रकार की बड़ी मछली। ~ मुकुति की डोरि गाढ़ि, जनि खैंचहु, तब वाझी बड़ रोहू हो। →कहरा (३) १-५।

रोहै—क्रि० [सं० आरोहण] चढ़ाई करना। ~रोहै मिरिग ससा बन हांकै, पारधी बांन न मेलै। →सब० ४४-५।

रौंदौं—क्रि० [हि० रौंदना] कुचल दूँ। ~रिपु कै दल मैं सहजहिं रौंदौं अनहद तबल घुराऊँ जी। →पद ३०७-७।

रौंस—संज्ञा पु० [फ़ा०] घट्ठा, निशान। ~रामहि राम पुकारते; जिभ्या परिगौ रौंस। →र० ३३-५।

रौलि—संज्ञा स्त्री० [दे०] तमाचा, प्रहार। ~एक राम के न व बिन, जँम पाड़ैगा रौलि। →सा० काल० (४६) १८-२।

ल

लंगूर—संज्ञा पु० [सं० लांगूल] पूंछ। ~माते सुखदेव ऊधो अंकूर, हनुमत माते लै लंगूर। →वसंत (४) १०-६, पद ३१०-५।

लंगूरु—संज्ञा पु० दे० 'लंगूर'।

लंघन—संज्ञा पु० [सं०] उपवास, अनाहार। ~छाँनैं लंघन नित करै, राम पियारे जोग। → सा० साध सा० (२६) १०-२।

लंपट—वि० [सं०] विषयी, लोभी। ~कहै कबीर जिभ्या के लंपट, यहि विधि प्रानी नरक परै। →पद २७६-६।

लख—वि० [सं० लक्ष] लाख, बहुत। ~बहुत प्रताप गांउं सौ पाए, दुइ लख टका बरात। →सब० ७०-३, सब० ६२-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लखमी—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] लक्ष्मी । ~कोटि कुबेर जाकै भरहि भंडार, कोटिक **लखमी** करैं सिंगार। →सब० १२८-६ ।

लखा—क्रि० [हि० लखना] देखा। ~ओ ऊँकार कहै सभ कोई, जिन्ह यह **लखा** सो बिरला होई। → ज्ञान चौं० (१) २ ।

लखाई—क्रि० [हि० लखना] दिखाया। ~हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै **लखाई**। →पद ३०४-६ ।

लखाय—क्रि० [सं० लक्ष्य] दिखाई देना। ~अनभौ भाव न दरसै, जियत न आप **लखाय**। →र० ३१-६ ।

लखाया—क्रि० [सं०√लक्ष्] दिखाया। ~जिन अवधू गुरु ग्यान **लखाया**, ताकर मन तंहई लै धाया। →र० ८३-२ ।

लखि—क्रि० [सं० लक्ष्य] देखकर।~ दिनां चारि के सुरंग फूल, तेहि **लखि** भँवरा रह्यौ भूल।→सब० १०६-५।

लखिया—क्रि० [सं० लक्ष्य] देखना। ~जीव बिलंब्बा जीव सौं, अलख न **लखिया** जाई। → सा० चाँण० (१७) १-१ ।

लखु—क्रि० [सं० लक्ष्य] देखो। ~आपु जियत **लखु** आपु ठौर करु, मुए कहाँ घर तेरा। →सब० १८०-२ ।

लखै—क्रि० [सं० लक्ष्य] देखता है। जाके लागी सो **लखै** कै जिहि लाई सोइ। →सा० ग्या० बि० (४) ३-२ ।

लगन—संज्ञा पु० [सं० लग्न] शुभ मुहूर्त। ~जना चारि मिलि **लगन** सुधाये, जना पांच मिलि मांड़ौ छाए →पद ३१२-३ ।

लगन—संज्ञा पु० [सं० लग्न] विवाह। ~अंध कहै अंधा पतियाय, जस बिसुवा के **लगन** धराय। →वसंत (४) १२-२ ।

लगनियाँ—वि० [हि०] जमानतदार।~ गुरुदेव ज्ञानी भयौ **लगनियाँ**, सुमिरन दीन्हौ हीरा। →पद २१७-७ ।

लगवारा—संज्ञा पु० [हि० लग+वार (प्रत्य०)] जार, उपपति।~ऊ जे सुनी मन्दोदरि तारा, तिन घर जेठ सदा **लगवारा**।→र० ८१-२ ।

लगांमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लगाम] बन्धन, फन्दा। ~अरथ करंता मिसिर पछाड़ा गल महिं घालि **लगांमी**। →पद २४४-६ ।

लगाम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रास, वलगा, लगाम। ~दै मुहरा **लगाम** पहिराउं, सिकली जीन गगन दौरावउं। →सब० ३-३, पद ३०७-३।

लचपचि—वि० [हि०] ढीली। ~ गुरु भौ ढील गोनि भै **लचपचि** कहा न मानेहु मोरा हो। →कहरा (३) १-२६ ।

लचाय—क्रि० [हि० ललचना] तरस रहे हैं। ~इन्द्र कृस्न द्वारे खड़े, लोचन ललचि **लचाय**। →चांचर (५) १-२४ ।

लच्छ—वि० [सं० लक्ष] एक लाख; सौ हजार। ~**लच्छ** करोरि जोरि धन गाड़िनि चलत डोलावत बांही हो। →कहरा (३) ५-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लछनि—संज्ञा पु० [सं० लक्षण] लक्षण; तौर-तरीका। ~सहज **लछनि** ले तजो उपाधि, आसन दिढ़ मुद्रा पुनि साधि। →सब० ५४-७।

लछि—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] धन। ~लछि बिनु सुख दरिद बिनु दुख है, नींद बिना सुख सोवै। →पद २०४-३।

लट—संज्ञा स्त्री० [सं० लट्वा] बालों का गुच्छा, केशपाश। ~लट छूटी खेलैं विकराल, अनंत कला नटवर गोपाल। →सब० १२८-१२।

लटापटि—क्रि० [दे०] मिलकर। ~रही **लटापटि** जुटि जेहि माहीं, होंहि अटल ते कतहूं न जाहीं। →ज्ञान-चौं० (१) २६।

लदाऊ—संज्ञा पु० [दे०] लादने वाले। ~और सकल ए भार **लदाऊ**, महिषी सुत कै गोती। →सब० ६६-४।

लपटाई— क्रि० [हि० लिपटाना] लिपटे हुए हैं। ~वे भूले षट दरसन भाई, पाषंड भेष रहा **लपटाई**। → र० ३०-१।

लपसी—संज्ञा स्त्री० [सं० लप्सिका] हलुवे के ढंग की गीली गाढ़ी वस्तु (व्यंजन)। ~**लपसी** लौंग गनै एक सारा, परिहरि खांड़ मुख फाँकै छारा। →र० ७१-६, सब० ६०-४।

लबराई—भाव० [सं० लपन + आई (प्रत्य०)] झूठापन। ~छाँड़हु पति छांड़हु **लबराई**, मन अभिमान छूटि तब जाई। →र० ६०-१।

लबरी—वि० [सं० लपन] झूठ, मिथ्या। ~धर्म कथा जो कहतै रहई, **लबरी** नित उठि प्रातै कहई। →र० ६१-१, २।

लबार—वि० [सं० लपन] झूठा, मिथ्या-वादी, प्रपंची। ~अब तोर होय नरक मँह बासा, निसु दिन बसेउ **लबार** क पासा। →र० ४४-३।

लयऊ—वि० [सं० लय] लय होनेवाला, नाशवान्। ~कहहिं कबीर पुकारि के, ई **लयऊ** व्यौहार। →र० २-१३।

लरतु—क्रि० [हि०] लड़ता है। ~ऐसो हरि सो जगत **लरतु** है, पांडुर कतहूँ गरुड़ धरतु है। →सब० ६२-१।

लरिका—संज्ञा पु० [हि० लड़का] लडका। ~माया जोरि जोरि करै इकठी, हंम खैहैं **लरिका** ब्यौसाई। →सब० १२०-३।

लरिके—क्रि० [हि० लड़ना] लड़कर के। ~पाँचउ **लरिके** पटकि कै, रहै राँम लौ लाइ। →सा० गु०सि०हे० (४३) ४-२।

ललनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिनी] बाँस की नली। ~ज्यौं **ललनी** सुअटा गह्यौ मन बउरा रे माया यहु ब्यौहार। →सब० १६३-८; सब० ५-६।

ललनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिनी] नलिनी। ~कहै कबीर नर आपु बंधायौ ज्यों **ललनी** भ्रमि सूवा। → सब० १७६-१०।

लवनि—संज्ञा पु० [सं० लवण] नमक। ~कोई एक मेलै **लवनि**, अमीं रसा-इंन हंत। →सा० बिचा० (३३) ७-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लवा—संज्ञा पु० [सं० अलावुक] लौकी का तुम्बा । ~लवा नालि तंति एक सँमि करि, जंत्र एक भल साजा । → सब० १७२-३ ।

लसकरु—संज्ञा पु० [फ़ा० लश्कर] भीड़, सेना । ~गगन मंडल महि लसकरु करै; सो सुरतानु छत्र सिरि धरै । →पद ३४६-८ ।

लहंग—वि० [हि०] लहराता हुआ । ~ असमांन म्यांनैं लहंग दरिया गुसन्न करदः बूद । →सब० १८१-७ ।

लहरइं—संज्ञा स्त्री० [सं० लहरी] विष के प्रभाव का झोंका । ~तन मन डस्यौ भुजंग भाँमिनीं लहरइं वार न पारा । →पद २२३-५ ।

लहरि—संज्ञा स्त्री० [सं० लहरी] ज्ञान की तरंग या लहर । ~बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चमंकि । → सा० गुरु० (१) २५-१, पद ३०५-१८ ।

लहा—क्रि० [सं०√लभ्] प्राप्त किया; पाया । ~ निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरि प्रगटा आप । →सा० पर० (५) ३०-२ ।

लहिऐ—क्रि० [हि० लहना से] प्राप्त कीजिए । ~अँधियारे दीपक चहिऐ, तब वस्तु अगोचर लहिऐ । →पद ३३६-५ ।

लहुरिया—वि० [सं० लघु] छोटी । ~ राम बड़े मैं तनक लहुरिया । →पद ३३६-२ ।

लहै—क्रि० [सं० √लभ्] प्राप्त करता है । ~ लाधा है कछु लाधा है, ताकि पारिष को न लहै । →पद २८०-१ ।

लांबि—भाव० [सं० लम्ब + ई (प्रत्य०)] लम्बाई, प्रभु जीव से साधारणतः इतना दूर रहता है कि मन को उसकी गहराई की थाह नहीं मिलती । → सा० लांबि० (७) ।

लाइ—क्रि० [हि०] लगाओ । ~इहि बिधि रांम सूं लौ लाइ । →सब० ४५-१, सा० भ्र०वि० (२३) ११-२ ।

लाइ—क्रि० [हि० 'लगाना' से] लगाकर । ~जग हटवारा स्वाद ठग; माया बेसाँ लाइ । →सा० माया० (१६) १-१ ।

लाइ—संज्ञा स्त्री० [सं० अलात्] आग; अग्नि । ~कबीर चित्त चमंकिया; चहूँ दिस लागी लाइ । →सा० सुमि० (२) ३२-१, सा० भ्र०वि० (२३) ६-२, सा० पर० (५) ३१-२ ।

लाइया—क्रि० [हि० लगाना] लगा दिया । ~अहेड़ी दौ लाइया, मिरग पुकारे रोइ । →सा० ग्या० वि० (४) ८-१ ।

लाइलै—क्रि० [हि०] लीन कर दे ।~ ऐसैं मन लाइलै रांम रसनां । → सब० ५६-१ ।

लाई—क्रि० [हि० लगाना] लगाना (ध्यानादि) । ~मन थिर बैसि बिचारिया, रामहि लौ लाई । → सब० १-५ ।

लाई—क्रि० [हि०] उत्पन्न की गई ।~ कै सो जांनै जिनि यहु लाई,कै जिनि चोट सहारी । →सब० १६४-४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाई—क्रि० [हि० लगाना] लगाई। ~जाके लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ। →सा० ग्या० वि० (४) ३-२।

लाख—संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा] लाह ~कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लाल।→सा० चिता० (१२) १६-१।

लाग—क्रि० [हि० लगना] लग कर, आसक्त होकर। ~कोइ साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग। → सा० कामी० (२०) १५-२।

लागल—क्रि० [हि० लगना] लग गई। ~जब दस मास मता के गर्भे, बहुरि के लागल माया। →पद ३१६-४।

लागि—क्रि० [सं० लग्न] लगकर, आसक्त होने से। ~माया की झलि जग जरै, कनक कामिनी लागि।→ सा० माया० (१६) ३२-१।

लागी—संज्ञा स्त्री० [हि० लगना] लगन, प्रेम। ~मोहि तोहि लागी कैसे छूटै। →पद २४०-१।

लाजसी—क्रि० [सं० लज्जा] लज्जित होगा। ~तब कुल किसका लाजसी जब ले धरहिं मसांनि। →सा० चिता० (१२) ४६-२।

लाडू—संज्ञा पु० [हि० लड्डू] लड्डू। ~लाडू लावन लापसी पूजा चढ़ै अपार। →पद २११-७।

लात—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. पैर, पाँव, पद। २. पैर से किया हुआ आघात या प्रहार। ~माटी मलनि कुँभार की, घनी सहै सिरि लात। →सा० चिता० (१२) २६-१।

लातौं छड़ी—[मुहा०] ठुकरा दी गई, लात मार कर दूर कर दी गई। ~ बिलसी अरु लातौं छड़ी सुमरि सुमरि जगदीस। →सा० माया० (१६) १०-२।

लादि—संज्ञा स्त्री० [हि० लाद] बोझा। ~कहै कबीर यहु जनम बादि, सहजि समांनौ रही लादि। → पद २३६-८।

लाधा—क्रि० [सं० लब्ध] प्राप्त किया। ~लाधा है कछु लाधा है, ताकी पारिष को न लहै।→पद २८०-१।

लापसी—संज्ञा स्त्री० [सं० लप्सिरा] लप्सी। दे० 'लपसी'।~लाडू लावन लापसी पूजा चढ़ै अपार। →पद २११-७।

लाबरि—वि० [सं० लपन] झूठ, मिथ्या। लाबरि बिहने लाबरि संझा, इक लाबरि बस हिरदया मंझा। →र० ६१-२।

लार—क्रि० वि० [राज० लैर] साथ-साथ, पीछे।~सो प्राणी काहे चलै, झूठे जग की लार। →सा० साँच० (२२) १६-२, सा० जी० मृ० (४१) ३-२, सब० ५१-३।

लार—संज्ञा स्त्री० [सं० लाला] परम्परा, लीक। ~पष ले बूड़ी पिरथवी, झूठी कुल की लार। →सा० भेष० (२४) २१-१।

लारै—क्रि० वि० दे० 'लार'।

लालै—संज्ञा स्त्री० [सं० लालसा] लालसा या तृष्णा में। ~ कबीर माया पापिनी, लालै लाया लोग। →सा० माया० (१६) ३-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लावन—संज्ञा पु० [सं० लावण्य] श्रृंगार। ~कंद्रप कोटि जाके **लावन** करैं, घट घट भीतरि मनसा हरैं। →सब० १२८-१७।

लावन—वि० [सं० लावण्य] लावण्य, नमकीन। ~लाडू **लावन** लापसी पूजा चढ़ै अपार। →पद २११-७।

लावै—क्रि० [हि० लाना] ले आता है। ~सोई हित बंधु मोहि मन भावै, जात कुमारग मारग **लावै**। →र० ६६-१।

लावौं—क्रि० [हि० लगाना] लगाऊँ। ~तनु महिं खोजौं चोट न पावौं, ओषद मूर कहाँ घसि **लावौं**। →पद २६२-३।

लाहनि—संज्ञा पु० [दे०] लाहन, वह पदार्थ जिससे खमीर उठाकर मदिरा बनाई जाती है। ~काया कलाली **लाहनि** मेलेउँ गुरु का सबद गुड़ कीन्हा। →पद ३४४-३।

लाहा—संज्ञा पु० [सं० लाभ] लाभ, फायदा। ~छांड़ि कपूर गांठि बिख बांधा, मूल हुवा नहिं **लाहा**। →सब० १०४-७, सब० ४१-६, पद २०२-२।

लाहु—संज्ञा पु० दे० 'लाहा'।

लिखल—वि० [सं० √ लिख्] लिखा हुआ, लेखा। ~करमक **लिखल** मिटै धौं कैसे, जो जुग कोटि सिराई। →सब० ४-२।

लखेन—संज्ञा पु० [सं० लेखेन] लेख के अनुसार। ~जलही माहैं जलि मुई; पूरब जनम **लिखेन**। →सा० मा० (१६) २२-२।

लिपै—क्रि० [सं० लिप्त] लिप्त होना, लगना। ~सोहं हंसा ताको जाप; ताहि न **लिपै** पुन्नि अरु पाप। → सब० ४३-१४।

लिपै—क्रि० [सं० √ लिप] व्याप्त होना। ~ सोहं हंसा ताको जाप; ताहि न **लिपै** पुन्य न पाप। → सब० १४०-१६।

लिव—संज्ञा पु० [सं० लौ] ध्यान। ~इह जिउ रांम नाम **लिव** लागै। →सब० ४३-१, सब० ५३-८, पद २५०-२।

लिव लीना— वि० [हि० लवलीन] प्रेम-पूर्ण ध्यान। ~उदै अस्त की मति बुधि नासी तउ सदा सहजि **लिव लीना**। →सब० १५३-८।

लिहाला—वि० [दे०] डाला हुआ, पड़ा हुआ। ~लोह **लिहाला** अगनि मैं, जरि बरि कोइला होइ। →सा० कामी० (२०) १६-२।

लीना—वि० [सं० लीन] व्याप्त। ~रवि के उदै तार भौ छीना, चर बीहर दोनों मँह **लीना**। →र० २९-५।

लीपि—क्रि० [सं० √ लिप् या लेपन] लीपकर, पोतकर। ~दुलहिन **लीपि** चौक बैठारे, निरभय पद परगाता। →सब० ३६-४।

लीर—संज्ञा स्त्री० [दे०] चिथड़ा। ~**लीर** लीर लोई भई, तऊ न छाड़ैं रंग। →सा० सग० (२६) ३-२।

लीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्व में परम-तत्त्व की अभिव्यक्ति। ~कहै

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर गुंनी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावे। →सब० ११४-८।

लुंचित—संज्ञा पु० [सं० लुञ्चन से] केशों को नोचने वाले श्रावक, जैन साधु। ~लुंचित मुंडित मोनि जटाधर अंति तऊ मरनां। →पद १४२-८, पद ३३७-४।

लुका—क्रि० [सं० √लुक्] छिप गया। ~भील लुका बन बीझ मैं, ससा सर मारै। →सब० ५१-६।

लुकाई—क्रि० [सं० √ लुक्=लोप] छिप जाता है। ~तासे सेषहु जाइ लुकाई, काहू कैं परतीति न आई। →र० १३-२।

लुकाय—क्रि० [सं० √ लुक्] छिपकर। ~ ऐसा अद्भुत जिनि कथै, अद्भुत राखि लुकाय। →सा० जर० (८) ३-१।

लुचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० रुचि] पूड़ी। ~लुचरी लपसी आप सँघारै; द्वारै ठाढ़ा राम पुकारै। →सब० ६०-४।

लुनत—क्रि० [सं० लवन] काटते हुए। ~बिष की क्यारी बोइ करि, लुनत कहा पछिताइ। →सा० मन० (१३) ५-२।

लुनता—क्रि० [सं० लवन] काटना। ~अनबोवै लुनता नहीं, बोवै लुनता होइ। →सा० उपदे० (३४) २-२।

लुबधिया—क्रि० [सं० लुब्ध] लुब्ध हो गया। ~मन भँवरा तहँ लुबधिया जानगा जन कोइ। →सा० पर० (५) ७-२।

लुभुकी लुभुकि—यौ० [दे०] लपककर। ~लुभुकी लुभुकि चरै अभिअंतर खात करेजा काढ़ी। →पद ३१३-४।

लूँचि लूँचि—क्रि० [सं० लुञ्चन] नोच नोच कर। ~केस लूँचि लूँचि मुए बरतिया, इनमैं किनहुँ न पाई। → पद २६०-६।

लूनें—वि० [सं०√लुञ्] कटा हुआ। ~सूखे सरवरि पालि बंधावै लूनें खेति हठि बारि करै। →पद २३३-५।

लेख—संज्ञा पु० [सं०] वह जो लिखा हुआ हो। ~मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख। →सा० पर० (५) १०-२।

लेख—संज्ञा पु० [सं०] वह जो देखा जा सके, प्रत्यक्ष, साकार। ~लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप। →सा० पर० (५) २३-२।

लेखनि—संज्ञा स्त्री० [सं० लेखनी] लेखनी, कलम। ~ लेखनि करौं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ। →सा० बिर० (३) १२-२।

लेखा—संज्ञा पु० [सं० लेख] हिसाब-किताब, आय-व्यय का विवरण। ~देवै पैसा व्याज कौं, लेखा करता जाइ। → सा० चाँण० (१७) ७-२ सा० साँच० (२२) २-१।

लेखा—संज्ञा पु० [सं०] गणना। ~उहै जु खेलै सब घट माहीं, दूसर के लेखा कछु नाहीं। →र० ६८-४।

लेखा—क्रि० [हि०] हिसाब किताब करना। ~ऐसा एक अचंभौ देखा, जंबुक करै केहरि सौं लेखा। → पद ३४७-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेज—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी । ~सुरति ढीकुली **लेज** लौ, मन नित ढोलनहार । →सा० लै० (१०) २-१ ।

लेपन—क्रि० [सं०] लगाना । ~का जटा भसम **लेपन** किए कहा गुफा में बास । →पद ३१७-५ ।

लेर—संज्ञा पु० [दे०] बछड़ा, बच्चा । ~सुरही तिन चरि अमृत सरवै, **लेर** भवंगहिं पाई ।→पद २६८-५ ।

लेस—वि० [सं० लेश] रंच, थोड़ा, अल्प, लेशमात्र । ~उपजै खपै जोनि फिरि आवै, सुख का **लेस** सपने नहिं पावै । →र० ८४-३, पद ३४५-१२ ।

लेसी—क्रि० [हि० लेना] ले सकता है । ~सीस उतारै हाथि सौं, (तब) **लेसी** हरि का नाँम । →सा० सूरा० (४५) २४-२ ।

लैं—क्रि० [सं० लय] लय, लीन होना । →सा० लै० (१०) ।

लैंलाइ—क्रि० [सं० लय+हि० लीन] लौ लगाकर, ध्यान लगाकर । ~ऐसा ग्यांन विचारि लै, **लैंलाइ**, लै ध्यांनां । →सब० ५२-१ ।

लैलीन—वि० [सं० लय+हि० लीन] तल्लीन, लौलीन । ~**लैलीन** भये जे उतरे पार । →पद ३३२-२ ।

लोइ—संज्ञा पु० [सं० लोक] लोग, जन, मनुष्य । ~तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी **लोइ** । → सा० चिता० (१२) ५५-१, सा० माया० (१६) २४-१, सा० अवि० (५६) २-३ ।

लोइन—संज्ञा पु० [सं० लोचन] नेत्र; आँख । दे० 'लोचन' । ~जो **लोइन** लोंही चुवै, तौ जाँनौं हेत हियाँहि । →सा० बिर० (३) २६-२ ।

लोई—समू० [सं० लोक] लोग । दे० 'लोइ' ।~माया मोह बँधे सब **लोई**, अलपै लाभ मूल गो खोई । →र० ८४-२, र० ३६-१, सब० ३८-५; सब० १४४-१ ।

लोई—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमीय] एक प्रकार का कम्बल । ~लीर लीर **लोई** भई, तऊ न छाड़ै रंग ।→सा० संग० (२६) ३-२ ।

लोकंदे—संज्ञा स्त्री० [दे०] बधू के साथ जाने वाली स्त्रियाँ । ~बन के रोझ धरि दाइज दीन्हो, गोह **लोकंदे** जाई →सब० १५५-७ ।

लोक—संज्ञा पु०[सं०] लोग । दे० 'लोइ' और 'लोई' ।~खोजहि ब्रह्मा विस्नु सिव सक्ती, अमित **लोक** खोजहि बहु भक्ती । खोजहि गन गंधर्व मुनि देवा, अमित **लोक** खोजहिं बहु भेवा । →र० २५-३, ४ ।

लोका—संज्ञा पु० [सं० लोक] लोग । दे० 'लोक' । ~ **लोका** जांनि न भूलहु भाई । →पद २८१-१ ।

लोकाचारु—यौ० [सं० लोक+आचार] लोक व्यवहार, बाह्याचार । ~परिहरु लोभ अरु **लोकाचारु**, परिहरु कांम, क्रोध; हंकारु । →सब० १०१-४ ।

लोचन—संज्ञा पु० [सं०] नेत्र । ~**लोचन** अछत सबै अँधियारा, बिन **लोचन** जग सूझै । →पद ३०५-६ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोचैं—क्रि० [हि० ललचना] तरसते हैं, चाहते हैं। ~या देही को **लोचैं** देवा, सो देहीं करि हरि की सेवा। →पद २०२-४।

लोढ़त—क्रि० [हि० लोढ़ना] काटना। चुनना, तोड़ना। ~विष की कियारी बोयहु बिरहुली, **लोढ़त** का पछिताहु बिरहुली।→बिरहुली (७) ११।

लोन—संज्ञा पु० [सं० लवण] नमक। ~ह्वैसी आटा **लोन** ज्यौं, सोना सवां सरीर।→सा० चिता० (१२) ४८-२।

लोय—संज्ञा पु० [सं० लोक] लोग, जन। दे० 'लोक' या 'लोका'। ~अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भये सब **लोय**। →र० १०-७।

लोरैं—क्रि० [सं० लोल] लपकते हैं, उत्सुक होते हैं।~नैन हमारे बावरे, छिन-छिन **लोरैं** तुज्झ। →सा० बिर० (३) ४२-१।

लोरैं—क्रि० [सं० लोल] चुनना, तोड़ना। ~सो फूल **लोरैं** सत जना बिरहुली, बंदि के राउर जाँहि बिरहुली। →बिरहुली (७) ८।

लोह—संज्ञा पु० [सं० लौह] लोहा। ~बांधे देव तेंतीस करोरी; सुमिरत बंदि **लोह** गै तोरी। →र० ६-३।

लोहि—संज्ञा पु० [सं० लौह] लोहे को। ~सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातैं **लोहि** लुहार।→सा० गुरु० (१) २८-१।

लोहँ—वि० [सं० लोहित] रक्त दे० 'लोहू'।~जो लोइन **लोहीं** चुवैं, तौ जानौं हेत हियाँहि। → सा० बिर० (३) २६-२।

लोहू—संज्ञा पु० [सं० लोहित] रक्त, खून। ~**लोहू** सीचूं तेल ज्यौं, कब मुख देखौ पीव। → सा० बिर० (३) २३-२, र० २-८।

लौंग—संज्ञा स्त्री० [सं० लवङ्ग] लौंग। ~लपसी **लौंग** गनै एक सारा, परिहरि खाँड़ मुख फाँकै छारा। → र० ७१-६।

लौंगहि—संज्ञा पु० [सं० लवंग] लौंग में। ~यातै **लौंगहि** फर नहि लागै, चंदन फूल न फूलै।→सब० २८-३।

लौंन—संज्ञा पु० [सं० लवण] नमक। ~कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं **लौंन**।→सा० गुरु० (१), १४-१, सा० पर० (५) १६-२, सा० साँच० (२२) १२-१।

लौंलीन—यौ० [हि०] ज्योति में लीन (होकर), प्रभु में लीन (होकर)। ~पद गावै **लौंलीन** ह्वै, कटी न संसै पास। →सा० बेसा० (३५) १६-१।

लौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेमपूर्ण ध्यान; निवात, निष्कम्प, दीपशिखा की भाँति सत्यनाम में चित्तवृत्ति का लगा रहना। ~ रामनाम **लौ** लाय सो लीन्हा, भृंगी कीट समुझि मन दीन्हा। →र० २०-३, सा० भ्र०वि०(२३) ११-२, सब० १-५।

लौ—संज्ञा स्त्री० [दे०] प्रेम की लगन, चित्तवृत्ति का लीन होना। ~रैनि दिवस की गमि नहीं; तहाँ कबीर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा **लौ** लाइ । →सा० लै० (१०) १-२ ।

लौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] आशा, कामना, ध्यान । ~पुत्र कलत्र रहैं **लौ** लाए, जम्बुक नित्य रहैं मुँह बाए । →र० ७८-४, सब० २४-१ ।

लौकै—क्रि० [सं० अवलोकन] दिखाई पड़ता है । ~**लौकै** रतन अवेध अमोलिक, नहि गाहक नहिं साँई । →पद २९५-२ ।

लौलींन—वि० [सं०] अनुरक्त, ध्यान-मग्न । ~छाड्यौ गेह नेह लगि तुमसे, भई चरन **लौलींन** । →सब० २२-४ ।

व

वक्ता—संज्ञा पु० [सं०] बोलने वाला, उपदेशक ।~तन मन भजि रहु मोरे भक्ता, सत्त कबीर सत्त है **वक्ता** । →र० १४-९ ।

वर्मन—संज्ञा पु० [सं० वर्मन्] वर्मा, क्षत्रिय । ~सर्मन **वर्मन** देव औ दासा, रज सत तमगुन धरति अकासा । →र० २७-७ ।

वसुधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।~**वसुधा** व्योम विरकत रहै, बिना ठौर बिस्वास । →सा० मधि० (३१) ३-२ ।

वाका—सर्व० [हि० उसका] उसका । दे० 'वाको' । ~मध्य कि डार चारि फल लागा, साखा पत्र गिनै को **वाका** । →पद २८६-३ ।

वाको—सर्व० [हि० वह] उसका । ~ऐसो **वाको** मांसु रे भाई, पल-पल मांसु बिकाई । →पद ३९८-४ ।

वाचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणी से, वाणी द्वारा ।~मनसा **वाचा** कर्मना, कबीर सुमिरन सार । सा० सुमि० (२) ४-२ ।

वार—संज्ञा पु० [सं० पार] किनारा । ~अबरो आगम करै विचारा, ते नहिं सूझै **वार** न पारा । →र० २२-६ ।

वारि—संज्ञा पु० [सं० द्वारि] द्वार पर, दरवाजे पर । ~**वारि** जु बाँधा प्रेम कै, डारि रहा सिरि खेह । → सा० रस० (६) ५-२ ।

वारी—क्रि० [हि० वारना] बलिहारी जाना । ~**वारी** फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू । →सा० सुमि० (२) ९-२ ।

वाहन—संज्ञा पु० [सं०] सवारी । ~है गै **वाहन** सघन घन, छत्र धुजा फहराइ । →सा० साधुम० (३०) ४-१ ।

विकट—वि० [सं०] तीक्ष्ण । ~कहैं कबीर यहु बास **विकट** अति ग्यांन गुरू लै बांका । →पद ३४४-८ ।

विकट—वि० [सं०] दुर्गम, दुस्तर । ~लंबा मारग दूरि घर, **विकट** पंथ बहु मार । →सा० सुमि० (२) २७-१ ।

विचच्छन—वि० [सं० विचक्षण] बारीकी छाँटने वाला । ~ग्यानी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर **विचच्छन** लोई, एक सयान सयान न होई। →र० ३६-१।

विचार—संज्ञा पु० [सं०] भेद, अंतर। ~राम राम सब कोइ कहै, कहिबे बहुत **विचार**। → सा० विचा० (३३) १-१।

विचारा—क्रि० [सं० विचार] विचार कर के। ~तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर **विचारा**। →सा० पर० (५) २७-२।

वित—संज्ञा पु० [सं० वित्त] सम्पत्ति। ~सहजैं-सहजैं सब गए, सुत **वित** कामिनि काम । →सा० सह० (२१) ३-१।

विधाता—संज्ञा पु० [सं०] भगवान्, ईश्वर। ~चलि कबीर तेहि देस कौं, जहँ बैद **विधाता** होइ। →सा० सजी० (४७) १-२।

विधिना—संज्ञा पु० [सं० विधि + ना (प्रत्य०)] ब्रह्मा । ~**विधिना** सभै कीन्ह एक ठाँऊँ, जतन अनेक के बने वनाऊँ। →र० २६-२।

विधौंसण—संज्ञा पु० [सं० विध्वंस] विध्वंस; निवारण। →सा० भ्र०वि० (२३)।

विनंठा—क्रि० [सं० विनष्ट] नष्ट हो गया। ~पांसि **विनंठा** कप्पड़ा, क्या करं विचारी चोल। →सा० गुरु० (१) २४-२।

विभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भस्म, राख, खाक। ~जोगी था सो रमि गया, आसनि रही **विभूति**। →सा० ग्या० बि० (४) ४-२, र० ५२-१, सब० ३३-७, सा० जी० मृ० (४१) ७-२, सा० मन० (१३) ३-१।

विमन—वि० [सं० वि + मन] दुःखी। ~हार हिराँनौ जन **विमन** कीन्ह, मेरो आहि परोसिनि हार लीन्ह। → पद २३४-७।

विमलख—संज्ञा पु० [सं० विमलाक्ष] नेत्रों को निर्मल करने वाला, अंजन। ~**विमलख** करै नैन नहिं सूझा, भया अयान तब कछुवौ न बूझा। →र० ६३-४।

विलंगा—क्रि० [दे०]। मिलकर, लगकर, विलीन हो गया। ~लौंन **विलंगा** पानियाँ, पानीं लौंन विलग। →सा० पर० (५) १६-२।

विलंबिया—क्रि० [सं० विलम्ब से] स्थित हो गया। ~कबीर तहाँ **विलंबिया**, जहाँ छांह नहिं घंम। → सा० मधि० (३१) ४-२।

विलंबी—क्रि० [सं० विलम्बन] रमी हुयी है। ~ विषै **विलंबी** आतमाँ, ताका मजकण खाया सोधि। → सा० कामी० (२०) २०-१।

विलंबे—क्रि० [सं० वि + लम्बन] लिपटता है। ~सीतलता कै कारनैं, नाग **विलंबे** आइ। →सा० निगु० (५५) ८-१।

विलग—क्रि० [सं०] विशेष रूप से लग गया अर्थात् भली प्रकार लग गया। ~मन लागा उनमन्न सो, उनमन मनहि **विलग** । →सा० पर० (५) १६-१; २।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विलोवनां—संज्ञा पु० [सं० विलोडना] वह पदार्थ जिसे मथा जाता है। ~ हरि का **विलोवनां** बिलोइ मेरी माई। →पद ३३०-१।

विवरजित—वि० [सं० विवर्जित] रहित, मुक्त। ~काम क्रोध लोभ मोह **विवरजित**, हरि पद चीन्है सोई।→ सब० १४६-२, ३, सब० १६६-८।

विवेकी—वि० [सं० विवेकिन्] ज्ञानी।~ माया मोह कठिन है फंदा, होय **विवेकी** सो जन बंदा।→र० ७६-२।

विशेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० विशेषता] विशेषता। ~चौंतिस अच्छर का इहै **विशेखा**, सहसों नाम इहै मँह देखा। →र० २५-१।

विषम—वि० [सं०] दूषित। ~मिष्ट सुवास कबीर गहि, **विषम** गहै नहिं साध।→सा० सार० (३२) ४-२।

विषय—संज्ञा पु० [सं०] १. विस् धातु—विषिनोति (आकृष्ट करना) मनः इति विषयः। २. शी धातु=पदार्थ। ~सो तन तुम आपन करि जानी; **विषय** रूप भूले अग्यानी। →र० ७८-६।

विषहर—वि० [सं०] विष का हरण करने वाला। ~**विषहर** मंत्र न मानै, तौ गारुड़ि काह कराय। → र० २६-८, बिरहुली (७) १०।

वीसवै—क्रि० [सं० विश्राम] विश्राम करना या पाना। ~पंछी छाँह न **वीसवै**, फल लागैं ते दूरि। →सा० निगु० (५५) १०-२।

वृषभ—संज्ञा पु० [सं०] बैल। ~एक सगुन षट चक्रहि बेधै, बिन **वृषभ** कोल्हू माचा। →सब० १४४-२।

वेदन—संज्ञा पु० [सं० वेदना] वेदना, पीड़ा, व्यथा। ~नां तूँ मिलै न मैं सुखी, ऐसी **वेदन** मुज्झ। →सा० बिर० (३) ४२-२।

वेद मुख—यौ० [सं०] श्रेष्ठ मुख। ~ सुरभी भच्छन करत **वेद मुख**, घन बरिसै तन छीजै।→सब० १४४-५।

वैंतत—संज्ञा पु० [हिं० वे (वैं) = वह, सं० = तत्त्व = वैंतत्त्व]। ~अवधू **वैंतत** रावल राता, नाचै बाजन बाजु बराता। →सब० ३६-१।

वैश्नौं—संज्ञा पु० [सं० वैष्णव] विष्णु का भक्त। ~**वैश्नौं** की छपरी भली, ना साकत बड़ गाँउँ। →सा० साधुम० (३०) १-२।

वोढ़ैं—क्रि० [प्रा० ओड्ढण] पहनना, धारण करना।~**वोढ़ैं** काला कापड़ा; नाँव धरावैं सेत। →सा० भ्र०वि० (२३) ७-२।

वोहित—संज्ञा पु० [सं० वोहित्थ] बड़ी नाव, जहाज। ~इच्छा करि भौ सागरे, **वोहित** नाम अधार। →र० २०-६।

व्योम—संज्ञा पु० [सं०] आकाश, अंतरिक्ष। ~वसुधा **व्योम** बिरकत रहै, बिना ठौर बिस्वास। →सा० मधि० (३१) ३-२।

व्यौपार—संज्ञा पु० [सं० व्यापार] व्यापार। ~साँई मेरा बानियाँ, सहजि करै **व्यौपार**। →सा० सम्र० (३८) ८-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यौहार—संज्ञा पु० [सं०] व्यवहार; सांसारिक प्रपंच। ~कहहिं कबीर पुकारि के, ई लयऊ **व्यौहार**। →र० २-१३।

श

श्रवण—संज्ञा पु० [सं०] कान। ~सिरजे **श्रवण** कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ। →सा० बेसा० (३५) १-२, सब० १०-४।

श्रवनूं—संज्ञा पु० दे० 'श्रवण'।

श्री वसंत—संज्ञा पु० [सं०] परम पद। ~रसना पढ़ि लेहु **श्री वसंत**, पुनि जाय परिहौ जम के फंद। →वसंत (४) २-१।

ष

षंडे—संज्ञा पु० दे० 'षंडै'।

षंडै—संज्ञा पु० [सं० खड्ग] तलवार। ~अस बिनु पाखर गज बिनु गुड़िया, विनु **षंडै** संग्रामहि जुड़िया। →सब० ११६-४, पद ३४१-७, सब० ११८-३।

षये—क्रि० [सं० क्षय] नष्ट हो गए। ~ते नर इस संसार में, उपजि **षये** बेकाम। →सा० सुमि० (२) १७-२।

षांडी—वि० [स० खण्डित] खण्डित, नष्ट। ~सबद अतीत अनाहद राता, इहि विधि त्रिष्णां **षांडी** रे। →सब० ३०-२।

षाग—संज्ञा पु० दे० 'षंडै'।

षालसैं—वि० [अ० खालिस] शुद्ध। ~कहै कबीर ते भए **षालसैं**, राम भगति जिनि जाँनी। →पद २२०-१०।

षिवै—क्रि० [सं० क्षय] नष्ट होता है। ~कहौ कौन **षिवै** कहौ कौन गाजै; कहाँ थैं पाँनी निसरै। →सब० ८१-३।

स

संक—संज्ञा स्त्री० [सं० शंका] शंका, संदेह, संशय। ~कहै कबीर करम किस लागै झूठी **संक** उपाई। →सब० ६१-८; सा० कामी० (२०) २६-१, सा० बिर्क० (३७) ८-१।

संक्रान्त—संज्ञा स्त्री० [सं० संक्रान्ति] सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। ~नित्त अमावस नित **संक्रान्त**, नित नित नवग्रह बैठे पाँत। →सब० १६५-४।

संख—संज्ञा पु० [सं० शंख] शंख। ~रैंना दूर बिछोहिया, रहु रे **संख** म झूरि। → सा० बिर० (३) ४४-१, सब० ३३१-६।

संगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तादात्म्य; मिलन। ~हरि **संगति** सीतल भया; मिटी मोह की ताप। →सा० पर० (५) ३०-१।

संगी—संज्ञा पु० [सं० संग+हि० ई (प्रत्य०)] १. संग रहने वाला,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साथी। २. मित्र।~तेरा **संगी** कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ। → सा० चिता० (१२) ५५-१।

संघाती—संज्ञा पु० [सं० संघ से] साथ जाने वाला। ~आवत संग न जात **संघाती**, काह भये दल बाँधल हाथी। →सब० ६-५।

संघाती—संज्ञा पु० [हि० संगाती] संगी, साथी। ~माई मोर मुअल पिता के संगे, सरा रचि मुअल **संघाती** गे।→ कहरा (३) ११-५, सब० ७८-७।

सँघारै—क्रि० [सं० संहार] खा जाता है। ~लुचरी लपसी आप **सँघारै**, द्वारै ठाढ़ा राम पुकारै। →सब० ६०-४।

संच—वि० [सं० संचित] संचित धन, राशि, ढेर। ~ले चाला घर आपनैं भारी खाया **संच**। →सा० उपज० (५०) १२-२।

संच—संज्ञा पु० [सं० संचय] सुख।~ जो सीता रघुनाथ विवाही, पल एक **संच** न कीन्हा। →सब० ४-४।

संचते—क्रि० [सं० सञ्चय] संग्रह करते। ~ धन **संचते** राजा मूए गड़िले कंचन भारी।→पद २६०-७।

संचते—क्रि० [सं० संचय] संचय करते हुए, एकत्र करते हुए। ~सोइ मूवे **धन संचते**, सो उबरे जे खाइ। → सा० माया० (१६) १२-२।

संचर—संज्ञा पु० [सं० संचार] संचार। ~राम सनेही दास बिचि, तिना न **संचर** होइ। →सा० साधसा० (२६) १४-२।

संचारि—क्रि० [सं० संचार] संचरित होना या करना। ~पानी केरा पूतरा, राखा पवन **संचारि**। → सा० विचा० (३३) ४-१।

संची—क्रि० [सं० सञ्चय] सम्हाल कर रखा। ~अमर जांनि **संची** यह काया सो मिथ्या कांची गगरी। → पद २४६-३।

संचै—क्रि० [सं० संचयन] संग्रह करना, एकत्र करना। ~सूरा कहा मरन तैं डरपै, सती न **संचै** भांड़ै। →सब० १३७-४।

संच्यौ—क्रि० [सं० सञ्चयन] संग्रह किया। ~कहै कबीर सुनहु रे संतौ धन **संच्यौ** कछु संगि न गयौ। → पद २३३-६।

संजम—संज्ञा पु० [सं० संयम] धारणा, ध्यान और समाधि का सम्मिलित रूप। ~बेद कितेब सुम्रिति नहिं **संजम**, जीव नहीं परछाई। →सब० ३१-७, सब० १६६-५।

संजम—संज्ञा पु० [सं० संयम] संयम, इन्द्रिय-निग्रह।~रिधि सिधि **संजम** बहुतेरा, पार ब्रह्म नहिं जाना। → पद २८६-५, सब० १४४-६, पद २४५-४।

संजमो—संज्ञा पु० दे० 'संजम'।

संजोइ—क्रि० [सं० सज्जा] तैयार करो, भरो। ~तनु करि मटुकी मनहिं बिलोइ, ता मटुकी महिं सबद **संजोइ**। →पद ३३०-३।

सँजोइ—क्रि० [सं० सज्जा] सज्जित करना। ~नवसत साजे कामिनी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तन मन रही **सँजोइ**। →सा० भेष० (२४) २३-१।

सँजोयो—क्रि० [सं० सज्जा] बनाया रचा। ~बुंद से जिन्ह पिंड **सँजोयो** अग्निहि कुंड रहाया।→पद ३१९-३।

सँजोवैं—क्रि० [सं० संचय] सँजोना, संचय करना, इकट्ठा करना। ~ मुरुख मानुस बहुत **सँजोवैं**, अपने मरे अवर लगि रोवै। →र० ५५-६।

संझा—संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] सन्ध्या, रात्रि। ~पंच चोर गढ़ मंझा, गढ़ लूटहिं दिवसउ **संझा**।→ पद ३३६-३।

संझा—संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] संध्या (प्रातः, दोपहर, सायं, तीन समय की पूजा)।~**संझा** तरपन औ षट कर्मा; ई वहु रूप करहिं अस धर्मा। →र० ३५-२।

संडं मरकं—संज्ञा पु० [सं० शंड मर्क] शंडामर्क, शंड और मर्क नामक दो दैत्य। ~**संडं मरकं** कह्यो जाइ, प्रहलाद बँधायो बेगि धाइ। → सब० १५९-५।

संतति—वि० [सं० सतत] निरंतर, लगातार। ~कांम क्रोध माया मद मंछर, ए **संतति** मों मांही। →सब० ९८-७।

संताप—संज्ञा पु० [सं०] कष्ट। ~ कौन पूत को काको बाप, कौन मरै को सहै **संताप**। →पद ३३५-४, पद २३५-३।

संधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोड़। ~ ताता लोहा यौं मिलै, **संधि** लखै नहिं कोइ। →सा० बीन० (५६) ७-२।

संधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवकाश, दरार, मिलने की जगह।~फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधिहि **संधि** मिलाइ। →सा० सुमि० (२) ३१-२।

सँधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रहस्य; मर्म। ~पूरब दिसा हंस गति होई, है समीप **सँधि** बूझै कोई। →र० ५-९, सब० ६२-४।

संधिक—संज्ञा पु० [हि० साधक] साधक। ~**संधिक** साध कबहुँ नहिं भेंट्यौ सरनि परै जिनकी पगरी। →पद २४९-५।

संपुट—संज्ञा पु० [सं०] ढक्कनदार डिबिया, पिटारी। ~**संपुट** माँहि समाइया, सो साहिब नहिं होइ। →सा० पीव पि० (३६) १-१, सब० ५४-६।

संपुट—संज्ञा पु० [सं०] फूल के दलों का ऐसा समूह जिसके बीच में खाली जगह हो, कोश। ~क क्रा कमल किरन मँह पावै, ससि विगसित **संपुट** नहिं आवै। →ज्ञान चौं० (१) ३।

संपै—संज्ञा स्त्री० [सं० सम्पत्ति] धन, वैभव। ~**संपै** देखि न हरखिऐ बिपति देखि नां रोइ।→पद २४५-६, ७।

सँबाहि—क्रि० [सं० संवाहन] चलाओ। ~भरम भलाका दूरि करि, सुमिरन सेल **सँबाहि**। →सा० सूरा० (४५) १-२।

सँबाहिया—क्रि० [सं० संवहन] संभाल लिया। ~सूरै सार **सँबाहिया**,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहिरा सहज सँजोग। →सा० सूरा० (४५) ८-१।

संभार—क्रि० [हि० सँभाल] सँभालो, ध्यान रखो। ~जब लग साँस सरीर मैं, तब लग नाम **संभार**। →सा० साँच० (२२) ४-२।

संमांनां—क्रि० [सं० समाविष्ट] समा गया। ~सेस नाग जाकै गरुड़ **संमांनां**, चरन कंवल कंवला नहिं जानां। →सब० १६२-४।

संमि—वि० [सं० सम] तुल्य बल। ~ब्रह्म नालि जे **संमि** करि राखै, आवागमन न होई। →पद ३०५-१७।

संमि—वि० [सं० सम] बराबर। ~आपा पर **संमि** चीन्हिए, तब दीसै सरब समाँन। →सब ६७-५।

सँमि—क्रि० वि० [दे०] एकत्र करके। ~लवानालि तंति एक **सँमि** करि, जंत्र एक भल साजा। →सब० १७२-३।

संम्रथ—वि० [सं० समर्थ] क्षमता युक्त। ~उस **संम्रथ** का दास हौं, कदे न होइ अकाज। →सा० निह० पति (११) १७-१।

संम्रथ—वि० [सं० समर्थ] योग्य। ~भांनन गढ़न सवांरन **संम्रथ** ज्यौं राखैं त्यौं रहिए। →पद २०८-२।

सँवरै—क्रि० [सं० स्मरण] सुमिरन करता है। ~राजा **सँवरै** तुरिया चढ़ी, पंथी **सँवरै** नाम लै बढ़ी। →र० ६-४, ५।

सँवारि—क्रि० दे० 'सँवारै'।

सँवारी—क्रि० [हि० सँवारना] सम्पन्न किया। ~मन पवनां पांचौं वसि कीया तिन या राह **संवारी**। →पद ३१४-२।

सँवारै—क्रि० [सं० संवर्णन] ठीक करना, सुधारना, सँवारना, सजाना। ~जब मेरी मेरी मिटि जाइ, तब प्रभु काज **सँवारै** आइ। →सब० ५३-४; सा० चिता० (१२) १४-२, पद २०३-२।

संसरि—संज्ञा पु० [सं० संसरण] संसरण रूप में, निरन्तर। ~नदिया नहीं **संसरि** बहै नीर। →सब० १६७-५।

संसा— संज्ञा पु० दे० 'संसै'।

संसै—संज्ञा पु० [सं० संशय] द्विधा, संशय, सन्देह। ~पढ़ै वेद औ करे बड़ाई, **संसै** गांठि अजहुँ नहिं जाई। →र० ३१-३, सा० कामी० (२०) १७-१, सा० गुरु० (१) २२-१, पद ३४०-२, सा० साधसा० (२६) १४-१, सा० बेसा० (३५) १६-१; सा० सूरा० (४५) ७-१, र० १८-५, सा० पर० (५) १३-२; सब० १८५-५, सा० गुरु० (१) २२-१, २, सब० ६७-१६; सब० २६-६ पद २१८-८, सा० उपदे० (३४) ३-१।

सइं—वि० [सं० समान] बराबर, समान; तुल्य। ~सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी **सइं** न दाति। →सा० गुरु० (१) १-१, २।

सक—संज्ञा पु० [अ० शक] शंका।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~अल्लाह पाकंपाक है सक करउ जे दूसर होइ। →सब० १८१-६।

सकति—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] नारी। ~**सकति** सुहाग कहौ क्यूं पार्वं, अछता कंत विरोधं। →पद २५१-४।

सकति—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सख्ती] जबरदस्ती। ~**सकति** सनेह पकरि करि सूनति, मैं न बदउँगा भाई। →सब० ७६-३।

सकति—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] शक्ति, बल। ~भगवंत भीरि **सकति** सुमिरन की काटि काल की फांसी। →सब० ६३-११, पद ३३२-५, सा० साँच० (२२) १-४१।

सकल—वि० [सं०] १. सम्पूर्ण, २. क्रियासहित। ~अकल निरंजन **सकल** सरीरा, तन मन सौं मिलि रह्यो कबीरा। →सब० १४३-८।

सकल—वि० [सं०] सम्पूर्ण। ~एकै काल **सकल** संसारा, एक नाम है जगत पियारा। →र० ७७-१ पद २७६-१, पद ३२७-५, सब० १३५-११।

सकलो—वि० दे० 'सकल'।

सकामताँ—वि० [सं० सकाम] कामना-युक्त। ~जब लगि भगति **सकामताँ** तब लग निर्फल सेव। →सा० निह० पति० (११) १०-१।

सकारा—क्रि० वि० [सं० सकाल] सुबह, प्रातःकाल। ~आवत जात न लागै वारा, काल अहेरी साँझ **सकारा**। →र० ४३-३।

सकेल—क्रि० [सं० संकलन] समेट लेना, एकत्रित करना। ~डंक बजाय देखाय तमासा, बहुरि सो लेत **सकेल** →सब० १८-२।

सकेलि—क्रि० [सं० संकलन] एकत्रित करके, समेट कर। ~कबीर धूलि **सकेलि** करि, पुड़ी ज बाँधि एह। →सा० चिता० (१२) २०-१।

सक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] शाक्त पद्धति अर्थात् बलि आदि। ~करमै कै कै जग बौराया, **सक्ति** भक्ति लै बाँधिनि माया। →र० ४-२।

सगला—वि० [सं० सकल] सम्पूर्ण, सकल। दे० 'सकल'। ~स्वारथ को सब कोइ सगा, जग **सगला** ही जांनि। →सा० साधसा० (२६) १५-१, सब० १७७-८, सब० ४६-२, सब० १२२-५।

सगली—वि० दे० 'सगला'।

सगले—वि० दे० 'सगला'।

सगलो—वि० दे० 'सगला'।

सगा—वि० [सं० स्वक्] अपना। ~ सतगुरु सवाँ न को **सगा**, सोधी सईं न दाति। →सा० गुरु० (१) १-१।

सगाई—संज्ञा स्त्री० [हि० सगा + आई प्रत्य०] संबंध, आसक्ति, प्रेम। ~ करहु विचार जे सब दुःख जाई, परिहर झूठा केरि **सगाई**। →र० २३-४, सा० बिर्क० (३७) २-१।

सगाई—संज्ञा स्त्री० [हि० सगा + आई प्रत्य०] विवाह संबंधी निश्चय, संबंध। ~देखहु लोगो हरि की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सगाई, माय धरी पूत धिये संग जाई। →सब० १५१-१।

सगुरा—वि० [सं० स+गुरु] जिसका कोई गुरु है, गुरुभक्त। ~**सगुरा** सगुरा चुनि लिए, चूक पड़ी निगुराँह →सा० निगु० (५५) ३-२।

सगोती—संज्ञा पु० [सं० स+फा० गोश्त] गोश्त से। ~अन को त्यागैं मन नहिं हटकै, पारन करैं **सगोती**। →पद ३०४-४।

सगौ—वि० [सं० स्वक्] सहोदर। ~**सगो** भईआ लै सलि चढ़िहूँ तब हौं नाह **पिआरी**। →पद २३२-६।

सघन—वि० [सं०] अत्यधिक। ~सीतल छाया **सघन** फल, पंखी केलि करंत। →सा० सजी० (४७) ६-२।

सघन—वि० [सं०] अधिक संख्या में। ~है गै वाहन **सघन** घन, छत्र धुजा फहराइ। → सा० साधुम० (३०) ४-१।

सच—संज्ञा पु० [दे०] सुख, आनन्द। ~धूप दाझतैं छाँह तकाई, मति तरवर **सच** पाऊँ। →सब० ६६-३, र० ६५-२, सा० मन० (१३) १४-२, सब० १६४-८, पद २२३-३।

सचांनाँ—संज्ञा पु० दे० 'सचान'।

सचान—संज्ञा पु० [सं० सचान] बाज पक्षी। ~सुरति **सचान** तेरी मति तौ मँजारी। →सब० ८५-५, सा० काल० (४६) २-२।

सचु—सं० पु० दे० 'सच'।

सचु—संज्ञा पु० [दे०] सुख, शांति; सत्य। ~तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन **सचु** पाऊँ नहीं। →सा० बिर० (३) १७-२।

सचु[1]—वि० [सं० सत्य] सच, सत्य।

सचु[2]—संज्ञा पु० [सं०] वह जो सच या सत्य है। ~सचु पाया सुख ऊपजा, दिलदरिया भरपूरि। →सा० पर० (५) २६-१।

सजन—संज्ञा पु० [सं० सज्जन] सज्जन। ~बैरी उलटि भए हैं मीता, साकत उलटि **सजन** भए चीता। →सब० २०-५।

सजन—संज्ञा पु० [सं० स्व+जन] स्वजन, परिजन। ~देहरि लौं बरी नारि संग है आगैं **सजन** सुहेला। →सब० १७६-७।

सजनां—संज्ञा पु० [सं० स्वजन] प्रियतम। ~मैं तो तुम्हारी दासी हौं **सजनां**, तुम हमरै भरतार। →सब० २२-८।

सजीवनि—वि० [सं० संजीवनी] जीवन दायिनी। →सा० सजी० (४७)।

सत—संज्ञा पु० [सं० सत्] सत्यव्रत। ~सती बिचारी **सत** किया, काठौं सेज बिछाइ। →सा० सूरा० (४५) ३४-१।

सत—वि० [सं० सत्] सत्य। ~सो झूठा जो **सत** कहँ तजई, गुर की दया राम को भजई। →र० ६६-३, र० ४७-८।

सत—संज्ञा पु० [सं० सत्व] सभी सत्ताओं का मूल। ~**सत** करि खपर खिमा करि झोरी, ग्यांन बिभूति चढ़ाई। →सब० ३३-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत—वि० [सं० शत] सौ। ~बिनसे नाग, गरुड़ गलि जाई, बिनसे कपटी, औ **सत** भाई। →र० ४६-१।

सतगंठी[१]—वि० [सं० सप्त + हि० गांठ] सात गांठों वाली, जीर्ण-शीर्ण।

सतगठी[२]—वि० [सं० सत् + हि० गांठ] सत्य की गाँठ से युक्त। ~**सतगंठी** कोपीन दै, साधु न मानै संक। → सा० विर्क० (३७) ८-१।

सत सुक्रित—यौ० [सं० सत् + सुकृत] सत्य पुरुष, ईश्वर। ~कहहिं कबीर **सत सुक्रित** मिलै तो बहुरि न झूलै आय। →हिंडोला (८) १-१६।

सतांनी—वि० [हि० सताना से] सताने वाली, कष्ट देने वाली। ~चोट **सतांनी** बिरह की, सब तन जरजर होइ।→सा० बिर० (३) १४-१।

सताय—क्रि० [हि० सताना] सताते हैं, पीड़ित करते हैं। ~कहहिं कबीर ई पाषंड, बहुतक जीव **सताय**। →र० ३१-५।

सतावहु—क्रि० [सं० संतापन] संताप देना, दु.ख देना। ~मोकउं कहा **सतावहु** बार-बार, प्रभु जल थल गिरि कीए पहार। →सब० १५६-७।

सति—संज्ञा पु० [सं० सत्य] सत्य। दे० 'सतु'। ~हमारे राँम रहीम करीमा केसो, अलह राँम **सति** सोई। →पद ३२६-१, पद ३०८-१।

सति असति—यौ० [सं० सत् असत्] शुभाशुभ, भला बुरा।~**सति असति** कछू नहिं जानूं, जैसे बजावा तैसे बाजा। →सब० १७२-४।

सती—वि० [सं० सत् + ई (प्रत्य०)] सत्यनिष्ठ। ~सोई राँम **सती** कहै, सोई कौतिकहार। → सा० विचा० (३३) १-२, सा० सब० (४०) २-१।

सतु—संज्ञा पु० [सं० सत्य] सत्य। ~**सतु** संतोखु लै लरनैं लागा, तोरे दुइ दरवाजा। →सब० ६३-६।

सत्त—संज्ञा पु० [सं० सत्य] सत्य। दे० 'सतु'। ~**सत्त** सत्त कै बिस्नु दिठाई, तीनि लोक मँह राखि निजाई →र० २७-२; र० १४-६, सब० १७६-१, वसंत (४) १०-८।

सद—वि० [सं० सद्यः] ताजा। ~**सद** पांनी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव।→सा० उपज० (५०) ५-१।

सद—अव्य० [सं० सद्यः] सदा। ~बापु सावका करै लराई माया **सद** मतवारी। →पद २३२-५।

सदकै—क्रि० [अ०] न्यौछावर करना। ~सतगुरु कै **सदकै** करूँ, दिल अपनीं का साछ (साँच)। → सा० गुरु० (१) ५-१।

सन—संज्ञा पु० [सं० शण] एक प्रकार का पौधा जिसकी छाल के रेशे से रस्सी बनाई जाती है। ~साकत **सन** का जेवड़ा, भींगा सूं कठठाइ। →सा० चाण० (१७) ११-१।

सनमुख—क्रि० वि० [सं० सम्मुख] सामने, सम्मुख, समक्ष। ~जा कारणि मैं ढूंढ़ता, **सनमुख** मिलिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आइ । →सा० पर० (५) ३६-१ ।

सनां—करण कारक, तृ० वि०, प्रत्यय से । ~सो समुझाइ कहहु मोहि **सनां**। →सब० ८९-२ ।

सनांह—संज्ञा पु० [सं० सन्नाह] कवच। ~स्वाद **सनांह** टोप ममिता कौ कुबुद्धि कमांन चढ़ाई। →सब० ९३-५ ।

सनेही—वि० [सं० स्नेही] स्नेही, प्रेमी। ~राम **सनेही** दास बिचि, तिना न संचर होइ। →सा० साधसा० (२९) १४-२ ।

सन्नि—संज्ञा पु० [सं० सन्निपात] सन्निपात, त्रिदोष (काम, क्रोध, लोभ) ।~सेतहि सेत सेत अंग भौ, **सन्नि** बाढ़ि अधिकाई। →सब० १६१-५ ।

सपचैं—क्रि० [हि० सपचना] १. पूर्णता को प्राप्त होता है, २. बढ़ता है। ~नादे बिंदु रुधिर के संगे, घटहीं में घट **सपचैं**। →सब० १६६-३ ।

सपना—संज्ञा पु० [सं० स्वप्न] स्वप्न। ~जीवन ऐसो **सपना** जैसो, जीवन सपन समाना। → पद २२८-२ ।

सपनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वप्न] स्वप्नवत् । ~सांची बात कही मैं अपनी, भया दिवाना और की **सपनी**। →र० ३६-६ ।

सपेदी—संज्ञा स्त्री० [फा० सुफ़ेदी] धवलता, बुढ़ापा। ~स्याही गई **सपेदी** आई, दिल सपेद अजहूँ न हुआ। →पद- २१०-८ ।

सपेदी—वि० [सं० श्वेत] सफेद, स्वच्छ। ~जाड़न मरै **सपेदी** सौरी; खसम न चीन्है घरनि भौ बौरी। →र० ७३-३ ।

सबकाहू—सर्व० [हि० सब, सं० सर्व] सबके लिए। ~राम नाम ततसार है, **सबकाहू** उपदेस। →सा० सुमि० (२) २-२ ।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] यहाँ इसका प्रयोग कुसबद के लिए हुआ है, दुर्वचन। ~चोट सहारै सबद सी, तास गुरू मैं दास। →सा० कुसब० (३९) १-२ ।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान, दीक्षा। ~**सबद** बतावै जीव को, बूझैं बिरला कोय। → र० ३७-६ ।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] शब्द; आकाश का गुण है। यहाँ तात्पर्य है। आकाश। ~तेज पवन मिलि पवन **सबद** मिलि सहज समाधि मिलावहिंगे। →सब० १८४-४ ।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] शब्द, उपदेश। ~सदगुर **सबद** न मानई; जनम गँवाया बादि। →सा० मन० (१३) १८-२, सब० १६०-२ ।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] अनाहत नाद। ~कबीर **सबद** सरीर मैं; बिन गुन बाजै तांति। सा० सब० (४०) १-१ ।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] आप्त-वचन, अनुभव प्राप्त संत की वाणी। ~लख चौरासी जीव जंतु नहिं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साखी **सबद** न बानी। →सब० ३१-१०।

सबूरी—संज्ञा पु० [अ० सब्र] शान्ति धैर्य, सन्तोष। ~बिसमिल तांमसु भरम कंदूरी, भखि लै पंचै होइ **सबूरी**। →सब० ७२-४, सा० साँच (२२) ११-१।

सबेरा—संज्ञा पु० [हि० स + सं० वेला] जल्दी, शीघ्र ही। ~हंसा हो चित चेतु **सबेरा**, इन्ह परपंच करल बहुतेरा। →सब० ३२४-१।

सब्द—संज्ञा पु० [सं०] सार शब्द, परम तत्व। ~**सब्द** न चीन्है कथये ज्ञाना, ताते जम दीयो है थाना। →र० १८-३।

सब्दहिं—संज्ञा पु० [सं० शब्द + हि] उपदेश को। ~अनबोले ते कैसक बनिहै, **सब्दहिं** कोइ न बिचारै। →पद ३००-२।

सभन—सर्व० [हि० सभी] सभी लोगों ने। ~बानिज एक **सभन** मिलि ठाना, नेम धरम संजम भगवाना। →र० ३६-३।

सभनि—सर्व० [सं० सर्व + हि० नि] सबमें। ~एकमेक रमि रह्यौ **सभनि** मैं तौ काहे भरमावहु। → पद २६४-४।

सभन्हि—वि० [सं० सर्व०] सब कुछ। ~भूलि भटकि नर फिरि घट आया, हो अजान सो **सभन्हि** गँवाया। → र० २५-२।

सभागा—वि० [सं० सौभाग्य] भाग्यशाली। ~कोई बूझै बूझनहार **सभागा**। →सब० ७४-२।

समंद—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] समुद्र, सागर। ~केती लहरि **समंद** की, कत उपजै कत जाइ। →सा० साधु० (२८) ११-१, सा० निह० पति० (११) ५-१।

सम—वि० [सं०] बराबर। ~आपा पर **सम** चीनिऐ तब मिलै आतमांराम। →पद ३१७-८।

समता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समत्व का भाव। ~सीतलता तब जानिए; **समता** रहै समाइ। →सा० कुस० (३६) ३-१।

समधी—संज्ञा पु० [सं० सम्बन्धी] पुत्र या पुत्री का ससुर। ~मड़ए के चारन **समधी** दीन्हा, पुत्र बिबाहल माता। →सब० ३६-३।

समधी—संज्ञा पु० [सं० सम + धी] जिसकी 'धी' (बुद्धि) सम है, सन्त। ~**समधी** के संग नाहीं आई, सहज भई घरबारी। →पद २६०-६।

समर—संज्ञा पु० [सं० सम्बल] सहारा, पाथेय। ~जेकरे गाँठि **समर** कछु नाहीं, सो निरधन होय डोलै हो। →कहरा (३) १-१७।

समरत्थ—वि० [सं० समर्थ] समर्थ। ~चिंता छांड़ि अचित रहु; साँई हैं **समरत्थ**। →सा० बेसा० (३५) ६-१।

समरत्थ—संज्ञा पु० [सं० समर्थ] सम् + अर्थ = सम्यक् लक्ष्य। ~कबीर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिल साबित भया, पाया फल **समरत्थ**।→सा० पर० (५) ३४-१।

समरथ—वि० [सं० समर्थ] सामर्थ्यवान्। ~दीनदयाल दया करि आवौ, **समरथ** सिरजनहार।→सब० २२-९।

समरपन—संज्ञा पु० [सं० समर्पण] भेंट, नजर। ~तन मन सीस **समरपन** कीन्हाँ, प्रगट जोति तहाँ आतम लीनाँ।→सब० ५६-४।

समसरि—वि० [सं० सदृश] सदृश, समान, बराबर। ~तुम्ह **समसरि** नांहीं दयालु, मोहि समसरि पापी। →सब० ६९-१०, पद ३१७-४।

समांनां—क्रि० [सं० समाविष्ट] व्याप्त है। ~एकै पवन एक ही पानीं एकै जोति **समांनां**। →पद ३२५-३।

समांनां—क्रि० [हि०] लीन हो गया, समाविष्ट हो गया। ~सीखें सुनें पढ़े का होई जौ नहिं पदहिं **समांनां**। →पद २९८-१०, पद २३९-८।

समांने—क्रि० [सं० समाविष्ट] प्रवेश कर गए, पहुँच गए। ~जहँते उपजे तहँई **समांने** हरि पद बिसरा जबहीं। →पद ३३७-६।

समांनौं—क्रि० दे० 'समांना'।

समाइया—क्रि० [सं० समाविष्ट] समाविष्ट हो गई। ~सुन्नहि सुरति **समाइया**, कासों कहिए जात।→र० ३९-६।

समाई—क्रि० [सं० समाविष्ट] नष्ट हो जाती है, लीन हो जाती है। ~उपजै उपजै निपजि **समाई**, नैंनन देखत यह जगु जाई। → पद २७९-३।

समाई—क्रि० [सं० समाविष्ट से] समाप्त हो जाता है। ~जब वस्तु अगोचर पाई, तब दीपक रह्यौ **समाई**।→पद ३३६-६।

समाई—क्रि० [हि० समाना] लगे हुए हैं, पीछे पड़े हैं, समाए हुए हैं, अनुरक्त। ~निगम रिसाल चारि फल लागे, तामे तीन **समाई**। →सब० ८८-४।

समाता—क्रि० [सं० समावेश] भरना, अँटना, आवश्यकता के अनुरूप होना। ~संत न बाँधै गाठरी, पेट **समाता** होइ। →सा० बेसा० (३५) १०-१।

समाधें—संज्ञा स्त्री० [सं० समाधि] समाधि से। ~सहज **समाधें** सुख में रहिबो, कोटि कलप बिसराम। → सब० १३-२।

समानी—क्रि० [सं० समाविष्ट] लीन हो गई। ~जेहि मटिया के घर मह बैठे, तामे सृष्टि **समानी**। →सब० १७४-२।

समावहिंगे—क्रि० [सं० समाविष्ट] एकाकार हो जाएँगे, मिल जाएँगे। ~ अैसे हम लोक बेद के बिछुरें सुन्नहिं मांहि **समावहिंगे**।→सब० १८४-६।

समुझि-समुझि—क्रि० [हि० समझना] समझ-समझ कर रह-रहकर, धीरे-धीरे। ~हौं बिरहा की लाकड़ी, **समुझि समुझि** धुंधुँवाउँ। →सा० बिर० (३) ३७-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समोई—क्रि० [सं० समाविष्ट] लय करना, मिलाना। ~घ घा घट बिनसे घट होई, घट ही में घट राखु **समोई**। →ज्ञान चौं० (१) ६।

समोई—क्रि० [सं० समाविष्ट] मिला कर, लय कर। ~ड डा डर उपजे डर होई, डरही मँह डर राखु **समोई**। →ज्ञान चौ० (१) २६।

समोय—क्रि० [हि०] समेटकर। ~ जेते थे तेते लिए, घूंघट माँहि **समोय**। → चांचर (५) १-२२।

सम्पूरन—वि० [सं० सम्पूर्ण] सम्पूर्ण। ~बसिष्ठ स्रेष्ठ विद्या **सम्पूरन**, राम ऐसे सिख साखा। →पद २८६-६।

समथाई—संज्ञा स्त्री० [सं० समर्थ + आई (प्रत्य०)] सामर्थ्य।→सा० सम्र० (३८)।

सम्हारू—क्रि० [हि० सँभालना] सँभाल लो, बचा लो। ~जिव निज दुख ते आपु **सम्हारू**, जो दुःख व्यापि रहा संसारू। →र० ८४-१।

सयांनें—संज्ञा पु० [सं० सज्ञान] चतुर। ~तेरे नेवगी खरे **सयांनें** हो राम। →सब० १०-२।

सयाँने—संज्ञा पु० [सं० सज्ञान] ज्ञानी, पंडित, शास्त्री। ~बहुत **सयाँने** पचि मुए, फल निरमल पै दूरि। →सा० सूरा० (४५) १७-२।

सयान—संज्ञा पु० [सं० सज्ञान] बुद्धिमान्, चतुर। ~दुसर **सयान** को मरम न जाना, उतपति परलै रैनि बिहाना। →र० ३६-२।

सयानप—संज्ञा पु० [सं० सज्ञान, हि० सयाना + पन] चतुराई, चालाकी। ~नहिं देखैं, नहिं भाजै केहू, जानहु परम **सयानप** येहू। → ज्ञान चौं (१) २२, कहरा (३) ३-८।

सयानी—संज्ञा पु० [सं० सज्ञान] चतुर। ~सभ खलक **सयानी** मैं बौरा। → पद ३०६ १।

सर—संज्ञा पु० [हि०] सरकंडे या बाँस की छड़ी जिसे ताना ठीक करने के लिए जुलाहे प्रयोग में लाते हैं। ~ **सर** खूटी एक राम नरायन, पूरन प्रगटे भेदा। →सब० १२७-३।

सर—संज्ञा पु० [सं० शर] नोंक। ~ मारा है जे मरैगा, बिन **सर** थोथी भालि। →सा० ग्या० बि० (४) २-१।

सर—वि० [फ़ा०] ऊँच, उच्च; भला। ~**सर** अपसर समझै नहीं, पेट भरन सौं काज। →सा० साधसा० (२६) ७-२।

सर—संज्ञा पु० [सं० शर] बाण, गुरूपदेश का वाण। ~जेहि कर **सर** लागे हिये, सोई जानै पीर। →र० ६८-६।

सर—संज्ञा पु० [सं० शर] बाण, तीर, ज्ञान। ~बपु बारी आनंद मीरगा, रुचि रुचि **सर** मेलै।→सब० ५१-२, सा० बिर० (३) १५-१, सब० ६५-२, पद ३४६-७।

सर—संज्ञा पु० [सं० स्वर] ध्वनि, नाद। ~उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड **सर** पूरा। → सब० १५८-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरकरा—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा] शक्कर, चीनी। ~गूँगे केरि **सरकरा**, बैठे-बैठे मुसुकाई। →सब० १-२।

सरग—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ग] स्वर्ग। ~**सरग** पताल भूमि लै बारी, एकै राम सकल रखवारी। → र० ५६-३, हिंडोला (८) २-५; सब० २८-६।

सरग—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ग] ब्रह्म लोक। ~बिरवा एक सकल संसारा, **सरग** सीस जड़ गई पताला। → सब० १६६-२।

सरगहि—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ग + हि] स्वर्ग में। ~मूंड मुडाएँ जौ सिधि होई, **सरगहि** भेंड़ न पहुँची कोई। →सब० ७७-४।

सरगुन—वि० [सं० सगुण] सगुण।~ मरि मरि गए भगति जिन ठानी, **सरगुन** महँ जिन निरगुन आनी। →र० ५४-३।

सरग्गि—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ग] स्वर्ग में। दे० 'सरगहि'।~यह तन जारौं मसि करौं, ज्यूँ धूवाँ जाइ **सरग्गि**। →सा० बिर० (३) ११-१।

सरजिव—वि० [सं० सजीव] सजीव, पशु आदि। ~निरजिव आगे **सरजिव** थापै, लोचन कछू न सूझै। → सब० १८८-४।

सरजी—क्रि० [सं० सृजन] रची हुई। ~**सरजी** आंनैं देह बिनासै माटी बिसमिल कीआ। →पद २३०-३।

सरधा—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रद्धा] श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा। ~तन मन मेल्हि चढ़ै **सरधा** सौं तब वा फल कौं खावै। →सब० १७८-४, सा० सा० मन० (१३) १५-२।

सरधा—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रद्धा] कामना। ~कुब्जा पुरुष गले एक लागा, पूजि न मन की **सरधा**। → सब० १५७-७।

सरना—संज्ञा स्त्री० [सं० शरण] शरण। ~हम चलि अइलीं तुहरे **सरना**, कतहुँ न देखौं हरि के चरना। →सब० १६-५।

सरनाई—संज्ञा स्त्री० [सं० शरणागति] शरण में। दे० 'सरनि'। ~**सरनाई** आयौ क्यूँ गहिये, यह कौंन बात तुम्हारी। →सब० ६६-२, पद २०५-८, पद ३२०-५।

सरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० शरण] अधीन। ~राखि राखि मेरै बीठुला; जन **सरनि** तुम्हारी। →सब० ६६-२।

सरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० शरण] शरण। दे० 'सरना'। ~नांउँ मेरै खेती नांउँ मेरै बारी, भगति करउँ जन **सरनि** तुम्हारी। →सब० ४६-३।

सरप—संज्ञा पु० [सं० सर्प] सर्प, साँप; यहाँ तात्पर्य है—प्रभु का प्रेम। ~ भेरा पाया **सरप** का, भौसागर के माँहि। →सा० बिरह० (३) ४३-१।

सरप—संज्ञा पु० [सं० सर्प] सर्प, भुजंग, ब्याल। ~बिष के बन मैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घर किया, **सरप** रहे लपटाइ । → सा० काल० (४६) २८-१ ।

सरपहि—संज्ञा पु० [सं० सर्प + हि] सर्प को । ~**सरपहि** दूध पिलाइयै, दूधै विष ह्वै जाइ । → सा० निगु० (५५) ६-१ ।

सरब—वि० [सं० सर्व] तमाम, सब । ~आपा पर संमि चीन्हिए, तब दीसै **सरब** समांन । → सब० ६७-५, पद २४१-७ ।

सरबक—वि० [सं० सर्व] सर्व, सर्वथा, मिलावट युक्त । ~समुझि परी नहिं राम कहानी, निरवक दूध कि **सरबक** पानी । → र० ४५-३ ।

सरब तत्त—संज्ञा पु० [सं० सर्व तत्त्व] चैतन्य तत्त्व । ~आवत जात दुहूधां लूटे, **सरब तत्त** हरि लीन्हा रे । → सब० ८४-२ ।

सरबदा—अव्य० [सं० सर्वदा] सदा, हमेशा । ~सर **सरबदा** संगि रहै जल परसत नांहीं । → पद ३४५-२ ।

सरब बिआपी—वि० [सं० सर्वव्यापी] सर्वत्र व्याप्त । ~कहै कबीर मेरे माधवा, तू **सरब बिआपी** । → सब० ६६-६ ।

सरबै—क्रि० [सं० स्रवण] स्रवित करती है, देती है । ~सुरही तिन चरि अमृत **सरबै**, लेर भवंगहि पाई । → पद २६८-५ ।

सरबरि—क्रि० वि० [हि० सरबरि] बराबर । ~सीस काटि पासंग किया, जीव **सरभरि** लीन्ह । → सा० सूरा० (४५) २२-१ ।

सरवर—संज्ञा पु० [सं० सरोवर] जलाशय, तालाब । ~ रूप बिनु नारी पुहुप बिनु परिमल, बिनु नीरै **सरवर** भरिया । → सब० ११६-६, बेलि० (६) १-१, २६, २७, २८ ।

सरवै—क्रि० [सं० स्राव] टपकाती है, स्रवित करती है । ~जो ब्यावै तौ दूध न देई, गाभिन अमृत **सरवै** । → सब० २७-३ ।

सरसती—संज्ञा स्त्री० [सं० सरस्वती] विद्या की देवी । ~कोटि **सरसती** धारै राग, कोटि इन्द्र जहं गवन लाग । → सब० ११०-७ ।

सरसा—वि० [सं० सरस] हरे-भरे, सानंद । ~दिवस चारि **सरसा** रहै, अंति समूला जांहि । → सा० कामी० (२०) ३-२ ।

सरा—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता । ~माई मोर मुअल पिता के संगे, **सरा** रचि मुअल संघाती गे । → कहरा (३) ११-५, ज्ञान चौं० (१) ६७ ।

सरावगी—संज्ञा पु० [सं० श्रावक] जैन साधु । ~पंडित भया **सरावगी**, पानी पीवै छानि । → सा० चाँण० (१७) १२-२ ।

सरि—क्रि० [हि० सड़ना] सड़कर । ~पैग पैग पैगम्बर गाड़े, सो सब **सरि** भो माटी । → सब० १७४-४, सब० १६६-५ ।

सरि—संज्ञा पु० [सं० सरस्] सरोवर में, तालाब में । ~जिहि **सरि** घड़ा न वूड़ता, मैगल मलि मलि नहाइ । → सा० रस० (६) ७-१ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरि—संज्ञा पु० [सं० शर] वाण से। ~जिहि **सरि** मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या। → सा० बिर० (३) १७-१, २।

सरि—संज्ञा पु० [सं० शर] वाण। दे० 'सर'। ~**सरि** मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा। →सब० २५-६।

सरीकी—क्रि० [अ० शरीक] सम्मिलित होना। ~आपा जांनि सांई कौं जानैं तब होइ भिस्ति **सरीकी**। → पद २२६-८।

सरीरा—संज्ञा पु० [सं० शरीर] कारण शरीर। ~जोति सरूप काल नहिं तहँवा, बचन न आहि **सरीरा**। → सब० १६६-३।

सरीरौं—संज्ञा पु० [सं० शरीर] शरीर से। ~अंक भरे भरि भेंटिए, पाप **सरीरौं** जाँहि। →सा० साधु० (२८) ६-२।

सरूप—वि० [सं० स्वरूप] स्वरूप। ~नाति **सरूप** न छाया जाकै, बिरध करै बिन पाँनी। →पद २५३-२।

सरूपी—वि० [सं० स्वरूपिन] स्वरूप वाले। ~मच्छ कच्छ औ ब्राह **सरूपी**, बावन नाम धराया। →पद २५२-५।

सरे—क्रि० [हि० सड़ना] सड़ गए। ~ढोर पतंग **सरे** घरिआरा, तेहि पानी सब करैं अचारा। →र० ७४-६।

सरेवहु—क्रि० [सं० श्लाघन्] सराहना करो, प्रशंसा करो। ~तब लगि प्रानीं तिसै **सरेवहु** जब लगि घट मंहि सांसा। →सब० १६०-५।

सरैं—क्रि० [सं० सरण] सिद्ध होना, फल प्राप्त होना, पूर्ण होना। दे० 'सर्यौ'। ~काँइ गँवावै देह, कारज कोई ना **सरै**। → सा० कामी० (२०) ८-२, सब० ५३-३।

सरोता—संज्ञा पु० [सं० श्रोता] श्रोता। ~कर बिनु बाजै सुनै स्रवन बिनु, स्रवन **सरोता** सोई। →पद २७०-२।

सर्यौ—क्रि० [सं० सरण] सिद्ध हुआ, संपन्न हुआ। दे० 'सरै'। ~मन रे **सर्यौ** न एकौ काजा।→पद २२०-१; सा० चाँण० (१७) २-२।

सर्ग—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ग] स्वर्ग। ~वह तो कहै सुनै जो कोई, **सर्ग** पताल न देखै जोई। →ज्ञान चौं० (१) ६२।

सर्मन—संज्ञा पु० [सं० शर्मन्] शर्मा, ब्राह्मण। ~**सर्मन** वर्मन देव औ दासा, रज सत तमगुन धरति अकासा। →र० २७-७।

सल—संज्ञा स्त्री० [दे०] सिकुड़न, सिलवट। ~कत कत की **सल** पड़िए, गलबल सहर अनंत। → सा० बिर्क० (३७) ५-२।

सलांम—संज्ञा पु० दे० 'सलाम'।

सलाम—संज्ञा पु० [अ०] अभिवादन या प्रणाम करने की क्रिया। ~साँचा एक अलह को नाम, जाको नै नै करहु **सलाम**। →सब० ४०-५; पद ३३६-४।

सलामत—वि० [अ०] स्वस्थता। ~छेम कुसल औ सही **सलामत**, कहहु कवन को दीन्हा हो। →कहरा (३) ८-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सलामति—वि० [अ० सलामत] स्वस्थ, सुरक्षित। ~कुसल खेम अरु सही **सलामति**, ए दोइ काकौं दीन्हां रे। →सब० ८४-१।

सलामा—संज्ञा पु० [अ०] प्रणाम, नमस्कार, वन्दना। ~कहाँ कूच कहँ करै मुकामा, कवन सुरति के करहु **सलामा**। →र० ४६-२।

सलार—संज्ञा पु० [फा० सालार] सरदार, सिपहसालार, सिपाही। ~सत्तरि सहस **सलार** हैं जाके, सवा लाख पैगंबर ताकै। → सब० १४१-३।

सलि—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता। दे० 'सरा'। ~सगी भईआ लै **सलि** चढ़िहू तब हौं नाह पिआरी। → पद २३२-६।

सलिता—संज्ञा स्त्री० [सं० सरिता] नदी। ~मोहिं तोहिं कीट भ्रिग की नांई, जैसे सलिता सिंधु समाई। → पद २४०-५।

सलिल—संज्ञा पु० [सं०] जल, पानी। ~वानी **सलिल** रांम धन उनयाँ, बरिषै अंमृत धारा। → सब० ६७-३, पद २८६-३, वसंत (४) १२-१।

सलैली—वि० [हि०] रपटीली, फिसलन भरी। ~जन कबीर का सिषर घर, वाट **सलैली** सैल। →सा० सू० मा० (१४) ७-१।

सवाँ—वि० [सं० सम] समान, बराबर, तुल्य। ~सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सईं न दाति। →सा० गुरु० (१) १-१, २, सा० चिता० (१२) ४८-२, सा० सूरा० (४५) ३०-१।

सवांरन—क्रि० [सं० संवरण] रक्षा करना। ~भांनन गढ़न **सवांरन** संम्रथ ज्यौं राखै त्यौं रहिए। → पद २०८-२।

सवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० सवा + ई (प्रत्य०)] सवागुना। ~रानां राव रंक कौं व्यापैं, करि करि प्रीति **सवाई**। →पद ३२०-४।

सवादी—वि० [सं० स्वादिन्] स्वादपरायण। ~न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पांचौ अधिक **सवादी**। →पद २६६-३।

ससा—संज्ञा पु० [सं० शशक] खरगोश। ~**ससा** सींग की धनुहड़ी, रमै बाँझ का पूत। →सा० बेली० (५८) ४-२।

ससि—संज्ञा पु० [सं० शशि] चन्द्रमा। ~जिनि ब्रह्मण्ड रच्यौ बहु रचना, बाव बरन **ससि** सूरा। →सब० ८१-५, कहरा (३) १०-३, ज्ञान चौं० (१) ३।

ससिहर—संज्ञा पु० [सं० शशधर] चन्द्रमा, इड़ा नाड़ी। दे० 'ससि'। ~**ससिहर** सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी। →पद० २०१-४, पद ३०५-५।

सहज—संज्ञा पु० [सं०] आत्मा का स्वाभाविक चिदानन्द स्वरूप। ~है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोई संत **सहज** सुख अंतरि जाकौं जप तप देउं दलाली। →पद ३४४-१।

सहज—१. संज्ञा पु० [सं०] चैतन्य। २. वि० [सं०] सरलता से। ~पढ़ें गुनें क्या होई, जउ **सहज** न मिलिऔ सोई। →पद ३३६-१०।

सहज—वि० [सं०] साधारण, स्वाभाविक। ~तन महिं होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख-**सहज** समाधि। →सब० २०-३।

सहज ध्यान—यौ० [सं०] चित्त का स्वाभाविक रूप से प्रभु में लगे रहना। ~**सहज ध्यान** रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के बचन समाई हो। →कहरा (३) १-१।

सहज सुंनि—संज्ञा पु० [सं० सहज शून्य] परम तत्त्व।~कहै कबीर सोई जोगेश्वर, **सहज सुंनि** ल्यौ लागै। → सब० ३४-८।

सहजि—संज्ञा पु० [सं० सहज] आसानी से, सरलतापूर्वक। ~इन्द्री पसर मिटाइये, **सहजि** मिलैगा सोइ। → सा० मन० (१३) २-२।

सहजैं—क्रि० वि० [सं० सहज] सहज रूप से, अनायास, स्वतः। ~सकल पाप **सहजैं** गये, साँई मिला हजूरि। →सा० पर० (५) २६-२।

सहजैं-सहजैं—क्रि० वि० [सं० सहज] सरलतापूर्वक। ~ **सहजैं सहजैं** सब गए, सुत वित कामिनि काम। → सा० सह० (२१) ३-१।

सहजैं—वि० [सं० सहज] सहज योग द्वारा। ~चेतत रावल पावन खेड़ा, **सहजैं** मूलहि बांधै। →सब० ६५-३।

सहतैं—संज्ञा पु० [अ० शहद] शहद। ~ज्यौं मांखी **सहतैं** नहिं बिहुरै जोरि जोरि धन कीन्हां। →सब० १७६-५।

सहनाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शहनाई] नफीरी नामक बाजा। ~ढोल दमामा डुगडुगी, **सहनाई** औ भेरि। →सा० चिता० (१२) ३-१।

सहर—संज्ञा पु० [फ़ा० शहर] नगर। ~कत कत की सल पाड़िए, गलबल **सहर** अनंत। →सा० बिर्क० (३७) ५-२।

सहस—वि० [सं० सहस्र] हजार। ~सेस **सहस** मुख पार न पावा, सो अब खसम सही समुझावा। →र० ५२-२, सब० ३१-५।

सहारं—क्रि० [हि०] सहारे। ~उलटीले सकति **सहारं**, पैसीले गगन मझारं। →सब० १७१-५।

सहारी—क्रि० [सं० सहन] सहन करता है, बर्दाश्त करता है। ~कै सो जानै जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट **सहारी**। →सब० १६४-४।

सहारी—क्रि० [सं० सहन] सहन करना, बर्दाश्त करना। ~जासु नाम है गर्व प्रहारी, सो कस गर्वहिं सकै **सहारी**। →र० ३५-६।

सहारै—क्रि० [सं० सहन] सहन कर ले। ~चोट **सहारै** सबद की, तास गुरू मैं दास। → सा० कुसब० (३६) १-२।

सहिदानी—संज्ञा स्त्री० [सं० सज्ञान]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहचान, चिह्न, लक्षण। ~ सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहि बोल।→र० ११-१२,सब० ६८-३।

सहिया—क्रि० [हि० सहना] सहते हैं, बर्दाश्त करते हैं। ~अंकुस **सहिया** सीस समुझ मन बौरा हो।→ चाँचर (५) २-१०।

सही—वि० [फ़ा० सहीह] सत्य, प्रामाणिक।~दिना सात लौं बाकी **सही**, बुध अदबुध अचरज का कही।→ र० ७२-४।

सही—क्रि० [फा० सहीह] प्रकट। ~ ब्रह्मा वेद **सही** किया सिव जोग पसारा।→पद ३१६-५।

सही—वि० [फा० सहीह] सरल, अरुण। ~कुसल खेम अरु **सही** सलामति, ए दोइ काकौं दीन्हा रे। →सब० ८४-१।

सांईं—संज्ञा पु० [सं० स्वामी] प्रभु, स्वामी, मालिक, ईश्वर। ~ बंदै ऊपरि मिहरि करौ मेरे **सांईं** → सब० २३-२, सा० बीन० (५६) ४-२, सा० पर० (५) २६-२, सा० साँच० (२२) १०-१, पद २०६-८, सा० साधसा० (२६) १-१, सा० विर० (३) २०-२, सब० २७-७।

सांई—संज्ञा पु० [सं० स्वामी] १ पति, २. शुद्ध चैतन्य। ~मैके रहै जाय नहिं ससुरे, **सांई** संग न सोवैं।→ सब० १६८-६, सा० उपज० (५०) २-१।

साँकर—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रृंखला] जंजीर। ~**साँकर** हूँ तें सबल है, माया इहि संसार।→सा० माया० (१६) २५-१।

साँकरा—वि० दे० 'साँकरी'।

साँकरी—वि० [सं० संकीर्ण] संकीर्ण, तंग, पतली। ~प्रेम गली अति **साँकरी**, या में दो न समाँहि।→ सा० पर० (५) ३५-२, सा० मन० (१३) ४-१, सा० मन० (१३) २६-१।

साँचा—वि० [सं० सत्य] सत्य, सच्चा, शुद्ध, वास्तविक। ~सतगुरु **साँच** सूरिवाँ सबद जु बाह्या एक।→ सा० गुरु० (१) ७-१, सा० गुरु० (१) २८-१।

सांचि—संज्ञा पु० [सं० सत्य] सत्य। दे० 'साँच'। ~जे तूँ मूरति **सांचि** है तौ गढ़नहारै खाउ। → पद २११-६।

साँझ-सकार—यौ० [स० सांध्य+सकाल] शाम-सुबह। ~ **साँझ-सकार** दिया लै बारै, खसम छोंड़ि सुमिरैं लगवारे।→र० ७३-४।

सांझ सकारा—क्रि० वि० [सं० संध्या+सकाल] सायं प्रातः, किसी भी समय। दे० 'साँझ सकार'। ~ ससै सावज सब संसारा, काल अहेरी **सांझ सकारा**।→र० १६-४।

साँझी—संज्ञा पु० [हि० साझा] हिस्सेदार, भागीदार। ~ मानुष जन्म चूके जग माँझी, एहि तन केर बहुत हैं **साँझी**।→र० ७८-१, सा० गुरु० (१) ३०-२।

साँझै—संज्ञा स्त्री० [सं० सन्ध्या] सायं-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काल । ~ इनको भिस्त कहाँ ते होइहै, जो **साँझै** मुरगी मारैं । → पद ३०४-६ ।

सांट—संज्ञा स्त्री० दे० 'सांटि' ।

सांटि—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिका] छड़ी, डंडा, कोड़ा । ~रे महावत तोकौं मारौं **सांटि**, इसहिं तुरावहु घालहु काटि । → सब० ४२-५, कहरा (३) १-१२, सब० १५६-५ ।

सांटे—क्रि० वि० [देश०] बदले में । हाड़ गला माटी गली, सिर **सांटे** ब्यौहार । →सा० सूरा० (४५) २८-२ ।

साँठी—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिका] सरकंडे का भाग । ~**साँठी** साँठी झड़ि पड़ी, भलका रहा सरीर ।→ सा० सब० (४०) ६-२ ।

सांथरा—संज्ञा पु० [हि०] बिस्तर, चटाई, बिछौना । ~नींद न माँगै **सांथरा** भूख न माँगै स्वाद ।→सा० कामी० (२०) २३-२ ।

सांधा—क्रि० [सं० संधान] निशाना लगाया । ~ध्यांन धनुख जोग करम ग्यांन बांन **सांधा** ।→सब० १००-४ ।

साँधि—क्रि० [सं० संधान] निशाना लगाकर, लक्ष्य करके ।~कर कमान सर **साँधि** करि, खैंचि जु मारा माँहि । →सा० बिर० (३) १५-१ ।

सांधै—क्रि० [सं० संधान] संधान करना, निशाना लगाना । ~**सांधै** तीर पताल कौं, फिरि गगनहिं मारै । →सब० ५२-४ ।

सांनां—क्रि० [हि० साना] मिलाया, गूँथा । ~एकै खाक गढ़े सब भांड़े एकै कोंहरा **सांनां** ।→पद ३२५-४ ।

साँभलूं—क्रि० [सं० संभार] स्मरण करता हूँ । ~ज्यों ज्यों हरि गुन **साँभलूं**, त्यों त्यों लागै तीर । → सा० सब० (४०) ६-१ ।

साँमी—अव्य० [सं० सम्मुख] सामने । बिरला कोई ठाहरै, सतगुर **साँमी** मूठि । →सा० संग० (२६) १-२ ।

साँवत—संज्ञा पु० [सं० सामंत] यम-दूत । ~जबही **साँवत** आनि पहूँचै, पीठि सांटि भल टूटिहै हो । → कहरा (३) १-१२ ।

सांसति—संज्ञा पु० [सं० शासित] शासित, अनुशासित । ~कहै कबीर धीर मति राखहु, **सांसति** करौ हमारी । →सब० ९८-१० ।

सांसा—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] श्वास । ~तब लगि प्रानीं तिसै सरेवहु जब लगि घट मंहि **सांसा** । →सब० १९०-५ ।

साक—संज्ञा पु० [सं० शाका] साख, विश्वास । ~मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई **साक** । →सा० बिर्क० (३७) २-१ ।

साकत—संज्ञा पु० [सं० शाक्त] शक्ति के उपासक, वाममार्गी साधक । ~ बैरी उलटि भए हैं मीता, **साकत** उलटि सजन भए चीता । →सब० २०-५, सब० ३२६-३, सा० चाँण० (१७) ११-१, सा० चित्त० क०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४२) २-१, सा० साधुम० (३०) १-२, सब० २४४-७, सा० साधु० (२८) १३-२ ।

साखि—संज्ञा पु० [सं० साक्ष्य] साक्षी, गवाह। ~कबीर विचारा क्या करै, जाकी सुखदेव बोलै **साखि**। →सा० साधसा० (२६) ११-२ ।

साखी—संज्ञा स्त्री० [सं० साक्षी] गवाही । ~धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहै न **साखी**। →पद २८३-५ ।

साखी—संज्ञा पु० [सं० साक्षी] साक्षि चैतन्य। ~**साखी** नीर गंग भरि आई, पीवै प्रांन हमारा। →सब० ६७-४ ।

साछ—संज्ञा पु० [सं० साक्ष्य] गवाही । दे० 'साखी'। ~सतगुरु कै सदकै करूँ, दिल अपनीं का **साछ** (साँच)। →सा० गुरु० (१) ५-१ ।

साज—संज्ञा पु० [सं० सज्जा] तैयारी। ~कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का **साज**। →सा० काल० (४६) ६-१ ।

साज—संज्ञा पु० [फ़ा०] ठाट-बाट, शृंगार । ~भसम किरिम जाके **साज** समुझ मन बौरा हो। → चांचर (५) २-४ ।

साजनां—संज्ञा पु० [सं० स्वजन] साजन, प्रिय, परम प्रिय, प्रभु, ईश्वर। ~ सोई आँसू **साजनां**, सोई लोक बिड़ांहि। →सा० बिर० (३) २६-१ ।

साजल—क्रि० [हि० सजाना] सजाया। ~जात कौरवहिं लागु न बारा, गये भोज जिन **साजल** धारा। →र० ५५-२ ।

साटि—संज्ञा स्त्री० [हि० सटना] मोल भाव। ~खोटी खाटे खरा न लीया, कछू न जाँनी **साटि**। →पद २०३-७।

साटि—संज्ञा स्त्री० [दे०] सट्टा, सौदा । ~जब रे मिलैगा पारिखूं, तब हीराँ की **साटि**। →सा० पारिख० (४६) ३-२ ।

साढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] मलाई। ~ एक दहेड़िया दही जमायौ दुसरी परि गई **साढ़ी** रे। →पद २५५-७।

साध—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रद्धा] कामना, इच्छा। ~सांई संगि **साध** नहिं पूजी, गयौ जोबन सुपिनैं की नांई। →पद २३८-२ ।

साध—संज्ञा पु० [सं० साधु] साधु, संत। ~संधिक **साध** कबहुँ नहिं भेंट्यौ सरनि परै जिनकी पगरी। →पद २४६-५ ।

साधी—क्रि० [सं० साधन] सम्पन्न किया। ~जिन प्रभु जीउ पिंडु था दीया, तिसकी भाव भगति नहिं **साधी**। →सब० ६८-२, सब० १२४-१ ।

साधै—क्रि० [सं० संधान] संधान करना। ~ध्यान धनुष धरि ज्ञान बान करि, जोग सार सर **साधै**।→ सब० ६५-४ ।

सान—संज्ञा पु० [सं० शाण] वह पत्थर जिस पर अस्त्र आदि तेज किए जाते हैं। ~हांसी खैलौं हरि मिलै, कौन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहै खर **सान**। →सा० बिर० (३) ३०-१।

सानी—क्रि० [हि० सानना] मिला हुआ, संयुक्त। ~विष अमृत गो एकहिं **सानी**, जिन जानी तिनि विषि कै मानी। →र० ११-७।

साबका—वि० [दे०] उत्पादक। ~बापु **साबका** करै लराई माया सद मतवारी। →पद २३२-५।

साबन—संज्ञा पु० [अ० साबुन] साबुन। ~कै लै दूनीं कालिमाँ, भावै सौं मन **साबन** लाइ। →सा० चितक० (४२) ३-२।

साबित—वि० [अ०] पूर्ण, सच्चा, स्थिर, समग्र। ~जाकी दिल **साबित** नहीं, ताकी कहाँ खुदाइ। →सा० साँच० (२२) ११-२, सा० पर० (५) ३४-१।

साम—संज्ञा पु० [सं० श्याम] श्यामदेश (वर्तमान थाईलैंड)। ~चारि दिग महि मंड रचो है, रूम **साम** बिच डिल्ली। →सब० ६४-१५।

सायर—संज्ञा पु० [सं० सागर] सागर, समुद्र। ~जहाँ स्वाति बूंद न सीप **सायर**, सहजि मोती होइ। →सब० ४५-३, सा० पर० (५) ८-१।

सारंगपानी—संज्ञा पु० [सं० सारंगपाणि] जिनके हाथ में सारंग नामक धनुष है, विष्णु। ~छाडु कपट नर अधिक सयानी, कहहिं कबीर भजु **सारंगपानी**। →र० ६२-६, सब० १६१-५, सा० साधुम० (३०) १०-२।

सारंग श्रीरंग—संज्ञा पु० [सं०] सारंगपाणि विष्णु। ~ रसना रसहिं बिचारिए, **सारंग श्रीरंग** धार रे। →सब० ६७-८।

सार—संज्ञा पु० [सं०] लौहास्त्र, लोहे का हथियार। ~सूरै **सार** सँबाहिया, पहिरा सहज संजोग। →सा० सूरा० (४५) ८-१, सा० निगु० (५३) ७-१।

सार—संज्ञा पु० [सं०] सुधि, संभाल। ~ मैमंता घूमत फिरै, नाहीं तन की **सार**। →सा० रस० (६) ४-२, सा० जी० मृ० (४१) ३-१।

सार—संज्ञा पु० [सं०] तत्व, निचोड़। ~तत्त तिलक तिहु लोक मैं, राम नाम निज **सार**। →सा० सुमि० (२) ३-१, सा० साँच० (२२) १६-१, सा० सब० (४०) २-२।

सार—संज्ञा पु० [सं०] सच्चा, वास्तविक। ~**सार** सुख पाइए रे। →पद ३१७-१।

सारदा—संज्ञा स्त्री० [सं० शारदा] सरस्वती, विद्या की देवी। ~झूलैं नारद **सारदा** झूलैं व्यास फनिंद्र। →हिंडोला (८) १-७।

सार सबद—यौ० [सं० सार-शब्द] वह सामान्य पराशक्ति जिसे 'शब्द ब्रह्म' कहा गया है। जो वाच्य और वाचक दोनों है। जहाँ पद और अर्थ एक हैं, जो सारी सृष्टि का मूल है। ~**सार सबद** गहि बांचिहो मांनौ इतबारा। →पद ३१६-१।

सारा—वि० [सं० सर्व] सम्पूर्ण, समस्त। ~मोर-तोर महँ जर जग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सारा, धिग स्वारथ झूठा हंकारा। →र० ८४-७, सा० गु० सि० हे० (४३) ११-१।

सारा—संज्ञा पु० [सं० श्यालक] पत्नी का भाई। ~हम बहनोई राम मोर **सारा**, हमहि बाप हरि पूत हमारा। →सब० १५१-३।

सारा—वि० [सं० सदृश] समान, तुल्य। ~जस मांसु पसु की तस मांसु नर की, रुधिर रुधिर एक **सारा** जी। →सब० ११५-१।

सारी—क्रि० [दे०] गमन करना। ~पीया चाहै तौ लै खग **सारी**, उड़ि न सकै दोऊ पर भारी। →पद ३११-३।

सारी—वि० [सं० सर्व] अक्षत, सम्पूर्ण। ~छूटि पड़ौं या विरह तैं, जे **सारी** ही जलि जाउँ। →सा० बिर० (३) ३७-२।

सारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौसर, यहाँ 'सारी' चौसर के उस कपड़े के लिए आया है, जिसे बिसात कहते हैं। इसी पर चौसर खेला जाता है। ~पासा पकड़ा प्रेम का, **सारी** किया सरीर।→सा० गुरु० (१) ३२-१।

सारीखा'—अव्य० [हि० सरीखा] सरीखा, सदृश, समान। २. पु० [अ० सालिक] वह साधक जो बिना गृहस्थ आश्रम छोड़े, भगवत्-साक्षात्कार की साधना करता है। ~करिए तौ करि जानिये, **सारीखा** सौं संग। →सा० संग० (२६) ३-१।

सारू—संज्ञा पु० [सं० सार] सार, तत्व। ~राम नाम इहै निज **सारू**, औरुअ झूठ सकल संसारू। →र० ६५-५, पद ३१०-७।

सारे—क्रि० [सं० सार] सम्पन्न किया। ~राम सरीखे जन मिले, तिन **सारे** सब काँम। →सा० साधु० (२८) ५-२।

सारैं—क्रि० [हि०] पूरा करता है, लगाता है। ~तौ जनतैं तिनि डांडि किन **सारैं**।→सब० १२६-२।

सालिम—वि० [अ०] पूर्ण। ~बिनु मांगैं ही बस्तु देइ, सो **सालिम** बाजी जीति लेइ। →पद २२५-६।

सालै—क्रि० [सं० शल्य] वेदना पहुँचाना, चुभना। ~मैमंता तिन ना चरै **सालै** चित्त सनेह। →सा० रस० (६) ५-१।

सालै—क्रि० [सं० शल्य] शल्य के समान कष्ट देता है।~जे दिन गए भगति बिनु, ते दिन **सालै** मोहि। →सा० उपज० (५०) ११-२।

साव—संज्ञा पु० [सं० स्वाद] स्वाद। ~कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया **साव**। →सा० सुमि० (२) १८-१।

सावज—संज्ञा पु० [सं० शावक] मृग। ~ससै **सावज** सब संसारा, काल अहेरी सांझ सकारा।→र० १६-४।

सावज—संज्ञा पु० [सं० स्वापद] जंगली पशु। ~काम क्रोध मद लोभ मोह को, हांकि के **सावज** दीन्हा। →सब० ६५-६, सब० १००-६, सब० ३१८-१, २।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सावत—संज्ञा पु० [हि० सौत] सौतिया डाह। ~भाई के संग सासुर गौनी सासुहि **सावत** दीन्हा। →पद २६०-४।

साषि—संज्ञा स्त्री० [सं० साक्ष्य] साक्ष्य। ~तहाँ कबीरा चलि गया, गहि सतगुर की **साषि**। →सा० सू० मा० (१४) ६-२।

सास—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] पति या पत्नी की माँ। ~साइं माइ **सास** पुनि साइं, साइं याकी नारी। → सब० २७-७।

सासत—संज्ञा स्त्री० [सं० शस्ति] दण्ड। ~दिवस न रैनि बेदु नहिं **सासत** तहाँ बसै निरंकारा। →सब० १७७-६।

सासनाँ—संज्ञा पु० [सं० शासन] कष्ट। ~घनी सहैगा **सासनाँ**, जम की दरगह माँहि। →सा० मन० (१३) १७-२।

सासुरै—संज्ञा पु० [सं० श्वसुरालय] ससुराल। ~ पीहर जाउँ न रहूँ **सासुरै**, पुरखहिं संग न लाऊँ। → सब० २६-७।

साह—संज्ञा पु० [सं० साधु] सज्जन। दे० 'साहु'। ~छीजै **साह** चोर प्रतिपालैं, संत जना की कूटि करैं। →पद २७६-८।

साह—संज्ञा पु० [फा० शाह] १. नरेश, राजा। २. सन्त, फकीर। ~सतगुर **साह** संत सौदागर तहं मैं चलिकै जाऊँ जी। →पद ३०७-१।

साहनहार—वि० [सं० सहन+हार] सहने वाला। ~लागे ते भागै नहीं, **साहनहार** कबीर। →सा० सब० (४०) ७-२।

साहब—संज्ञा पु० [अ० साहिब] ईश्वर; स्वामी। दे० 'साहिब'। ~तेहि **साहब** के लागहु साथा, दुइ दुख मेटिके रहहु सनाथा। →र० ७५-१।

साहब—संज्ञा पु० [अ०] परमात्मा। दे० 'साहिब'। ~दास कबीर **साहब** का बंदा, जाकै हाथ बिकांनी। → पद २२७-८।

साहि—क्रि० [सं० साधना] साधो, ठीक करो। ~कायर हुआं न छूटिहैं कछु सूरातन **साहि**। →सा० सूरा० (४५) १-१।

साहिकरि—क्रि० [हि० साधना] साधकर। ~ सती सूरतन **साहिकरि**, तन मन कीया धांन। →सा० सूरा० (४५) ३५-१।

साहिब—संज्ञा पु० [अ० साहब] ईश्वर, परमात्मा, प्रभु, स्वामी। ~**साहिब** सेवा मांहि है, बेपरवाँही दास। → सा० पर० (५) २-२, सा० सह० (२१) ४-२; सा० सू० मा० (१४) ४-२।

साहु—संज्ञा पु० [सं० साधु] सज्जन। ~बैठे ते घर **साहु** कहावैं; भितर भेद मन मुसहि लखावैं। →विप्रमतीसी (२) १६।

सिंगार—संज्ञा पु० [सं० श्रृंगार] श्रृंगार, सजावट। ~ जान पुरुषवा मोर अहार, अनजाने पर करौं **सिंगार**। →वसंत (४) ४-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिगारु—संज्ञा पु० [सं० शृङ्गार] सज्जा। ~किएउं **सिगारु** मिलन कै ताईं, हरि न मिले जग जीवन गुसाईं। →पद ३३६-३।

सिघारा—संज्ञा पु० [सं० शृङ्गाटक] सिंघाड़ा। ~हिन्दू बरत एकादसि साधैं, दूध **सिंघारा** सेती। →पद ३४०-३।

सिंचिये—क्रि० [हि० सींचना] सींचना ~जोतिये न बोइये **सिंचिये** न सोई, डार पात बिनु फुल एक होई। → पद २३६-३।

सिंदूर—संज्ञा पु० [सं०] सौभाग्य या अनुराग का चिह्न। ~ कबीर रेख **सिंदूर** की, काजल दिया न जाइ। →सा० निह० पति० (११) ४-१।

सिंधौरा—संज्ञा पु० [हि० सिन्दूर] सिन्दूर-पात्र। ~मरनैं तैं क्या डर-पनां, जब हाथि **सिंधौरा** लीन। →सा० सूरा० (४५) १२-२, सब० १३७-२।

सिंभू—संज्ञा पु० [सं० शंभु] शिव, शंकर। ~एक से **सिंभू** पंथ चलाया, एक से भूत प्रेत मन लाया। →र० १४-६।

सिउँ—अव्य० [सं० सह] सहित, साथ। ~ बूड़हुगे परिवार सकल **सिउँ** राम न जपहु अभागे। →सब० १६४-२।

सिकली—वि० [अ० सिक्ल] भारी, दृढ़। ~दै मुहरा लगाम पहिरावउं **सिकली** जीन गगन दौरावउं। → सब० ३-३।

सिकली—वि० [अ०] शान चढ़ाने वाला, तेज करने वाला। ~कहै कबीरा गुरु **सिकली** दर्पन हरदम करहु पुकारा। →सब० ६४-२०।

सिकलीगर—संज्ञा पु० [अ०] सान धरने वाला व्यक्ति। ~सतगुर ऐसा चाहिए, जस **सिकलीगर** होइ। → सा० सब० (४०) ३-१।

सिख—संज्ञा पु० दे० 'सिष'।

सिचांनां—संज्ञा पु० [सं० सचान] बाज पक्षी। दे० 'सचान'। ~सुन्नि मंडल मैं घर किया, जैसै रहै **सिचांनाँ** →सब० ५२-२।

सित—वि० [सं० शीत] शीत, ओस, कोहरा, तुषार। ~देखन कौं सब कोइ भले, जैसे **सित** का कोट। → सा० चाँण० (१७) १७-१।

सिध—संज्ञा पु० [सं० सिद्ध] सिद्ध। ~प्रगटे **सिध** साधक संन्यासी, ई सब लागि रहे अविनासी। →र० ३-५, पद २५२-७।

सिध—संज्ञा पु० [सं० सिद्ध] सहज-यानी साधक। ~षट दरसन संसै पड़ा, अरु चौरासी **सिध**। →सा० मधि० (३१) ११-२।

सिध—संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्धि] नियं-त्रण। ~इक तंत मंत ओषध बाँन, इक सकल **सिध** राखैं अपांन। → सब० ६१-६।

सिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्धि] सिद्धि, सफलता, पूर्णता। ~ मूंड मुडाएँ जौ **सिधि** होई, सरगहि भेंड न पहुँची कोई। →सब० ७७-४, पद २८६-५, सब० १४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० सिद्धि] सिद्धि, परमार्थ की सफलता। ~सब **सिधि** सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ। →सा० भेष० (२४) १७-२, पद ३३७-४।

सियरा—वि० [हि० शीतल] शीतल। ~सेत स्याह की राता पियरा, अबरन बरन की ताता **सियरा**। → विप्र० (२) २८।

सियांनां—संज्ञा पु० [सं० सज्ञान] चतुर व्यक्ति। ~कहै कबीर एक रांम भजे बिनु बूड़े बहुत **सियांनां**। → सब० १०२-१०।

सियारा—संज्ञा पु० [सं० शृगाल] सियार। ~पसु के मांसु भखै सब कोई, नरहि न भखै **सियारा** जी। →सब० ११५-२।

सिर—संज्ञा पु० [सं० शिर] अहंभाव, आपा। ~जे **सिर** राखौं आपनाँ, तौ पर सिरि ज अँगीठ। →सा० मन० (१३) ६-२।

सिर कूटि—मुहा० = सिर कूटना। पश्चात्ताप करना, पछताना। ~ गगन मंडल आसन किया, काल रहा **सिर कूटि**। → सा० सजी० (४७) ३-२।

सिर कूटै—मुहा० = सिर कूटना, अत्यधिक प्रयत्न करना। ~रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जौ **सिर कूटै** कोई। →सा० बेसा० (३५) ८-२।

सिरजनहार—संज्ञा पु० [सं० सृजन + हार (प्रत्य०)] सृष्टिकर्त्ता, प्रभु, ईश्वर। ~ दीनदयाल दया करि आवौ, समरथ **सिरजनहार**।→सब० २२-६, सा० माया० (१६) २५-२, पद २६२-१३, सा० अबि० (५६) २-१, र० ४-१।

सिरजनहारा—संज्ञा पु० दे० 'सिरजनहार'।

सिरजनहारा—संज्ञा पु० [सं० सृजन + हारा (प्रत्य०)] सृष्टि का मूल, शुद्ध चैतन्य। ~मूए कृस्न मुए करतारा, एक न मुवा जो **सिरजनहारा**। → सब० ८६-५।

सिरजा—क्रि० [सं० सर्जन] रचा, बनाया। ~जे **सिरजा** तेहि नहिं पहिचानै, करम धरम लै बैठि बखाने। →विप्र० (२) ३।

सिरजे—क्रि० [सं० सर्जन] सम्पादित किया। ~कवन काज **सिरजे** जग भीतरि, जनमि कवन फल पाया। →सब० ६८-३।

सिरजे—क्रि० [सं० सर्जन] बनाया, दिया। ~**सिरजे** श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ। → सा० बेसा० (३५) १-२।

सिरजै—क्रि० [सं० सृजन] बनाया, सृजन किया। ~नैन नासिका जिनि हरि **सिरजै**, दसन बसन बिधि काया। →सब० ८१-७।

सिरजौं—क्रि० [सं० सृजन] सृष्टि करना। ~मैं **सिरजौं** मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाउं। →र० २१-७।

सिर सौंपते—मुहा० [सिर सौंपना] अहंभाव का विसर्जन।~सिर साहिब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कों सौंपते, सोच न कीजै सूरि। → सा० सूरा० (४५) ११-२।

सिराई—क्रि० [हि०] व्यतीत होना; गुजरना। ~करमक लिखल मिटै धौं कैसे, जो जुग कोटि **सिराई**।→ सब० ४-२।

सिराई—क्रि० [हि०] व्यतीत हो गया, समाप्त हो गया। ~लालच लागे जनम **सिराई**, जरा मरन नियरायल आई। →र० २३-५।

सिरानी—क्रि० [हि० सिराना] समाप्त हो गई, बीत गई। ~काग उड़ावत भुजा पिरांनीं; कहै कबीर यहु कथा **सिरानी**। →पद २७८-५।

सिरि—संज्ञा पु० [सं० शिर] सिर पर ~घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनी सहै **सिरि** चोट। →सा० चिता० (१२) ५१-२, पद २६०-२, सा० चिता० (१२) ११-२, सा० चिता० (१२) २६-१, सा० चांण० (१७) २१-२; सा० रस० (६) ५-२।

सिरि—संज्ञा पु० [सं० शिर] सिरे पर, छोर पर। ~विरहिनि ऊभी पंथ **सिरि**, पंथी बूझै धाइ। → सा० बिर० (३) ५-१, सा० काल० (४६) २२-१।

सिरि कटै—[मुहा०] सिर कटना। आपा का विनाश, अहं की समाप्ति। ~आधी साखी **सिरि कटै**; जौ रे विचारी जाइ। → सा० विचा० (३३) ६-१।

सिरिमौर—संज्ञा पु० [हि० सिर+मौर] सिर का मुकुट, श्रेष्ठ। ~सहज सुंनि की नैहरी, गगन मंडल **सिरिमौर**। →पद ३४२-७।

सिलहला—वि० [दे०] फिसलने वाला, रपटीला। ~ पेड़ विकट है महा **सिलहला** अगह गहा नहिं जावै।→ सब० १७८-३।

सिला—संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] शिला; पत्थर।~वैसे ही गज फटिक **सिला** पर, दसनन आनि अर्‌यो। →सब० ५-४।

सिष—संज्ञा पु० [सं० शिष्य] शिष्य, चेला। ~नाँ गुर मिल्या न **सिष** भया, लालच खेल्या डाव। →सा० गुरु० (१) १६-१, सा० गु० सि० हे० (४३), पद २८६-६।

सिषही—संज्ञा पु० [सं० शिष्य+हि० ही] शिष्य ही। ~सतगुरु बपुरा क्या करैं, जे **सिषही** माँहै चूक। → सा० गुरु० (१) २१-१।

सिस्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० सृष्टि] संसार। ~अनहद कहत कहत जग बिनसै, अनहद **सिस्टि** समानी। → सब० १६१-७।

सिहरु—संज्ञा पु० [अ० सिह्र] माया, कर्म, इन्द्रजाल। ~ यहु जु दुनिया **सिहरु** मेला कोई दस्तगीरी नांहि। →सब० १८१-२।

सिहाँनै—संज्ञा पु० [सं० शिरस्+अधीन] चारपाई में सिर की ओर का भाग, सिरहाना। ~ काल **सिहांनै** यौं खड़ा, जाग पियारे मीत। →सा० काल० (४६) ३-१।

सींग—संज्ञा पु० [सं० शृंग] सींग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ससा **सींग** की धनुहड़ी रमै बाँझ का पूत। → सा० बेली० (५८) ४-२, पद ३१८-६, पद २०६-६।

सींगणि—संज्ञा पु० [सं० शृंग+णि] सींगयुक्त धनुष या सींग से बना धनुष। ~हरि रस जे जन बेधिया, सर गुण **सींगणि** नाँहि। → सा० सब० (४०) ५-१।

सींगी—संज्ञा स्त्री० [सं० शृंगी] सींग का बाजा। ~गगन ही भाठी **सींगी** करि चूँगी, कनक कलस एक पावा। → सब० ११२-५, पद ३२१-३, सब० ६०-५।

सींगी—संज्ञा पु० [सं० शृंगी] हिरण के सींग का बना वाद्य। ~उलटा पवन जटा धरि जोगी, **सींगी** सुरति बजाई। → सब० ३३-८, सब० ३४-२, पद २५०-५, सब० ४१-३।

सींचा—संज्ञा पु० [सं० सिञ्चन] सींचना, स्नान (करना)। ~और के छुए लेत हौ **सींचा**, तुमते कहत्त कौन है नीचा। →र० ३५-४।

सीकसी—संज्ञा पु० [दे०] ऊसर। ~सो तो है बन **सीकसी** हो रमैया राम। →बेलि (६) २-३।

सीख—संज्ञा स्त्री० [राज०] बिदाई। ~**सीख** भई संसार से, चले जु साँई पास। →सा० उप० (५०) २-१।

सीख—संज्ञा पु० [सं० शिष्य] शिष्य, चेला। दे० 'सिष'। ~गुरु जी बसै बनारसी, **सीख** समुन्दर तीर। → सा० हे० प्री० स० (४४) २-१।

सीख—संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा] शिक्षा। ~कबीर सतगुरु ना मिल्या, रही अधूरी **सीख**। → सा० गुरु० (१) २७-१, सा० उपदे० (३४) ५-२।

सीझहु—क्रि० [हि० सीझना] ताप या कष्ट सहना। ~ऐसनि जानि पसीजहु **सीझहु**, कस न छतरिया छायहु हो। →कहरा (३) १-२३।

सीझै—क्रि० [सं० सिद्ध] पकाते हैं। ~एक मरे मुए अन्न नहिं खाई, एक मरै **सीझै** रसोई। →सब० १६५-२।

सीतलता—संज्ञा पु० [हि० शीतलता] आनन्द। ~श शा सर नहिं देखै कोई, सर **सीतलता** एकै होई। → ज्ञान चौं० (१) ६३।

सीप—संज्ञा पु० [सं० शुक्ति] कड़ी खोल के भीतर रहने वाला एक छोटा जलजन्तु, सीपो, सुतही। ~कदली **सीप** भुवंग मुख, एक बूंद तिहुँ भाइ। →सा० कुसं० (२५) २-२; सा० पर० (५) ८-१।

सील—संज्ञा पु० [सं० शील] सदाचरण, सदाचार। ~ममता मेटि सांच करि मुद्रा, आसन **सील** दिढ़ कीजै। →सब० ३३-५, पद २४६-२, पद १७६-४।

सीला—संज्ञा स्त्री० [सं० शिला] पत्थर। ~गण्डक सालिगराम न **सीला** मछ कछ होय जल नहीं हीला। →र० ७५-८।

सीव—संज्ञा पु० [सं० शिव] शिव, शंकर। ~मरि गये ब्रह्मा नभ के वासी, **सीव** सहित मुए अविनासी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

→ र० ५४-१, पद ३३२-५, सब० १०७-३ ।

सीव—संज्ञा पु० [सं० शिव] कल्याण । ~ जीव **सीव** का आहि नसौना, चारिउ वेद चतुर गुन मौना । → र० ३०-२ ।

सीस कूटि—[मु०] सिर धुन धुन कर पश्चाताप करना । ~उड़ि न सकत बल गयौ छूटि, तब भंवरी रोवैं **सीस कूटि** । →सब० १०६-८ ।

सीस धुनैं धुनि—मुहा० सिर धुनना, पश्चाताप करना । ~पवन थक्यो गुड़िया ठहरानी, **सीस धुनैं धुनि** रोवै प्राँणी । →सब० १६१-४ ।

सुंनहि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] आकाश, जहाँ कोई रूप नहीं है, प्रमेय रहित अनुभव । ~**सुंनहि** बांछा सुंनहि गैऊ, हाथा छोड़ि वेहाथा भैऊ । → र० १६-३ ।

सुंनि मंडल—संज्ञा पु० [सं० शून्य मण्डल] सहस्रार, ब्रह्मरंध्र । ~ **सुंनि मंडल** मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै । → सब० ३५-७, सा० गु० सि० हे० (४३) ७-२ ।

सुअटा—संज्ञा पु० [सं० शुक] तोता । ~ ज्यौं ललनीं **सुअटा** गह्यौ मन वउरा रे माया यहु व्यौहार । → सब० १६३-८, पद २६१-४ ।

सुइ—सव० [सं० सः] वही । ~**सुइ** पीवैं बांम्हन मतवाला, फल लागा विन वाड़ी ।→सब० ३०-४ ।

सुई—संज्ञा स्त्री० [सं० सूची] सुई । ~गुरु परसादि **सुई** कै नाकैं, हस्ती आवैं जांही ।→सब० ३०-८ ।

सुक्रितु—संज्ञा पु० [सं० सुकृत] पुण्य, सत्कर्म । →अपना **सुक्रितु** भरि भरि लीजै ।→पद २१६-२,पद २३३-८ ।

सुख—संज्ञा पु० [सं० शुक] १. तोता । २. शुकदेव मुनि । दे० 'सुखदेव' । ~फल अलंकृत बीज नहिं बोकला, **सुख** पंछी रस खायो । →सब० ८८-२ ।

सुखदेउ—संज्ञा पु० दे० 'सुखदेव' ।

सुखदेव—संज्ञा पु० [सं० शुकदेव] वेद-व्यास के पुत्र । ~बालमीकि बन बोइया, चुनि लीन्ह **सुखदेव** । ~ पद २४८-२, सब० १४३-६, पद ३१०-५ ।

सुखमन—संज्ञा स्त्री० दे० 'सुखमनि' ।

सुखमनि—संज्ञा स्त्री० [सं० सुषुम्ना] सुषुम्ना नाड़ी । ~ पानीग्रहन भयो भव मंडन, **सुखमनि** सुरति समानी । →सब० ३६-६, पद २९८-४, पद ३४४-६ ।

सुखसागर—संज्ञा पु० [सं०] आनन्द के सागर, परमात्मा । ~कहै कबीर मन मनहिं मिलावा, अमर भए **सुखसागर** पावा । →पद ३२६-५, पद २७७-५ ।

सुगह—क्रि० वि० [सं० सुग्रह] अच्छी तरह पकड़कर ।~जिनि पाया तिनि **सुगह** गह्या, रसनाँ लागी स्वादि । →सा० पर० (५) ३३-१ ।

सुजाँन—वि० [सं० सज्ञान] चतुर, ज्ञानी । ~कबीर माया मोहिनी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोहे जाँन सुजाँन । →सा० माया० (१६) ६-१, सा० सुन्द० (५२) १-१ ।

सुठि—वि० [सं० सुष्ठु] अच्छा । ~ यहु मन दीजै तास कौं, सुठि सेवग भल होइ । →सा० संगति० (२६) ४-१ ।

सुत—संज्ञा पु० [सं० सूत्र] सूत, तागा । ~करम बिनौला होय रहा, सुत काते जैदेव । →पद २४८-३ ।

सुत—संज्ञा पु० [सं०] पुत्र । ~बनिता सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई । →पद २७५-३ ।

सुतधारि—संज्ञा पु० [सं० सूत्रधार] सूत्रधार । ~जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सो सुतधारि । →र० २६-६ ।

सुतलौं—क्रि० [हि० सोना] सोती हूँ । ~ सहजहिं बपुरे सेज बिछावल, सुतलौं पाँव पसारी । →पद २२२-६ ।

सुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । ~ माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता । →पद २२६-७ ।

सुध—वि० [सं० शुद्ध] १. शुद्ध । २. उच्च । ~कहा भये नर सुध बेसूधा, बिनु परचै जग बूड़ न बूझा । →र० ११-६, सा० चित्तक० (४२) ३-१, सा० भेष० (२४) ११-१ ।

सुधबुध—वि० [सं० शुद्ध + बुद्धि] समझदार, प्रबुद्ध, संवेदनशील । ~ सुधबुध कै हिरदै भिदै, उपज विवेक विचार । →सा० निगु० (५५) ७-२ ।

सुधाए—क्रि० [सं० शोधन] निश्चित किया । ~ जना चारि मिलि लगन सुधाए, जना पाँच मिलि माँड़ौ छाए । →पद ३१२-३ ।

सुधायो—क्रि० [सं० शोध] शोध किया । ~गुरु वसिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सुरज मंत्र एक दीन्हा । →सब० ४-३ ।

सुधारस—यौ० [सं०] अमृतरस । ~ पियत पियाला प्रेम सुधारस, मतवाले सतसंगी । →पद ३०३-२ ।

सुधि—संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्ध] स्मृति । ~वा घर की सुधि कोइ न बतावै, जा घर तें जिउ आया हो । →पद २८७-१ ।

सुनगुन—क्रि० [दे०] कहना-सुनना (लेखा) । ~ स सा के घर सुनगुन होई, यतनी बात न जानै कोई । → ज्ञान चौं० (१) ६८ ।

सुनति—संज्ञा स्त्री० [अ० सुन्नत] खतना; मुसलमानों में प्रचलित एक प्रथा जिसमें लड़के की लिंगेन्द्रिय के अग्र भाग का चमड़ा काट दिया जाता है, सुन्नत । दे० 'सुन्नति' । ~पेटे न काहू वेद पढ़ाया, सुनति कराय तुरुक नहिं आया । → र० २-६, र० ६२-४ ।

सुनहां—संज्ञा पु० [सं० श्वान] कुत्ता । ~का सुनहां कौं सुम्रित सुनाएँ, का साकत पहिं हरि गुन गाएँ । → पद २६९-३, पद ३४७-३ ।

सुन्दरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । ~राज पाट अरु छत्र सिंघासन बहु सुन्दरि रमनां । →सब० १४२-५ ।

सुन्न—संज्ञा पु० [सं० शून्य] खोखला ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~श शा कहै सुनहु रे भाई, सुन्न समान चला जग जाई। →ज्ञान चौं० (१) ६४।

सुन्न—संज्ञा पु० [सं० शून्य] शून्य। ~सुन्न सनेही राम बिनु, चले अपनपौ खोय। →र० ८३-७।

सुन्नति—संज्ञा स्त्री० [अ०] खतना, मुसलमानी। ~कर्म ते सुन्नति और जनेऊ, हिन्दू तुरुक न जानै भेऊ। →र० ३६-४।

सुन्नहि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] परमात्म चैतन्य में, ईश्वर में। ~ऐसे हम लोक बेद के बिछुरें सुन्नहि मांहि समावहिंगे। →सब० १८४-६।

सुन्नहि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] आतमा जो शरीर आदि के धर्म से सर्वथा शून्य (रहित) है। ~सुन्नहि सुरति समाइया, कासों कहिए जात। →र० ३६-६।

सुन्नि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] सहज शून्य। ~आसा पास खंड नहिं पाड़ै यहु मन सुन्नि न लूटैं। →सब० १५३-५, १०।

सुन्नि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] परमतत्व। ~उलटै पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुन्नि अनुरागी। →पद २१६-३।

सुन्नि मंडल—संज्ञा पु० [सं० शून्य-मंडल] शून्य-चक्र, ब्रह्मरंध्र। ~ सुन्निमंडल मैं घर किया, जैसै रहै सिचांनां। →सब० ५२-२।

सुपंथ—संज्ञा पु० [सं०] विहंगम मार्ग। ~हो दारी के ले देउँ तोहि गारी, तैं समुझु सुपंथ बिचारी। →पद ३४८-१।

सुपनंतरि~संज्ञा पु० [सं० स्वप्न+ हि० अन्तरि] स्वप्न में भी। ~ दाया धरम ग्यांन गुर सेवा, ए सुपनंतरि नांही। →सब० ६८-८, सा० मधि० (३१) ४-१।

सुपिनंतर—संज्ञा पु० दे० 'सुपनंतरि'।

सुपिने—संज्ञा पु० दे० 'सुपिनै'।

सुपिनै—संज्ञा पु० [सं० स्वप्ने] स्वप्न में। ~बासुरि सुख नाँ रैंनि सुख, ना सुख सुपिनै माँह। →सा० बिर० (३) ४-१, पद ३४६-६; सब० १८७-३, सा० माया० (१६) २०-२, सा० चिता० (१२) २२-१; सा० साधु० (२८) ६-२।

सुभर[1]—वि० [सं० शुभ्र] स्वच्छ।

सुभर[2]—वि० [सु+हि० भरना] अच्छी तरह से भरा हुआ। ~मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं। → सा० पर० (५) ३६-१।

सुभाइ—संज्ञा पु० [सं० स्वभाव] स्वभाव; प्रकृति। ~कबीर तष्टा टोकनी, लीए फिरै सुभाइ। →सा० चाँण० (१७) ५-१, सा० निन्द्या० (५४) ३-२।

सुभाइ—क्रि० वि० [सं० स्वभाव] सुंदर सहज भाव। ~कहै कबीर जौ रहै सुभाइ, भोरै भाइ मिलै रघुराइ। →सब० १०१-६।

सुभागे—वि० [सं० सुभग] सुन्दर भाग्य वाले। ~सुभागे केहि कारन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोभ लागे, रतन जनम खोयो। → पद ३१६-१।

सुमाना—भाव० [?] तैयारी। ~बूता पहिरि जम करै **सुमाना**, तीनि लोक मँह करै पयाना। →र० १०-३।

सुमार—संज्ञा पु० [सं०] अच्छा निशाना, सफल चोट। ~भीतरि भिद्या **सुमार** ह्वै जीवै कि जीवै नांहि। → सा० बिर० (३) १५-२।

सुमिरन—संज्ञा पु० [सं० स्मरण] स्मरण, नामजप। ~मनसा वाचा कर्मना, कबीर **सुमिरन** सार।→सा० सुमि० (२) ४-२, सा० सुमि० (२) ५-१।

सुमिरावैं—क्रि० [सं० स्मरण] स्मरण कराना। ~वो है दाता मुकुति का, वो **सुमिरावैं** नांम। → सा० साधु० (२८) ४-२।

सुमिरिनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] सत्ताइस दानों की जपमाला। ~जाके पूजे पाप न ऊड़ै नाम **सुमिरिनी** भव मँह बूड़ै। →विप्र० (२) १६।

सुमृत—संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] धर्मग्रन्थ। ~पाठ पुरांन वेद नहीं **सुमृत** तहाँ बसै निरकारा। → पद ३०८-६।

सुमेर—संज्ञा पु० [सं० सुमेरु] सुमेरु। ~पंगुला मेर **सुमेर** उलंघै, त्रिभुवन मुकुता डोलै। →सब० २८-७।

सुम्रिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] हिन्दुओं के धर्मग्रंथ, स्मृति, धर्मशास्त्र। **सुम्रिति** आहि गुननि को चीन्हा, पाप पुन्न को मारग कीन्हा। →र० ३१-१, २; सब० ३१-७, वसंत (४) १०-८, सब० १६२-३, पद २६६-३।

सुम्रिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] वेदों के पश्चात् लिखे गये धर्म ग्रन्थ। ~**सुम्रिति** कहा आपु नहिं माना, तरुवर तर छागर होय जाना। →र० ६५-६।

सुयं—अव्य० [सं० स्वयम्] खुद, आप। ~**सुयं** प्रकास आनंद बमेक मैं, घर कबीर ह्वै पैठै। →सब० ६७-६।

सुरंग—वि० [सं०] सुन्दर, रूपवान। ~कबीर कहा गरबियो, देही देखि **सुरंग**। →सा० चिता० (१२) ६-१।

सुरंग—वि० [सं०] सुन्दर रंग वाले। ~दिनां चारि के **सुरंग** फूल, तेहि लखि भँवरा रह्यो भूल। →सब० १०६-५।

सुर—संज्ञा पु० [सं०] देवता। ~**सुर** नर मुनिजन असुर सब, पड़े काल की पासि।→सा०काल०(४६) २६-२।

सुरग—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ग] स्वर्ग। ~**सुरग** नरक तैं मैं रहा, सतगुर के परसादि। →सा० मघि० (३१) ६-१।

सुरग बासु—यौ० [सं० स्वर्गवास] स्वर्ग में निवास। ~**सुरग बासु** न बांछिअै डरिऐ न नरकि निवासु। →पद २४५-२।

सुरगुरु—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं के गुरु, वृहस्पति। ~ सुरपति जाय अहीलहिं छरी, **सुरगुरु** धरनि चन्द्रमैं हरी। →र० ८१-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुरझा—क्रि० [हि० सुलझना] सुलझा, सुलझ पाया। ~कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न **सुरझा** मन। →सा० निगु० (५५) ६-१।

सुरतान—संज्ञा पु० [फ़ा० सुलतान] शासक, राजा। दे० 'सुलतान'। सो **सुरतान** जु दुइ सर तानै, बाहरि जाता भीतरि आंनै।→पद ३४६-७।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सूरत] स्वरूप, आकृति।~कहाँ कूच कहं करै मुकामा, कवन **सुरति** के करहु सलामा। → र० ४६-२, सब० ८५-५।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की अनुरागात्मिका वृत्ति। ~सुन्नहि **सुरति** समाइया, कासों कहिए जात। →र० ३६-६।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवधान, आत्मचेतना। ~अजहूँ लेउं छुड़ाय काल सो, जो करै **सुरति** सँभारी। →सब० १५६-१०।

सुरति—संज्ञा पु० [सं०] चित्त। ~ बिखिया अजहूं **सुरति** सुख आसा। →सब० १६२-१।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्मृति] ध्यान, स्मरण, चेतना। ~जौ कबहूँ उड़ि जाइ जंगल में बहुरि **सुरति** नहिं आंनैं। →सब० १६८-६, सब० १४८-२।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चेतना। ~उलटै पवन चक्र खटु भेदे **सुरति** सुन्नि अनुरागी। →पद २१६-३।

सुरतैं—संज्ञा पु० [हि०] अनुमान से। ~मैं बकतैं बकति सुनावा, **सुरतैं** तहाँ कछू न पावा। →सब० १७१-६।

सुरपति—संज्ञा पु० [सं०] देवराज, इंद्र।~**सुरपति** जाय अहीलहिं छरी सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी। →र० ८१-३, पद २४८-५।

सुरभी—संज्ञा स्त्री० [सं० सुरभि] गाय। ~**सुरभी** भच्छन करत वेद मुख, घन बरिसै तन छीजै। →सब० १४४-५।

सुरही—संज्ञा स्त्री० [सं० सुरभि] दे० 'सुरभी' गाय। ~**सुरही** तिन चरि अमृत सरबै, लेर भवंगहि पाई। → पद २६८-५।

सुलक्षणीं—वि० [सं० सुलक्षिणी] शुभ लक्षणों वाली। ~सोई नारि **सुलक्षणीं**, नित प्रति झूलन जाइ → सा० सुन्द० (५२) ५-२।

सुलतान—संज्ञा पु० [फा०] १. बादशाह, राजा। २. वि० श्रेष्ठ। ~बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है **सुलतान**। → सा० बिर० (३) २१-१।

सुलषनां—वि० [सं० सुलक्षण] भला, अच्छा, चतुर।~साँई मेरा **सुलषनां** सूतां देइ जगाइ। →सा० सम्र० (३८) ४-२।

सुवना—संज्ञा पु० [सं० शुक] शुक, तोता। दे० 'सुवा'। ~कहैं कबीर ललनी के **सुवना**, तोहि कौने पकर्‍यो। →सब० ५-६।

सुवस—वि० [हि० सु+वास] सुन्दर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप से सजा हुआ। ~पाट न सुवस सभा बिनु अवसर, बूझहु मुनि जन लोई। →पद २७०-३।

सुवा—संज्ञा पु० [सं० शुक] तोता। ~नर कै संगि **सुवा** हरि बोलै हरि परताप न जांनैं। →सब० १६८-५।

सुवारथ—संज्ञा पु० [सं० स्वार्थ] स्वार्थ। ~आप **सुवारथ** मेदनीं, भगत सुवारथ दास। →सा० सूरा० (४५) ४१-१।

सुवासिक—वि० [सं० सुवास] सुगंधित ~पांन कपूर **सुवासिक** चंदन अंति तऊ मरनां। →सब० १४२-६।

सुषमन—संज्ञा स्त्री० [सं० सुषुम्ना] सुषुम्ना नाड़ी। ~मूल बाँधि सर गगन समाँनाँ, **सुषमन** यों तन लागी। →सब० २६-३, सब० ८७-५।

सुषमनि—संज्ञा स्त्री० दे० 'सुषमन'।

सुस्त—वि० [फ़ा०] मंद, शांत। ~वेदहुँ केर कहल नहिं करई, जरतहिं रहै **सुस्त** नहिं परई। →र० ६१-४।

सुहाग—संज्ञा पु० [सं० सौभाग्य] सौभाग्य। ~ऐसी जागनी जे को जागै, ता हरि देइ **सुहाग** रे। → सब० ११८-५, सब० १८३-६।

सुहाग—संज्ञा पु० [सं० सौभाग्य] विवाह। ~पूरि **सुहाग** भयौ बिनु दूलह चौकै रांड भई संग सांई। → पद २३८-६।

सुहागा—संज्ञा पु० [सं० सुभग] एक प्रकार का क्षार जो गरम गन्ध की सोतों से निकलता है। ~कहै कबीर मन लागा, जैसे सोनैं मिला **सुहागा**। →पद २४०-६, पद ३४०-६।

सुहागिनि—संज्ञा स्त्री० [हि०] सौभाग्यवती। ~धन्नि **सुहागिनि** जो पिय भावै, कह कबीर फिरि जनमि न आवै। →पद ३३६-५।

सुहाय—क्रि० [सं० शोभन] अच्छी लगना। ~सुम्रिति **सुहाय** सबै कोइ जानै, हृदया तत्व न बूझै। →सब० १८८-३।

सुहेला—संज्ञा पु० [हि०] प्रिय जन। ~देहरि लौं बरी नारि संग है आगैं सजन **सुहेला**। →सब० १७६-७।

सुहेला—वि० दे० 'सुहेली'।

सुहेली—संज्ञा स्त्री० [हि० सहेली] सखी। ~ननद **सुहेली** गरब गहेली देवर कै बिरहि जरउँ रे। →पद २३२-४।

सुहेली—वि० [सं० शुभ ?] सह्य, सहज; सरल और आसान। ~अनी **सुहेली** सेल की, पड़तां लेइ उसास। → सा० कुसब० (३६) १-१; सा० उपज० (५०) १०-१।

सूंघत—क्रि० [सं० स + घ्राण] सूंघते ही। ~पांचौं नाग पचीसौं नांगिनि **सूंघत** तुरत मरी। →पद ३२७-४।

सूकर—संज्ञा पु० [सं०] शूकर, सूअर। ~जो जन गुरु की निन्दा करई, **सूकर** स्वान जन्म सो धरई। →र० ६७-५, पद २७५-७; र० ७८-५।

सूकरि—संज्ञा स्त्री० [सं० सुकरी]; सुकरी, सुअरी। ~और सकल ए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कूकरि **सूकरि**, सुंदरि नांउँ न ओपै। →सब० ६६-१०।

सूखा—वि० [सं० शुष्क] शुष्क, नीरस, सूखा हुआ। ~**सूखा** काठ न जांनई कबहूँ बूठा मेह। →सा० निगु० (५५) १-२।

सूचा—वि० [सं० शुचि] निर्मल, पवित्र, शुद्ध। ~कहु पंडित **सूचा** कवन ठांउं। → सब० ७१-१, सब० १३७-७।

सूझ—क्रि० [सं० सज्ञान] दिखाई पड़ना। ~सोतो कहिए ऐसो अबूझ, खसम ठाढ़ ढिग नाहीं **सूझ**। →वसंत (४) १२-३।

सूझा—क्रि० [हि० सूझना] समझ में आया। ~गहनी बंधन बानि नहिं **सूझा**, थाकि परे तब किछवो न बूझा। →र० १६-३।

सूझैं—क्रि० [सं० संज्ञान, हि० सूझना] दिखाई देता है। ~पनिआँ महिं पावक जरै अंधै आँखिन **सूझैं**। → पद ३४३-२।

सूत—संज्ञा पु० [सं० सूत्र] धागा। ~तानै बानै पड़ी अनँवासी, **सूत** कहै बुनि गाढ़ी। →सब० ३०-६।

सूतां—वि० [सं० सुप्त] सोये हुए को। ~साँई मेरा सुलषनां, **सूतां** देइ जगाइ। →सा० सम्र० (३८) ४-२।

सूता—संज्ञा पु० [सं० सूत्र] सूत्र, बंधन। ~बाँधे अष्ट कष्ट नौ **सूता**, जम बाँधे अजनी के पूता। →र० ६-१।

सूता—क्रि० [हिं० सोना] (अज्ञान रूपी निद्रा में) सोया हुआ। ~कबीर **सूता** क्या करै, जागि न जपै मुरारि। →सा० सुमि० (२) ११-१।

सूति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वाति] स्वाति नक्षत्र। ~आई **सूति** कबीर की पाया राम रतंन। →सा० सुमि० (२) ७-२।

सूती—क्रि० [सं० शयन] सो गई। ~ले **सूती** पिउ आपनाँ, चहुँ दिसि अगिनि लगाइ। →सा० सूरा० (४५) ३४-२।

सूत्र—संज्ञा पु० [सं०] संक्षेप में कहा हुआ वचन जो बहुत अर्थ प्रकट करता है। ~क्रितिया **सूत्र** लोक एक अहई, लाख पचास कै आयू कहई। →र० ५७-१।

सूदा—संज्ञा पु० [सं० शूद्र] शूद्र। ~एक बूंद तै सृष्टि रची है, कौन बांह्मन कौन **सूदा**। →सब० ५५-४।

सूध—वि० [सं० शुद्ध] शुद्ध। ~जिभ्या बचन **सूध** नहिं निकसै तब सुक्रित की बात कहै। → पद २३३-८, पद ३३२-७।

सूधा—वि० [सं० शुद्ध] सीधा। ~औंधा घड़ा न जल महिं डूबै, **सूधा** सूभर भरिया। →सब० ३२-७।

सूधी मूठि—वि० [हि० सीधी + मुट्ठी] सीधी मुट्ठी में पकड़कर अर्थात् ठीक लक्ष्य करके। ~ सतगुरु मार्‌या बाण भरि, धरि करि **सूधी मूठि**। →सा० गुरु० (१) ८-१।

सूनति—संज्ञा स्त्री० [अ० सुन्नत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खतना, मुसलमानी । ~ सकति सनेह पकरि करि **सूनति,** मैं न बदउँगा भाई । →सब० ७६-३ ।

सूनां—वि० [सं० शून्य] रहित । ~ आसा त्रिसनां सब कौं ब्यापै, कोई महल न **सूनां** हो । → सब० १३८-६ ।

सूने—वि० [सं० शून्य] आबादी से रहित । ~**सूने** घर का पाहुना, कासों लावै नेह । →पद २४८-७ ।

सूबस—वि० [सं० सु + √ वस्] सुन्दर ढंग से बसा हुआ । ~पुर पट्टन **सूबस** बसै, आनंद ठाँवै ठाँव । →सा० साधुम० (३०) २-१ ।

सूभर—वि० [सं० शुभ्र] स्वच्छ । ~ औंधा घड़ा न जल महिं डूबै, सूधा **सूभर** भरिया । →सब० ३२-७ ।

सूभर—वि० [सं० सु + हि० भरना] अच्छी तरह से भरा हुआ । ~ऊभर था सो **सूभर** भरिया, त्रिसनां गागरि फूटी । →सब० १५-३ ।

सूमहिं—वि० [अ० सूम + हि० हि] कृपण को, कंजूस को । ~**सूमहिं** धन राखन कौं दीया मुगध कहै यहु मेरा । →पद २१६-७ ।

सूर—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] सूर्य, पिंगला नाड़ी । ~ससिहर **सूर** द्वार दस मूंदे लगी जोग जुग तारी ।→पद २०१-४, सा० चांण० (१७) १६-२ ।

सूर—संज्ञा पु० [सं० शूर] वीर । ~ ज्ञानी गुनी **सूर** कवि दाता, या मति किनहु न नासी । →पद २७२-३, पद ३३७-५ ।

सूरतन—संज्ञा पु० [सं० शूरत्व] शूरता, वीरता । ~सती **सूरतन** साहि करि, तन मन कीया घांन । →सा० सूरा० (४५) ३५-१ ।

सूरा—संज्ञा पु० [सं० शूर] वीर पुरुष । ~भाई रे अनी लड़ै सोई **सूरा** ।→ पद २०५-१ ।

सूरा—संज्ञा पु० [सं० शूर] वीर, बहादुर, योद्धा । दे० 'सूर' ।~सारा **सूरा** बहु मिलैं, घायल मिला न कोइ ।→सा० गु० सि० हे० (४३) ११-१, सब० ६८-५ ।

सूरा—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] सूर्य । दे० 'सूर' । ~जिनि ब्रह्मण्ड रच्यौ बहु रचना, बाव बरन ससि **सूरा** । → सब० ८१-५ ।

सूरातन—भाव० [सं० शूरतत्व > प्रा० सूरत्तण > सूरातन] शूरत्व, वीरता । ~कायर हुआं न छूटिहै, कछु **सूरातन** साहि । →सा० सूरा० (४५) १-१ ।

सूरि—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] सूर्य, सूरज । दे० 'सूरा' । ~देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे **सूरि** । →सा० बिर० (३) ४४-२ ।

सूरिवां—संज्ञा पु० [सं० शूरमानिन्] वीर, बहादुर, सूरमा । दे० 'सूरा' । ~सतगुरु साँचा **सूरिवाँ**, सबद जु बाह्या एक । →सा० गुरु० (१) ७-१, सा० सूरा० (४५) ३-१ ।

सूरिवां—संज्ञा पु० [सं० शूरमानिन्] शूरवीर । ~सतगुर साँचा **सूरिवां** तातैं लोहि लुहार । →सा० गुरु० (१) २८-१ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूरै—संज्ञा पु० [सं० शूर] वीर, योद्धा। दे० 'सूर' या 'सूरा'। ~सूरै सार सँवाहिया, पहिरा सहज सँजोग।→ सा० सूरा० (४५) ८-१।

सूल—संज्ञा पु० [सं० शूल] सांसारिक कष्ट। ~दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि। →सा० पर० (५) ४८-२।

सूल—संज्ञा पु० [सं० शूल] काँटा। ~ पग तौ पाला मैं गिला, भाजन लागी सूल।→सा० भेष० (२४) १-२।

सूली—संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] नुकीला लौह दंड। ~धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुज्झ।→सा० सूरा० (४५) २९-२, सा० कामी० (२०) १६-१।

सूली—संज्ञा स्त्री० [सं० शूल] प्राणदंड देने की एक प्राचीन प्रथा जिसमें दंडित मनुष्य एक नुकीले डंडे पर बैठा दिया जाता था और उसके ऊपर मुंगरा मारा जाता था। ~ सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं ठाम।→सा० सुमि० (२) २९-२।

सूवा—संज्ञा पु० [सं० शुक] तोता। ~कहै कबीर नर आपु बंधायौ ज्यों ललनी भ्रमि सूवा।→ सब० १७९-१०।

सूवै—संज्ञा पु० [सं० शुक] तोता, सुग्गा। दे० 'सूवा'। ~चतुराई सूवैं पढ़ी, सोई पंजर माँहि।→ सा० चाँण० (१७) १४-१, सा० भ्रवि० (२३) ८-२।

सूषा—वि० [सं० शुष्क] सूखा। ~ मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूषा।→सब० २५-५।

सूषिम—वि० [सं० सूक्ष्म] सूक्ष्म, बहुत सँकरा। →सा० सू० मा० (१४)।

सेंत—क्रि० वि० [सं० संहित] मुफ्त का, बिना पूंजी लगाए हुए। ~ स्वामी हूता सेंत का, पैकाकार पचास।→ सा० चाँण० (१७) ४-१।

सेंतिहि—संज्ञा स्त्री० [सं० संहित] व्यर्थ, निरर्थक, निष्प्रयोजन। ~जो कोइ पैंठे धायके, बिनु सिर सेंतिहि जाय। →र० २२-९।

सेइए—क्रि० [सं०√सेव] सेवा कीजिए, भजन कीजिए। ~तातैं सेइए नाराइनां।→सब० १४२-१।

सेउ—संज्ञा स्त्री० [सं० सेवा] सेवा। ~करम करत बंधे अहंमेउ, मिलि पाथर की करहीं सेउ।→सब० १०१-५।

सेख—संज्ञा पु० [अ० शेख] मुसलमानों के चार वर्गों में से एक। ~सैयद सेख किताब नीरखै, पंडित सास्त्र बिचारै।→पद २३८-६।

सेख—संज्ञा पु० [अ० शेख] प्रतिष्ठित नायक। ~सेख जु कहिअहिं कोटि अठासी, छप्पन कोटि जाकै खेल-खासी।→सब० १४१-४।

सेज—संज्ञा स्त्री [सं० शय्या] शय्या, पलंग। ~सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोय।→सा० साधसा० (२९) १८-१, सा० सूरा० (४५) ३४-१, पद ३३९-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेजरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या] शय्या, पलंग। दे० 'सेज'। ~ **सेजरिया** बैरिनि भई मोकौं, जागत रैनि बिहाइ ।→सब० २२-७ ।

सेत—वि० [सं० श्वेत] श्वेत, सफेद, उज्ज्वल। ~वोढ़ैं काला कापड़ा, नाँव धरावैं **सेत**।→सा० भ्रवि० (२३) ७-२, विप्र० (२) २८, सा० चित्तक० (४२) १-२ ।

सेता—संज्ञा पु० [सं० सेतु] पुल। ~ मूए चंद मुए रबि सेसा, मुए हनुमत जिन्हि बांधल **सेता**।→सब ८६-४ ।

सेती—प्रत्य० [प्रा० सुंतो] से, द्वारा। ~हिन्दू बरत एकादसि साधैं, दूध सिंघारा **सेती**।→पद ३०४-३ ।

सेती—कारक चि० [प्रा० सुंतो, पु० हि० सेंति] ~पंडित **सेती** कहि रहा, कहा न मानै कोइ। → सा० हैरा० (६) १-१ ।

सेनां—संज्ञा स्त्री० [सं०सेना] समूह। दे० सेनि। ~हरि को दास मरै जो मगहरि, **सेनां** सकल तिराई। → पद ३०८-८ ।

सेनि—संज्ञा स्त्री [सं० श्रेणी] समूह। कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज **सेनि**।→ सा० पर० (५) १-१।

सेमर—संज्ञा पु० [सं० शाल्मली] एक वृक्ष जिसके फलों में केवल रुई होती है। ~ **सेमर** सेइ सुवा ज्यौं जहँड़े, ऊन परे पछिताई हो। → कहरा (३) ६-२ ।

सेरी—संज्ञा स्त्री० [?] मार्ग, गली। ~ जिहि **सेरी** साधू गया, सो तो राखी मूँदि। → सा० भेष० (२४) १५-२, सा० मन० (१३) ४-१।

सेल—संज्ञा पु० [सं० शल] बर्छा, भाला। ~भरम भलाका दूरि करि, सुमिरन **सेल** सँबाहि। →सा० सूरा० (४५) १-२, सा० कुसब० (३६) १-१ ।

सेली—संज्ञा स्त्री० [हि०] सूत, ऊन या बालों की माला, बद्धी। ~ जटा तोरि पहिरावैं **सेली**, जोग जुक्ति कै गर्व दुहेली। → र० ७१-२ ।

सेव—संज्ञा स्त्री० [सं० सेवा] सेवा। ~ जब लगि भगति सकामताँ, तब लग निर्फल **सेव**। → सा० निह० पति० (११) १०-१ ।

सेव—संज्ञा स्त्री० [सं० सेवा] पूजा, आराधना। ~तीन देव प्रतखि तोरहि करहि किसकी **सेव**। → पद २११-१० ।

सेवग—संज्ञा पुं० [सं० सेवक] सेवक, दास, भक्त। ~ यहु मन दीजै तास कौं, सुठि **सेवग** भल होइ। → सा० संगति० (२६) ४-१, पद १६८-८ ।

सेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेश, रक्षा की बात। ~ तैं सुत मानु हमारी **सेवा**, तो कँह राज देइहों देवा। → र० ५८-१।

सेवौ—क्रि० [सं० सेवा] सेवा करो। ~ कहै कबीर **सेवौ** बनवारी, सींचौ पेड़ पिवैं सब डारी।→सब० १६-५।

सेषहु—संज्ञा पुं० [सं० शेष] सभी के विनष्ट हो जाने पर जो शेष रहता है, अविनाशी, इन्द्रियातीत। ~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तासे **सेषहु** जाइ लुकाई, काहू कै परतीति न आई। → र० १३-२।

सेस—संज्ञा पु० [सं० शेष] शेष नाग। ~ **सेस** सहस मुख पार न पावा, सो अब खसम सही समुझावा। → र० ५२-२, सब० २८-६।

सेंबल—संज्ञा पु० [सं० शाल्मली] सेमर, एक वृक्ष जिसमें सुगंधहीन लाल रंग के फूल लगते हैं तथा फलों में केवल रुई रहती है। दे० 'सेमर'। ~ऐसा यहु संसार है; जैसा **सेंबल** फूल।→ सा० चिता० (१२) १३-१, पद २०३-६; सा० भ्रवि० (२३) ८-२।

सेंन—संज्ञा स्त्री० [सं० संज्ञपन] संकेत। **सेंन** करै मनही मन रहसै, गूंगै जानि मिठाई। → सब० १३-८, सा० गु० सि० हे० (४३) १०-२।

सैयद—संज्ञा पु० [अ० सैयिद] प्रतिष्ठित मुसलमान, हजरत इमाम हुसेन की औलाद के वंशज। मुसलमानों के चार वर्गों में से एक। ~कहहिं कबीर एक **सैयद** कहावै, आपु सरीखे जग कबुलावै। → र० ४६-७, पद २२८-६।

सैंल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सैलाब] प्रवाह, वहाव। ~ जो जीवत ही मरि जांनै तौ पंच **सैंल** सुख मांनै। → सब० ८-६।

सैंल—संज्ञा पु० [सं० शैल] पर्वत, पहाड़। ~ जन कबीर का सिषर घर; वाट सलैली **सैंल**। → सा० सू० मा० (१४) ७-१।

सैंली—संज्ञा स्त्री० [दे०] लकड़ी का टुकड़ा, चैली। ~ द्वै थर चढ़ि गयौ रांड कौ करहा मनहं पाट की **सैली** रे। → पद २५५-४।

सैंली—वि० [सं० स्वैर] स्वच्छन्दतापूर्वक ~बेलड़िया द्वै अनी पहूँती, गगन पहूँती **सैली**। →पद २५३-३।

सैंवार—संज्ञा पु० [सं० शैवाल] घास-फूस। ~कबीर मंदिर ढहि पड़ा, ईंट भई **सैंवार**। →सा० चिता० (१२) १७-१।

सो—सर्व० [सं० सः] वह। ~जिन यह चित्त बनाइया, सांचा **सो** सुतधारि →र० २६-६।

सोई—सर्व० [सं० सः+ओई] वही। ~विद्या बेद पढ़ै पुनि **सोई**, बचन कहत परतछै होई। → र० ५७-२।

सोई—सर्व० [सं० तत्=सः] वह, परमतत्व। ~जौ लगि तन मैं आहै **सोई**, तब लगि चेति न देखै कोई। →र० ५३-३।

सोखा—क्रि० [सं० शोषण] सुखा दिया। ~पिरथी का गुन पांनी **सोखा** पांनी तेज मिलावहिंगे।→सब० १८४-३।

सोखै—क्रि० [सं० शोषण] सुखा देती है। ~उलटी गंग समुद्रहिं **सोखै**, ससिहर सूर गरासै।→सब० ३२-३।

सोग—संज्ञा पु० [सं० शोक] दुःख। ~**सोग** बधावा सम कै माना, ताकि बात इन्द्रहु नहिं जाना। →र० ७१-१।

सोच—संज्ञा पु० [सं० शोच] विचार।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिन्ता। ~तातैं फाँसी काल की, करहु आपनो **सोच**। →र० ६४-६।

सोधि—संज्ञा पु० [सं० शोध] विचार कर। ~पंडित **सोधि** कहहु समुझाई जाते आवागमन नसाई। →सब० १७०-१।

सोधि—क्रि० [सं० शोध] शोध कर। ~बावन अक्खिर **सोधि** करि ररै ममै चित लाइ। →सा० कथ० बि० क० (१६) २-२।

सोधि—क्रि० [सं० शोध] खोज कर। ~कामी अमीं न भावई, बिख ही कौं ले **सोधि**। →सा० कामी० (२०) १६-१।

सोधिया—क्रि० [सं० शोध] शोध किया, खोजा। ~आदि अंत सब **सोधिया**, दूजा देखौं काल। →सा० सुमि० (२) ५-२।

सोधी—संज्ञा स्त्री० [सं० शुद्धि] शुद्धि ~सतगुरु सवाँ न को सगा, **सोधी** सईं न दाति। → सा० गुरु० (१) १-१।

सोधैं—क्रि० [सं० शोधन] खोजते हैं। ~तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भाँति हरि **सोधैं**। →पद २५१-३।

सोध्यो—क्रि० [सं० शोधन] खोजा। ~ मैं तोहि बरजेउँ बार-बार, तैं बन-बन **सोध्यो** डार-डार।→सब० १०६-३।

सोन—संज्ञा पु० [सं० स्वर्ण] सोना। ~सर्व **सोन** की लंक उठाई, चलत बार कछु संग न लाई। →र० ५५-४।

सोषा—क्रि० [सं० शोषण] शुष्क हो जाना; सूख जाना। ~सहज समाधि बिरष यहु सींचा; धरती जलहर **सोषा**। →सब० १२-७।

सोहरा—वि० [सं० शुद्ध] शुद्ध, सरल; आसान। ~स्वामी होना **सोहरा**; दोहरा होना दास। →सा० चाँण० (१७) ३-१; सा० साँच (२२) २-१।

सोहरा—संज्ञा स्त्री० [अ० शोहरत] शोहरत; ख्याति, प्रसिद्धि। ~स्वाँग पहिरि **सोहरा** भया, खाया पीया खंदि। →सा० भेष० (२४) १५-१।

सोहरि—संज्ञा स्त्री० [दे०] नाव के पाल को खींचने वाली डोरी। ~ जेकरे हाथ पाँव कछु नाहीं, धरै लागु तेहि **सोहरि** हो। →कहरा (३) १-१६।

सौं—प्रत्य० [प्रा० सुंतो] समान। ~ हरि रंग **सौं** रंग और न कोई। → पद २५६-२।

सौंज—संज्ञा स्त्री० [सं० सज्जा] सामग्री; सामान। ~**सौंज** पराई जिनि अपनावै,ऐसी सुनि किन लेह। →पद २०३-३, सब० १५-६।

सौदागर—संज्ञा पु० [फा०] व्यापारी। ~सतगुर साह संत **सौदागर** तहँ मैं चलि कै जाऊँ जी।→पद ३०७-१।

सौलि—संज्ञा स्त्री० [सं० सौरि] सौरि चादर, सौड़। ~दरसन भया दयाल का; सूल भई सुख **सौलि**। →सा० पर० (५) ४८-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यंभ—संज्ञा पु० [सं० स्वयम्भू] शंभु, परमात्मा। ~कुबुधि न जाई जीव की, भावै **स्यंभ** प्रमोधि। →सा० कामी० (२०) १६-२।

स्याही—संज्ञा स्त्री० [फा०] कालापन, जवानी।~**स्याही** गई सफेदी आई, दिल सपेद अजहूँ न हुआ। →पद २१०-८।

स्यूं—अव्य० [सं० सह] सहित। ~ उदै भया जब सूर का, **स्यूं** तारां छिपि जाइ। →सा० चाँण० (१७) १६-२, सा० निगु० (५५) ६-२।

स्रवन—संज्ञा पु० [सं० श्रवण] कान। ~हाथ पांव मुख **स्रवन** जीभ बिनु, का कहि जपहु हो प्रानी। →सब० ६८-२, सब० १०६-४।

स्रिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सृष्टि, लोक। ~आंधरि गुष्टि **स्रिष्टि** भौ बौरी, तीनि लोक मँह लाग ठगौरी। →र० ११-१।

स्वांग—संज्ञा पु० [सं०] नाना प्रकार के वेश, रूप, वाह्याचार, तिलक भस्मादि। ~रहै बदन नहिं **स्वांग** सुभाऊ, मन अस्थिर नहिं बोलै काऊ। →र० ५१-४, सा० गुरु० (१) २७-२, र० २-७, र० ६७-१।

स्वाँग—संज्ञा पु० [सं०] बाह्य वेश-भूषा, वनावटी वेश। ~ **स्वांग** पहिरि सोहरा भया, खाया पीया खूंदि।→सा० भेष० (२४) १५-१।

स्वादा—भाव० [सं० स्वाद] स्वाद, जिह्वा, स्पर्शेन्द्रिय। ~तहिया होत विद्या नहिं वेदा, तहिया होत सब्द नहिं **स्वादा**। →र० ७-३।

स्वान—संज्ञा पु० [सं० श्वान] कुत्ता। ~जो जन गुरु की निन्दा करई, सूकर **स्वान** जन्म सो धरई। →र० ६७-५, र० ७८-५, सा० कर० वि० क० (१८) ३-२, सब० ५-२।

स्वान की पूँछ गह्यो—[मुहा०] निर्बल का आश्रय पकड़ना। ~कहैं कबीर सुनहु हो संतो,**स्वान की पूँछ गह्यो**। →सब० ६४-८।

स्वामीपनो—भाव० [सं० स्वामी+पन्] स्वामित्व, अहंभाव। ~**स्वामीपनो** जु सिरि चढ्यो सर्यो न एको काम। →सा० चाँण० (१७) २-२।

स्वारथ—संज्ञा पु० [सं० स्वार्थ] स्वार्थ, अपना लाभ, अपनी भलाई। ~ तेरा संगी कोइ नहीं, सब **स्वारथ** बँधी लोइ। →सा० चिता० (१२) ५५-१।

ह

हंकार—संज्ञा पु० [सं० अहंकार] गर्व, अहंकार। ~ बिनु परचै कस जानिहौं, झूठा है **हंकार**। →र० ५७-५, पद २२३-२, र० ३१-२।

हंकारा—संज्ञा पु० दे० 'हंकार'।

हंकारी—वि० [सं० अहंकारिन्] अभिमानी, अहंकारयुक्त। ~ गालिब नगरी गाँउँ बसाया; हांम कांम **हंकारी**। → सब० १०४-५।

हँकारु—संज्ञा पु० [सं० अहंकार] अभि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान। ~परिहरु लोभ अरु लोका-चारु, परिहरु कांम, क्रोध, हँकारु। →सब० १०१-४।

हँड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० भांडिका] मिट्टी का पात्र। ~ हँड़िया हाड़ हाड़ थारी मुख,अब षट कर्म बनेऊ। →सब० १६५-४।

हंदा—अव्य० [राज०] द्वारा, से। ~ कोइ घायल बेधा ना मिलै, साँई हंदा सैंन।→सा० गु० सि० हे० (४३) १०-२।

हंस—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु। ~एकै सै ब्रह्मै पंथ चलाया, एक से हंस गोपालहिं गाया। →र० १४-५।

हंस—संज्ञा पु० [सं०] शुद्धात्मा, विवेकी जीव।~तन मन एकै होय रहै, हंस कबीर कहाय।→र० ५१-६।

हउँ—सर्व० [सं० अहम्] मैं। ~ तूं जलनिधि हउँ जल का मींनु, जल महिं रहउँ जलहि बिनु खींनु। → पद २६१-३।

हक—वि० [अ०] सत्य। ~ हक सांच खालिक खलक म्यांनैं स्याम मूरति नांहि।→ सब० १८१-६।

हकराइन्हि—क्रि० [हि० हंकारना] पुकारने लगे।~उर्ध निसासा उपजि तरासा, हकराइन्हि परिवारा हो। →कहरा (३) ९-३।

हक्क—संज्ञा पु० [अ० हक़] सत्य, ईश्वर। ~ कुकड़ी मारै बकरी मारै हक्क हक्क करि बोलै। → पद २३०-७।

हज—संज्ञा पु० [अ०] मुसलमानों का एक धार्मिक कृत्य जो मक्के में जाकर अदा करना पड़ता है, मक्का तीर्थ की यात्रा। → हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर। → सा० बीन० (५९) ६-१, सब० २३-६, सा० साँच० (२२) ११-१।

हजरत—संज्ञा पु० [अ० हज़रत]महात्मा, महापुरुष। ~ नहीं महादेव नहीं मोहम्मद हरि हजरत तब नाहीं।→ सब० ३१-३।

हजारी—वि० [फ़ा०] बहुमूल्य। ~ भगति हजारी कापड़ा, तामैं मल न समाइ।→सा०साधु०(२८)१३-१।

हजूर—संज्ञा पु०[फा० हुजूर] उपस्थिति, प्रत्यक्ष।~हौं हजूर ठाढ़ो कहौं, धोखे न जन्म गवाँव।→र०२४-७।

हजूर—क्रि० वि० [फ़ा०] सामने, प्रत्यक्ष। ~साँई सौं साँचा भया, रहसी सदा हजूर। → सा० सूरा० (४५) ५-२, सा० पर० (५) २६-२, सा० गुरु० (१) ३५-२, पद ३४६-१।

हजूर—संज्ञा स्त्री० [अ० हुजूर] उप-स्थिति, विद्यमानता। ~ टुक दम करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ।→सब० १८१-४।

हजूरि—क्रि० वि० दे० 'हजूर'।

हटकैं—क्रि० [हि० हटकना] नियन्त्रण करना। ~ अन को त्यागैं मन नहिं हटकैं, पारन करैं सगोती। → पद ३०४-४।

हटवारा—संज्ञा पु० [सं० हट्ट+बार] हाट, बाजार। ~जग हटवारा स्वाद ठग, माया बेसाँ लाइ। → सा० माया (१६) १-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हटलो—क्रि० [हि० हटकना] मना करने पर। ~हटलो न मानेहु मोर हो रमैया राम।→वेलि(६)१-१४।

हटवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] सौदा, क्रय-विक्रय। ~राम नाम की करहुँ बनिजिया, हरि मोरा हटवाई हो। →कहरा (३) ४-२, सब० ६०-३।

हटा—क्रि० [हि० हटकना] रोकना। ~कोई काहुको हटा न मानै,आपुहि आप मुरादी। →पद २९६-४।

हटा—संज्ञा स्त्री० [हि० हटकना से] मना करने से। ~हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सबनि को मीठा →पद ३०४-२।

हटा—संज्ञा पु० [हि० हटना] निषेध। ~कोउ काहु को हटा न माना, झूठा खसम कबीर न जाना। → र० १४-८।

हठिल—वि० [हि० हठ+इल(प्रत्य०)] हठ करने वाली, मानिनी। ~जब हम रहलीं हठिल दिवांनी तब पिय मुखा न बोला। →पद ३४०-३।

हत—वि० [सं०] नष्ट। ~नगर एक तहँ जीव धरम हत, बसै जु पंच किसानां। →सब० १०-३।

हता—क्रि० [सं० आसीत्] था। ~ जा दिन किरतम नाँ हता, नहीं हाट नहिं बाट। → सा० पर० (५) २८-१।

हते—क्रि० [सं० आसीत्] थे। ~ तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा। →सा० पर० (५) २७-२।

हतैं—क्रि० [सं० हत] हनन करता है। ~कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतैं तब दोइ। →सा० साँच० (२२) ६-१।

हत्थ—संज्ञा पु० [सं० हस्त] हाथ। ~सायर माँहि ढँढोलता हीरै पड़ि गया हत्थ। →सा० पर० (५) ३४-२।

हथलेवा—संज्ञा पु० [हि० हाथ+लेना] पाणिग्रहण। ~हथलेवा हौंसैं लिया मुसकल पड़ी पिछाँनि। →सा० भेष० (२४) २४-२।

हद—संज्ञा स्त्री० [अ०] सीमा, ससीम। दे० 'हद्द'। ~दीपक बिनु जोति जोति बिनु दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा। →सब० ११६-६; सा० चिता० (१२) ५०-१।

हदे—संज्ञा स्त्री० [अ०] सीमा, ससीम होने की स्थिति। ~हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुवा निरन्तर वास। →सा० पर० (५) ५-१।

हद्द—संज्ञा पु० [फ़ा०] सीमा। ~हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान। →सा० पर० (५) ११-१।

हनत—क्रि० [सं० √ हन्] बध करते हैं, हत्या करते हैं, काटते हैं। ~ दिन को रोजा रहतु हौ, राति हनत हो गाय। →र० ४९-८।

हनैं—क्रि० [सं० √ हन्] नष्ट कर देती है। ~दुहु कात्याँ बिचि जीव है, द्वौ हनैं संतौ सीख। →सा० उपदे० (३४) ५-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हबीबी—संज्ञा पु० [अ०] प्रिय व्यक्ति, मित्र । ~ नबी **हबीबी** के जो कामा, जहँ लै अमल सो सबै हरामा । → र० ४८-५ ।

हमेंव—संज्ञा पु० [सं० अहम्] अहंकार । ~ तपसी माते तप के भेव, संन्यासी माते करि **हमेंव** । → वसंत (४) १०-३ ।

हर—संज्ञा पु० [सं०] शिव । ~ **हर** हरषित सों कहल भेव, जहाँ हम तहाँ दूसर न केव । → वसंत (४) ११-८ ।

हरखिऐ—क्रि० [सं० हर्ष] प्रसन्न होना । ~ संपै देखि न **हरखिऐ** बिपति देखि नां रोइ । → पद २४५-६ ।

हरखियाँ—क्रि० [सं० हर्ष] प्रसन्न होकर, उमंग में आकर । ~ पद गाए मन **हरखियाँ**, साखी कहैं अनन्द । → सा० क० बि० क०(१८) ४-१ ।

हरत—क्रि० [सं० हरण] हरण करते हुए । ~ **हरत** इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुखि धूलि । → सा० चिता० (१२) ३२-२ ।

हरदम—क्रि० वि० [फ़ा०] निरन्तर ।~ भूला बे अहमक नादाना, तुम **हरदम** रामहिं ना जाना ।→पद २१०-१ ।

हरम—संज्ञा पु० [अ०] अन्तःपुर । ~बीबी बाहर **हरम** महल मैं, बीच मियां का डेरा । →सब० १३४-६ ।

हरहाई—वि० [दे०] नटखट, निरंकुश, दुष्ट । ~ राजदुबारैं यौं फिरै, ज्यौं **हरहाई** गाइ । → सा० चाँण० (१७) ६-२, पद २०६-६ ।

हरांमीं—वि० [अ०] दुष्ट, दोगला । ~पाँच कुटुम्बी महा **हरांमीं** अम्रित मैं बिख घोलै । → पद २१४-५ ।

हराम—वि० [अ०] विमुख । ~कबीर माया पापिनी, हरि सौं करै **हराम** । → सा० माया० (१६) ४-१ ।

हरामा—वि० [अ०] अपवित्र । ~ नबी हबीबी के जो कामा, जहँ लै अमल सो सबै **हरामा** । → र० ४८-५ ।

हरि—संज्ञा पु० [सं०] जीव । ~देखहु लोगो **हरि** की सगाई, माय धरी पूत धिये संग जाई ।→सब० १५१-१ ।

हरि—संज्ञा पु० [सं०] दुःखों का हरण करने वाला, प्रभु । ~ जाके **हरि** सा ठाकुर भाई, सो कत अनत पुकारन जाई । → सब० १६-३ ।

हरि—संज्ञा पु० [सं०] विषयाग्नि । ~ **हरि** उतंग तुम जाति पतंगा; जमघर कियहु जीव को संगा । → र० ६५-६ ।

हरि—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य । ~कहै कबीर **हरि** के गुन गाया, कुन्ती करन कुँवारहिं जाया ।→र० ८१-४ ।

हरिअर—वि० [सं० हरित] हरा-भरा । ~जानै **हरिअर** रूखडा, उस पानीं का नेह ।→सा० निगु० (५५) १-१ ।

हरिजन—संज्ञा पु० [सं०] भक्त ।~है **हरिजन** सौं जगत लरत है ।→पद ३४७-१ ।

हरिया—वि० [सं० हरित] हरा । दे० 'हरिअर' ।~आगे आगे दौ जलैं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीछे हरिया होइ ।→सा० बेली० (५८) २-१ ।

हरी—क्रि० [सं० हरण] हर लिया, हरण किया । ~सुरपति जाय अहीलहिं छरी, सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी । →र० ८१-३ ।

हलका—वि० [सं० लघुक, प्रा० लघुअ] कम वजन का ।~नाँ सो भारी नाँ सो हलका ताकी पारिष लषै न कोई । →पद २८०-४ ।

हलदि—संज्ञा स्त्री० दे० 'हलदी' ।

हलदी—संज्ञा स्त्री० [सं० हरिद्रा] हल्दी । ~सखी सहेली मंगल गावैं, दुख सुख माथे हलदी चढ़ावै ।→ पद ३१२-४, पद २३८-४ ।

हलाये—क्रि० [हि० हिलाना] हिलाना, नाना प्रकार की भंगिमाएँ बनाना । ~देह हलाये भगति न होई; स्वांग धरे नर बहु विधि जोई ।→र० ६७-१ ।

हलाल—वि० [अ०] विधिविहित जबह किया हुआ । ~जोति सरूपी हाथि न आया कहौ हलाल क्यूं कीआ ।→ पद २३०-४, सब० २४-३, पद २१०-३ ।

हलाल—क्रि० [अ०] पशुओं को मुसलमानी शरअ के अनुसार गला रेत कर मारना । ~वै हलाल वै झटका मारैं, आगि दुनौ घर लागी ।→पद ३०४-८, सा० साँच० (२२) ८-१ ।

हलाहल—संज्ञा पु० [सं०] विष । ~ कबीर मूल निकंदिया, कौंन हलाहल खाइ ।→सा० भ्रवि० (२३) ६-२ ।

हलुका—वि० [सं० लघुक] सूक्ष्म, हलका, जो तौल में भारी न हो । दे० 'हलका' । ~रूप अरूप जाय नहिं बोली, हलुका गरुआ जाय न तोली ।→र० ७७-३ ।

हवाल—संज्ञा पु० [अ० अहवाल] हाल; दशा, अवस्था, स्थिति । ~कहहिं कबीर पुकारि के, सभ का इहै हवाल ।→र० ५२-५, सा० विर० (३) २-२, सा० साँच० (२२) ८-२ ।

हव्वा—संज्ञा स्त्री० [अ०] सामी धर्मों के अनुसार मूल पुरुष की पत्नी । ~ कहँ तब आदम कहँ तब हव्वा कहँ तब पीर पैगम्बर हुवा । →सब० ४०-२ ।

हसंत—क्रि० [सं०√हस्] हँसता है । ~ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों त्यों काल हसंत । →सा० काल० (४६) ३०-२ ।

हसंत—क्रि० [सं० √ हस्] हँसते हुए। ~दोष पराया देखि कै, चला हसंत हसंत । →सा० निन्द्या० (५४) २-१ ।

हस्तिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० हस्तिनी] हथिनी । ~हस्तिनि फंदे हस्ती रहई, मृगी के फंदे मृगा परई । → र० ५०-३, चांचर (५) २-७; पद १९३-४ ।

हस्ती—संज्ञा पु० [सं०] हाथी । ~ हस्ती चढ़ि नहिं डोलिए, कूकुर भुसैं जु लाख । →सा० बेसा० (३५) १२-२ ।

हहि—क्रि० [सं० √ अस्] है । ~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीनि लोक जाकैं हहि भारा, सो काहे न करै प्रतिपारा। →सब० १६-४।

हांकै—क्रि० [प्रा० √ हक्क] किसी को बुलाने के लिए जोर से शब्द करना, हँकवा लगाना। ~रोहै मिरिग ससा बन हांकै, पारधी बांन न मेलै। →सब० ४४-५।

हांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० भांड] मिट्टी का बर्तन, हंड़िया। ~काया हांडी काठ की, ना ऊँ चढ़ै बहोरि। → सा० चिता० (१२) ३१-२।

हांम—संज्ञा पु० [सं० अहम्] अहंकार। ~गालिब गगरी गाँउँ बसाया, हांम कांम हंकारी। →सब० १०४-५।

हाकिमा—संज्ञा पु० [अ० हाकिम] शासक। ~जोति सरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा। →पद ३१६-६।

हाट—संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट] बाजार। ~हाट बजारै लावै तारी, काचे सिद्धहिं माया प्यारी। → र० ६६-३।

हाटि—संज्ञा स्त्री० [सं० हट्ट] बाजार में। ~कबीर माया पापिनी, फंद ले बैठी हाटि। →सा० माया (१६) २-१, सा० सूरा० (४५) २१-१।

हाड़—संज्ञा पु० [सं० हड्ड] हड्डी। ~हाड़ गला माटी गली, सिर सांटे व्यौहार। →सा० सूरा० (४५) २८-२; सब० १६५-४, सब० ६-४।

हाड़ि—संज्ञा स्त्री० [स० भांडिका] मिट्टी का एक छोटा पात्र, हँड़िया। दे० 'हांडी'। ~पाहन टाँकि न तोलिए; हाड़ि न कीजै बेह। → सा० संगति० (२६) ५-१।

हाथ झारि—[मुहा०] खाली हाथ। ~कहै कबीर अन्त की बारी, हाथ झारि जैसे चला जुआरी। →सब० ६२-६।

हाथि—संज्ञा पु० [सं० हस्त] हाथ से। ~पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपनैं हाथि। →सा० चिता० (१२) ४३-२।

हाथी—वि० [सं० हस्त] हाथ का सहारा। ~काहे बीहो मेरे साथी; हूँ हाथी करि हेरा। → सब० ८१-१।

हारा—संज्ञा पु० [सं० हार] सोने; चाँदी आदि की माला; जो गले में पहनी जाए। ~चंदन चूर चतुर सम लेपहिं, गरे गजमुकुता हारा हो। →कहरा (३) ६-५।

हारिया—क्रि० [हि० हारना] हार गया; खो बैठा। ~हरत इहां ही हारिया, परति पड़ी मुखि धूलि। → सा० चिता० (१२) ३२-२।

हारी—क्रि० [हिं० हारना] नष्ट कर दिया। ~ झूठा बनिज कियो झूठे सो, पूंजी सबन मिली हारी। → सब० १५६-२।

हालै—अव्य० [अ० हाल] शीघ्र, जल्दी। ~हालै करै निसाने घाऊ, जूझि परे तंह मनमथ राऊ। →र० ८३-५।

हाहू—संज्ञा पु० [दे०] शोरगुल, कोला-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हल । ~अबरन बरन स्यांम नहिं पीत, हाहू जाइ न गावै गीत । → सब० ४३-५, सब० १४०-९ ।

हिंडोलना—संज्ञा पु० [सं० हिन्दोला] झूला । ~ दरिया पार **हिंडोलना** मेल्या कंत मचाइ। →सा० सुन्द० (५२) ५-१, सब० ३४२-१ ।

हिंडोला—संज्ञा पु० [सं० हिन्दोल] भ्रम का झूला । दे० 'हिंडोलना' । → हिंडोला (८) ४ ।

हिचहि—क्रि० [हि०हिचकना] हिचकता है । ~ चलु रे बैकुंठ तुझहि लैं तारउँ, **हिचहि** त प्रेम ताजनैं मारउं । → सब० ३-४ ।

हित—वि० [सं०] हितैषी, भलाई चाहने वाले ।~सोई **हित** बंधु मोहि मन भावै, जात कुमारग मारग लावै ।→ र० ६६-१ ।

हित—संज्ञा पु० [सं०] प्रेम ।~कबीर हद के जीव सौं, **हित** करि मुखाँ न बोलि ।→सा० चिता०(१२)५०-१ ।

हित्त—सज्ञा पु० [सं० हित] हित, भलाई ।~जासों कियहु मिताई, सो धन भया न **हित्त** ।→र० ५६-५ ।

हिम—सज्ञा पु० [सं०] बर्फ । ~पानी ही तैं **हिम** भया, **हिम** ह्वै गया बिलाइ । → सा० पर० (५) १७-१ ।

हियाँहि—संज्ञा पु० दे० 'हिये' ।

हियाली—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय में । दे० 'हियाँहि' । ~कबीर तासु मिलाइ, जासु **हियाली** तू बसै । → सा० साधु० (२८) १०-१ ।

हिये—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय में । ~ जेहि कर सर लागे **हिये**, सोई जानैं पीर । → र० ६८-६; सा० बिर० (३) २६-२ ।

हियेहु की फूटी—[मुहा०] ज्ञान चक्षु का नष्ट हो जाना । ~ सब्दहिं समुझि सुधारत नाहीं, आँधर भए **हियेहु की फूटी** ।→सब० १६१-२ ।

हिरदा—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय । ~ **हिरदा** भीतरि आरसी; मुख देखा नहिं जाइ । → सा० मन० (१३) ८-१, सा० गु० सि० हे० (४३) ६-२ ।

हिरदैं—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय; वह आंतरिक गुहा या केन्द्र जिसमें प्रत्यगात्मा का निवास है । ~ गुरु किरपाल कृपा जब कीन्ही, **हिरदैं** कँवल बिगासा । → सब० १३-३ ।

हिरदैं—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय में । ~ अनिन कथा तनि आचरी, **हिरदै** त्रिभुवन राइ । → सा० पर० (५) २९-२; सा० वेसा० (३५) १८-१ ।

हिरदै—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय । दे० 'हिरदा' । ~ **हिरदै** भीतरि दौं बलै, धुवाँ न परगट होइ । → सा० ग्या० वि० (४) ३-१, सा० निगु० (५२) ७-२ ।

हिरन्य—संज्ञा पु० [सं० हिरण्य] स्वर्ण, सोना । लोह **हिरन्य** होय धौं कैसे, जो नहिं पारस परसै । → पद २७२-५ ।

हिराँनौं—क्रि० दे० 'हिराइ' ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिराइ—क्रि० [हि० हरण] खो गया। ~हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर **हिराइ**। →सा० लाँबि० (७) ३-१, पद २३४-१।

हिलोरा—संज्ञा पु० [सं० हिल्लोल] लहर, मौज। ~पानी माँहि तलफि गी भूभुरि, धूरि **हिलोरा** देई। → पद ३२३-३।

हींगलू—संज्ञा पु० [सं० हिंगुल] पारा, गंधक, पोटाश और पानी के योग से बनाया गया लाल रंग का पदार्थ जिससे स्त्रियाँ शृंगार करती हैं। ~बाहरि ढोल्या **हींगलू**, भीतरि भरी भँगारि। →सा० भेष० (२४) ७-२।

हींडत—क्रि० [दे०] खोजते हुए। ~झ झा अरुझि सरुझि कत जान **हींडत** ढूढत जाहिं परान। →ज्ञानचौं० (१) १६।

हीन—वि० [सं०] दुर्बल। ~जब लगि **हीन** पड़ै नहिं बांजीं, तब लगि भजि मन सारंगपांनी। →पद २०२-६।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] सर्वोत्तम रत्न, वज्र। ~अंमृत बरिसै **हीरा** निपजै, घंटा पड़ै टकसाल। →सा० पर० (५) ४७-१।

हीला—क्रि० [हि० हिलना = प्रवेश करना] प्रवेश किया। ~गण्डक सालिगराम न सीला, मछ कछ होय जल नहीं **हीला**। →र० ७५-८।

हुकुम—संज्ञा पु० [अ० हुकुम] आदेश, आज्ञा। ~बकरी मुरगा किन फरमाया, किसके **हुकुम** तुम छुरी चलाया। →र० ४६-५।

हुजरे—संज्ञा पु० [अ० हुजूर] मस्जिद के निकट की कोठरी। ~रोजा बंग निमाज का कीजै, **हुजरे** भीतर पैठि मुआ। →पद २१०-६।

हुरमति—संज्ञा स्त्री० [फा०] सम्मान, प्रतिष्ठा, इज्जत। ~कहै कबीर बाप राँम राया, **हुरमति** राखहु मेरी। →सब० ८१-१०।

हुलराए—क्रि० [हि०] प्रसन्न करना। ~तौ का परोसनि कैं **हुलराए**। → सब० १३०-२।

हुसियारा—वि० [फा० होशियार] सावधान, सचेत। ~कहा हमार गाँठि दृढ़ बांधे, निसि बासर रहियो **हुसियारा**। →पद ३२४-६।

हुसियारा—वि० [फा० होशियार] चतुर, बुद्धिमान। ~सकल कबीरा बोलै बीरा, अजहूँ हो **हुसियारा**। →सब० ६४-१६।

हूँ—भाव० [सं० अहं] मेरापन, अहंभाव। ~तूँ तूँ करता तू भया, मुझ मैं रही न **हूँ**। →सा० सुमि० (२) ६-१।

हूलसै—क्रि० [सं० उल्लास] उल्लसित होता है। ~ज्योतिहि देखि पतंग **हूलसै**, पसू न पेखै आगी। →पद २२८-४।

हूवा—क्रि० [सं० भू = होना] हो गया। ~गूँगा **हूवा** बावला, बहरा **हूवा** कान। →सा० गुरु० (१) १०-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हेत[१]—संज्ञा पु० [सं० हित] प्रेम।

हेत[२]—अव्य० [सं० हित] लिए। ~ सूरा तबही परषिये, लड़ै धनी कै हेत। →सा० सूरा० (४५) ६-१।

हेत—संज्ञा पु० [सं०) प्रेम, स्नेह। ~दुइ मिलि एकै होय रहा, (मैं) काहि लगावौं हेत। →र० ७१-८, सा० चित्त०क० (४२) १-१; पद ३३३-४, सब० ५६-४, सा० चाँण० (१७) ६-१। सब० ८३-४।

हेतु—संज्ञा पु० दे० 'हेत'।

हेरत हेरत—क्रियावाची अव्य० [हि० हेरना] खोजते-खोजते, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते। ~ हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ। → सा० लांबि० (७) ३-१।

हेरा—क्रि० [सं० आखेट] ढूंढ़ा, खोजा। ~तीरथि मूरति रांम निवासी, दुहु महिं किनहु न हेरा। →सब० २३-१०।

हेरा—क्रि० [सं० आखेट] हेरना, खोजना, ढूंढ़ना। →सा० गु० सि० हे० (४३)।

हेरिन्हि—क्रि० [हि० हेरना] खोजा, देखा। ~जतइत के धन हेरिन्हि ललचिन, कोदइत के मन दौरा हो। →कहरा (३) २-१२।

हेरिया—क्रि० [सं० आखेट से] खोजा, ढूंढ़ा। दे० 'हेरा'। ~कबीर सब जग हेरिया, मंदल कंधि चढ़ाइ। → सा० बिर्क० (३७) १०-१।

है—संज्ञा पु० [सं० हय] घोड़ा। ~ है गै वाहन सघन घन, छत्र धुजा फहराइ। →सा० साधुम० (३०) ४-१।

हैबर—संज्ञा पु० [सं० हयवर] श्रेष्ठ घोड़ा। ~हैबर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा गाड़। →सा० चिता० (१२) ११-२।

होता—क्रि० [सं०√भू] था। ~ कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि। →सा० मन० (१३) २२-१।

होनिहार—वि० [हि० होनहार] होने वाला, घटित। ~बारहु ते पुनि बृद्ध हुवा जब, होनिहार सो होया। →सब० ३१६-५।

होमै—क्रि० [हि०] हवन कर दिया; जला दिया। ~ब्रह्महि पकरि अगिनि महँ होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजा। →सब० १४४-३।

होयके—क्रि० [हि० होकर] होकर, बनकर। ~पाहन होयके सब गये बिनु भितियन को चित्र। →र० ५६-४।

होरी—संज्ञा स्त्री० [हि० होली] फाग ~सतगुरु संग होरी खेलिए। →पद ३०६-१।

हौं—सर्व० [सं० अहम्] मैं। ~नाँ हौं देखौं और कूं, ना तुझ देखन देउँ। →सा० निह० पति० (११) २-२।

हौंस—संज्ञा स्त्री० [अ० हवस] हौसला, उत्साह, उमंग। ~क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि। → सा० गुरु० (१) ४-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हौंस—संज्ञा स्त्री० [अ० हवस] प्रबल इच्छा, लालसा। ~सूधा जल पीवै नहीं, खोदि पियन की **हौंस**। → र० ३३-६।

हौंसैं—क्रि० वि० [अ० हवस] उल्लास-पूर्वक। ~हथलेवा **हौंसैं** लिया, मुसकल पड़ी पिछाँनि। →सा० भेष० (२४) २४-२।

हौवा—संज्ञा स्त्री० [अ०] आदम के साथ उत्पन्न की गई स्त्री। ~आदम आदि सुद्धि नहिं पाई, मामा **हौवा** कहाँ ते आई। →र० ४०-१।

ह्रिदा—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय। ~कदली पुहुप दीप परकास, **ह्रिदा** पंकज महि लिया निवास। → सब० ४३-६।

ह्रिदै—संज्ञा पु० [सं० हृदय] हृदय में। ~कहै कबीर जांनैगा सोइ, **ह्रिदै** रांम मुखि रांमैं होइ। →सब० ७४-५, पद २५४-१।

ह्वैला—क्रि० [दे०] हो जाता है। ~चंदन कै ढिग बिरिख जु भैला; बिगरि बिगरि सो चंदन **ह्वैला**। →सब० ६६-३, ४, ५, ६।

ह्वैसी—क्रि० [सं०√भू] हो जाएगी। ~**ह्वैसी** आटा लोन ज्यौं; सोना सवां सरीर।→सा० चिता० (१२) ४८-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पारिभाषिक एवं प्रतीकात्मक शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ

अंकुर—संज्ञा पु० [सं०] वासना। ~गत फल फूल तत तरु पल्लव, **अंकुर** बीज नसाँनाँ। →सब० १५८-२।

अंकुर—संज्ञा पु० [सं०] अहंकार। ~**अंकुर** बीज नसाय कै, भए बिदेही थान। →र० ३५-८।

अंगार—संज्ञा पु० [सं०] जीवन तत्त्व। ~धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए **अंगार**। →सा० काल (४६) २१-१।

अंगारैं—संज्ञा पु० [सं० अंगार] दहकता कोयला, ज्ञान। ~चकवा बैसि **अंगारैं** निगलै समद अकासा धावा। →पद ३३१-८।

अंड—संज्ञा पु० [सं० अण्ड] शरीर। ~आस ओस **अंड** मंह रहई, अगनित **अंड** न कोई कहई। →र० ७४-३।

अंधरा—वि० [सं० अंध] अंधा, अन्तर्दृष्टिसंपन्न। ~तीनि लोक ब्रह्मण्ड खण्ड मैं, **अँधरा** देख तमासा। →सब० २८-६।

अँधेरे—वि० [सं० अंध] अंधा, मन। ~इक **अँधेरे** जग खाइया, सबका भया बिनास। →र० ५३-७।

अंधा—वि० [सं०] नेत्रविहीन, ज्ञानहीन, अज्ञानी। ~पैंड़े मोती बीखरे, **अंधा** निकसा आइ। →सा० अपा० (४८) ४-१, पद ३४३-२।

अंधै—संज्ञा पु० दे० 'अंधा'।

अंबर—संज्ञा पु० [सं० अम्बर] आकाश, ब्रह्मरंध्र। ~उन मोतियन मैं नीर पोयौं, पवन **अंबर** धोइ। →सब० ४५-४।

अंबु—संज्ञा पु० [सं०] जलविन्दु,तन्मात्रा, परमाणु आदि। ~**अंबु** कि रासि समुद्र कि खाँई, रवि ससि कोटि तैंतिसो भाई। →र० ४१-१।

अंमर—संज्ञा पु० [सं० अम्बर] गगन, गुफा। ~त्रिकुटि कुंडल मघे मंदर बाजै, औघट **अंमर** भीजै। →सब० १४४-६।

अंम्रित—संज्ञा पु० [सं० अमृत] सहस्रार पद्म के मूल में योनि नामक त्रिकोणाकार शक्ति का केन्द्र है, वहीं चन्द्रमा का स्थान है। वहीं से अमृत झरता है। इसी को सोमरस कहते हैं। ~गगन गरजि **अंम्रित** चुवै, कदली कँवल प्रकास। →सा० पर० (५) ४०-१, पद ३२-१३।

अकास—संज्ञा पु० [सं० आकाश] आकाश, ऊर्ध्व भाग, ब्रह्मांड। ~महि **अकास** दुइ गाड़ खँदाया, चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया। →र० २८-२।

अकासहिं—संज्ञा पु० [सं० आकाश] ब्रह्मरंध्र। दे० 'अंबर'। ~उलटी गंग मेर कूँ चली, धरती उलटि **अकासहिं** मिली। →सब० ४७-७, सब० ३२-१२, सब० १५२-२।

अकासा—संज्ञा पु० [सं० आकाश] निर्मल आत्मा। ~चकवा बैसि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंगारैं निगलै समद **अकासा** धावा। →पद ३३१-८।

अकासि—संज्ञा पु० [सं० आकाश] शून्य ब्रह्मरंध्र। ~ऊँचा बिरिख **अकासि** फल, पंखी मूए झूरि। →सा० सूरा० (४५) १७-१।

अकासि—संज्ञा पु० [सं० आकाश] शून्य-आकाश, ब्रह्मरन्ध्र। ~कबीर मन पंखी भया, उड़िकै चढ़ा **अकासि**। →सा० मन (१३) २५-१।

अकासैं—संज्ञा पु० दे० 'अकासहिं'।

अगम—वि० [सं० अगम्य] जहाँ तक किसी की पहुँच नहीं है,अर्थात् निर्गुण ब्रह्म। ~कबीर देखा इक **अगम**, महिमा कही न जाय। →सा० पर० (५) ३८-१।

अगम्म—वि० [सं० अगम्य] जहाँ प्रवेश नहीं हो सकता, पहुँच के बाहर, निर्गुण। ~तहिया होत गुरू नहिं चेला, गम्म **अगम्म** न पंथ दुहेला। →र० ७-५।

अगिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि, ज्ञानाग्नि। ~चूल्है **अगिनि** बुताइ करि चरखा दियौ दिढ़ाइ। →पद २३५-८।

अगिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] कुंडलिनी। ~ब्रह्महि पकरि **अगिनि** महँ होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजा। →सब० १४४-३।

अगुआ—संज्ञा पु० [सं० अग्र+हि० उआ (प्रत्य०)] अग्रणी, उपदेशक गुरुआ लोग। ~उनई बदरिया परिगी संझा, **अगुआ** भूले बनखंड मंझा। →र० १५-१।

अजनी—संज्ञा स्त्री० वि० [सं० अ+ √जन्+ई] जो कभी पैदा नहीं हुई है, प्रकृति या माया। ~बाँधे अष्ट कष्ट नौ सूता, जम बाँधे **अजनी** के पूता। →र० ६-१।

अजपा—संज्ञा पु० [अ+हि० जपना] सहज भाव से जप, मुख से बिना उच्चारण किया हुआ जप। प्रत्येक व्यक्ति चौबीस घंटे में २१६०० श्वास भीतर लेता है और २१६०० उच्छ्वास बाहर फेंकता है। योगियों का विश्वास है कि श्वास-प्रश्वास में जीव स्वयं सदा 'सोऽहं' अथवा 'हंसः' ध्वनित करता रहता है। यदि हम श्वास-प्रश्वास के साथ बिना उच्चार किए हुए, बिना बोले हुए अवधानपूर्वक 'सोऽहं' अथवा 'हंसः' का जप करते रहें तो वह अजपा जप कहलाता है। ~सुरति समानी निरति मैं **अजपा** माँहै जाप। → सा० पर० (५) २३-१, पद २४६-२।

अदीठ—वि० [सं० अ+दृष्ट] अदृष्ट, परमात्मा। ~इस मन कौं बिसमल करौं, दीठा करौं **अदीठ**। →सा० मन० (१३) ६-१।

अधर—संज्ञा पु० [सं०] वह, जिसका आधार न हो, शून्य, ब्रह्मरन्ध्र। दे० 'अकासि'। ~मनुवाँ तौ **अधर** बसा, वहुतक झीनाँ सोइ। → सा० मन० (१३) १४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० आधार] लकड़ी की टेक, लोभ या काम। ~प्रगट सो कंथा **गुप्ताधारी**, तामें मूल सजीवन भारी। →सब० १२५-३।

अनंत—वि० [सं०] परम ज्योति, प्रभु, परमात्मा, ब्रह्म। ~कबीर तेज **अनंत** का, मानो सूरज सेनि। → सा० पर० (५) १-१।

अनबेधा हीरा—वि० [सं० अनबिद्ध हीरक] अन्तरात्मा, जिसमें कोई छिद्र या दोष नहीं है और जो सदा प्रकाशमान है। ~संसै सावज बसै सरीरा, ते खायो **अनबेधा हीरा**। →र० १८-४।

अनल—संज्ञा पु० [सं०] अग्नि, विषयाग्नि। ~**अनल** जोति डाहै एक संगा, नैन नेह जस जरै पतंगा। → र० २३-३।

अनूप—वि० [सं० अनुपम] अनुपम, परम-तत्व। ~कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि **अनूप**। →सा० पर० (५) २४-२।

अरध उरध—यौ० [सं० अधः ऊर्ध्व] नीचे-ऊपर, इड़ा—पिंगला नाड़ियाँ। ये सुषुम्ना के ऊपर एक दूसरे के ऊपर से होती हुई आज्ञा चक्र में सुषुम्ना से मिलती हैं। ~**अरध उरध** की गंगा यमुना, मूल कँवल कौ घाट। →पद ३४२-६।

अर्ध—वि० [सं० अधर] नीचे, मूलाधार चक्र। ~**अर्ध** छोड़ि उर्ध मन लावै, आपा मेटि कै प्रेम बढ़ावै। →ज्ञान चौं० (१) ४२।

अलख—वि० [सं० अलक्ष्य] अलक्ष्य, माया। ~**अलख** जो लागी पलक में, पलकहि मँह डसि जाय। → र० २६-७।

अलख—वि० [सं० अलक्ष्य] अलक्ष्य, जो दिखाई न दे, निराकार, ईश्वर। ~चाँद बिहूँना चांदिना, **अलख** निरंजन राइ। → सा० पर० (५) १५-२।

अलेख—वि० [सं० अलक्ष्य] अलक्ष्य, निराकार ब्रह्म। ~जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया **अलेख**। →सा० पर० (५) १२-२।

अवधू—संज्ञा पु० [सं० अवधूत] वह साधक जिसने अपनी सारी निम्न प्रवृत्तियों और संस्कारों को झकझोर कर बाहर फेंक दिया है। नाथ सम्प्रदाय के साधक अपने को योगी अथवा अवधूत कहते थे। कबीर ने प्रायः अवधू या योगी सम्बोधन द्वारा उन पर व्यंग्य किया है। ~**अवधू** सो जोगी गुर मेरा। →सब० ३७-१।

अषिर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षर, वासना। ~कोइ एक **अषिर** मन बसा, दह में परी बहोरि। →सा० मन० (१३) २४-२।

असमान—संज्ञा पु० [फ़ा० आसमान] आकाश, ब्रह्मरंध्र, शून्यचक्र। ~ ऊचाँ चढ़ि **असमान** कूँ, मेर ऊलंघे ऊड़ि। →सा० उपज० (५०) ४-१;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० पर० (५) २१-१; सब० १८१-७ ।

अहरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० आ + धरण] निहाई, जिस पर रखकर कुछ पीटा, छीला या सुडौल किया जाता है, शरीर। ~अहरनि रहा ठमूकड़ा, जब उठि चला लुहार। →सा० काल० (४६) २१-२ ।

अहेड़ी—संज्ञा पु० [हि० अहेर + ई०] शिकारी, गुरु।~अहेड़ी दौ लाइया मिरग पुकारे रोइ । → सा० ग्या० बि० (४) ८-१; र० १६-४ ।

अहेरी—संज्ञा पु० दे० 'अहेड़ी' ।

आ

आँगनु—संज्ञा पु० [सं० अङ्गण] आँगन, शरीर। ~बड़े भोर उठि आँगनु बाढ़, बड़े खांच लै गोबर काढु। → वसंत (४) ६-२ ।

आकासे—संज्ञा पु० [सं० आकाशे] आकाश में; शून्य-मण्डल में। ~ आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि। → सा० पर० (५) ४५-१ ।

आकासे—संज्ञा पु० [सं० आकाश] गगन मण्डल, सहस्रार । ~सोलह मंझै पवन झकोरै, आकासे फल धरिया । →सब० १२-६ ।

आगि—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] विरह की अग्नि । ~आगि जु लागी नीर महिं, कांदौं जरिया झारि । →सा० ग्या० बि० (४) ५-१ ।

आसन—संज्ञा पु० [सं०] योग में चौरासी प्रकार की शारीरिक मुद्रायें या अभ्यास । ~ममता मेटि सांच करि मुद्रा; आसन सील दिढ़ कीजै । →सब० ३३-५ ।

ई

ईंट—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टका] हाड़-माँस । ~कबीर मन्दिर ढहि पड़ा, ईंट भई सैंवार । →सा० चिता० (१२) १७-१ ।

उ

उंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उंदुर से] चुहिया, रागात्मिका वृत्ति । ~उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछुआ संख बजावै । → पद ३३१-६ ।

उतपात—संज्ञा पु० [सं० उत्पात] शरीर। ~पानी पौन संजोय कै, रचिया यह उतपात। →र० ३६-५ ।

उदधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र, आनन्द-सागर। ~उदधि माँह ते निकरि, छांछरी, चौड़े ग्रीह करावै । →पद १६६-४ ।

उदधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र, ज्ञान । ~उदधि भूप ते तरुवर डाहै, मच्छ अहेरा खेलै । →पद १६६-८ ।

उनमन—संज्ञा पु० [सं० उन्मन] वह मन, उच्चस्तरीय मन; भागवती चेतना । ~मन **उनमन** उस अंड ज्यों, अनल अकासाँ जोइ । →सा० मव० (१३) ६-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनमनि—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्मनि] प्राण के निरुद्ध हो जाने पर मन स्वतः निरुद्ध हो जाता है। मन के निरुद्ध हो जाने पर वासना भी प्रणष्ट हो जाती है और तब मोक्ष की स्थिति आती है। इसी स्थिति को तुरीय, उन्मनी, मनोन्मनी आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। भागवती चेतना, तुरीयावस्था, सहज अवस्था। ~ पवनपति **उनमनि** रहनु खरा। → सब० १७१-१, सब० ३५-२, सा० गुरु० (१) ६-१।

उन्मनी—संज्ञा स्त्री० दे० 'उनमन्न'।

उनमन्न—संज्ञा पु० [सं+उद+मन] उन्मनावस्था, यह वह अवस्था है, जहाँ चंचल संकल्प-विकल्पात्मक मन शान्त हो जाता है और इससे एक उच्चतर चेतना का आविर्भाव होता है। तन्त्रों में उन्मना अथवा उन्मनी अवस्था को मन से ऊपर की एक अवस्था कहा गया है, भागवती चेतना। ~ मन लागा **उनमन्न** सौं, गगन पहूँचा जाइ। →सा० पर० (५) १५-१, सा० पर० (५) १६-१।

उलटी गंग—संज्ञा स्त्री० [हिं०+सं०] ब्रह्माण्ड में चढ़ाया गया श्वास, उदान वायु। ~**उलटी गंग** समुद्रहिं सोखै, ससिहर सूर गरासै।→सब० ३२-३।

ऊ

ऊपर—क्रि० वि० [हिं०] आकाश। ~तर ऊपर धै चाँपिहि, जस कोल्हु कोटि पचास। →र० १७-६।

ऊरध—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊपर, सहस्रार। ~ध धा अर्ध माहिं अँधियारी, अरध छांड़ि **ऊरध** मन तारी। →ज्ञान चौं० (१) ४१।

औ

औंधा घड़ा—संज्ञा पु० [सं० अव + मूर्द्धा+घट] विषयासक्त चित्त।~ **औंधा घड़ा** न जल महिं डूबै, सूधा सूभर भरिया।→सब० ३२-७।

क

कंकर—संज्ञा पु० [सं० कर्कर] कंकड़, सांसारिक विषय। ~पाइं पदारथ पेलि करि, **कंकर** लीन्हा हाथि। → सा० अपा० (४८) १-१।

कंत—संज्ञा पु० [सं० कांत] पति, प्रभु; ईश्वर, स्वामी। ~कबीर सुन्दरि यौं कहै, सुनियो **कंत** सुजांन। → सा० सुन्द० (५२) १-१।

कंता—संज्ञा पु० [सं० कंत] साधक।~ मांस बिहूँना घरि मति आवै हो **कंता**। →सब० १२१-२।

कंथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदड़ी; त्याग।~प्रगट सो **कंथा** गुप्ताधारी, तामें मूल सजीवन भारी। →सब० १२५-३।

कंद—संज्ञा पु० [सं०] सामान्यतः किसी भी गांठदार पदार्थ को कन्द कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसे जिमीकन्द, शकरकन्द आदि। गुदा और लिंग में गाँठदार स्थिति होती है। उसे भी कन्द कहते हैं। मूलकन्द से उसमें स्थिरता प्राप्त होती है। ~जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थिर होइ कंद। →पद ३२१-७।

कँदमूल—संज्ञा पु० [सं०] यौगिक क्रियाएँ। ~कबीर जोगी बनि बसा, खनि खाया **कँदमूल**।~सा० सजी० (४७) २-१।

कँवल[१]—संज्ञा पु० [सं० कमल] कमल के समान प्राणशक्ति का चक्र। ~ गगन गरजि अंम्रित चुवै, कदली **कँवल** प्रकास। →सा० पर० (५) ४०-१।

कँवल[२]—संज्ञा पु० [सं० कमल] हृदयस्थ अन्तरात्मा। छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें अध्याय के प्रथम खण्ड में भी यह बताया गया है कि इस शरीररूपी ब्रह्मपुर में एक ऐसा वेश्म (निलय) है जो कि सूक्ष्म पुण्डरीक अर्थात् कमल के समान है। वहीं परमात्मा का वास होता है। इसे ही कठोपनिषद् में प्रत्यगात्मा कहा गया है और अरविन्द घोष ने **Psychic Being** कहा है। ~ **कँवल** जु फूला फूल बिनु, को निरखै निज दास। →सा० पर० (५) ५-२, ६-२, ७-१।

कँवल[३]—संज्ञा पु० [सं० कमल] सहस्रार चक्र।~**कँवल** कुआँ मैं प्रेम रस, पीवैं बारंवार। →सा० लै०(१०)२-२।

कंवल[४]—संज्ञा पु० [सं० कमल] प्रभु, ईश्वर। ~चलि चलि रे भँवरा कंवल पास। →सब० १०६-१।

कँवल[५]—संज्ञा पु० [स० कमल] हृत्कमल। ~ मन थिर होइ त **कँवल** प्रकासै, कँवला माँहि निरंजन बासै। →सब० ५४-५।

कउवा—संज्ञा पु० [सं० काक] तृष्णा। ~धौल मन्दलिया बैल रबाबी **कउवा** ताल बजावै। →पद ३३१-३।

कछुवा—संज्ञा पु० [सं० कच्छप] विषयासक्ति। ~उंदरी बपुरी मंगल गावै **कछुवा** संख बजावै। →पद ३३१-६।

कठवत—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ + सं० वृत्त, प्रा० वट्ट] संसार। ~भवसागर एक **कठवत** कीन्हा, तामें माँड़ी बिरलै जाना। →सब० १२७-४।

कदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुषुम्ना।~ **कदली** पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मैं लिया निवास। →सब० १४०-११।

कदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला, मेरुदण्ड। ~**कदली** पुहुप दीप परकास, ह्रिदा पंकज महि लिया निवास। → सब० ४३-६, सा० पर० (५) ४०-१।

कनक कलस—संज्ञा पु० [सं०] सहस्रार। ~एक बिरष भीतरि नदी चाली, **कनक कलस** समाइ। →सब० ४५-७।

कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया। ~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिता के संगहि भई बावरी, **कन्या** रहलि कुँवारी । →पद २९०-२ ।

कपूर—संज्ञा पु० [सं० कर्पूर] राम-भक्ति । ~ छांड़ि **कपूर** गांठि बिख बांधा, मूल हुवा नहिं लाहा । → सब० १०४-७ ।

कमल—संज्ञा पु० [सं०] सहस्त्रार । दे० 'कनक-कलस' । ~ षट चक्र बेधि **कमल** बेधि, जाय उजियारो कीन्हा । →सब० ६५-५ ।

कमल—संज्ञा पु० [सं०] हृदय । ~ सूखे ताल पुरइन जल छाँड़े, **कमल** गए कुम्हिलाय । →पद ३२२-३ ।

करगी—संज्ञा स्त्री० [हि० कर+गहना] निकट समीप, मृत्यु का बंधन । ~ राही लै पिपराही बही, **करगी** आवत काहु न कही । →र० १०-१ ।

करिगह—संज्ञा पु० [फ़ा० कारगह] करघा, शरीर । ~ऊपर नचनियाँ करै कोड़, **करिगह** में दुइ चलै गोड़ । →वसंत (४) ३-५ ।

कलस—संज्ञा पु० [सं० कलश] सहस्त्रार । दे० 'कँवल[१]' । ~एक विरष भीतरि नदी चाली, कनक **कलस** समाइ । →सब० ४५-७ ।

कलाल—संज्ञा पु० [सं० कल्यपाल] कलवार, गुरु । ~कबीर पीवन दुलभ है, माँगै सीस **कलाल** । →सा० रस० (६) २-२ ।

कली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना खिला फूल, वासना । ~तहिया होत **कली** नहिं फूला, तहिया होत गर्भ नहिं मूला । →र० ७-२ ।

कसाई—संज्ञा पु० [अ०] स्वार्थी गुरुआ लोग ।~विषय मोह के फंद छोड़ाई, तहँई जाय जँह काट **कसाई** । →र० १७-४ ।

कहरा—संज्ञा पु० [हि० कहार] यह एक प्रकार का गीत है, जिसे कहार हुड़क बजाकर गाते हैं, साथ में नाचते भी हैं । इसे 'कहरवा' भी कहते हैं । इसके ताल में आठ मात्राएँ होती हैं—धा गे न ति, न क धि न । इसे कभी-कभी दादरा में भी गाते हैं । →कहरा (३) ।

कांदौ—संज्ञा पु० [सं० कर्दम] कीचड़, मनोविकार । ~आगि जु लागी नीर महिं, **कांदौ** जरिया झारि । →सा० ज्ञान० वि० (४) ५-१ ।

काइथ—संज्ञा पु० [सं० कायस्थ] पटवारी, भोग का हिसाब रखने वाले कर्म । ~गाउं कु ठाकुर खेत कु नेपै, **काइथ** खरच न पारै । → सब० १०-५ ।

काई—संज्ञा स्त्री० [सं० कावार] मैल, विषय-वासना । ~जब दरपन लागै **काई**, तब दरसन किया न जाई । →पद ३३६-८ ।

काग—संज्ञा पु० [सं० काक] कौआ, अविवेक । ~ **काग** लंगर फांदिया बटेरैं बाज जीता । → पद ३४३-४ ।

काग दुकाग—यौ० [हिं०] छोटे-बड़े कौए, निम्न प्रवृत्तियाँ । ~**काग दुकाग** कारकुन आगे, बैल करैं पटवारी । →पद ३००-७ ।

कागा—संज्ञा पु० [सं० काक] अवि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेकी लोग । ~सकल ब्रह्म मँह हंस कबीरा, **कागा** चोंच पसारा। → सब० ६४-३ ।

कागा—संज्ञा पु० [सं० काक] मलिन चित्त । ~कागा कापड़ धोवन लागे, बगुला क्रीपहिं दांता । →सब० १५५-४ ।

काजल—संज्ञा पु० [सं० कज्जल] कालिमा, विषय-वासना, सांसारिक आसक्ति । ~कबीर रेख सिंदूर की, **काजल** दिया न जाइ । →सा० निह० प० (११) ४-१ ।

काट—क्रि० [हि० काटना] अनात्म पदार्थों की उपासना का उपदेश ।~ विषय मोह के फन्द छोड़ाई, तहँई जाय जँह काट कसाई ।→र० १७-४ ।

कापड़—संज्ञा पु० [सं० कर्पट] कपड़ा, शरीर। ~कागा **कापड़** धोवन लागे बगुला क्रीपहिं दांता । →सब० १५५-४।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया। दे० 'कामिनी'। ~अवधू **कामधेनु** गहि बाँधी रे। →सब० २७-१।

कामिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कामिनी] माया। दे० 'कामधेनु'। ~नउ घर देखि जु **कामिनि** भूली, बस्तु अनूपु न पाई। →सब० ११-७।

कारा—वि० [हि० काला] काला, अज्ञान। ~वहि जोगिया के उलटा ज्ञाना, **कारा** चोला नाहिं मियाना। →सब० १२५-२।

कालिमाँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाप। ~ कै लै दूनीं **कालिमाँ**, भावै सौं मन साबन लाइ। →सा० चित्त० क० (४२) ३-२।

किसानां—संज्ञा पु० [सं० कृषाण] यम-निग्रह। ~सातौ बिरही मेरे नीपजै, पंचूं मोर **किसानां**।→सब० १७-४।

किसानां—संज्ञा पु० [सं० कृषाण] इंद्रिय। ~नगर एक तहँ जीव धरम हत, बसै जु पंच **किसानां**।→ सब० १०-३, १०।

कीर—संज्ञा पु० [सं०] तोता, बद्ध-जीव। ~बड़ी निसानी नाँव राँम कौ, चढ़ि गयौ **कीर** कबीरा। → पद २१७-८।

कुंजर—संज्ञा पु० [सं०] हाथी, ज्ञानी। ~अचरज एक देखल संसारा, सोनहा खेदे **कुंजर** असवारा। → सब० ६२-३।

कुंभ—संज्ञा पु० [सं०] घट, शरीर। ~जल में **कुंभ कुंभ** में जल है बाहरि भीतरि पानीं। फूटा **कुंभ** जल जलहि समांनां यह तत कथौ गियानी।→ सब० ६१-५; ६।

कुंभ—संज्ञा पु० [सं०] अन्तःकरण। ~**कुंभ** लिए ठाढ़ी पनिहारी, गुन बिन नीर भरै कैसे नारी। →पद ३११-४।

कुंभरा—संज्ञा पु० [सं० कुम्भकार] मन।~अटपट **कुंभरा** करै कुंभरैया, चमरा गाँव न बांचै हो। →कहरा (३) २-२।

कुंभरा—संज्ञा पु० दे० 'कुम्भरा'।

कुंभरैया—संज्ञा पु० [सं० कुम्भ + हि० रैया] बर्तन, आशा। ~अटपट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुंभरा करँ **कुंभरैया,** चमरा गाँव न बाँचै हो। →कहरा (३) २-२।

कुआँ—संज्ञा पु० [सं० कूप] सहस्रदल कमल। ~आकासे मुखि औंधा **कुआँ,** पाताले पनिहारि। →सा० पर० (५) ४५-१।

कुबुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुब्जा] कुबड़ा, प्रकृति। ~कुबुजा पुरुष गले एक लागा, पूजि न मन की सरधा। →सब० १५७-७।

कुम्भरा—संज्ञा पु० [सं० कुम्भकार] ईश्वर। ~**कुम्भरा** एक कमाई माटी बहु विधि बानीं लाई। →पद २१६-३।

कुवाँ—संज्ञा पु० [सं० कूप] प्राणमय कोश। ~एकै **कुवाँ** पाँच पनिहारी एकै लेजु भरैं नी नारी। →सब० ५७-३।

कूकुर—संज्ञा पु० [सं० कुक्कुर] कुत्ता, अज्ञ जीव।~भूँकि भूँकि **कूकुर** मरि गयऊ,काज न एक सियार से भयऊ। →र० १२-६।

कूड़े—संज्ञा पु० [हि० कूडा] घास, पतवार, निकम्मा, अज्ञानी। ~ कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवनहार। →सा० चिता० (१२) ६२-१।

कूता—संज्ञा पु० [दे०] विषय भोग की बाह्य प्रवृत्ति। ~जल की मछरी तरवरि ब्याई, **कूता** की लै गई बिलाई। →सब० ४८-४।

कूलि—संज्ञा पु० [सं० कूल] किनारा, तट, ब्रह्म, प्रभु, ईश्वर।~पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस **कूलि**। →सा० पर० (५) १८-२।

केवट—संज्ञा पु० [सं० केवर्त] मल्लाह, यमराज।~लीन्ह बोलाय बात नहि पूछै, **केवट** गरभ ते न बोलैं हो। →कहरा (३) १-१६।

केवट—संज्ञा पु० [सं० केवर्त] केवट, सद्‌गुरु। ~मच्छ न मरै **केवट** रहै तीर। →सब० १६७-६।

केहरि—संज्ञा पु० [सं० केसरी] सिंह, ज्ञानी। ~मूस बिलाई कैसन हेतू, जंबुक करै **केहरि** सों खेतू। →सब० ६२-२।

कोट—संज्ञा पु० [सं०] कोष्ठ, शरीर। ~माटिक **कोट** पषानक ताला; सोई बन सोई रखवाला। →र० १२-१।

कोट—संज्ञा पु० [सं०] दुर्ग, महल; शरीर। दे० 'कोठरी'। ~गोबर **कोट** उचाए हो रमैया राम। → बेलि (६) २-७।

कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कोठा+ड़ी (री) अल्पा० प्रत्य०] मकान, शरीर। दे० 'कोट'। ~षट चक्र की कीन्ह **कोठरी,** बस्तु अनूपु बिच पाई। →सब० ११-३।

कोदइत—संज्ञा पु० [दे०] कोदौं पीसने की चक्की, लौकिक सुख। ~जतइत के धन हेरिन्हि ललचिन, **कोदइत** के मन दौरा हो। →कहरा(३) २-१२।

कोरिया—संज्ञा पु० [हि०] कोरी नामक जाति, जीव। नित उठि **कोरिया** पेट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरतु है; छिपिया आंगन नाचै हो। →कहरा (३) २-३।

कोरी—संज्ञा पु० [सं० कोल] हिन्दुओं में कपड़ा बुनने वाली एक जाति। कर्त्ता, बुननेवाला, ईश्वर। ~कहहिं कबीर करम सो जोरी, सूत-कुसूत विनै भल **कोरी**। →र० २८-४।

कोल्हू—संज्ञा पु० [प्रा० कोल्हुअ] कोल्हू, कर्म भोग। ~तर ऊपर धँ चाँपिहि, जस **कोल्हू** कोटि पचास। → र० १७-६।

कोल्हू—संज्ञा पु० [हि०] तेल निकालने का यन्त्र, कोल्हू, कुंडलिनी। ~एक सगुन षट चक्रहि बेधै, बिन वृषभ **कोल्हू** माचा। →सब० १४४-२।

क्रीला—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा] खेल-कूद, भोग-विलास। ~जा बन में **क्रीला** करी, दाझत है बन सोइ।→ सा० ज्ञान वि० (४) ८-२।

ख

खग—संज्ञा पु० [सं०] जीवात्मा। पीया चाहै तौ लै **खग** सारी, उड़ि न सकै दोऊ पर भारी। →पद ३११-३।

खग—संज्ञा पु० [सं०] पक्षी—'खे (आकाशे) गच्छति इति खगः'। आत्मा, शुद्धात्मा। **खग** के खोजन तुम परे, पीछे अगम अपार। → र० ५७-४।

खजूरि—संज्ञा पु० [सं० खर्जूर] शून्य चक्र।~जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै **खजूरि**। →सा० पर० (५) ४६-२।

खपरा—संज्ञा पु० [सं० खर्पर] खप्पड़, भिक्षा-पात्र, क्रियमाण कर्म। ~झल ऊठी झोली जली, **खपरा** फूटिम फूटि।→सा० ज्ञान वि०(४) ४-१।

खसम—संज्ञा पु० [अ०] पति, स्वामी। चेतनदेव, प्रत्यगात्मा। ~जाड़न मरै सपेदी सौरी, **खसम** न चीन्है घरनि भौ बौरी। →र० ७३-३।

खसमहिं—संज्ञा पु० [अ० खसम + हिं] पति को; साक्षि चैतन्य पुरुष को। ~**खसमहिं** छोड़ि ससुर संग गौनी; सो किन लेहु बिचारी। →पद २६०-३।

खाटा—संज्ञा स्त्री० [सं० खट्वा] चारपाई, सुषुम्ना।~चली जात वह बाटहिं बाटा, सोवनहार के ऊपर **खाटा**। →र० ७३-२।

खेत—संज्ञा पु० [सं० क्षेत्र] क्षेत्र; शरीर। ~गाउं कु ठाकुर **खेत** कु नेपै, काइथ खरच न पारै। →सब १०-५।

खेत—संज्ञा पु० [सं० क्षेत्र] क्षेत्र; जीवन या जीवन क्षेत्र।~राखनहारे बाहिरा, चिड़ियैं खाया **खेत**। → सा० चिता० (१२) १५-१, सब० ११३-१।

खेवनहार—संज्ञा पु० [हि०√खेना + हार (प्रत्य०)] नाविक, अज्ञानी मन। ~कबीर नाव जरजरी, कूड़े **खेवनहार**। →सा० चिता० (१२) ६२-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खोटा—वि० [सं० खोट] दोषपूर्ण, असत्कर्म, दुष्कर्म। ~**खोटा** बाँधा गाँठरी, इब कछु लिया न जाइ। →सा० अपा० (४८) ३-२।

ग

गंग—संज्ञा स्त्री० [सं०गंगा] कुंडलिनी। ~उलटी **गंग** मेर कूँ चली, धरती उलटि अकासहिं मिली। →सब० ४७-७, पद २०१-६।

गंग—संज्ञा स्त्री० दे० 'गंगा'।

गंग—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] भक्ति। ~पाहन फोरि **गंग** एक निकरी, चहुँ दिसि पानी पानी। →पद ३०१-३।

गंग—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगा] गंगा, भवसागर। ~कागद केरी नाँव री, पानी केरी **गंग**। →सा० मन० (१३) २१-१।

गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] इड़ा नाड़ी। ~अरध उरध की **गंगा** जमुना, मूल कँवल कौ घाट। → पद ३४२-६, सब० १७-३, सा० लैं० (१०) ३-१।

गइया—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गाय, माया। ~हंसा संसय छूरी कुहिया **गइया** पिये बछरुवै दुहिया। → पद ३२३-१।

गइया—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गाय, मन। ~भाई रे **गइया** एक बिरंचि दियो है, भार अभार भौ भाई। → पद २०६-१, ६, ८, ६, १०।

गगँन—संज्ञा पु० [सं० गगन] हृव्याकाश। ~तहाँ विहंगम कतहुँ न जाई, औगह गहि के **गगँन** रहाई। →ज्ञान चौं० (१) ८।

गगन[१]—संज्ञा पु० [सं०] आकाश, शून्य-चक्र, ब्रह्मरंध्र, सहस्रार। ~दै मुहरा लगाम पहिरावउं सिकली जीन **गगन** दौरावउं।→सब० ३-३, सा० सूरा० (४५) ६-१, सा० पर० (५) ४०-१, सा० सजी० (४७) ३-२, सब० २६-१, पद ३४२-७।

गगन[२]—संज्ञा पु० [सं०] सहस्रार, सहस्रदल स्थूल शरीर के शीर्ष के ऊपर आकाश में स्थित है, जो कि स्थूल इन्द्रियों से परे है। वह एक ज्योति पुंज है जिसमें कमल के सहस्र दल की प्रतीति होती है। यतः यह सहस्रार कमल शीर्ष के ऊपर आकाश में स्थित है। अतः इसे 'गगन' कहा गया है। ~मन लागा उनमन्न सौं; **गगन** पहूँचा जाइ। → सा० पर० (५) १५-१, २०-१।

गगन गुफा—[यौ०] कपाल कुहर; मस्तिष्क के भीतर एक छिद्र। गगन गुफा से तात्पर्य क़पाल-कुहर में स्थित सहस्रार से है। सहस्रार को कहीं-कहीं पर गगन मण्डल भी कहा गया है। योगियों ने अपने अनुभव से यह जान लिया कि वहाँ पर चन्द्र की आकृति की एक ग्रन्थि है जिससे भीतर ही भीतर एक प्रकार के रस का स्रवण होता रहता है। ~रस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गगन गुफा में अजर झरै। →पद २४६-१।

गगन मंडल—संज्ञा पु० दे० 'गगन'[१]।

गगनहिं—संज्ञा पु० [सं० गगन] आकाश में; शून्यचक्र में। ~ सांधैं तीर पताल कौं, फिरि **गगनहिं** मारै। → सब० ५२-४।

गगनां—संज्ञा पु० [सं० गगन] आकाश, चैतन्य। ~आदै **गगनां** अंतै **गगनां** मद्धे **गगनां** भाई। →सब० ६१-७।

गड़री—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] एक प्रकार की घास, पाशविक प्रवृत्तियाँ। ~कहै कबीर सुनहु रे संतौं **गड़री** परबत खावा। → पद ३३१-७।

गढ़—संज्ञा पु० [सं० गड] दुर्ग, किला, शरीर। ~पंच चोर गढ़ मंझा, **गढ़** लूटहिं दिवसउ मंझा। → पद ३३६-३, पद २४३-६, सा० पर० (५) ८-२।

गढ़—संज्ञा पु० [सं० गड] कर्मबन्धन। ~अगम दुर्गम **गढ़** देउँ छुड़ाई, औरो बात सुनहु कछु आई। → र० ५८-२।

गढ़पति—संज्ञा पु० [सं०] गढ़ का स्वामी, जीवात्मा। ~जउ **गढ़पति** मुहकम होई, तौ लूटि सकै नाँ कोई। →पद ३३६-४।

गम्म—वि० [सं० गम्म] जिस तक पहुँच सम्भव हो; प्रवेश, सगुण। ~तहिया होत गुरू नहिं चेला, **गम्म** अगम्म न पंथ दुहेला। →र० ७-५।

गयंद दोइ—संज्ञा पु० [सं० गजेन्द्र + द्वि का द्वौ रूप से] हाथी, अहं भाव और प्रिय प्रेम। ~खम्भा एक **गयंद दोइ**; क्यों करि बंधसि बारि। → सा० चिता० (१२) ४२-१।

गरजि—क्रि० [सं० गर्जन] गर्जन, गरज कर, अनाहत नाद होने पर। ~गगन **गरजि** अँम्रित चुवैं, कदली कँवल प्रकास। →सा० पर० (५) ४०-१।

गरुड़—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान। ~ऐसो हरि सो जगत लरतु है; पांडुर कतहूँ **गरुड़** धरतु है। →सब० ६२-१।

गारुड़ि—संज्ञा पु० [सं० गारुडिन्] मन्त्र से सर्प का विष उतारने वाला, मन्त्रवेत्ता, सद्गुरु। ~विष के खाए विष नहिं जावै, **गारुड़ि** सो जो मरत जियावै। →र० २६-६।

गाउँ—संज्ञा पु० [सं० ग्राम] संसार, मृत्युलोक। ~सन्तौ ई मुरदन कै **गाउँ**। →पद २६३-१।

गाँव—संज्ञा पु० [सं० ग्राम] शरीर, ~**गाँव** बसत है गरब भारती, वाम काम हंकारा हो। →कहरा (३) ७-४, २-२; सब० १०-१।

गाइ—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गाय, विवेक। ~बैल बियाइ **गाइ** भई बांझ, बछरहिं दूहै तीनिउं सांझ। →सब० ८६-३।

गाइ—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गाय; अविद्या। ~**गाइ** नाहर खाइऔ हरिनि खायौ चीता। → पद ३४३-३।

गाइन्ह—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गाय,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्त। ~गाइन्ह माँह बसेउ नहिं कबहूं, कैसे कै पद पहिचनवहु हो। →कहरा (३) २-६।

गाई—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गाय, इन्द्रिय। ~ठाढ़ा सिंघ चरावै **गाई**। →सब० ४८-२; १५५-६।

गाउँ—संज्ञा पु० दे० 'गाँव'।

गागरि—संज्ञा स्त्री० [सं०गर्गर] घड़ा, शरीर। ~चली जात देखी एक नारी, तर **गागरि** ऊपर पनिहारी। →र० ७३-१।

गादह—संज्ञा पु० [सं० गर्दभ] गदहा, अविद्याग्रस्त जीव।~पहिरि चोलनां **गादह** नाचै, भैंसा निरति करावै। →पद ३३१-४।

गावनहारा—संज्ञा पु० [हि० गाना + हारा (प्रत्य०)] पाखण्डी साधक। ~**गावनहारा** कबहुँ न गावै, अनबोला नित गावै। →सब० ३२-६।

गीध—संज्ञा पु० [सं० गृध्र] लोभ। ~मांसु पसारि **गीध** रखवारी। → सब० ८६-२।

गुड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० गुड्डिका] पतंग, शरीर। ~**गुड़िया** को सबद अनाहद बोलै, खसम लिए कर डोरी डोलै। →सब० १६१-३।

गुदरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गूथ+ड़ी (री) (प्रत्य०)] शरीर।~कबीर **गुदरी** बीखरी, सौदा गया बिकाइ। →सा० अपा० (४८) ३-१।

गुन—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण] डोरी, भक्ति, साधना। ~कुंभ लिए ठाढ़ी पनिहारी, **गुन** बिन नीर भरै कैसे नारी। →पद ३११-४।

गुप्त—वि० [सं०] छिपा हुआ, अदृश्य आत्मा, सूक्ष्म शरीर। ~**गुप्त** प्रकट है एकै दूधा, काको कहिए ब्राह्मन सूदा। →र० २६-७।

गुफा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा] शरीर। ~गयौ दिसावरि कौन बतावै, जोगिया बहुरि **गुफा** नहिं आवै। → सब० १२६-३।

गुफा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा] गगनमण्डल। ~बैठि **गुफा** महिं सब जग देखै, बाहरि किछू न सूझै। →सब० ३२-५।

गुर—संज्ञा पु० [सं० गुरु] गुरु, अन्तरात्मा। ~पहिलै पूत पिछै भई माई चेला कै **गुर** लागै पाई। →सब० ४८-३।

गोंनि—संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] अनाज का थैला, मन। ~बैलहिं डारि **गोंनि** घरि आई, घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाई। →सब० ४८-५।

गोड़—संज्ञा पु० [प्रा० गोड] पैर, श्वास। ~ऊपर नचनियाँ करै कोड़ करिगह में दुइ चलै **गोड़**। →वसंत (४) ३-५।

गोबर—संज्ञा पु० [सं० गोमय] गोबर, सकाम कर्म, भोग विलास। ~बड़े भोर उठि आँगनु बाढ़ु; बड़े खाँच लै **गोबर** काढ़ु। →वसंत (४) ६-२।

गोरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कुंडलिनी। ~तुम यहि बिधि समुझहु लोई, **गोरी** मुख मंदर बाजै। → सब० १४४-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोह—संज्ञा स्त्री० [स० गोधा] छिपकली जाति का एक जीव; अहंकार। ~बन के रोझ धरि दाइज दीन्हो, **गोह** लोकन्दे जाई। → सब० १५५-७।

गुजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्जरी] स्त्री, जीवात्मा। ~कहै कबीर **गुजरी** बौरांनी। मटुकी फूटि जोति समांनी। →पद ३३०-५।

ग्रीसम—संज्ञा पु० [सं० ग्रीष्म] वृद्धावस्था। ~गए बसन्त **ग्रीसम** रितु आई, बहुरि न तरु तर आवै। → सब० ८८-६।

ग्रीह—संज्ञा पु० [सं० गृह] घर, संसार। ~उदधि माँह ते निकरि छांछरी, चौड़े ग्रीह करावै। →पद १६६-४।

घ

घंटा—संज्ञा पु० [सं०] अनाहत नाद। ~अंमृत बरिसै हीरा निपजै, **घंटा** पड़ै टकसाल। →सा० पर० (५) ४७-१।

घन—संज्ञा पु० [सं०] सहस्रार। ~सुरभी भच्छन करत वेद मुख, **घन** बरिसे तन छीजै। →सब० १४४-५।

घर—संज्ञा पु० [सं० गृह] शरीर। ~संतो घर में झगरा भारी। →पद २६६-१, सब० २७१-२, सा० बिर्क० (३७) ७-१, सब० १८-४।

घर—संज्ञा पु० [सं० गृह] आपा, सांसारिक जीवन। ~हम **घर** जारा आपनां, लिया मुराड़ा हाथि। → सा० गु० सि० हे० (४३) १३-१।

घर—संज्ञा पु० [स० गृह] आत्मतत्व। ~अब तौ जूझै ही बनै, मुड़ि चालै **घर** दूरि। →सा० सूरा० (४५) ११-१।

घरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहिणी] गृहिणी, सुरति। ~ जाड़न मरै सपेदी सौरी; खसम न चीन्है **घरनि** भौ बौरी। →र० ७३-३।

घरहाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] घरवाली, पत्नी, माया। ~अढ़ाई मैं जे पाव घटै तौ करकच करै **घरहाई**। → पद २७१-६।

घरि—संज्ञा पु० [सं० गृह + इ (प्रत्य०)] घर में, हृदय में। ~समधी कै **घरि** लमधी आए, आए बहू कै भाइ। → पद २३५-५।

घरि—संज्ञा पु० [सं० गृह] घर में, चैतन्य में। ~बैलहि डारि गोंनि **घरि** आई, घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाई। →सब० ४८-५।

घूंस—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहाशय] एक प्रकार का बड़ा चूहा, मन। ~सिंघ ज बैठा पान कातरै **घूंस** गिलौरा लावे। →पद ३३१-५।

घंल—संज्ञा पु० [सं० घट] घड़ा, गगरा, तृष्णा। ~बासी भात मनुसें लीहल खाय, बड़ा **घंल** लै पानी के जाय। →वसत (४) ६-३।

घोरै—संज्ञा पु० [सं० घोटक] घोड़े, इन्द्रियाँ। ~बैलहि डारि गोंनि घरि आई, **घोरै** चढ़ि भैंस चरावन जाई। →सब० ४८-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च

चंच—संज्ञा पु० दे० 'चंचु'।

चंचल—वि० [सं०] मन। ~ हँसै न बोलै उन्मनी, **चंचल** मेल्ह्या मारि। →सा० गुरु० (१) ६-१।

चंचु—संज्ञा पु० [सं०] चोंच, इंद्रियाँ। ~ पानी पीया **चंचु** बिनु, भूलि गया यहु देस। → सा० पर० (५) २०-२, सा० माया० (१६) ३०-२।

चंद—संज्ञा पु० [सं० चन्द्र] इड़ा नाड़ी। ~जहाँ धरनि बरसै गगन भीजै, **चंद** सूरज मेल। → सब० ४५-५; पद ३४२-३।

चंदन—संज्ञा पु० [सं०] भक्ति-साधना। ~ घसि **चंदन** बनखंडि बारा, बिनु नैंननि रूप निहारा। → सब० ८-७।

चंदा—संज्ञा पु० [सं० चन्द्र] चन्द्र, मन। ~वोछी मति **चंदा** गो अथई, त्रिकुटी संगम स्वामी बसई। →र० १३-६।

चकवा—संज्ञा पु० [सं० चक्रवाक] अन्तःकरण। ~**चकवा** बैंसि अंगारै निगलै समद अकासा धावा। → पद ३३१-८।

चकवा—संज्ञा पु० [सं० चक्रवाक] जीवात्मा। ~ सूखे सरवर उठै हिलोर, बिनु जल **चकवा** करत कलोर। →सब० १५२-४।

चमरा गाँव—यौ० [हिं०] चमड़े का गाँव; शरीर। ~ अटपट कुंभरा करै कुंभरैया; **चमरा गाँव** न बाँचै हो। →कहरा (३) २-२।

चरखुला—संज्ञा पु० [फा० चर्ख] चरखा, शरीर। ~ **चरखुला** जिनि जरै। →सब० २३५-२।

चहले—संज्ञा स्त्री० [सं० चिकिल] कीचड़, विषय। ~हंस उड़ाने ताल सुखाने, **चहले** बिंधा पाँऊँ। →पद ३२३-५।

चहोरि—क्रि० [दे०] चढ़ाकर, सँभाल कर, सहेज कर, सावधानीपूर्वक। ~ काटी कूटी माछली, छींकै धरी **चहोरि**। →सा० मन० (१३) २४-१।

चाँचर—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] चाँचर चौदह अथवा सोलह मात्राओं की एक ताल है; जिसमें होली की धुन गाई जाती है। इस धुन को चाँचर कहते हैं। लक्षणा से यह होली के हुड़दंग और स्वांग के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। उसमें प्रायः स्त्री और पुरुषों के दल में प्रतियोगिता होती है। दोनों ओर से रंग चलता है। कबीर ने लौकिक चाँचर को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया है। यहाँ माया चाँचर खेलती है। →चाँचर (५)।

चाँद—संज्ञा पु० [सं० चन्द्र] चंद्र, बाँये नासिका रंध्र से चलने वाली नाड़ी, इड़ा। इसे चन्द्र नाड़ी और कहीं-कहीं गंगा भी कहा गया है। ~महि अकास दुइ गाड़ खँदाया; **चाँद** सुरुज दुइ नरी बनाया। → र० २८-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चातक—संज्ञा पु० [सं०] जीव। ~ **चातक** कहाँ पुकारै दूरी; सो जल जगत रहा भरपूरी। → सब० १०७-१।

चाबुक—संज्ञा पु० [फ़ा०] कोड़ा, संयम। ~कबीर तुरी पलानियाँ, **चाबुक** लीया हाथि। →सा० मन० (१३) १३-१।

चारि जनां—यौ० [हि० चार जन] अन्तःकरण चतुष्टय (मन; बुद्धि, चित्त, अहंकार)। ~ पांच जनां मिलि मंडप छायौ **चारि जनाँ** मिलि लगन लिखाई। → पद २३८-३; पद ३१२-३।

चारि वृक्ष—वि० [सं० चत्वारि+वृक्ष] चार वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्वण। ~**चारि वृक्ष** छव साख बखानै, विद्या अगनित गनै न जानै। →र० २२-५।

चिंउटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] पिपीलिका, अज्ञानी जीव। ~**चिंउटी** के पग हस्ती बाँधे, छेरी बीगर खावै। → पद १९९-३।

चिंतामणि—संज्ञा पु० [सं०] सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली एक कल्पित मणि, ब्रह्म साक्षात्कार, राम से मिलन। ~ चौहटै **चिंतामणि** चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि। → सा० पर० (५) १९-१।

चिउँटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] सुरति। ~ धरती उलटि अकासै जाई, **चिउँटी** के मुख हस्ति समाई। → सब० १५२-२।

चिउँटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] चींटी, एक छोटा जीव, पिपीलिका, मन, वाणी। ~ **चिउँटी** जहाँ न चढ़ि सकै, राई ना ठहराय। → र० ३४-६।

चिड़ियैं—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] पक्षी, विषय-वासना। ~राखनहारे बाहिरा, **चिड़ियैं** खाया खेत। → सा० चिता० (१२) १५-१।

चित्र—संज्ञा पु० [सं०] दृश्यमान जगत्। ~ कहै कबीर यहु **चित्र** बिरोघा; बूझी अमृत बाँनी। → सब० १८६-९।

चित्र—संज्ञा पु० [सं०] चित्र, संसार। ~जिन यह **चित्र** बनाइया, साँचा सो सुतधारि। →र० २६-९।

चित्रवंतहि—संज्ञा पु० [सं० चित्रवान्] चित्र बनाने वाला, सृष्टि की रचना करने वाला; परमात्मा। ~कहहि कबीर ते जन भले, (जे) **चित्रवंतहि** लेहि बिचारि। →र० २६-१०।

चींटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] साधक जीव की अन्तर्वृत्ति। ~**चींटी** परबत उखारिया, लै राख्यौ चौड़े। → सब० ५१-५।

चीता—संज्ञा पु० [सं० चित्रक] सन्तोष। ~गाइ नाहर खाइओ हरिनि खायौ **चीता**। →पद ३४३-३।

चीर—संज्ञा पु० [सं०] वस्त्र, शरीर। ~रंग बिरंगी पहिरे **चीर**, हरि के चरन धरि गावैं कबीर। →वसंत (४) ३-७।

चूनरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनरी]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रंगीन वस्त्र, राम नाम। ~रहहु ररा ममा की भाँति हो, सब संत उधारन **चूनरी**। →पद २४८-१।

चूल्है—संज्ञा पु० [सं० चुल्ली] चूल्हा, अन्त.करण। ~**चूल्है** अगिनि बुताइ करि चरखा दियौ दिढाइ। →पद २३५-८।

चेला—संज्ञा पु० [सं० चेलक, प्रा० चिल्ल] शिष्य, साधक। ~पहिलै पूत पिछै भई माई; **चेला** कै गुर लागै पाई। →सब० ४८-३।

चोर—संज्ञा पु० [सं० चौर] मन। ~**चोर** एक मूसै संसारा; बिरला जन कोइ बूझनिहारा। → र० ५६-२।

चोलनां—संज्ञा पु० [सं० चोल] वस्त्र, काम-क्रोध। ~पहिरि **चोलनां** गादह नाचै भैसा निरति करावै। →पद ३३१-४।

चौपरि कामरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुः + पत्र हि० कामरी] १. चार पर्तों वाली कमली, २. चार अवस्थाओं (बाल, किशोर, युवा और वृद्ध) वाला शरीर, ३. अंतःकरण चतुष्टय (मन; बुद्धि, चित्त, अहंकार) से युक्त शरीर। ~पिया अनते धनि अनते रहई; **चौपरि कामरि** माथे गहई। →र० १५-२।

चौहटै—संज्ञा पु० [हि० चार + सं० हट्ट] चौराहा, इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगमस्थल। यह दोनों भौंहों के मध्य का स्थान है जिसे त्रिकुटी कहते हैं। ~**चौहटै** चिंतामणि चढ़ी; हाड़ी मारत हाथि। → सा० पर०. (५) १६-१।

छ

छतीसौं राग—यौ० [हि० छत्तीस राग] संगीतशास्त्र में कुछ लोग मूल राग पाँच मानते हैं और उनसे जन्य छह छह रागिनियाँ मानते हैं। इस प्रकार ३० रागिनियाँ होती हैं। कुछ लोग छः मूलराग मानते हैं और प्रत्येक की छह-छह जन्य रागिनियाँ बताते हैं। इस प्रकार ३६ रागिनियाँ हुईं। कबीर ने 'छत्तीस राग' द्वारा इनका संकेत किया है। ~त्रिकुटी महल मैं बाजा बाजै होत **छतीसौं राग**। → पद ३०६-७।

छत्री—संज्ञा स्त्री [सं० छत्र] छतरी; शाखा। ~छव **छत्री** पत्री जुग चारी, फल दुइ पाप पुन्य अधिकारी। → र० ८२-२।

छव साख—वि० पु० [सं० षट् + शाखा] छह शाखाएँ, छह वेदांग—शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण। ~चारि वृक्ष **छव साख** बखानैं, विद्या अगनित गनै न जानै। →र० २२-५।

छांछरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] मछली, चित्तवृत्ति। ~उदधि माँह ते निकरि **छांछरी**; चौड़े ग्रीह करावै। →पद १६६-४।

छागर—संज्ञा पु० [सं० छागल] बकरा, अज्ञानी जीव। ~ बनकि भलुइया चाखुर फेरै; **छागर** भये किसाना। →सब० १५५-३।

छिपिया—संज्ञा पु० [हि०] छींट छापने वाला, भक्त। ~नित उठि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोरिया पेट भरतु है **छिपिया** आँगन नाचै हो। →कहरा (३) २-३।

छींकै—संज्ञा पु० [सं० शिक्या] शिकहर; ब्रह्मरन्ध्र। ~काटी कूटी माछली, **छींकै** धरी चहोरि। →सा० मन० (१३) २४-१।

छेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छेलिका] बकरी, अजा, माया। ~**छेरी** बाघहि ब्याह होत है, मंगल गावै गाई।→ सब० १५५-६; पद १६६-३।

ज

जंगम—संज्ञा पु० [सं०] दाक्षिणात्य लिंगायत शैव सम्प्रदाय के साधु। ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त जटाधारी व कौपीन धारी होते हैं तथा गले में शिवलिंग धारण करते हैं। ~कहै कबीर जोगी अरु **जंगम** ए सभ झूठी आसा। →पद २०८-७।

जंगल—संज्ञा पु० [सं०] संसार। ~ मच्छ सिकारी रमै **जंगल** मैं; सिंघ समुन्दर झूलै। →पद २८-४।

जंत्र—संज्ञा पु० [सं० यंत्र] वाद्य, शरीर। ~ जंत्री **जंत्र** अनूपम वाजै, वाके अस्ट गगन मुख गाजै। → सब० १०६-१, सा० काल० (४६) २०-१।

जंत्री—संज्ञा पु० [सं० यंत्री] वादक; चेतन देव। ~**जंत्री** जंत्र अनूपम वाजै, वाके अस्ट गगन मुख गाजै। →सब० १०६-१।

जंबुक—संज्ञा पु० [सं०] शृगाल, अज्ञानी। ~मूस बिलाई कैसन हेतू; **जंबुक** करै केहरि सों खेतू। → सब० ६२-२।

जगत—संज्ञा पु० [सं०] माया में लिप्त सांसारिक जीव। ~ऐसो हरि सो **जगत** लरतु है, पांडुर कतहूं गरुड़ धरतु है। →सब० ६२-१।

जड़—वि० [सं० जड़] ब्रह्मरंध्र, चैतन्य। ~तलि करि साखा उपरि करि मूल, बहुत भाँति **जड़** लागे फूल।→ सब० ४८-६।

जड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़] संजीवनी बूटी, सहजावस्था; अमर लोक की स्थिति। ~नाँ जानौं किस **जड़ी** तैं; अमर भया अस्थूल। →सा० सजी० (४७) २-१।

जतइत—संज्ञा पु० [दे०] चक्की का जाँता, पारलौकिक सुख।~**जतइत** के धन हेरिन्हि ललचिन, कोदइत के मन दौरा हो।→कहरा (३) २-१२।

जना चारि—दे० 'चारि जनां'।

जना पाँच—यौ० [हि०] पञ्च भौतिक तत्व। ~जना चारि मिलि लगन सुधाये, **जना पाँच** मिलि माँड़ौ छाए। →पद ३१२-३।

जना पाँच—यौ० [सं० पञ्चजन] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। ~**जना पाँच** कोखिया मिलि रखलों, और दुई औ चारी। →पद २२२-४।

जमुन—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] पिंगला नाड़ी। ~गंग तीर मोरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खेती बारी, **जमुन** तीर खरिहानां। →सब० १७-३, पद ३४२-६।

जरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ी] जड़ी वह शब्द है, जो गुरु शिष्य को दीक्षा के समय देता है। वह शब्द साधक के भीतर मन-प्राण-नाड़ियों में व्याप्त होकर उसे निर्मल बना देता है और उसके भीतर आध्यात्मिक रूपान्तरण हो जाता है, जड़ी-बूटी दीक्षा। ~ हमारै गुर दीन्हीं अजब **जरी**।→पद ३२७-१।

जल—संज्ञा पु० [सं०] मानसरोवर, सहस्रार अर्थात् शून्य शिखर में स्थित अमृत कुंड। ~**जल** में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि। →सा० पर० (५) ४६-१।

जल—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म। ~चातक कहाँ पुकारै दूरी, सो **जल** जगत रहा भरपूरी।→सब० १०७-१।

जल—संज्ञा पु० [सं०] शुद्ध हृदय। ~नवग्रह मारि योगिया बैठे, **जल** महिं बिंब प्रकासै।→स० ३२-४।

जल—संज्ञा पु० [सं०] चैतन्य। ~**जल** में कुंभ कुंभ में **जल** है बाहरि भीतरि पानी।→सब० ६१-५, ६।

जल—संज्ञा पु० [सं०] अमृत। ~ मानसरोवर सुभर **जल**, हंसा केलि कराहिं।→सा० पर० (५) ३६-१, ४५-२।

जल—संज्ञा पु० [सं०] पानी, विषय-वासना, विषयासक्त मानस। ~ बहती सरिता रहि गई; मच्छ रहे **जल** त्यागि।→सा० ज्ञान वि० (४) ६-२।

जल—संज्ञा पु० [सं०] आनंद सागर। ~औंधा घड़ा न जल महिं डूबै, सूधा सूभर भरिया।→सब० ३२-७।

जल—संज्ञा पु० [सं०] प्राण। ~सूखे ताल पुरइन जल छांड़े; कमल गए कुम्हिलाय।→पद ३२२-३।

जलहरु—संज्ञा पु० [सं० जलधर] जलाशय, शक्तिपुञ्ज। ~सहज समाधि बिरिख यहु सींचा, धरती **जलहरु** सोखा। →सब० ११६-७।

जलहल—संज्ञा पु० [सं० जलधर] जलाशय, तालाब, आत्मानन्द। ~ चातक **जलहल** भरे जो पासा, स्वाँग धरे भौसागर आसा।→र० ६५-३।

जाचिग—संज्ञा पु० [सं० याचक] याचक, जीव। ~**जाचिग** दाता इक पाया, धन दिया जाइ नां खाया। →सब० ८-३।

जाड़न—संज्ञा स्त्री० [हि० जाड़ा] जाड़े से, ठंडक से, जड़ता। ~ **जाड़न** मरै सपेदी सौरी, खसम न चीन्है घरनि भौ बौरी। →र० ७३-३।

जामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] यामिनी, रात्रि, अज्ञान। ~ना जम भया न **जामिनी**, भामिनि चली निरास। →र० ४१-६।

जिठानी—संज्ञा स्त्री० [हि० जेठ+ आनी (प्रत्य०)] पति के बड़े भाई की स्त्री, कुमति। ~एक गाँव में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाँच तरुनि वसैं, तामँह जेठ **जिठानी** हो। →कहरा (३) २-६।

जुग—संज्ञा पु० [सं० युग] दोनों, जोड़ा। ~ससि हर सूर दूर दूरंतर, लागी जोग **जुग** तारी। →सब० १५८-४।

जुलाहो—संज्ञा पु० [फा० जौलाह] जुलाहा, जीव। दे० 'जोलहा'। ~घर छोड़ै जाइ **जुलाहो**। → पद २७१-२।

जेंवरि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी; कर्मकाण्ड। ~वेद की पुत्री सुम्रिति भाई, सो **जेंवरि** कर लेतहिं आई। →र० ३३-१।

जेठ—संज्ञा पु० [सं० ज्येष्ठ] पति का बड़ा भाई; मन। ~एक गाँव में पाँच तरुनि बसैं, तामँह **जेठ** जेठानी हो। →कहरा (३) २-६।

जेठ—संज्ञा पु० [सं० ज्येष्ठ] द्वेष। ~सासु की दुखी ससुर की पिआरी **जेठ** कै तरसि डरउँ रे। →पद २३२-३।

जेठानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पति के बड़े भाई की स्त्री, माया। ~मेरे वाप के दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर **जेठानी** हो। →कहरा (३) ११-३।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी, माया। ~एक **जेवड़ी** सब लपटाँने, के बाँधे के छूटे। →सब० २५-४।

जेवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी, जमीन नापने की जंजीर, जिसको जरीब कहते हैं; आशा, तृष्णा, वासना। ~जोरि **जेवरी** खेत पसारैं, सब मिलि मोकौं मारैं हो राम। → सब० १०-६।

जोगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] कुण्डलिनी। ~ काम क्रोध दोउ भया पलीता, तहाँ **जोगनी** जागी। →सब० २६-४।

जोगिया—संज्ञा पु० [सं० योगी] जीव। ~ऐसो **जोगिया** है बदकर्मी; जाके गगन अकास न धरनी। → सब० ६०-१।

जोगी—संज्ञा पु० [सं० योगी] तत्व, जीवात्मा। ~**जोगी** था सो रमि गया, आसनि रही विभूति।→ सा० ज्ञान वि० (४) ४-२।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] ब्रह्म। ~सुन्न सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक **जोति**।→र० ६-६।

जोति बिना—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति विना] अज्ञान, अज्ञानान्धकार। ~**जोति बिना** जगदीस की, जगत उलंघा जाइ।→सा० अपा० (४८) ४-२।

जोय—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] स्त्री; प्रकृति। ~बुझ बुझ पंडित बिरवा न होय, आधा बसे पुरुष आधा बसे **जोय**।→सब० १६६-१।

जोलहा—संज्ञा पु० [फा० जौलाह] जीव। ~**जोलहा** बीनहु हो हरि-नामा, जाके सुर नर मुनि धरैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्याना ।→सब० १२७-१, कहरा (३) १०-६ ।

जोलहा—संज्ञा पु० [फा० जौलाह] बुनकर, ईश्वर, आत्मा, मन । ~ अस **जोलहा** का मरम न जाना, जिन जग आय पसारिन्हि ताना ।→र० २८-१ ।

जोलाहिन—संज्ञा स्त्री०[हिं०] जीवात्मा । ~खुर खुर खुर खुर चलै नारि, बैठि **जोलाहिन** पलथि मारि । → वसन्त (४) ३-४ ।

ज्ञान-चौंतीसा—इसमें ओंकार मिलाकर ३४ अक्षर होते हैं—पाँच वर्ग (क-वर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग) य, र, ल, व, श, ष, स, ह, और ॐ । इन अक्षरों के आधार पर ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है । छन्द का प्रारम्भ प्रत्येक अक्षर से हुआ है । →ज्ञान चौं० (१) ।

झ

झल—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल] ज्वाला, ज्ञान, विरह की अग्नि ।~**झल** ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि । →सा० ज्ञान वि० (४) ४-१ ।

झोली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] थैली, जिसमें योगी या साधक वस्त्रादि वस्तुएँ रखता है; संचित कर्म ।~झल ऊठी **झोली** जली, खपरा फूटिम फूटि । →सा० ज्ञान वि० (४) ४-१ ।

ठ

ठग—संज्ञा पु० [सं० स्थग] जीव । ~यहु **ठग** ठगत सकल जग डोलै । →पद २४३-१ ।

ठाकुर—संज्ञा पु० [सं० ठक्कुर] स्वामी; मन । ~गाउ कु **ठाकुर** खेत कु नेवै, काइथ खरच न पारै । →सब० १०-५ ।

ड

डांइन—संज्ञा स्त्री दे० 'डाइनि' ।

डांइनि—संज्ञा स्त्री० दे० 'डाइनि' ।

डाइनि—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] डाकिनी, माया । ~**डाइनि** डिंभ सकल जग खंदा । →सब० ८५-६, ३२७-५; ४४-३ ।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] शाखा, विषय, बाह्याचार । ~बाबा पेड़ छाड़ि सब **डाली** लागे, मूढ़े जंत्र अभागे । →सब० १८६-१ ।

त

तत—संज्ञा पु० [सं० तत्व] तत्व; जीवात्मा । ~निहचल निधि मिलाइ **तत**, सतगुर साहस धीर । →सा० गुर० (१) ३०-१ ।

तन छीजै—हठयोग की सिद्धि के लिए शरीर की कृशता, मुख की प्रसन्नता; ध्वनि का प्राकट्य, नेत्रों की निर्मलता, आरोग्य, धातु का बस में होना, उदराग्नि का बढ़ना और नाड़ी की शुद्धि आवश्यक है । [हठयोग प्रदीपिका, द्वितीयोपदेश–७८] ~ सुरभी भच्छन करत वेद मुख, घन बरिसै **तन छीजै** ।→सब० १४४-५ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तर—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे, पाताल। ~तर ऊपर धैं चाँपिहि, जस कोल्हु कोटि पचास। →र० १७-६।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] वृक्ष; सुषुम्ना नाड़ी। ~तरवर एक अनंत मूरति, सुरताँ लेहु पिछानी। →सब० १२-३, सब० ४८-४।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] वृक्ष, प्रकृति या माया। ~तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूलां फल लागा। →सब० ३७-३।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] वृक्ष, शरीर। ~बाँझ का पूत बाप बिनु जाया, बिना पांउं तरवर चढ़िया। →सब० ११६-३, सब० ११६-५, सब० ११६-३।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] वृक्ष, ब्रह्म, ईश्वर, प्रभु। ~दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत। → सा० सजी० (४७) ७-१।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] वृक्ष; सहजावस्था या प्रभु। ~तरवर तासु बिलंबिए, बारह मास फलंत। →सा० सजी० (४७) ६-१।

तरवरि—संज्ञा पु० दे० 'तरवर'।

तरु—संज्ञा पु० [सं०] वृक्ष, माया। ~गत फल फूल तत तरु पल्लव, अंकुर बीज नसाँनाँ। →सब० १५८-२।

तरु—संज्ञा पु० [सं०] वृक्ष, संसार। दे० 'तरुवर'। ~गए बसंत ग्रीसम रितु आई, बहुरि न तरु तर आवै। →सब० ८८-६।

तरुनि—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] तरुणियाँ, स्त्रियाँ, इन्द्रियाँ। ~एक गाँव में पाँच **तरुनि** बसैं, तामँह जेठ जेठानी हो। →कहरा (३) २-६।

तरुवर—संज्ञा पु० [सं०] वृक्ष, संसार। ~उदधि भूप ते **तरुवर** डाहै, मच्छ अहेरा खेलै। →पद १६६-८।

तलिहारी—वि० [सं० तल+हारी] नीचे की ओर वर्तमान, मूलाधार चक्र। ~ऊपरि नीर लेज **तलिहारी** कैसे नीर भरै पनिहारी। →सब० १५०-३।

ताना—संज्ञा पु० [सं० तान] शरीर।~ **ताना** तनै को अहुठा लीन्हा, चरखी चारो बेदा। →सब० १२७-२।

ताना—संज्ञा पु० [सं० तान] कपड़े की बुनावट में लम्बाई के बल के सूत, माया। ~अस जोलहा का मरम न जाना, जिन जग आय पसारिन्हि **ताना**। →र० २८-१।

तार—संज्ञा पु० [सं० तारा] नाड़ीमंडल, जिसके द्वारा ज्ञानेद्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ प्रवृत्त या क्रियाशील होती है। ~कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब **तार**। →सा० काल० (४६) २०-१।

तार—संज्ञा पुं० [सं० तारा] तारा, नक्षत्र, मिथ्याज्ञान। ~ रवि के उदै **तार** भौ छीना, चर बीहर दोनों मँह लीना। →र० २६-५।

ताल—संज्ञा पु० [सं० तल्ल] तालाब,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरीर। ~सूखे **ताल** पुरइन जल छाँड़े, कमल गए कुम्हिलाय। →पद ३२२-३, पद ३२३-५।

तिन—संज्ञा पु० [सं० तृण] तृण, सांसारिक भोग-विलास। ~मैंमंता **तिन** ना चरै, सालै चित्त सनेह। → सा० रस० (६) ५-१।

तिनका—संज्ञा पु० [सं० तृण] तृण, क्षुद्र चेला। ~**तिनका** बपुरा ऊबरा गलि पूरे कै लागि। →सा० ज्ञान वि० (४) ७-२।

तिलक—संज्ञा पु० [सं०] विषय-सुख। ~न्हाइ धोइ कै **तिलक** दीन्ह, नाँ जानूँ हार किनहुँ लीन्ह। →पद २३४-६।

तुमरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बिनी] तितलौकी, बासना।~अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, नाँ **तुमरी** नाँ बेलि। → सा० बेली० (५८) १-१।

तुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरगी] घोड़ी, मन। ~ कबीर **तुरी** पलानियाँ, चाबुक लीया हाथि। →सा० मन० (१३) १३-१।

तेल—संज्ञा पु० [सं० तैल] सामर्थ्य। ~**तेल** घटै बाती बूझै, (तब) सोवैगा दिन राति। →सा० सुमि० (२) १०-२।

तेल—संज्ञा पु० [सं० तैल] स्नेह, प्रेम। ~दीपक पावक आँनिया, **तेल** भि आना संग। →सा० ज्ञान० वि० (४) १-१; सा० गुरु० (१) १२-१।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोनों भौहों के मध्य में वह स्थान जहाँ तीनों नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का मिलन होता है। ~सुमति सरीर कबीर बिचारी, **त्रिकुटी** संगम स्वाँमी →सब० १५८-७।

त्रिकुटी संगम—संज्ञा पु० [सं०] आज्ञा चक्र-जहाँ इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियाँ मिलती हैं। दे० 'त्रिवेणी'। ~ब्रह्म अगनि मैं काया जारै **त्रिकुटी संगम** जागं। →सब० ३४-७।

त्रिखावंत—वि० [सं० तृषावत् के 'तृषावंतः' रूप से] प्यासा,प्रभु मिलन का आकांक्षी। ~**त्रिखावंत** जो होइगा (सो) पीवेगा झख मारि। → सा० बिर्क० (३७) ७-२।

त्रिबेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिवेणी] त्रिगुणात्मक विषय। ~पंच सखी मिलिहैं सुजांन, चलहु त जईये **त्रिबेनी** न्हान।→पद २३४-५।

त्रिभुवन नाथ—संज्ञा पु० [सं०] मन। ~**त्रिभुवन नाथ** जो माँजन लागे; स्याम मरोरिया दीन्हा। →सब० १२७-७।

त्रिवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञाचक्र, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का संगम-स्थल। दे० 'त्रिकुटी संगम'। ~ षट चक्र की गागरी, **त्रिवेणी** संगम बाट। →पद ३४२-१०।

त्रीखंड—संज्ञा पु० [सं०] त्रिकुटी। ~अखंड मंडल मंडित मंड, त्री अस-नांन करै **त्रीखंड**।→सब० ४३-७।

द

दरपन—संज्ञा पु० [सं० दर्पण] दर्पण,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तःकरण। ~जौ दरसन देखा चहिए, तौ **दरपन** मांजत रहिए। →सब० ३३६-७।

दरिया—संज्ञा पु० [फा०] नदी, भव, संसार। ~तेहि पानी दुइ पर्वत बूड़े, **दरिया** लहरि समानी। → पद ३०१-४।

दरिया—संज्ञा पु० [फ़ा०] समुद्र, ब्रह्म-ज्ञान। ~मन उलटा **दरिया** मिला, लागा मलि-मलि न्हाँन। →सा० लांबि० (७) २-१।

दव—संज्ञा स्त्री० [सं०] दावाग्नि, काम-क्रोध। ~नरहरि लागी **दव** बिनु ईंधन, मिलै न बुझावनहारा। → सब० १५७-१।

दस गज—यौ० [हि०] दस इन्द्रियाँ। ~गज नव गज **दस गज** उनइस की पुरिया एक तनाई।→पद २७१-३।

दसवें द्वारं—यौ० दे० 'दसहुं दुवारे'। सहस्रार के नीचे कपाल-कुहर से लेकर तालु तक विस्तृत वंकनाल, जिसके द्वारा सोमरस टपकता है।~ **दसवैं द्वारं** ताड़ी लागी अलख पुरुख जाकौ ध्यान धरैं।→पद २४६-५।

दसहुँ दुवारे—यौ० [सं० दशम द्वार] दशम द्वार गगन-गुफा का वह छिद्र है, जिससे महारस टपककर तालु तक आता है। निरन्तर ध्यान करने से सहस्रार में स्थित दशम द्वार में परमात्मा का परिचय प्राप्त होता है। ~**दसहुँ दुवारे** तारी लावै, तब दयाल के दरसन पावै।→ज्ञान-चौं० (१) ४०।

दसो दिसा—संज्ञा स्त्री० [सं० दश दिशा] दस इन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। ~रहिगौ पंथ थकित भौ पौना, **दसो दिसा** उजारि भौ गौना।→र० ४५-४।

दह—संज्ञा पु० [सं० ह्रद] तालाब; विषय। ~कोइ एक अथिर मन बसा, **दह** में परी बहोरि।→सा० मन० (१३) २४-२।

दाता—संज्ञा पु० [सं०] देने वाला, प्रभु। ~जाचिग **दाता** इक पाया, धन दिया जाइ नां खाया। → सब० ८-३।

दादुर—संज्ञा पु० [सं० दर्दुर] मेढक, नाना प्रकार के पन्थियों के मोहक उपदेश। ~मामा मोह उहाँ भर-पूरी, **दादुर** दामिनी पवन अपूरी। →र० १६-५।

दादुर—संज्ञा पु० [सं० दर्दुर] मेढक, मोह; अविद्या। ~मूसा खेवट नाव बिलइया, सोवै **दादुर** सर्प पहरिया। →सब० ८६-४।

दादुल—संज्ञा पु० [सं० दर्दुर] मेढक, भ्रम। ~एक ही **दादुल** खायौ पाँच हूँ भुवंगा। →पद ३४३-७।

दावा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव] वन में लगने वाली आग, विषय-वासना। ~तीसर बूड़े पारथि भाई, जिन बन डाहो **दावा** लाई।→र० १२-५।

दिनु—संज्ञा पु० [हि० दिन] अनुभव की प्रौढ़ावस्था। ~रैंनि गई मत **दिनु** भी जाइ।→पद २७८-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिया—संज्ञा पु० [सं० दीपक] दीपक, बाह्याचार।~साँझ सकार **दिया** लै बारैं, खसम छोड़ि सुमिरैं लगवारैं। →र० ७३-४।

दिया—संज्ञा पु० [सं० दीपक] दीपक, प्राण। ~ **दिया** खताना किया पयाना, मन्दिर भया उजार। →र० ६६-१।

दिवस—संज्ञा पु० [सं०] दिन, जीवन। ~**दिवस** थकाँ साँई मिलौं, पीछे पड़िहै राति। →सा० मन० (१३) १६-२।

दीपक—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान। ~ अँधियारे **दीपक** चहिऐ, तब वस्तु अगोचर लहिऐ। →पद ३३६-५, सा० गुरु० (१) ११-२, १२-२।

दीपक—संज्ञा पु० [सं०] शरीर, जीव। ~**दीपक** पावक आँनिया, तेल भि आना संग। →सा० ज्ञान वि० (४) १-१।

दीवैं—संज्ञा पु० [सं० दीपक] दीपक में, शरीर में। ~ कबीर निरभै राम जपु, जब लगि **दीवैं** बाति। →सा० सुमि० (२) १०-१।

दुंदर—संज्ञा पु० [सं० उन्दुर] चूहा, काम, क्रोध, लोभादि विकार।~**दुंदर** बाँधहु सुन्दर पावहु।→पद ३४६-२।

दुंदुर—संज्ञा पु० [सं० उन्दुर] चूहा, अहंकार। ~**दुंदुर** राजा टीका बैंठे, बिखहर करै खवासी। → पद ३००-५।

दुलहा—संज्ञा पु० [सं० दुर्लभ] प्रियतम, ब्रह्म, प्रभु, ईश्वर। ~ अविनासी **दुलहा** कब मिलिहौं, सभ संतन के प्रतिपाल। →सब० २२-१।

दूध—संज्ञा पु० [सं० दुग्ध] आनन्द। ~सुरही चूषै बछतलि, बछा **दूध** उतारै। →सब्र० ५१-७।

देवर—संज्ञा पु० [हि०] राग।~ननद सुहेली गरब गहेली **देवर** कै बिरहि जरउं रे। →पद २३२-४।

देवल—संज्ञा पु० [सं० देवालय] मंदिर, देवालय, शरीर। ~ कबीर **देवल** ढहि पड़ा, इंट भई सैवार। →सा० चिता० (१२) १८-१, सा० रस० (६) ७-२; सा० पर० (५) ४२-१।

देस—संज्ञा पु० [सं० देश] शरीर। ~राजा **देस** बड़ो परपंची, रइयत रहत उजारी। →सब० १५६-४।

देस—संज्ञा पु० [सं० देश] सांसारिक दशा। ~पानी पीया चंचु बिनु, भूलि गया यहु **देस**। →सा० पर० (५) २०-२।

देह—संज्ञा पु० [सं०] शरीर, विलग वैयक्तिक सत्ता। ~दाधी **देह** न पालवै, सद्गुरु गया लगाइ। →सा० ज्ञान वि० (४) ६-२।

दोइ तूँबड़ा—संज्ञा पु० [सं० द्वि+तुंबक] दो तुंबा, सूर्य नाड़ी और चन्द्र नाड़ी, इड़ा-पिंगला। ~धरती अरु असमान बिचि, **दोइ तूँबड़ा** अबध। → सा० मधि० (३१) ११-२।

दोऊ कुल—यौ० [हि०] पितृकुल व श्वसुर कुल, इहलोक व परलोक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलैं हिंडोल। →पद ३४२-८।

दौं—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव] आग, दावाग्नि, ज्ञान बिरह की अग्नि।~दौं लागी सायर जला, पंखी बैठे आइ। →सा० ज्ञान वि० (४) ६-१, ८-१।

दौ—संज्ञा पु० [सं० दाव] दावाग्नि, भव-ताप। ~दौ की दाधी लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार। →सा० काल० (४६) १०-१।

द्यौहड़ें—संज्ञा पु० [सं० देवगृह] देव-गृह, देवालय; मानव-शरीर। ~पुन्नैं पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ। → सा० चिता० (१२) ५९-२।

द्वादस गम को अंतरा—हृदय से बारह अंगुल की पहुँच पर अर्थात् सहस्रार। तन्त्रों के अनुसार हृदय से बारह अंगुल के अन्तर पर सहस्रार में चित्त की स्थिति होती है। तन्त्रों में इसे 'शिवद्वादशान्त' कहते हैं। ~द्वादस गम को अंतरा, तहाँ अमृत कौं ग्रास। →पन ३४२-५।

द्वादस दल—संज्ञा पु० [सं० द्वादश दल] अनाहत चक्र, जिसमें १२ दल होते हैं। तन्त्र के अनुसार पाँच दल पर कवर्ग, पाँच दल पर चवर्ग और शेष दो दलों पर ट, ठ—ये १२ अक्षर अनाहत चक्र के कमल दल पर अभि-व्यक्त होते हैं। इसे मन्त्र कहा गया है। ~द्वादस दल अभिअंतर मंत, जहाँ पउढ़े श्री कंवलाकंत। →सब० ४३-१०।

ध

धजा—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] ध्वजा, नाम। ~जरि गौ कंथा धजा गयौ टूटी, भजि गौ डंड खपर गयौ फूटी। →सब० १२६-४।

धन—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान और आनंद। ~जाचिग दाता इक पाया, धन दिया जाइ नां खाया। →सब० ८-३।

धनि—संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका] पत्नी, जीव। ~पिया अनतें धनि अनते रहई, चौपरि कामरि माथे गहई। →र० १५-२।

धनी—संज्ञा पु० [सं० धनिन्] स्वामी, आत्मा। ~सूरा तबही परषिये, लड़ै धनी कै हेत। →सा० सूरा० (४५) ९-१।

धरती—संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] पृथ्वी, मूलाधार चक्र। ~धरती उलटि अकासहिं ग्रासै, यह पुरिखां कै बानी। → सब० ३२-१२, सब० ४७-७, सब० ११९-७, सब० १५२-२।

धरती—संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] पृथ्वी, मतों को धारण करने वाली बुद्धि। ~धरती बरसै बादर भीजै भींट भए पैराऊं। →पद ३२३-४।

धरनि—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणी] पृथ्वी, मूलाधार चक्र। ~जहाँ धरनि बरसे गगन भीजै, चंद सूरज मेल। → सब० ४५-५।

धरनि—संज्ञा स्त्री [सं० धरणि] पृथ्वी, बुद्धि। ~स्वान बापुरो धरनि ढाकनो;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिल्ली घर की दासी । → पद ३००-६ ।

धवणि—संज्ञा स्त्री० [सं० धमनी] धौंकनी, श्वास-प्रश्वास । ~**धवणि** धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार । →सा० काल० (४६) २१-१ ।

धाना—संज्ञा पु० [हि० धान] धान, आशा । ~सिंह सार्दुल एक हर जोतिन, सींकस बोइन **धाना** । → सब० १५५-२ ।

धिये—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता प्रा० धिया] दुहिता, कन्या, असत् रूपी धी । ~देखहु लोगो हरि की सगाई, माय धरी पूत **धिये** संग जाई । → सब० १५१-१ ।

धूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि] धूल, विषय । ~पानी माँहि तलफि गौ भूभुरि, **धूरि** हिलोरा देई । →पद ३२३-३ ।

धौल—वि० [सं० धवल] धौर, कबूतर के समान श्वेत पक्षी, मोह । ~**धौल** मंदलिया बैल रबाबी कउवा ताल बजावै । →पद ३३१-३ ।

न

नउ घर—संज्ञा पु० [सं० नव + गृह] नौ तत्व—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान । ~**नउ घर** देखि जु कामिनि भूली, वस्तु अनूप न पाई । →सब० ११-७ ।

नगर—संज्ञा पु० [सं०] शरीर । ~**नगर** एक तहँ जीव धरम हत, बसै जु पंच किसानां । →सब० १०-३, सब० ८६-१, सब० ५७-१, सब० २३५-३ ।

नगरिया—संज्ञा पु० दे० 'नगर' ।

नचनियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्तकी] नर्तकी, इन्द्रियाँ । ~ऊपर नचनियाँ करै कोड़, करिगह में दुइ चलै गोड़ । →वसंत (४) ३-५ ।

नटवर—संज्ञा पु० [सं०] श्रेष्ठ नट, परम चैतन्य । ~**नटवर** विद्या खेलै सब घट माहीं, दूसर के लेखा कछु नाहीं । →र० ६८-२ ।

नदियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] इंद्रियाँ । ~समुन्दर लागी आगि, **नदियाँ** जलि कोइला भईं । →सा० ज्ञान० (४) १०-१ ।

नदी—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] कुंडलिनी । ~एक बिरष भीतरि **नदी** चाली, कनक कलस समाइ । → सब० ४५-७ ।

नदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हृदय । ~ बाझ पियालै अंम्रित अँचवै, **नदी** नीर भरि राखै । →सब० ३२-१३ ।

ननद—संज्ञा स्त्री० [हि०] पति की बहिन, मोह । ~**ननद** सुहेली गरब गहेली देवर कै बिरहि जरउँ रे । → पद २३२-४ ।

ननद—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति की बहन, कुमति या अविद्या । ~सासु **ननद** दोउ देत उलाहन, रहहु लाज मुख गोई हो । →कहरा (३) १-२५, कहरा (३) ११-१, सब० १५१-२, पद २६०-५ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननद के बीर—संज्ञा पु० [सं० ननद+वीर] ननद का भाई अर्थात् पति, ब्रह्म । ~अब मोहि ले चल **ननद के बीर** अपने देसा । →सब० १७-१ ।

ननदी—संज्ञा स्त्री० दे० 'ननद' ।

नलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिनी] कमलिनी, जीवात्मा । ~**नलनी** सायर घर किया, दव लागी बहुतेन । →सा० माया० (१६) २२-१ ।

नलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलिनी, जीव । ~काहे रे **नलिनी** तूं कुम्हिलानी ।→सब० ८३-१ ।

नली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नलिका, ढरकी के भीतर की नली, जिस पर तार लपेटा रहता है, शरीर । ~छोछी **नली** कांम नहिं आवै लपटि रही उरझाई ।→पद० २७१-६ ।

नवग्रह—संज्ञा पु० [सं०] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अंतःकरण चतुष्टय । ~**नवग्रह** मारि योगिया बैठे, जलमहिं बिंब प्रकासै ।→सब० ३२-४ ।

नव नारी—[यौ०] अन्तःकरण चतुष्टय, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । ~एक न जरै जरै **नव नारी**, जुवित न काहू जानी ।→सब० १५७-४ ।

नवल—संज्ञा पु० [सं० नकुल] नेवला, साधक का चित्त । ~ऐसा **नवल** गुंनी भया, सारदूलहिं मारै ।→सब० ५१-८ ।

नाँव—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका] नौका, शरीर । ~कागद केरी **नाँव** री, पानी केरी गंग । → सा० मन० (१३) २१-१ ।

नाइकु—संज्ञा पु० [सं० नायक] नायक, शुद्धात्म तत्व । ~**नाइकु** एकु बनिजारै पांच बरध पचीस क संगु कांच ।→पद २३६-३ ।

नागफाँस—संज्ञा पु० [सं० नागपाश] काम, क्रोध आदि बन्धन । ~**नागफाँस** लीये घट भीतर, मूसिन सब जग झारी ।→पद २६१-६ ।

नागिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नागिनि] सर्पाकार कुण्डलिनी । ~प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत **नागिनी** जागी । →पद २०१-८ ।

नाद विंद—यौ० [सं० नाद विन्दु] ब्रह्म की सृष्टि-उन्मुखता के उल्लास के स्पन्द को नाद कहते हैं । यह ज्योति और ध्वनि दोनों की अव्यक्त अवस्था है । इसी नाद को परावाक्, परावाणी, कुलकुण्डलिनी, मातृका आदि भी कहते हैं । शैवागम में इसी नाद को आतममाया, महामाया योगमाया आदि भी कहा गया है । कहीं-कहीं पर इसे परासंवित और प्रतिभा भी कहा गया है । यह एक शक्ति है । जब यह घनीभूत होती है तब विन्दु के रूप में व्यक्त होती है । इसी बिन्दु में सारी सृष्टि समाविष्ट है । जैसे मनुष्य के 'बिंदु' में शरीर के सभी अवयव सम्भाव्य रूप में निहित रहते हैं, उसी प्रकार 'बिंदु' में सारी सृष्टि सम्भाव्य रूप में निहित रहती है । ~**नाद विंद** की नाव री, राँम नाम कनिहार ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

→पद ३४२-११, पद ५०-६; पद १०७-२ ।

नाद विंदु—यौ० दे० 'नाद विंद' ।

नारि—संज्ञा स्त्री० [सं० नारी] स्त्री, अविद्या । ~जारौं माँग मैं तासु **नारि** की, जिन सरवर रचल धमारी ।→पद २२२-३ ।

नारि—संज्ञा स्त्री० [सं० नारी] स्त्री, माया । ~**नारि** एक संसारहिं आई, माय न वाके बाप न जाई ।→र० ७२-१ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया, लक्ष्मी या शक्ति । ~अर्थ बिहूना सँवरै **नारी**,परजा सँवरै पुहुमी झारी ।→र० ६-५, सब० २६-२; र० २-१ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री; भक्ति । ~**नारी** एक पुरुष दुइ जाए, बूझो पंडित ज्ञानी ।→पद ३०१-२ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राण । ~रह्यौ समाइ पंच तजि **नारी** । →सब० १२६-२ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री, कुबुद्धि । ~ राति दिवस मिलि उठि उठि लागै, पाँच ढोटा एक नारी । → पद २६६-२ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री, कुण्डलिनी ।~कुंभ लिए ठाढ़ी पनिहारी, गुन बिन नीर भरै कैसे **नारी** ।→पद ३११-४ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री, सुरति । ~चली जात देखी एक **नारी**, तर गागरि ऊपर पनिहारी । → र० ७३-१ ।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी; इच्छा या माया । ~ एकै पुरुष एक है **नारी**, ताते रचेउ खानि भौ चारी । →र० २७-६ ।

नालि—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल] कमल आदि फूलों की डंडी, सम्पर्क,निकट । ~तेरे ही **नालि** सरोवर पानी ।→ सब० ८३-२ ।

नाव—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका] नौका, विषय समूह । ~मीन जाल भौ ई संसारा, लोह क **नाव** पषान क भारा । →र० ४५-५ ।

नाव—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका] नौका, शरीर । ~ कबीर **नाव** जरजरी, कूड़े खेवनहार । → सा० चिता० (१२) ६२-१ ।

नाहर—संज्ञा पु० [सं० नखरायुध] सिंह, जीव ।~माइ **नाहर** खाइओ हरिनि खायी चीता ।→पद ३४३-३ ।

निकुंज—संज्ञा पु० [सं०] विषय-वासना रूपी निकुंज वन ।~तेहि वियोग ते भया अनाथा, परि निकुंज बन पाव न पाथा । →र० ६८-१ ।

निझरुहि—संज्ञा पु० [सं० निर्झर] निर्झर, झरना, ब्रह्म । ~ **निझरुहि** नीरु जानि परिहरिया, करम क बाँधल लालच करिया ।→र० २६-२ ।

निधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोष, परमानंद । ~निहचल **निधि** मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर । →सा० गुरु० (१) ३०-१ ।

निरंजन—वि० [सं०] मायारहित शुद्ध चैतन्य पद । ~कहैं कबीर जे हरि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस भोगी, ताको मिला **निरंजन** जोगी। →सब० १४-६।

निरंजन—वि० [सं०] कालिमा या अंजन रहित। अंजन या कालिमा से तात्पर्य है—त्रिगुण। अतः निरंजन का तात्पर्य है–त्रिगुणातीत, निर्गुण सत्ता। ~चाँद बिहूना चाँदिना, अलख **निरंजन** राइ। →सा० पर० (५) १५-२।

निरति—संज्ञा स्त्री० [सं० नि + रति] निरतिशय रूप से नाद ब्रह्म में लय; निरति-सुरति की चरमावस्था है, यह निरालंब स्थिति है, सहज स्थिति है। ~सुरति **निरति** परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार। →सा० पर० (५) २२-२।

निरालम्ब—वि० [सं० निर् + आलम्ब] आलम्बन रहित, निर्विकल्प, शून्य। ~बलिहारी ता पुरुष की **निरालम्ब** जो होति। →र० ६-७।

निर्मल नीर—संज्ञा पु० [सं०] भगवद्-भक्ति का रस। ~कया कमण्डल भरि लिया, उज्ज्वल **निर्मल नीर**। →सा० लाँबि० (७) १-१।

निस—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] निशा, अज्ञान। ~उदया सूर **निस** किया पयाँना, सोवत थैं जब जागा। → सब० १३-६।

निसि अँधियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा + अन्धकार] अज्ञान की अन्धेरी रात। ~**निसि अँधियारी** मिटि गई, बाजे अनहद तूर। → सा० पर० (५) ४३-२।

नीझर—संज्ञा पु० [सं० निर्झर] झरना; सहस्र दल। ~अनहद बाजै **नीझर** झरै, उपजै ब्रह्म गियान। →सा० पर० (५) ४४-१।

नार—संज्ञा पु० [सं०] जल, ज्ञानामृत। ~**नीर** पियावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि। →सा० विर्क० (३७) ७-१।

नीर—संज्ञा पु० [सं०] जल, स्वरूपानन्द। ~बाझ पियाले अंम्रित अँचवै, नदी **नीर** भरि राखै। → सब० ३२-१३।

नीर—संज्ञा पु० [सं०] जल, मानस। ~आगि जु लागी **नीर** महिं, कांदौ जरिया झारि। → सा० ज्ञान वि० (४) ५-१।

नीर—संज्ञा पु० [सं०] जल, अमृत-रस, सोमरस। ~उलटी गंग **नीर** बहि आया, अमृत धार चुवाई। → पद २०१-६।

नीर—संज्ञा पु० [सं० नीर] अमृत-रस। ~ऊपरि नीर लेज तलिहारी कैसे **नीर** भरै पनिहारी। →सब० १५०-३।

नीरु—संज्ञा पु० [सं० नीर] जल, भवसागर, जगत्। ~निझरुहि **नीरु** जानि परिहरिया, करम क बाँधल लालच करिया। →र० २६-२।

नौ मन सूत—[यौ०] तागा, बन्धन [पंच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध + तीन गुण—सत्व, रजस्, तमस् + मन]। ~**नौ मन सूत** अरुझि नहिं सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा। →सब० १३४-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नौवा—संज्ञा पु० [सं० नाविक] नाविक, जीवात्मा। ~नित उठि **नौवा** नाव चढतु है, बेरहिं बेरा बोरै हो। → कहरा (३) २-४।

प

पंखि—संज्ञा पु० [सं० पक्षिन्] पक्षी, जीवात्मा। ~**पंखि** उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस। →सा० पर० (५) २०-१।

पंखि—संज्ञा पु० [सं० पक्षिन्] पाँच इन्द्रियाँ और मन। ~जिहि बन सीह न सचरै, **पंखि** उड़ै नहिं जाइ। →सा० लै० (१०) १-१।

पंखि—संज्ञा पु० [सं० पक्षिन्] पक्षी, जीव। ~देवल बूड़ा कलस सों, **पंखि** तिसाई जाइ। →सा० रस० (६) ७-२।

पंखी—संज्ञा पु० [सं० पक्षिन्] सिद्धों और योगियों द्वारा मुक्ति या परमार्थ के तीन मार्ग बताए गए हैं—पिपीलिका मार्ग, मीन मार्ग और विहंगम मार्ग। विहंगम मार्ग के दो प्रमुख लक्षण हैं—१. गन्तव्य स्थान तक उड़कर पहुँचना और २. गमन का पदचिह्न न होना। यहाँ पक्षी की उड़ान के द्वारा सद्यः मुक्ति का संकेत किया गया है और द्वितीय लक्षण द्वारा आतमा के परमात्मा तक गमन की रहस्यात्मकता व्यक्त की गई है। ~**पंखी** का खोज मींन का मारग, कहै कबीर बिचारी।→ सब० ३७-७।

पंखी—संज्ञा पु० [सं० पक्षी] हंस; जीवात्मा।~दौं लागी सायर जला, **पंखी** बैठे आइ। →सा० ज्ञान वि० (४) ६-१, सा० पर० (५) २०-१।

पंखी—संज्ञा पु० [सं० पक्षी] पक्षी, जीव। ~ ऊँचा बिरिख अकासि फल, **पंखी** मूए झूरि। → सा० सूरा० (४५) १७-१, सा० रस० (६) ७-२।

पंखी—संज्ञा पु० [सं० पक्षी] मुक्त जीव। ~सीतल छाया सघन फल, **पंखी** केलि करंत। → सा० सजी० (४७) ६-२।

पंखी—संज्ञा पु० [सं० पक्षी] सामान्य जीव। ~ **पंखी** चले दिसावराँ; बिरषा सुफल फलंत। → सा० सजी० (४७) ७-२।

पंखेरू—संज्ञा पु० [सं० पक्षालु] पक्षी, सांसारिक लोग। ~और **पँखेरू** पी गए, हंस न बोरै चंच। →सा० माया० (१६) ३०-२।

पंच जने—यौ० [सं० पञ्च जन] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। दे०'पंच पनिहारी'।~**पंच जने** सो संग करि लीन्हें, चलत खुमारी लागी। →पद २०१-७।

पंच पनिहारी—[यौ०] पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। दे० 'पंच जने'। ~ऊध्यौ कूप घाट भयौ भारी, चली निरास **पंच पनिहारी**। →सब० १५०-४।

पंच पहरवा—यौ० [सं० पञ्च प्रहरी] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। दे० 'पंच पनिहारी'।~**पंच पहरवा** सोइ गए हैं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बसतैं जागन लागीं। → पद २१८-५।

पंथी—संज्ञा पु० [सं० पंथिन्] यात्री, जीवात्मा। ~**पंथी** ऊभा पंथ सिरि, बगुचा बाँधा पूठि। →सा० काल० (४६) २२-१।

पखान—संज्ञा पु० [सं० पाषाण] अज्ञानी जीव। ~ पानी मँह **पखान** की रेखा, ठोंकत उठै भभूका। →सब० १६१-२।

पचूँ भइया—[यौ०] पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। दे० 'पंच पनिहारी'। ~**पचूँ भइया** भए सनमुखा, तब यहु पान करीला। →सब० १५४-६।

पछिम दिसा—संज्ञा स्त्री० [सं० पश्चिम दिशा] सुषुम्ना। ~सिव सक्ती दिसि को जुवै, **पछिम दिसा** उठै धूरि। →सा० पर० (५) ४६-१।

पछेवरा—संज्ञा पु० [सं० पक्षपट, प्रा० पच्छवड़] चादर, शरीर। ~ओढ़न हमरै एक **पछेवरा** लोक बोलैं इकताई हो। →पद २३७-६।

पतंग—संज्ञा पु० [सं०] शलभ, विषय-वासना। ~तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं **पतंग**। → सा० ज्ञान वि० (४) १-२।

पताल—संज्ञा पु० [सं०पाताल] मूलाधार चक्र। ~सांधै तीर **पताल** कौं, फिरि गगनहिं मारै। → सब० ५२-४।

पत्री—संज्ञा पु० [सं० पत्रिन् ?] पक्षी, जीव। ~छव त्रछी **पत्री** जुग चारी, फल दुइ पाप पुन्य अधिकारी। → र० ८२-२।

पदारथ—संज्ञा पु० [सं० पदार्थ] पदार्थ, भक्ति। ~पाइं **पदारथ** पेलि करि, कंकर लीन्हा हाथि। →सा० अपा० (४८) १-१।

पनिआँ—संज्ञा पु० [सं० पानीय] जल, प्रपंच। ~**पनिआँ** महिं पावक जरै अंधै आँखिन सूझै। →पद ३४३-२।

पनिहारि—संज्ञा स्त्री० [हि० पानी + भरना] पानी भरने वाली, कुंड-लिनी, जिह्वा। ~आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले **पनिहारि**। → सा० पर० (५) ४५-१, पद पद ३११-४।

पनिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पनिहारिन्] जल भरने वाली, सुरति। ~चली जात देखी एक नारी, तर गागरि ऊपरि **पनिहारी**। →र० ७३-१।

पनिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पनिहारिन्] पानी भरने वाली, प्राण शक्ति। ~ ऊपरि नीर लेज तलिहारी, कैसे नीर भरै **पनिहारी**। →सब १५८-३।

परचा—संज्ञा पु० [सं० परिचय] परि-चय, पहचान, ब्रह्म से साक्षात्कार। →सा० पर० (५)।

परबत—संज्ञा पु० [सं० पर्वत] विषय। ~चींटी **परबत** उखारिया, लै राख्यौ चौड़े। →सब० ५१-५।

परबत—संज्ञा पु० [सं० पर्वत] पर्वत, जीवात्मा। ~कहै कबीर सुनहु रे संतो गड़री **परबत** खावा। →पद ३३१-७।

परम पुरुष—संज्ञा पु० [सं०] पुरुषोत्तम भगवान्। ~ताहि न कबहूँ आदरै,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परम पुरुष भरतार। →सा० सुन्द० (५२) २-२।

परोसिनि—संज्ञा स्त्री० [हि० पड़ोसिन] विषयासक्ति। ~हार हिराँनी जन विमन कीन्ह, मेरो आहि **परोसिनि** हार लीन्ह। →पद २३४-७।

परोसिनि—संज्ञा स्त्री० [हि० पड़ोसिनि] पड़ोसी, कर्मेन्द्रियाँ। ~पार **परोसिनि** करौं कलेवा, संगहि बुधि महतारी। →पद २२२-५।

पर्वत—संज्ञा पु० [सं०] मन। ~बिना पवन जहँ **पर्वत** उड़ै, जीव-जंतु सब बिरछा बूड़ै। →सब० १५२-३।

पलानियाँ—क्रि० [सं० पल्याण] जीन कस दिया, एकाग्रचित्त हो गया। ~कबीर तुरी **पलानियाँ**, चाबुक लीया हाथि। →सा० मन० (१३) १३-१।

पल्लव—संज्ञा पु० [सं०] मोह आदि। ~गत फल फूल तत तरु **पल्लव**, अंकुर बीज नसाँनाँ। →सब० १५८-२।

पवन—संज्ञा पु० [सं०] प्राणतत्त्व; प्राणशक्ति। ~सोलह मंझै **पवन** झकोरै, आकासे फल धरिया। → सब० १२-६।

पवनपति—संज्ञा पु० [सं०] प्राण। प्राण—शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—सामान्य और विशेष। इसका सामान्य अर्थ है प्राणतत्त्व। विशेष अर्थ में क्रिया के अनुसार प्राण, अपान, आदि भी प्राण कहलाते हैं। यहां 'पवन पति' प्राण तत्व के लिए आया है। ~**पवनपति** उनमनि रहनु खरा। →सब० १७१-१।

पषान—संज्ञा पु० [सं० पाषाण] सकाम कर्म। ~मीन जाल भौ ई संसारा, लोह क नाव **पषान** क भारा। → र० ४५-५।

पषानक ताला—संज्ञा पु० [सं० पाषाण + तालक] जड़ बुद्धि या अज्ञान का ताला, विषयासक्त मन। ~माटिक कोट **पषानक ताला**, सोई बन सोई रखवाला। →र० १२-१।

पसेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० पाँच + सेर + ई (प्रत्य०)] पाँच सेर का बाट, इन्द्रियाँ। ~सेर **पसेरी** पूरा कैले, पासंग कतहुँ न जाई हो। → कहरा (३) ४-६।

पहरुवा—संज्ञा पु० [सं० प्रहरी] रक्षक, ज्ञानेन्द्रियाँ। ~पंच **पहरुवा** दर मँहि रहते, तिनका नहीं पतिआरा। → सब० ११-५।

पहरू—संज्ञा पु० [सं० प्रहरी] पहरेदार, आतमा। ~सहर जरै **पहरू** सुख सोवै, कहै कुसल घर मेरा। → सब० १५७-५।

पहाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० पहाड़ + ई (प्रत्य०)] शून्य-शिखर। ~बन कै ससै समंद घर कीया, मंछा बसै **पहाड़ी**। →सब० ३०-३।

पाँच कुटुंब—संज्ञा पु० [सं०] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। दे० 'पाँचौ थानां'। ~**पाँच कुटुंब** मिलि जूझन लागे, बाजन बाजु घनेरे। →सब० ४४-४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाँच लदनुवा—[यौ०] पाँच लादने वाले अर्थात् पञ्चतत्व। ~**पाँच लदनुवा** लादि चलै हो रमैया राम। →बेलि (६) १-२१।

पाँच हाथ—[यौ०] पाँच तत्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। ~एक वड़ी जाके **पाँच हाथ**, पाँचहु के पचीस साथ। →वसंत (४) ७-२।

पाँचौ थांनां—यौ० [हि० पाँच स्थान] पश्च ज्ञानेन्द्रियाँ। ~जब बस कियौ **पाँचौ थांनां**, तब रांम भया मिहरवांना। →पद २०५-६।

पांडुर—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का साँप, अज्ञान। ~ऐसो हरि सो जगत लरतु है, **पांडुर** कतहूँ गरुड़ धरतु है। →सब० ६२-१।

पांनी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] जल, भक्ति। ~मुर्गी मिनकी सों लड़ै, झल **पांनी** दौडे। →सब० ५१-६।

पांनी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] जल विषयासक्त मानस। ~**पांनी** मांहीं परजली, भई अपरबल आगि। → सा० ज्ञान वि० (४) ६-१।

पाट—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] पटिया, शिला; वासना। ~अपने सैयाँ के वांधौं **पाट**, लै बेचौंगी हाटै हाट। →वसंत (४) ६-४।

पाट—संज्ञा पु० [सं० पट्ट] वस्त्र, शरीर। ~सात सूत दै गंड बहत्तरि **पाट** लागु अधिकाई।→पद२७१-४।

पाताल—संज्ञा पु० [सं०] मूलाधार चक्र।~सद पांनी **पाताल** का, काढ़ि कबीरा पीव। →सा० उप० (५०) ५-१।

पाताले—संज्ञा पु० [सं०] पाताल में; मूलाधार चक्र में। ~आकासे मुखि औंधा कुआँ, **पाताले** पनिहारि। → सा० पर० (५) ४५-१।

पाती पंच—संज्ञा स्त्री० यौ० [सं० पत्र पश्च] पंच पत्र, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। ~**पाती पंच** पुहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा। →सब० ५६-३।

पान—संज्ञा पु० [सं० पर्ण] ताम्बूल, विषय भोग। ~दाँत गैल मोर **पान** खात, केस गैल मोर गंग नहात। →बसंत (४) ४-२।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] जल, विषय भोग। ~ बासी भात मनुसें लीहल खाय, बड़ा घैल लै **पानी** के जाय। →वसंत (४) ६-३।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] उपदेश। ~**पानी** मँह पखान की रेखा, ठोंकत उठै भभूका।→सब०१६१-३।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] पानी, सुख व शान्ति। ~पाहन फोरि गंग एक निकरी, चहुँ दिसि **पानी पानी**। →पद ३०१-३।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] वीर्य। ~वहि माखी को माखा नाहीं, गर्भ रहा बिनु **पानी**। →पद ३०१-६।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] शांति; आनन्द। ~**पानी** माँहि तलफि गौ भूभुरि, धूरि हिलोरा देई। →पद ३२३-३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पानी—संज्ञा स्त्री० [सं० पानीय] वायु। ~ पुहुमी क **पानी** अंमर भरिया, ई अचरज को बूझै। → सब० १४४-७।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] जल, आध्यात्मिक आनन्द। ~**पानी** पीया चंचु बिनु, भूलि गया यहु देस। → सा० पर० (५) २०-२।

पानी—संज्ञा पु० [सं० पानीय] जल, शान्ति। ~घूरि घूरि बरखा बरसावै, परिया बूंद न **पानी**। →पद १६६-२।

पार—संज्ञा पु० [हि०] दूर वाले, प्रकृति ~**पार** परोसिनि करौं कलेवा, संगहि बुधि महतारी।→पद २२२-५।

पारथ—संज्ञा पु० [सं० पारधी] पारधी, शिकारी, जीव। ~ घर घर साउज खेलै अहेरा, **पारथ** ओटा लेई। → पद ३२३-२।

पारथ—संज्ञा पु० [सं० पारधी] पारधी, शिकारी, सद्‌गुरु का उपदेश। ~ संसय मिरगा तन बन घेरे, **पारथ** बाना मेलै। →पद १६६-७।

पारथहिं—संज्ञा पु० [सं० पारधी] शिकारी को, मन को। ~उलिटा बान **पारथहिं** लागै, यहु अचिरज कोई बूझै। →सब० ३२-६।

पारथि—संज्ञा पु०[सं० पारधी] शिकारी, बहेलिया, बधिक। मन। ~ तीसर बूड़े **पारथि** भाई, जिन बन डाहो दावा लाई। →र० १२-५।

पारधी—संज्ञा पु० [सं०] शिकारी, जीवात्मा। ~रोहै मिरिग ससा बन हांकै **पारधी** बांन न मेलै। →सब० ४४-५।

पारस—संज्ञा पु० [सं० स्पर्श] पत्थर विशेष, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है, ब्रह्म। ~कबीर सुपनैं रैनि कै, **पारस** जीय मैं छेक। → सा० चिता० (१२) २३-१।

पावक—संज्ञा पु० [सं०] आग, कुंडलिनी। ~करनी किया करम का नास, **पावक** माँहि पुहुप परकास। →सब० ४७-३।

पावक—संज्ञा पु० [सं०] अग्नि, आध्यात्मिक ज्ञान। ~पनिआँ महिं **पावक** जरै अंधे आँखिन सूझै। → पद ३४३-२।

पाहन—संज्ञा पु० [सं० पाषाण, प्रा० पाहाण] प्रस्तर, शुष्क अन्तःकरण। ~**पाहन** फोरि गंग एक निकरी, चहुँ दिसि पानी पानी।→पद ३०१-३।

पाहन—संज्ञा पु० [सं० पाषाण]पत्थर; समाधि लगाने वाले लोग। ~**पाहन** होयके सब गये, बिनु भितियन को चित्र। →र० ५६-४।

पिंजर—संज्ञा पु० [सं० पिञ्जर] पिंजड़ा, शरीर। ~**पिंजर** प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत। →सा० पर० (५) १३-१, सा० पर० (५) १४-१।

पिछौरा—संज्ञा पु० [सं० पक्षपट] दुपट्टा, प्रकृति। ~ओढ़न मेरा एक **पिछौरा**, लोग बोलैं एकताई हो। →कहरा (३) १०-२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिता—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म। ~**पिता** के संगहि भई बावरी, कन्या रहलि कुँवारी। →पद २६०-२।

पिपराही—संज्ञा पु० [हि० पीपर+आही] पीपल का वन, कामना। ~राही लै **पिपराही** बही, करगी आवत काहु न कही।→र० १०-१।

पिया—संज्ञा पु० [सं० प्रिय] प्रिया, ईश्वर, परमात्मा। ~**पिया** अनते धनि अनते रहई, चौपरि कामरि माथे गहई। →र० १५-२।

पियादे—संज्ञा पु० [फ़ा० प्यादा] पदाति, पैदल सेना, काम, क्रोध,मद, मोह, लोभ आदि मन की प्रवृत्तियाँ। →पंच **पियादे** पारि कै, दूरि करै सब दूज। → सा० सूरा० (४५) ३-२।

पुत्र—संज्ञा पु० [सं०] मन। ~संतो अचरज एक भौ भारी, **पुत्र** धरल महतारी। →पद २६०-१।

पुरइन—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटकिनी] कमलपत्र, नेत्र। ~सूखे ताल **पुरइन** जल छाँड़े, कमल गए कुम्हिलाय। →पद ३२२-३।

पुरता—संज्ञा पु० [सं० पुर+हि० ता] शरीर। ~**पुरता** में राती है गइया, स्वेत सींग है भाई।→पद २०६-६।

पुरिख—संज्ञा पु० [सं० पुरुष] चैतन्य पुरुप, ब्रह्म। ~तातैं भई **पुरिख** तैं नारी। →सब० २६-२।

पुरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० पूरना] पूरना, वह नली जिस पर जुलाहे बाने को बुनने के पहले फैलाते हैं, शरीर, शरीर के अंग। ~गज नव गज दस उनइस की **पुरिया** एक तनाई। →पद २७१-३, वसंत (४) ३-२, सब० १५७-६।

पुरुष—संज्ञा पु० [सं०] सत्पुरुष, परमात्मा। ~एकै **पुरुष** एक है नारी, ताते रचेउ खानि भौ चारी। →र० २७-६।

पुहुप—संज्ञा पु० [सं० पुष्प] कमलदल चक्र। ~तरवर एक अनंत डार साखा **पुहुप** पत्र रस भरिया। →सब० ११६-३, ५।

पुहुप—संज्ञा पु० [सं० पुष्प] पुष्प, चक्र-कमल। ~करनी किया करम का नास, पावक माँहि **पुहुप** परकास। →सब० ४७-३।

पुहुप—संज्ञा पु० [सं० पुष्प] पुष्प, वासना। ~पाती पंच **पुहुप** करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा। →सब० ५६-३।

पुहुप—संज्ञा पु० [सं० पुष्प] पुष्प, शून्य-चक्र। ~कदली **पुहुप** दीप परकास; ह्रिदा पंकज महि लिया निवास। →सब० ४३-६।

पूंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूंज] मूल-धन, आध्यात्मिक ज्ञान। ~झूठा बनिज कियो झूठे सो, **पूंजी** सब्रन मिली हारी। →सब० १५६-२।

पूत¹—संज्ञा पु० [सं० पुत्र] पुत्र, जीव। ~बाप **पूत** की एकै नारी, ओ एकै माय बिआय। →र० १-६, पद ३००-४, सब० १६८-४, सब० १५१-१, वसंत (४) ४-५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूत²—संज्ञा पु० [सं० पुत्र] पुत्र, साधक। ~पहिलैं **पूत** पिछै भई माई, चेला कै गुर लागै पाई। →सब० ४८-३, सब० ८-८।

पूति—संज्ञा पु० दे० 'पूत'²।

पूरब—संज्ञा पु० [सं० पूर्व] सामने। ~**पूरब** दिसा हंस गति होई, है समीप सँधि बूझै कोई। →र० ५-६।

पेड़—संज्ञा पु० [हि०] वृक्ष, मूल। ~इहै **पेड़** उतपति परलय का बिखया सबै बिकारी। →सब० १५६-७।

पेड़—संज्ञा पु० [हि०] वृक्ष, मूल तत्व। ~बाबा **पेड़** छाड़ि सब डाली लागे, मूढ़े जंत्र अभागे। →सब० १८६-१

प्रकट—वि० [सं०] प्रकट, दृश्य, स्थूल शरीर। ~गुप्त **प्रकट** है एकै दूधा, काको कहिए ब्राह्मन सूदा। → र० २६-७।

प्रवालै—संज्ञा पु० [सं० प्रवाल] मूंगा, भक्ति। ~रतन **प्रवालै** परम जोति, ता अंतरि अंतरि लागे मोति। → पद २३४-४।

फ

फल—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मानुभूति, रामरस (कबीर के शब्दों में)। ~बहुत सयाँने पचि मुए, **फल** निरमल पैं दूरि। ~सा० सूरा० (४५) १७-२।

फल—संज्ञा पु० [सं०] योग क्षेम। ~सीतल छाया सघन **फल**, पंखी केलि करंत। →सा० सजी० (४७) ६-२।

फल—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म। ~साखा पेड़ फूल **फल** नाँही, ताकी अमृत बाँनी। →सब० १२-४।

फल—संज्ञा पु० [सं०] मोक्ष। ~**फल** अलंकृत बीज नहिं बोकला, सुख पंछी रस खायो। →सब० ८८-२।

फलफूल—यौ० [हि०] विषय भोग। ~गत **फलफूल** तत अरु पल्लव, अंकुर बीज नसाँनाँ। →सब० १५८-२।

फुलवा—संज्ञा स्त्री० [हि० फुल्ल] जीव। ~**फुलवा** भार न लै सकै, कहै सखिन सो रोय। →र० १५-३।

फुलवा—संज्ञा पु० [सं० फुल्ल] पुष्प, भोग्य-विषय, पदार्थ। ~मैं कासे कहौं को सुने पतिआय, **फुलवा** के छुअत भँवर मरि जाय। →पद २३६-१।

फुलवारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] पुष्पवाटिका, सृष्टि। ~ आपुहि मूल फूल **फुलवारी**, आपुहि चुनि चुनि खाई। →पद २६१-८।

फूल—संज्ञा पु० [सं० फुल्ल] नाना प्रकार के कर्म। ~आपुहि मूल **फूल** फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई। →पद २६१-८।

फूल—संज्ञा पु० [सं० फुल्ल] ज्ञान, मोक्ष, आनन्द। ~तलि करि साखा उपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे **फूल**। →सब० ४८-६।

फूल—संज्ञा पु० [सं० फुल्ल] काम या वासना। ~**फूल** एक भल फूलल बिरहुली, फूलि रहल संसार बिरहुली। →बिरहुली (७) ७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फूला—संज्ञा पु० [सं० फुल्ल] पुष्प, कुसुम, जन्म । ~तहिया होत कली नहिं फूला, तहिया होत गर्भ नहिं मूला । →र० ७-२ ।

ब

बंकनालि—यौ० [सं० वक्रनालि] वक्र-नाल-पीयूषिका ग्रन्थि से एक वक्र-नालिका तालुस्थान तक आई है जिसे बंकनाल कहते हैं । इसके अन्य नाम हैं—राजदन्त तथा शंखिनी । इसी नालिका के माध्यम से अमृतरस तालु में स्थित एक अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र तक आता है । इसी छिद्र को सन्तों ने दशमद्वार या दसवांद्वार कहा है । ~ग्यांन मेषली सहज भाइ, **बंक-नालि** कौ रस खाइ ।→पद ३२१-६, पद ३४२-३, पद २६-२ ।

बकुला—संज्ञा पु० [सं० वक] बगुला, मन । ~भैसिन्ह माँह रहत नित **बकुला**, तकुला ताकि न लीन्हा हो । →कहरा (३) २-८ ।

बग—संज्ञा पु० [सं० वक] बगुला, श्वेत केश । ~भँवर उड़े **बग** बैठे आइ । →पद २७८-२ ।

बगाँ—संज्ञा पु० [सं० वक] बगुला, विषयासक्त जीव । ~जोरी बिछुरी हंस की, पड़े **बगाँ** कै साथि । → सा० अपा० (४८) १-२ ।

बगुचा—संज्ञा पु० [दे०] बोझ, गठरी, कर्मों का लेखा । ~पंथी ऊभा पंथ सिरि, **बगुचा** बांधा पूठि । →सा० काल० (४६) २२-१ ।

बगुला—संज्ञा पु० [सं० वक] कपटी गुरु । ~कागा कापड़ धोवन लागे, **बगुला** क्रीपहि दाँता । → सब० १५५-४ ।

बगुला—संज्ञा पु० [सं० वक] अज्ञानी जीव । ~**बगुला** मंझन जांनई, हंसा चुनि चुनि जाइ । →सा० पारि० (४६) २-२ ।

बगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० वक] मादा बगुला, माया । ~ **बगुली** नीर बिटालिया, सायर चढ़ा कलंक ।→ सा० माया० (१६) ३०-१ ।

बछरहिं—संज्ञा पु० [सं० वत्स] बछड़े को, इन्द्रियों को ।~बैल बियाइ गाइ भई बांझ, **बछरहिं** दूहै तीनउँ साँझ । →सब० ८६-३ ।

बछरुवै—संज्ञा पु० [सं० वत्स] बछड़े को, जीव को । ~हंसा संसय छूरी कुहिया, गइया पिये **बछरुवै** दुहिया । →पद ३२३-१ ।

बछा—संज्ञा पु० [सं० वत्स] बछड़ा, आत्मबोध । →सुरही चूषै बछतलि, **बछा** दूध उतारै । →सब० ५१-७ ।

बजावनहार—संज्ञा पु० [हि० बजाना + हार (प्रत्य०)] बजाने वाला व्यक्ति, प्राण । ~जंत्र बिचारा क्या करै, चला **बजावनहार** । → सा० काल० (४६) २०-२ ।

बटाऊ—संज्ञा पु० [हि० बाट + आऊ (प्रत्य०)] साधना मार्ग के पथिक । ~लोग **बटाऊ** चलि गए, हँम तुम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहे निदाँन। →सा० सूरा० (४५) ३३-२।

बटेरै—संज्ञा स्त्री [सं० वर्तक] बटेर नामक चिड़िया; अज्ञान। ~काग लंगर फांदिया **बटेरै** बाज जीता। →पद ३४३-४।

बढ़ैया—संज्ञा पु० [सं० वर्द्धकि; प्रा० बड्ढइ] बढ़ई, कर्ता, ईश्वर। ~ जौ चरखा जरि जाइ **बढ़ैया** ना मरै। →पद २३५-६।

बदरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० बादल] बदली, अज्ञान, मोह की काली घटा। ~उनई **बदरिया** परिगौ संझा, अगुआ भूले बनखंड मंझा। →र० १५-१।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] हृदय। ~ बाँवरिया **बन** मैं फँद रोपै संग मैं फिरै निचीता रे। →पद २६३-७।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] घर। ~ कबिरा तेरो **बन** कंदला में, मानु अहेरा खेलै। →सब० ६५-१।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] जीवन। ~ रोहै मिरिग ससा **बन** हांकै, पारधी बांन न मेलै। →सब० ४४-५।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] विषय-वासना। ~मैं तोहि बरजेउं बार बार; तैं **बन बन** सोध्यो डार डार। →सब० १०६-३।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] अन्त. करण। ~जब लगि सिंह रहै **बन** मांहि; तब लगि यहु बन फूलै नाहिं। → सब० ५३-५।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] जंगल, मनोदेहात्मक क्षेत्र। ~जा **बन** में क्रीला करी, दाझत है **बन** सोइ। → सा० ग्या० वि० (४) ८-२।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] शरीर, संसार। ~ माटिक कोट पषानक ताला, सोई **बन** सोई रखवाला। → र० १२-१।

बन—संज्ञा पु० [सं० वन] शरीर। ~ **बन** कै ससै समंद घर कीया, मंछा बसै पहाड़ी। →सब० ३०-३, सब० १५५-७।

बन—संज्ञा पु० [सं०] शून्यावस्था, आत्मतत्व का साक्षात्कार। ~ जिहि **बन** सीह न संचरै, पंखि उड़ै नहिं जाइ। →सा० लै० (१०) १-१।

बनखंड—संज्ञा पु० [सं०] जंगल के बीच, वेद पुराण के भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों का विकट जाल, जिनमें फँसकर ठीक रास्ता मिलना कठिन है। ~उनई बदरिया परिगौ संझा, अगुआ भूले **बनखंड** मंझा। →र० १५-१।

बनखंडि—संज्ञा पु० [सं० वनखंड] बन, जंगली प्रदेश, विषय-वासना। ~ घसि चंदन **बनखंडि** बारा, बिनु नैंनन रूप निहारा। →सब० ८.७।

बनराइ—संज्ञा पु० [सं०] बनराजि; अन्तःकरण। ~पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई **बनराइ**। →सब० ४५-८।

बनसपती—संज्ञा स्त्री० [सं० वनस्पति] जंगल, संसार। ~**बनसपती** जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लागै आगि, तब भँवरा कहाँ जैही भागि। →सब० १०६-६।

बनि—संज्ञा पु० [सं० वन] वन, साधना। ~कबीर जोगी **बनि** बसा, खनि खाया कँद मूल। →सा० सजी० (४७) २-१।

बनिकदली—संज्ञा पु० [सं० कदलीवन] कदली वन में, शरीर में। ~गोविंदै तुम्हारै **बनिकदली** मेरो मन अहेरा खेलैं। →सब० १००-१।

बरखा– संज्ञा स्त्री० [सं० वर्षा] ज्ञानोपदेश। ~घूरि घूरि **बरखा** बरसावैं, परिया बूंद न पानी। → पद १९९-२।

बरिसैं—क्रि० [सं० वर्षण] त्रयताप की वर्षा होती है। ~**बरिसैं** तपैं अखंडित धारा, रैनि भयावन किछू न अधारा। →र० १६-६।

बरी—क्रि० [हि० बटना] बटना, कर्मकाण्ड रचना। ~ आपुहि **बरी** आपु गरबधा, झूठा मोह काल को फंदा। →र० ३३-२।

बसंत—संज्ञा पु० [सं० वसन्त] आनन्द। ~साधु संगति मिलि करि **बसंत**, भौ बंद न छूटै जुग जुगंत। →पद ३३८-४।

बसंत—संज्ञा पु० [सं० वसंत] युवावस्था। ~गए **बसंत** ग्रीसम रितु आइ, बहुरि न तरु तर आवैं। → सब० ८८-६।

बस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं० वस्तु] आत्मतत्त्व। ~षट चक्र की कीन्ह कोठरी, **बस्तु** अनूपु बिच पाई। →सब० ११-३।

बहुतेन—वि० [सं० बहु + तेन] बहुत भारी। ~नलनी सायर घर किया, दव लागी **बहुतेन**। → सा० माया० (१६) २२-१।

बहुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० वधूटी] बहू, जीव। ~ हरि कौ नांउँ लै काति **बहुरिया**। → पद २१५-२।

बहू कै भाइ—यौ० [हि०] बधू का भाई, कुविचार। ~समधी कै घरि लमधी आए आए **बहू कै भाइ**। → पद २३५-७।

बाखरि—संज्ञा स्त्री० [दे० बखरी] मकान, ब्रह्माण्ड। ~ **बाखरि** एक बिधातैं कीन्हा, चौदह ठहर पाट सो लीन्हा। → र० २-३।

बाघहि—संज्ञा पु० [सं० व्याघ्र] जीव। छेरी **बाघहिं** ब्याह होत है, मंगल गावै गाई। → स० १५५-६।

बाघिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० व्याघ्र से] माया। ~ साधौ **बाघिनि** खाइ गई लोई। → पद ३१३-१।

बाज—संज्ञा पु० [अ०] ज्ञान। ~काग लंगर फांदिया बटेरैं **बाज** जीता। → पद ३४३-४।

बाजी—संज्ञा पु० [फ़ा०] खेल, संसार। अब हम जानिया हो, हरि **बाजी** का खेल। सब० १८-१,५।

बाजीगर—संज्ञा पु० [फ़ा०]जादूगर, ब्रह्म। ~बाजी झूंठ **बाजीगर** साँचा, साधुन की मति ऐसी। →सब० १८-५।

बाटहि बाटा—संज्ञा पु० [हि०] षट्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चक्रों के द्वारा। ~ चली जात वह **बाटहिं बाटा**, सोवनहार के ऊपर खाटा। → र० ७३-२।

बाति—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तिका] बत्ती, प्राण। ~ कवीर निरभै राम जपु, जब लगि दीवै बाति। → सा० सुमि० (२) १०-१।

बाती—संज्ञा स्त्री० [सं० वर्तिका] सुरति, प्रेमपूर्ण ध्यान। ~ दीपक दीया तेल भरि, **बाती** दई अघट्ट। → सा० गुरु० (१) १२-१।

बादर—संज्ञा पु० [सं० वारिद] मेघ, अज्ञानी जीव। ~ धरती बरसै **बादर** भीजै, भींट भए पैंराऊं। → पद ३२३-४।

बादली—संज्ञा स्त्री० [सं० बादल से] माया। ~ऊनइ आई **बादली**, बरसन लगे अंगार। → सा० दया नि० (५१) २-१।

बान—संज्ञा पु० [सं० वाण] चित्त-वृत्तियाँ। ~ उलिटा **बान** पारथहिं लागै, यहु अचिरज कोई बूझै। → सब० ३२-६।

बानी—संज्ञा स्त्री० [सं० वाणी] माया। ~ अद्‌बुद रूप जाति की **बानी**, उपजी प्रीति रमैनी ठानी। → र० ४-३६।

बाप—संज्ञा पु० [सं० वाप] पिता, जनक, मूल अज्ञान। ~ मोरे **बाप** के दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे। →कहरा (३) ११-३।

बाप—संज्ञा पु० [सं० वाप] पिता, भगवद्‌ज्ञान। ~ तिहिं पूति **बाप** इक जाया, बिनु ठाहर नगर बसाया। → सब० ८-८।

बाप—संज्ञा पु० [सं० वाप = बीज बोने वाला] पिता, ब्रह्म। ~**बाप** पूत की एकै नारी, ओ एकै माय बिआय। र० १-६।

बाप—संज्ञा पु० [सं० वाप] पिता, जीव। ~ एक अचंभौ देखिया बिटिया ब्याही **बाप**। →पद २३५-४।

बाप—संज्ञा पु० [सं० वाप] पिता, ईश्वर। ~ पहिले जन्म पूत को भयऊ, **बाप** जनमिया पाछे। → पद ३००-३।

बापु—संज्ञा पु० [सं० वाप] अभिनिवेश। ~**बापु** सावका करै लराई माया सद मतवारी। → पद २३२-५।

बाबुल—संज्ञा पु० [हि० बाबू] पिता, गुरु। ~**बाबुल** मेरा व्याह करि बर ऊतिम लै आइ। → पद २३५-५।

बाबै—संज्ञा पु० [तु० बाबा] बाबा को ही, पिता को ही, अविद्या को ही। ~नांनां रंगै भांवरि फेरी गांठि जोरि **बाबै** पतियाई। →पद २३८-५।

बारह—संज्ञा पु० [सं० द्वादश] अनाहत चक्र के दल (प्रत्येक दल में एक अक्षर की कल्पना की गई है। इस चक्र में 'क' से 'ठ' तक अक्षर होते हैं)। ~पुहुप बास भंवरा इक राता, **बारह** लै उर धरिया। →सब० ११८-५।

बारी—संज्ञा स्त्री० [सं० वारी] घेरा, स्थूल शरीर। ~फटि गया कुवां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिनसि गई **बारी** ।→सब० ५७-५ ।

बासी भात—संज्ञा पु० [सं० भक्त] ओदन, त्रिषय । ~**बासी भात** मनुसे लीहल खाय, बड़ा घैल लै पानी के जाय । →वसंत (४) ६-३ ।

बिंदहि—संज्ञा पु० [सं० बिंदु] बिंदु में ही, शिव । ~ मन बिंदत **बिंदहि** पावा, गुरमुख तैं अगम बतावा । →सब० १७१-३ ।

बिंदु—संज्ञा पु० [सं० विंदु] प्राण शक्ति के विकसित होने पर और कुण्डन्निनी के जागरण पर त्रिकुटी में स्थित आज्ञा चक्र में एक गोल प्रकाश का साक्षात्कार होता है । इसी प्रकाश को 'विंदु' कहते हैं । ~ पहिले खोजौ पंचे बाइ, बाइ **बिंदु** ले गगन समाइ । →सब० ५४-३ ।

बिख—संज्ञा पु० [सं० विष] दम्भ । ~छांड़ि कपूर गाठि **बिख** बांधा, मूल हुवा नहिं लाहा । →सब० १०४-७ ।

बिखहर—संज्ञा पु० [सं० विषधर] विषधर, सर्प, मन । ~दुंदुर राजा टीका बैठे, **बिखहर** करै खवासी । →पद ३००-५ ।

बिटिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] पुत्री, अविद्या । ~एक अचंभौ देखिया **बिटिया** ब्याही बाप ।→पद २३५-४ ।

बिरवा—संज्ञा पु० [सं० वीरुध] वृक्ष, संसार । ~बुझ बुझ पंडित **बिरवा** न होय, आधा बसे पुरुष आधा बसे जोय । → सब० १९६-१, पद २८६-१ ।

बिरवा—संज्ञा पु० [सं० वीरुध] विषय तृष्णा या वासना ।~जन जो चोरी भिच्छा खाहीं, सो **बिरवा** पलुहावन जाहीं । →र० ६०-२ ।

बिरष—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष, सुषुम्ना । ~सहज समाधि **बिरष** यहु सींचा, धरती जलहर सोषा । →सब० १२-७, सब० ४५-७ ।

बिरष—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष, पेड़, । ~बलिहारी ता **बिरष** की; जड़ काटे फल होइ । →सा० बेली० (५८) २-२ ।

बिरहुली—संज्ञा पु० [सं० विरहिन] अज्ञानी लोग जो आत्मदेव से विशेष रूप से रहित हो गए हैं वे बिरहुलीं हैं । सांसारिक जीव । → बिरहुली (७) ।

बिरिख—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष, साधना का पथ । ~ऊँचा **बिरिख** अकासि फल, पंखी मूए झूरि । → सा० सूरा० (४५) १७-१ ।

बिरिख—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] शरीर । ~सहज समाधि **बिरिख** यहु सींचा, धरती जलहरु सोखा । → सब० ११९-७ ।

बिरिछ—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] वृक्ष, ब्रह्म । ~अजर अमर एक **बिरिछ** निरंजन डारा । →पद ३१६-३ ।

बिर्छ—संज्ञा पु० [सं० वृक्ष] विषय-वासना, सुख का वृक्ष ।~सुखक **बिर्छ** एक जगत उपाया, समुझि न परै विषै कछु माया । →र० ८२-१ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिलइया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल्ली] बिल्ली, प्रज्ञा । ~मूसा खेवट नाव **बिलइया**, सोवैं दादुर सर्प पहरिया । →सब० ८६-४ ।

बिलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० विडाल] अन्तर्मुखी प्रवृत्ति । ~जल की मछरी तरवरि ब्याई, कूता कौ लै गई **बिलाई** । →सब० ४८-४ ।

बिलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० विडाल] बिल्ली, माया । ~ मूस **बिलाई** एक संग, कहु कैसे रहि जाय । →र० ७२-५, पद ३२०-१, र० १२-७ ।

बिलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० विडाल] बिल्ली, वंचक गुरु । ~मूस **बिलाई** कैसन हेतू, जंबुक करै केहरि सों खेतू । →सब० ६२-२ ।

बिलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० बिल्ली] बिल्ली, अविद्या । ~मेढ़क सर्प रहत एक संगे, **बिलिया** स्वान बियाही । →पद १६६-५ ।

बिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० विडाल से] कुबुद्धि । ~स्वान बापुरो धरनि ढाकनो, बिल्ली घर की दासी । → पद ३००-६ ।

बिस्नु—संज्ञा पु० [सं० विष्णु] सद्-गुरु या सात्विक महात्मा । ~तबही **बिस्नु** कहा समुझाई, मिथुन आठ तुम जीतहु भाई । →र० १३-७ ।

बिहंगम—संज्ञा पु० [सं० विहग] पक्षी, व्यष्टि चैतन्य । ~उड़ा **बिहंगम** खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समानां । →सब० १३-१२ ।

बिहंगम—संज्ञा पु० [सं० विहंगम] पक्षी, मन । ~तहाँ **बिहंगम** कतहुँ न जाई, औगह गहि के गगँन रहाई । →ज्ञान चौं० (१) ८ ।

बीगर—संज्ञा पु० [सं० वृक] भेड़िया, जीव ।~चिंउटी के पग हस्ती बांधे, छेरी **बीगर** खावै ।→पद १९६-३ ।

बीज—संज्ञा पु० [सं०] अविद्या । ~ फल अलंकृत **बीज** नहिं बोकला, सुख पंक्षी रस खायो । →सब्र० ८८-२, सब० १५८-२ ।

बीज—संज्ञा पु० [सं०] वासना । ~ अंकुर **बीज** नसाय कै, भए बिदेही थान । →र० ३५-८ ।

बीबी—संज्ञा स्त्री० [फा०] सुमति । ~**बीबी** बाहर हरम महल मैं, बीच मियां का डेरा । →सब० १३४-६ ।

बुढ़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० वृद्धा] वृद्धा, तृष्णा के रूप में माया । ~**बुढ़िया** हंसि बोलै मैं नितहिं बारि, मोहि अस तरुनि कहो कौन नारि । → वसंत (४) ४-१ ।

बेलि—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्ली] अवि-द्याजन्य आशा, तृष्णा । ~**बेलि** एक त्रिभुवन लपटानी, बांधे ते छूटहिं नहिं ज्ञानी । →पद २८६-४ ।

बेलि—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्ली] लता, माया । ~अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, नाँ तुमरी नाँ **बेलि** ।→सा० बेली० (५८) १-१ ।

बेहद—संज्ञा पु० [फ़ा०] असीम, ब्रह्म । ~जे राचे बेहद्द सौं, तिन सौं अंतर खोलि । →सा० चिता० (१२) ५०-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बैल—संज्ञा पु० [सं० बलद] लोभ। ~ धौल मंदलिया **बैल** रबाबी कउवा ताल बजावै। →पद ३३१-३।

बैल—संज्ञा पु० [सं० बलद] अविवेक। ~काग दुकाग कारकुन आगे, **बैल** करै पटवारी। →पद ३००-७, सब० ४८-५, सब० ८६-३।

बौहरै—संज्ञा पु० [सं० व्यवहारिन्] व्यवहार करने वाला, महाजन, ईश्वर। ~बड़ै **बौहरै** साँठो दीन्हौं, कलतर काढ्यो खोटै। → पद २१७-३।

ब्रह्महि—संज्ञा पु० [सं० ब्रह्म] रजोगुण। ~**ब्रह्महि** पकरि अगिनि महँ होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजा। → सब० १४४-३।

भ

भँड़हर—संज्ञा पु० [सं० भाण्डगृह] शरीर। ~चढ़त चढ़ावत **भँड़हर** फोरी, मन नहिं जानै केकर चोरी। →र० ५६-१।

भँवर—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] भ्रमर, भक्त। ~चुवै न बूँद अंग नहिं भीजे, दास **भँवर** संग लायो। → सब० ८८-३।

भँवर—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] भ्रमर, काले केश। ~ **भँवर** उड़े बग बैठे आइ। → पद २७८-२।

भँवर—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] जीव। ~मैं कासे कहौं को सुने पतिआय, फुलवा के छुअत **भँवर** मरि जाय। → पद २३६-१।

भँवरा—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] भ्रमर, मन। चलि चलि रे **भँवरा** कंवल पास। → सब० १०६-१।

भँवरा—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] भ्रमर, जीवात्मा। ~ पुहुप बास **भँवरा** एक राता, बारा ले उर धरिया। → सब० १२-५, सब० ११६-५।

भंवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमरी] भ्रमरी, विवेक, बुद्धि, ऋतम्भरा प्रज्ञा। ~ तेरी **भंवरी** बोलै अति उदास। → सब० १०६-२।

भईया—संज्ञा पु० [हि० भाई] भाई, वासना। ~ सगौ **भईया** लै सलि चढ़िहू तब हौं नाह पिआरी। → पद २३२-६।

भग—संज्ञा पु० [सं०] योनि, स्त्री। ~ ते तिरिये **भग** लिग अनन्ता, तेऊ न जाने आदि औ अंता। →र० २-२।

भतारहिं—संज्ञा पु० [सं० भर्तार + हि० हि] पति को, ईश्वर को। ~ कहँहि कबीर बुढ़िया आनंद गाय, पूत **भतारहिं** बैठी खाय। → वसंत (४) ४-५।

भलुइया—संज्ञा पु० [हि० भालू] भालू, लोभी गुरु। ~बनकि **भलुइया** चाखुर फेरै, छागर भये किसाना। → सब० १५५-३।

भवन—संज्ञा पु० [सं०] मकान; शरीर। ~ **भवन** मथेउ भरि पूरि हो रमैया राम। → बेलि (६) १-१०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवन चतुरदस—यौ० शरीर के भीतर विद्यमान स्थूल और सूक्ष्म कोश। ~**भवन चतुरदस** भाठी पुरई, ब्रह्म अगिनि परजारी। →पद ३४४-५।

भसुरहिं—संज्ञा पु० [हि०] पतिका बड़ा भाई, अविवेक। ~सासु ननद पटिया मिलि बंधलौं, **भसुरहि** परलौं गारी। →पद २२२-२।

भांड़ा—संज्ञा पु० [सं० भाण्ड] बर्तन, सावन। ~**भाँड़ा** भंजन करै सबहिं का, कछू न सूझै, आँधी रे।→सब० २७-२।

भाँड़ा—संज्ञा पु० [सं० भाण्ड] बर्तन, शरीर। ~**भाँड़ा** गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पुरवन जोग। →सा० बेसा० (३५) २-२।

भाँड़े—संज्ञा पु० [सं० भाण्ड] बर्तन, जीव। ~नाँनाँ भांति गढ़े सब **भाँड़े**, रूप धरे धरि मेलै। →सब० ११४-६।

भाँवरि—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रमण] विवाह के समय अग्नि की परिक्रमा, भ्रम। ~नाँनाँ रंगै **भाँवरि** फेरी गाँठि जोरि बाबै पतियाई। →पद २३८-५।

भान—संज्ञा पु० [सं० भानु] सूर्य, आत्म-ज्योति। ~बुझ बुझ पंडित पद निरबान, साँझ परे कहवाँ बसे **भान**। →सब० १६५-१।

भामिनि—संज्ञा स्त्री [सं० भामिनी] स्त्री, माया। ~ना जम भया न जामिनी; **भामिनि** चली निरास। →र० ४१-६।

भींट—संज्ञा पु० [दे० भीटा] टीलेदार भूमि, विषय-विकार। ~ धरती बरसै बादर भीजै, **भींट** भए पैराऊँ। →पद ३२३-४।

भील—संज्ञा पु० [सं० भिल्ल] शिकारी, मोह। ~**भील** लुका बन बीझ मैं; ससा सर मारै। →सब० ५१-६।

भुअंगा—संज्ञा पु० [सं० भुजंग] सर्पाकार कुंडलिनी। ~ वेधीले चक्र **भुअंगा**, भेटीले राइ निसंगा। → सब० १७१-६।

भैंस—संज्ञा स्त्री० [सं० महिष] शम। ~बैलहि डारि गोंनि घरि आई, घोरै चढ़ि **भैंस** चरावन जाई। → सब० ४८-५।

भैंसा—संज्ञा पु० [सं० महिष] विषय-वासना या निम्न संस्कार। ~ पहिरि चोलनां गादह नाचै **भैंसा** निरति करावै। →पद ३३१-४।

भैंसे—संज्ञा पु० [सं० महिष] वंचक गुरु। ~कहै कबीर सुनो हो संतो, **भैंसे** न्याव निवारी। →पद ३००-८।

भैंसिन्ह—संज्ञा स्त्री० [सं० महिष] भैंसे, इन्द्रियाँ। ~**भैंसिन्ह** माँह रहत नित बकुला, तकुला ताकि न लीन्हा हो .→कहरा (३) २-८।

भौंर—संज्ञा पु० [सं० भ्रमर] भ्रमर; चक्कर, गमनागमन। ~**भौंर** जाल मँह आसन माँड़ा, चाहत सुख, दुख संग न छाँड़ा। →र० ४१-२।

भौज—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रातृ जाया] भाई की पत्नी, अविद्या। ~ननद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भौज परपंच रच्यौ है, मोर नाम कहि लीन्हा । →पद २६०-५ ।

म

मंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य] मछली, मन । ~ सायर जरै सकल बन दाझै, **मंछ** अहेरा खेलै । → सब० ४४-४, पद ३०-३ ।

मंछा—संज्ञा पु० दे० 'मंछ' ।

मंछी—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य] मछली, जीवात्मा । ~देखि कबीरा जागि, **मंछी** रूखा चढ़ि गईं ।→सा० ग्या० (४) १०-२ ।

मंजार—संज्ञा पु० [सं० मार्जार] बिलाव, बुद्धि । → मूस तौ **मंजार** खायौ स्यारि खायौ स्वांनां । → पद ३४३-५ ।

मंजारी—संज्ञा स्त्री० [सं० मार्जारी] बिल्ली, माया । ~या **मंजारी** मुगध न मानै, सब दुनिया डहकाई । → पद ३२०-३ ।

मंझा—अव्य० [सं० मध्य] मध्य, बीच में । ~उनई बदरिया परिगौ संझा, अगुआ भूले बनखंड **मंझा** । →र० १५-१ ।

मंडल—संज्ञा पु० [सं०] आकाश, सहस्रार । ~जिहि सर **मंडल** भेदिया, सो सर लागा कान । →सा० पर० (५) २१-२ ।

मंदिर—संज्ञा पु० [सं०] शरीर । ~ कबीर **मंदिर** ढहि पड़ा, ईंट भई सैवार । → सा० चिता० (१२) १७-१, र० ६६-५ ।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] मछली; काम-क्रोध । ~**मच्छ** न मरै केवट रहै तीर । →सब १६७-६ ।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] माया । ~**मच्छ** सिकारी रमै जंगल मैं, सिंघ समुन्दर झूलै ।→सब० २८-४ ।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] कुण्डलिनी की प्राण शक्ति । ~ब्रह्महि पकरि अगिनि महँ होमै, **मच्छ** गगन चढ़ि गाजा । →सब० १४४-३ ।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] मछली; जीवात्मा । ~ बहती सरिता रहि गई, **मच्छ** रहे जल त्यागि । →सा० ज्ञान वि० (४) ६-२ ।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य,प्रा० मच्छ] मछली, मन । ~ उदधि भूपते तरुवर डाहै, **मच्छ** अहेरा खेलै । →पद १६६-८ ।

मछरी—संज्ञा स्त्री० दे० '**मछली**' ।

मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य] कुण्डलिनी । ~जल में सिंह जु घर करै, **मछली** चढ़ै खजूरि । →सा० पर० (५) ४६-२, सब० ४८-४ ।

मठ रचा—क्रि० [सं० मठ + √ रच्] निवास किया । ~ तहाँ कबीरा **मठ रचा**, मुनि जन जोवैं बाट ।→ सा० लै० (१०) ३-२ ।

मन—संज्ञा पु० [सं० मनस्] परम चैतन्य । ~आगम निगम एक करि जानां, ते मनवाँ **मन** माँहि समाना । →सब० ७-४ ।

मरै—संज्ञा क्रि० [हि० मरना] विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग करना । ~मरनैं पहिले जो **मरै**, तौं कलि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अजरामर होइ। →सा० जी० मृ० (४१) ८-२।

मलिनि—संज्ञा स्त्री० [स० मालिनी] माया। ~फुल भल फुलल **मलिनि** भल गांथल, फुलवा बिनसि गो भवँर निरासल। →पद २३६-४।

मसाँन—संज्ञा पु० [सं०श्मशान] श्मशान, साधनास्थल। ~सती पुकारै सलि चढ़ी, सुनु रे मीत **मसाँन**। → सा० सूरा० (४५) ३३-१।

महतारी—संज्ञा स्त्री० [सं० माता] माता, माया। ~संतो अचरज एक भौ भारी, पुत्र धरल **महतारी**। → पद २९०-१।

महतौ—संज्ञा पु० [सं० महत्] मुखिया, प्रवृत्ति। ~ खोटौ **महतौ** विकट बलाही सिर कसदम का पारै। → सब० १०-७।

महल—संज्ञा पु० [अ०] हृदय। ~ बीबी बाहर हरम **महल** मैं, बीच मियां का डेरा। →सब० १३४-६।

महारस—संज्ञा पु० [सं०] आत्मानंद। ~ कहै कबीर सो विरला जोगी; धरनि **महारस** चाखै। → सब० ३२-१४।

महि—संज्ञा स्त्री [सं०] पृथ्वी, पिंड, अधोभाग। ~**महि** अकास दुइ गाड़ खँदाया, चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया। → र० २८-२।

माँखी—संज्ञा स्त्री० [सं० मक्षिका] मक्खी, धूर्त व्यक्ति। ~ **माँखी** मूड़ मुड़ावन लागी, हमहूँ जाब बराता। → सब० १५५-५।

मांझ दीप—[यौ०] सुषुम्ना। ~ चाँद सुरुज दुइ गोड़ा कीन्हा, **मांझ दीप** माँझा कीन्हा। → सब १२७-६।

माँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] पंचभूत; प्राणि-मात्र। ~**माँड़ी** का तन माड़ि रहो है, **माँड़ी** विरलै जाना। → सब० १२७-५।

माँड़ौ—संज्ञा पु० [सं० मण्डप] शरीर। ~जना चारि मिलि लगन सुधाये; जना पाँच मिलि **माँड़ौ** छाए।→ पद ३१२-३।

मांनसरोबरि—संज्ञा पु० [सं० मानस+ सरोवर] मानस सरोवर, अमृत कुंड। ~जो ब्रह्मंडि पिंडि सो जांनु, **मांनसरोबरि** करि असनांनु। → सब० ४३-१३।

माँनसरोवर—संज्ञा पु० [सं० मानस+ सरोवर] आत्म-स्वरूप। ~ ब्रह्मंडे से पिंडे जाँन, **माँनसरोवर** करि अस-नाँन। →सब० १४०-१५।

मांनसरोवर—संज्ञा पु० [सं०] शून्य-शिखर। ~**मांनसरोवर** तट के बासी रांम चरन चित आंन उदासी। → पद ३३४-३।

मांसु—संज्ञा पु० [सं० मास] विषय। ~**मांसु** पसारि गीध रखवारी।→ सब० ८६-२।

माई—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] माता; ममता। ~**माई** मोर मुअल पिता के संगे, सरा रचि मुअल संघाती गे।→कहरा (३) ११-५।

माई—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] माता, साधना। ~पहिलै पूत पिछै भई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माई, चेला कै गुर लागै पाई । →सब० ४८-३ ।

माखी—संज्ञा स्त्री० [सं० मक्षिका] मन । दे० 'माछली' । ~उड़ि **माखी** तरवर को लागी, बोलै एकै बानी । →पद ३०१-५ ।

माछ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] मछली, मनोवृत्ति ।~जिन्ह सभ जुक्ति अगमन कै राखिनि, धरनि **माछ** भरि डेहरि हो । →कहरा (३) १-१८ ।

माछली—संज्ञा स्त्री० [सं० मत्स्य] मन । ~काटी कूटी **माछली,** छींकै धरि चहोरि । →सा० मन० (१३) २४-१ ।

माटी—संज्ञा स्त्री० [हि० मिट्टी] प्रकृति । ~कुम्भरा एक कमाई **माटी** बहु विधि बानीं लाई । →पद २१६-३ ।

माटी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृत्तिका] काया, शरीर । ~हाड़ गला **माटी** गली, सिर सांटे व्योहार । →सा० सूरा० (४५) २८-२ ।

मादरिया—संज्ञा पु० [अ० मदार] तमाशा दिखाने वाला, मन । ~सासु ननद मिलि अदल चलाई, **मादरिया** ग्रिह बैठी जाई । →सब० १५१-२ ।

मानसरोवर—संज्ञा पु० [सं० मानस+सरोवर] मानस, चैतन्य । ~कबीर हीरा बनिजिया, **मानसरोवर** तीर । →सा० गुर० (१) २९-२ ।

मानसरोवर—संज्ञा पु० [सं० मानस+सरोवर] सहस्रार अर्थात् शून्य-शिखर में स्थित अमृत-कुंड । शून्य चक्र को कैलास भी कहते हैं और मानसरोवर भी कैलास में है । ~**मानसरोवर** सुभर जल, हंसा केलि कराहिं । →सा० पर० (५) ३६-१ ।

मानिक—संज्ञा पु० [सं० माणिक्य] माणिक्य, चेतन । ~मत सुनु **मानिक** मत सुनु **मानिक,** ह्रिदया बंध निबारहु हो ।→कहरा (३) २-१ ।

मान्यक—संज्ञा पु० [सं० माणिक्य] माणिक्य, प्रेम व प्रपत्ति । ~हार गुह्यो मेरो राँम ताग, बिचि बिचि **मान्यक** एक लाग । →पद २३४-३ ।

माय—संज्ञा स्त्री० [सं० मातृ] माता, माया । ~देखहु लोगों हरि की सगाई, **माय** धरी पूत धिये संग जाई । →सब० १५१-१ ।

मालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मालिन] पुजारिन । ~भूली **मालिनी** है एउ । →सब० २११-१ ।

माहो—संज्ञा स्त्री० [सं० मुग्धा] नववधू, माया । ~ रामुराय चली बिनांवन **माहो** । →पद २७१-१ ।

मिनकी—संज्ञा स्त्री० [दे०] बिल्ली, वासना । ~मुर्गी **मिनकी** सों लड़ै, झल पांनी दौड़े । →सब० ५१-६ ।

मिनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] मिनकी, बिल्ली, मृत्यु । ~तेरी ढिग **मिनी** कछू करि पुकार । →पद ३३८-२ ।

मियाँ—संज्ञा पु० [फा०] पति, जीव । ~बीबी बाहर हरम महल मैं, बीच **मियाँ** का डेरा ।→सब० १३४-६ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिरग—संज्ञा पु० [सं० मृग] हिरन, वासनासक्त जीव। ~अहेड़ी दौ लाइया, **मिरग** पुकारे रोइ। → सा० ज्ञान० (४) ८-१।

मिरगनि—संज्ञा पु० [सं० 'मृग' का बहुवचन] मृग, पशु, पाशविक वृत्तियाँ काम, क्रोधादि। ~जतन बिनु **मिरगनि** खेत उजारे। →सब० ११३-१।

मिरिग—संज्ञा पु० [सं० मृग] मृग, तृष्णा। ~रोहै **मिरिग** ससा बन हांकै, पारधी बांन न मेलैं। → सब० ४४-५।

मींन—संज्ञा पु० [सं०] सिद्धों और योगियों द्वारा मुक्ति या परमार्थ के तीन मार्ग बताए गए हैं—पिपीलिका मार्ग, विहंगम मार्ग और मीन मार्ग। मीन मार्ग के दो लक्षण हैं—१. जल में गमन का कोई चिह्न न होना और २. जलधार के विपरीत जाना। इसके द्वारा यह संकेत किया गया है कि जीव की विषयों के प्रति जाने की जो पराङ्मुखी प्रवृत्ति होती है, परमात्मा तक जाने के लिए उसे उलटकर प्रत्यङ्मुखी बनाना होगा। ~पंखी का खोज **मींन** का मारग, कहै कबीर बिचारी। →सब० ३७-७।

मुकताहल—संज्ञा पु० [सं० मुक्ताफल] मोती, उत्कृष्ट, स्वच्छ, सत्वपूर्ण आनन्द। ~**मुकताहल** मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जांहि। →सा० पर० (५) ३६-२।

मुद्रा[१]—संज्ञा पु० [सं०] गोरखपंथी साधुओं का एक कर्णाभूषण।

मुद्रा[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग में विशेष अंग विन्यास। मुद्रायें पाँच होती हैं—खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी और उन्मनी। ~ममता मेटि सांच करि **मुद्रा**, आसन सील दिढ़ कीजै। →सब० ३३-५, सब० ३४-२।

मुद्रा[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के अवयवों के भिन्न विन्यास, जो योग के लिए रचे जाते हैं। ~सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसन दिढ़ **मुद्रा** पुनि साधि। →सब० ५४-७।

मुर्गी—संज्ञा स्त्री० [फा० मुर्ग] मुर्गी, साधक। ~**मुर्गी** मिनकी सों लड़ैं, झल पांनी दौड़े। →सब० ५१-६।

मूंड—संज्ञा पु० [सं० मुंड] सिर, व्यक्ति। ~कारे **मूंड** एक नहिं छाड़ै, अजहूँ आदि कुमारी। →सब० १६८-५।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] आत्म तत्त्व। ~छाँड़ि कपूर गांठि बिख बांधा; **मूल** हुवा नहिं लाहा। →सब० १०४-७।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] मूलाधार चक्र। ~**मूल** बाँधि सर गगन समांना, सुखमय यों तन लागी। →सब० २६-३।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मरंध्र, चैतन्य। ~तलि करि साखा उपरि करि **मूल**; बहुत भाँति जड़ लागे फूल। →सब० ४८-६।

मूल—संज्ञा पु० [सं०] अविद्या। ~

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपुहि मूल फूल फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई। →पद २६१-८।

मूल कँवल—[यौ०] मूलाधार चक्र। ~ अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कँवल कौ घाट। →पद ३४२-६।

मूलबन्द—[यौ०] एड़ी, गुदा और लिंग के बीच के स्थान को दबाकर, गुदा को आकुंचित करके अपान वायु को ऊपर खींचने की क्रिया से गुदा आकुंचित हो जाती है। इस स्थिति को 'मूलबंध' कहते हैं। इस मूलबंध से प्राण और अपान तथा नादबिन्दु का समीकरण होता है और कुण्डलिनी का जागरण होता है। ~जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थिर होइ कंद। →पद ३२१-७।

मूस—संज्ञा पु० [सं० मूषक] चूहा, विषयासक्त जीव। ~मूस बिलाई कैसन हेतू, जंबुक करै केहरि सों खेतू। →सब० ६२-२।

मूस—संज्ञा पु० [सं० मूषक] चूहा, विषयासक्त मन। ~मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय। →र० १२-७।

मूस—संज्ञा पु० [सं० मूषक] चूहा, जीव। ~मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय। →र० ७२-५।

मूस—संज्ञा पु० [सं० मूषक] चूहा, विषयासक्ति। →मूस तौ मंजार खायौ स्यारि खायौ स्वांनां। →पद ३४३-५।

मूसा—संज्ञा० पु० [सं० मूषक] चूहा, काम। ~मूसा खेवट नाव बिलइया सोवै दादुर सर्प पहरिया। →सब० ८६-४।

मूसा—संज्ञा पु० [सं० मूषक] चूहा, साधक जीव। ~मूसा हस्ती सौं लड़ै, कोई बिरला पेषै। मूसा पैठा बाँबि मैं, लारै सांपिनि धाई। → सब० ५१-२, ३।

मेंढ़क—संज्ञा पु० [सं० मण्डूक] मेढ़क, विषयी जीव। ~मेढ़क सर्प रहत एक संगे, बिलिया स्वान बियाही। →पद १६६-५।

मेर—संज्ञा पु० [सं० मेरु] सहस्रार। ~उलटी गंग मेर कूँ चली, धरती उलटि अकासहिं मिली। →सब० ४७-७।

मैंके—संज्ञा पु० [सं० मातृगृह] मातृ-गृह, संसार। ~मैंके रहै जाय नहिं ससुरे, सांई संग न सोवै। →सब० १६८-६।

मैंमंता—वि० [सं० मदमत्त] मतवाला हाथी, प्रेमी जीव। ~मैंमंता तिन ना चरै, सालै चित्त सनेह। →सा० रस० (६) ५-१।

मोति—संज्ञा पु० [सं० मौक्तिक] मोती, ज्ञान। ~रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि अंतरि लागे मोति →पद २३४-४।

मोतिया—संज्ञा पु० [सं० मौक्तिक] मोती, ऐश्वर्य, सुख। ~जेहि सरवर बिच मोतिया चुगते; बहुविधि केलि कराय। →पद ३२२-२।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोती—संज्ञा पु० [सं० मौक्तिक, प्रा० मोत्तिअ] ब्रह्मानंद। ~ पैंड़े **मोती** बीखरे अंधा निकसा आइ। →सा० अपा० (४८) ४-१।

मोती—संज्ञा पु० [सं० मौक्तिक, प्रा० मोत्तिअ] सद्गुरु। ~कबीर लहरि समंद की, **मोती** बिखरे आइ। → सा० पारि० (४६) २-१।

मोती—संज्ञा पु० [सं० मौक्तिक, प्रा० मोत्तिअ] मोती, ज्ञानयुक्त वचन। ~तौ मुख तैं **मोती** झरैं, हीरा अनंत अपार। →सा० उप० (३४) ८-२।

मोती—संज्ञा स्त्री० [सं० मौक्तिक, प्रा० मोत्तिअ] प्रकाश पुंज, ब्रह्म ज्योति। ~कबीर **मोती** नीपजै, सुन्नि सिखर गढ़ माँहि। →सा० पर० (५) ८-२।

र

रजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि, अज्ञान, अविद्या। ~भूलि परे जीव अधिक डेराई, **रजनी** अंध कूप होय आई। →र० १६-४।

रतन—संज्ञा पु० [सं० रत्न] जीवात्मा। ~बस नाहीं गोपाल सौं, बिनसै **रतन** अमोल। →सा० दया नि० (५१) १-२।

रतन—संज्ञा पु० [सं० रत्न] हीरा, आत्मा। ~लौकै **रतन** अबेध अमोलिक, नहिं गाहक नहिं साँई। → पद २६५-२।

रबि—संज्ञा पु० [सं०] इड़ा, प्राणवायु। ~गगन जोति तहँ त्रिकुटी संधि, **रबि** ससि पवनां मेली बंधि। →सब० ५४-४।

रवि—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य, आत्मप्रकाश। ~**रवि** कै उदै तार भौ छीना, चर बीहर दोनों मँह लीना। →र० २६-५।

रसाँइन—संज्ञा पु० [सं० रसायन] यह आयुर्वेद का शब्द है। रसायन वह औषध है जो एक धातु को दूसरी धातु में बदल देती है, जैसे ताँवे को सोना कर देना। इसी को यूरोप में 'आलकेमी, अरब देशों में 'कीमिया' और भारत में 'रसायन' कहते हैं। आयुर्वेद में लक्षणा द्वारा रसायन उस औषध को कहते हैं, जो शरीर की धातुओं को रूपान्तरित कर देती है। कबीर राम को ऐसा रसायन कहते हैं, जो जीव को परम चैतन्य में बदल देता है। ~यह दुनिया कौने भरम भुलानी, मैं राम **रसांइन** माता। →सब० ११२-१०।

रांडनि—संज्ञा स्त्री० [सं० रंडा] विधवा, वास्तविक पति को भुला देने वाला जीव। ~सब **रांडनि** कौ साथ चरखुला को धरै। →पद २३५-१०।

राँम रसाइन—[यौ०] वैद्यक के अनुसार रसायन वह औषध है, जिसके प्रयोग से काया क्षीण नहीं होती। राम रसायन वह औषध है, जिससे अमरत्व की प्राप्ति होती है। दे०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'रसांइन'। ~साकत मरहिं संत जन जीवहिं भरि भरि **रांम रसाइन** पीवहिं। →पद ३२६-३।

राइ निसंगा—संज्ञा पु० [सं० राजा निस्संग] निस्संग राजा, अन्तरात्मा, तुरीय अवस्था। ~बेधीले चक्र भुअंगा भेटीले **राइ निसंगा**। →सब० १७१-६।

राई—संज्ञा स्त्री० [सं० राजिका] एक प्रकार की बहुत छोटी सरसों, बुद्धि। ~चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, **राई** ना ठहराय। →र० ३४-६।

राची—क्रि० [हि० राचना] अनुरक्त हो गई है। ~वाही के संग निसु दिन **राची**, पिय से बात कहै नहिं साँची। →र० ७३-५।

राजा—संज्ञा पु० [सं० राजन्] शरीर का राजा, जीव। ~आजु काज है काल्हि अकाजा, चलेउ लादि दिगंतर **राजा**। →र० १३-४।

राजा—संज्ञा पु० [सं० राजन्] मन। ~**राजा** देस बड़ो परपंची, रइयत रहत उजारी। →सब १५६-४।

राति—संज्ञा स्त्री० [सं० रात्रि] रात, मृत्यु। ~दिवस थकाँ साँई मिलौं, पीछै पड़िहै **राति**। →सा० मन० (१३) १३-२।

रावल—संज्ञा पु० [सं० राजकुल, प्रा० राउल] राजा, सरदार, जीवात्मा। ~नीझर झरै अमीरस निकसै इहि मद **रावल** छाका। →पद ३४४-७।

राहु—संज्ञा पु० [सं० राहु] विषय। ~दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि **राहु** कौ गहै। →सब० ४७-८।

रूखा—संज्ञा पु० [सं० रुक्ष] वृक्ष, सहस्रार। ~देखि कबीरा जागि, मंछी **रूखा** चढ़ि गईं। →सा० ज्ञा० वि० (४) १०-२।

रैंनि—संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी] रात्रि; युवावस्था। ~**रैंनि** गई मत दिनु भी जाइ। →पद २७८-१।

रोगिया—संज्ञा पु० [सं० रुग्ण] संसारासक्त जीव। ~जो सनिपात **रोगिया** मारै, सो साधुन सिधि पाई। →सब० १६१-६।

रोझ—संज्ञा स्त्री० [दे०] नीलगाय; चित्तवृत्तियाँ। ~बन के **रोझ** धरि दाइज दीन्हो, गोंह लोकन्दे जाई। →सब० १५५-७।

ल

लंगर—संज्ञा पु० [दे०] एक शिकारी-पक्षी, विवेक। ~ काग **लंगर** फांदिया बटेरैं बाज जीता। →पद ३४३-४।

लगवारैं—संज्ञा पु० [हि० लग + वार (प्रत्य०)] जार, सकाम मन। ~साँझ सकार दिया लैं बारैं, खसम छोंडि सुमिरैं **लगवारैं**। → र० ७३-४।

लमधी—संज्ञा पु० [दे०] समधी का पिता, अविवेक। ~समधी कै घरि **लमधी** आए आए, बहू के भाइ। → पद २३५-७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाल—वि० [सं० लालक] लाल रंग, अनुराग। ~एक दोस्त जो हम किया, जिस गलि **लाल** कबाइ। →सा० मन० (१३) ११-१।

लिंग—संज्ञा पु० [सं०] पुरुष। ~ते तिरिये भग **लिंग** अनन्ता, तेऊ न जाने आदि औ अंता। →र० २-२।

लुहार—संज्ञा पु० [सं० लौहकार] लोहार, प्राण, जीवात्मा। ~अहरनि रहा ठमूकड़ा, जब उठि चला **लुहार**। → सा० काल० (४६) २१-२।

लुहार—संज्ञा पु० [सं० लौहकार] काल-चक्र। ~मति बसि परौं **लुहार** कै, जारै दूजी बार। →सा० काल० (४६) १०-२।

लेज—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी, कुण्डलिनी। ~ऊपरि नीर लेज **तलिहारी**, कैसे नीर भरै पनिहारी। →सब० १५०-३।

लेजु—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी, मेरुदण्ड। ~एकै **लेजु** भरैं नौ नारी। →सब० ५७-४।

लै—संज्ञा स्त्री० [सं० लय] लय, इन्द्रियों का प्रवर्तक मन है, मन का प्रवर्तक प्राण है, प्राण का अवरोध मनोलय है और मनोलय नाद के आश्रित है अर्थात् मन नाद में लीन हो जाता है। चित्त का यह लय मोक्षपदवाच्य है, अर्थात् इसे मोक्ष कहते हैं।

लय की अवस्था में श्वास, निःश्वास नष्ट हो जाते हैं। विषया-ग्रह प्रध्वस्त हो जाता है। चेष्टाएँ समाप्त हो जाती हैं, विकार नष्ट हो जाते हैं तथा सभी संकल्प विग-लित हो जाते हैं। ~कहै कबीर बिचारं, करता **लै** उतरसि पारं। → सब० १७१-१०।

लोहा—संज्ञा पु० [सं० लौह] अज्ञान। ~मीन जाल भौ ई संसारा, **लोह** क नाव पषान क भारा। → र० ४५-५।

लौ—संज्ञा स्त्री० [हि०] ध्यान, यह शब्द निष्कम्प दीपशिखा के लिए आया है। जिस प्रकार निर्वात निष्कम्प दीपशिखा निश्चल रहती है, उसी प्रकार चित्त को ध्येय में निश्चल रूप से लगाना अथवा अटूट ध्यान 'लौ' कहलाता है। ~सहज पलांन चित कै चाबुक **लौ** की लगाम लगाऊ जी। →पद ३०७-३।

व

वसंत—संज्ञा पु० [सं०] यह एक काव्य-रूप है। इसके माध्यम से यह बताया गया है कि परमार्थ का अनुभव ही नित्य वसंत है। सांसारिक जीवन में जो वसंत का समय आता है वह थोड़े दिन के लिए होता है। ~रसना पढ़ि लेहु श्री **वसंत**, पुनि जाय परिहौ जम के फंद। →वसंत (४) २-१।

विदेसा—संज्ञा पु० [सं० विदेश] संसार। ~इन पंचनि मिली लूटी हूँ, कुसंग आहि **विदेसा**। →सब० १[illegible]-२।

विप्रमतीसी—[विप्रमतितीसी]—यह एक काव्य-रूप है। इसमें ३० पंक्तियों में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणों के विषय में मत व्यक्त किया गया है। प्रस्तुत छंद में ३० पंक्तियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त एक साखी है, जो दोहा छन्द में है। मुख्य छन्द की ३० पंक्तियाँ हैं। अतः इसे 'तीसी' कहा गया है। कहीं-कहीं इसका पाठ 'विप्रबतीसी' भी मिलता है, जिसमें साखी को भी जोड़ दिया गया है। → विप्रमतीसी (२)।

विष—संज्ञा पु० [सं०] विषयभोग, विषय-वासना। ~**विष** के खाए विष नहिं जावै, गारुड़ि सो जो मरत जियावै। →र० २६-६।

स

सँजोग—संज्ञा पु० [सं० संयोग] कवच। ~सूरै सार सँबाहिया, पहिरा सहज **सँजोग**। →सा० सूरा० (४५) ८-१।

संझा—संज्ञा स्त्री० [सं० सन्ध्या] सन्ध्या, जीवन का अंतिम समय। ~उनई बदरिया परिगौ **संझा**, अगुआ भूले बनखंड मंझा। →र० १५-१।

सकति—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] शक्ति, कुंडलिनी। ~उलटीले **सकति** सहारं पैसीले गगन मझारं। → सब० १७१-५।

सक्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] इड़ा। ~सिव **सक्ती** दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि। →सा० पर० (५) ४६-१।

सखिन—संज्ञा स्त्री० [सं० सखिन्] सखियाँ, जीव। ~फुलवा भार न लै सकै, कहै **सखिन** सो रोय। → र० १५-३।

सखी पाँच—[यौ०] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। ~नौ नारी परिमल सो गाँव, **सखी पाँच** तहँ देखन धाव। →वसंत (४) २-४।

सखी सहेली—[यौ०] इन्द्रियाँ। ~**सखी सहेली** मंगल गावैं, दुख सुख माथे हलदी चढ़ावैं। →पद ३१२-४, पद २३८-४।

सती—वि० स्त्री० [सं०] साधक, जीवात्मा। ~**सती** पुकारै सलि चढ़ी, सुनु रे मीत मसाँन। →सा० सूरा० (४५) ३३-१।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] शक्ति-पात (शक्तिपात तीन प्रकार से होता है—स्पर्श, दृष्टि और शब्द से। यहाँ भाव है कि गुरु ने शब्द का शक्तिपात किया)। ~ सतगुरु साँचा सूरिवाँ, **सबद** जु बाह्या एक। →सा० गुरु० (१) ७-१।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] अनाहत नाद; अनाहत नाद सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। जब साधना द्वारा सुषुम्ना मार्ग उन्मुक्त हो जाता है और कुंड-लिनी जागृत होकर ऊपर की ओर उठती है, तब साधक को अनाहत नाद सुनाई पड़ने लगता है। उस समय योगी का चित्त नाद में रम जाता है। वह सर्वथा अंतर्मुखी हो जाता है और जब कुंडलिनी ब्रह्म-रंध्र में मिल जाती है, तब उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाश का पूरा अनुभव हो जाता है। ~कबीर **सबद** सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति। →सा० सब० (४०) १-१।

सबद—संज्ञा पु० [सं० शब्द] अनाहत नाद। ~सबको सुख दे **सबद** करि, अपनी अपनी ठौर। →सा० साषीभू० (५७) २-२, सा० सूरा० (४५) ३६-२।

सब्द—संज्ञा पु० [सं० शब्द] ब्रह्म में जो स्पंदन होता है, वही शब्द है। यह शब्द ध्वनि नहीं है, प्रत्युत् चैतन्य का एक से अनेक की अभिव्यक्ति की इच्छा या उल्लास का स्पन्दन मात्र है। ~अन्तर जोति **सब्द** यक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी। →र० २-१।

समंद—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] जीवन-सागर, संसार। ~कबीर लहरि **समंद** की, मोती बिखरे आइ। → सा० पारि० (४६) २-१।

समंद—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] समुद्र, ब्रह्मनाड़ी। ~बन कै ससै **समंद** घर कीया, मंछा बसै पहाड़ी। →सब० ३०-३।

समद—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] समुद्र, काम। ~चकवा बैसि अंगारै निगलै **समद** अकासा धावा। → पद ३३१-८।

समधी—संज्ञा पु० [सं० सम + धी] विवेक बुद्धि। ~**समधी** कै घरि लमधी आए, आए बहू कै भाइ। → पद २३५-७।

समुन्दर—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] सागर, विषयासक्त मानस। ~ **समुन्दर** लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भईं। →सा० ज्ञा० वि० (४) १०-१।

समुन्दर—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] संसार। ~मच्छ सिकारी रमै जंगल मैं, सिंघ **समुन्दर** झूलै। → सब० २८-४।

समुद्र—संज्ञा पु० [सं०] सागर, संसार अथवा प्रकृति। ~अंबु कि रासि **समुद्र** कि खाँई, रवि ससि कोटि तैंतिसो भाई। →र० ४१-१।

समुद्रहिं—संज्ञा पु० [सं० समुद्र] सांसारिक सन्ताप। ~उलटी गंग **समुद्रहिं** सोखैं, ससिहर सूर गरासै। →सब० ३२-३।

सयान—वि० [सं० सज्ञान] ज्ञानी—योगवाशिष्ठ में ज्ञान अथवा योग की सात भूमियाँ बताई गयी हैं। उनके नाम हैं—शुभेच्छा; विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, परार्थाभाविनी और तुर्यगा। उनके तात्पर्य हैं—शुभेच्छा = परमतत्व की इच्छा; विचारणा = चिन्तन, मनन; तनुमानसा = मन का क्षीण होना; सत्त्वापत्ति = शुद्ध अंतःकरण; असंसक्ति = आसक्ति की समाप्ति; परार्थाभाविनी = केवल परब्रह्म के चितन की स्थिति; तुर्यगा = तुरीयावस्था, ब्रह्ममय होने की स्थिति। ~एक **सयान** सयान न होई, दोसर सयान न जानै कोई। →र० ३७-१।

सयानहिं—वि० [सं० सज्ञान] स्थूल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञान का हेतु अर्थात् मन । ~तीसर ज्ञान **सयानहि** खाई, चौथ सयान तहाँ लै जाई । →र० ३७-२ ।

सयाना—वि० [सं० सज्ञान] सज्ञान, चतुर, जीव । ~घर का सुत जो होय अयाना, ताके संग न जाहि **सयाना** । →र० २६-५ ।

सर—संज्ञा पु० [सं० शर] बाण, अनाहत नाद । ~ जिहि **सर** मंडल भेदिया, सो **सर** लागा कान । → सा० पर० (५) २१-२ ।

सर—संज्ञा पु० [सं० शिर] चोटी । ~मूल बाँधि **सर** गगन समाँनाँ सुखमन यो तन लागी । →सब० २६-३ ।

सर—संज्ञा स्त्री० [हि०] तीली, अस्थियाँ । ~**सर** लागे तेहि तीन सै साठि, कसनि बहत्तरि लागु गाँठि । →वसंत (४) ३-३ ।

सर—संज्ञा पु० [सं०] सरोवर, ब्रह्म । ~श शा **सर** नहिं देखै कोई, सर सीतलता एकै होई । →ज्ञान चौं० (१) ६३ ।

सरदूर्लहि—संज्ञा पु० [सं० शार्दूल] सिंह को, उन्मत्त वासना । ~ऐसा नवल गुँनी भया, **सरदूर्लहि** मारै । →सब० ५१-८ ।

सरवर—संज्ञा पु० [सं० सरोवर] जलाशय, आत्मानन्द । ~**सरवर** तटि हंसिनी तिसाई । →पद ३११-१ ।

सरवर—संज्ञा पु० [सं० सरोवर] सरोवर, शरीर । ~जारौं माँग मैं तासु नारि की; जिन **सरवर** रचल धमारी । →पद २२२-३, पद ३२२-२ ।

सरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी, प्रवहमान इंद्रियाँ । ~बहती **सरिता** रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि । →सा० ज्ञान० वि० (४) ६-२ ।

सरोवर—संज्ञा पु० [सं०] तालाब; आत्मिक चेतना का प्रसार । ~तेरे ही नालि **सरोवर** पाँनी । → सब० ८३-२ ।

सर्प—संज्ञा पु० [सं० सर्प] शास्त्रीय ज्ञान । ~मूसा खेवट नाव बिलइया, सोवै दादुर **सर्प** पहरिया । →सब० ८६-४ ।

सर्प—संज्ञा पु० [सं०] साँप, अहंकार । ~मेढक **सर्प** रहत एक संगे, बिलिया स्वान बियाही । →पद १६६-५ ।

सलि—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चिता, साधना की कठिन यात्रा । ~सती पुकारै **सलि** चढ़ी, सुनु रे मीत मसाँन । →सा० सूरा० (४५) ३३-१ ।

ससा—संज्ञा पु० [सं० शश] खरगोश; वासना । ~रोहै मिरिगा **ससा** बन हांकै, पारधी बांन न मेलै । →सब० ४४-५ ।

ससा—संज्ञा पु० [सं० शश] खरगोश; साधक । ~भील लुका बन बीझ मैं; **ससा** सर मारै । →सब० ५१-६ ।

ससि—संज्ञा पु० [सं० शशि] पिंगला, अपान वायु । ~ गगन जोति तहँ त्रिकुटी संधि, रवि **ससि** पवनां मेलो बंधि । →सब० ५४-४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ससिहर—संज्ञा स्त्री० [सं० शशधर] चन्द्र नाड़ी, इड़ा। ~चूकीले मोह पियासं, तहाँ **ससिहर** सूर गरासं। → सब० १७१-७, सब० ३२-३, सब० १५८-४।

ससिहर—संज्ञा पु० [सं० शशधर] चंद्रमा, सोमरस। ~दास कबीर तत ऐसा कहै, **ससिहर** उलटि राहु कौ गहै। →सब० ४७-८।

ससुर—संज्ञा पु० [सं० श्वसुर] देवी-देवता। ~खसमहिं छोड़ि **ससुर** संग गौनी, सो किन लेहु बिचारी। → पद २९०-३।

ससुर—संज्ञा पु० [सं० श्वसुर] अविद्या। ~सासु की दुखी **ससुर** की पिआरी जेठ कै तरसि डरउँ रे। → पद २३२-३।

ससुरे—संज्ञा पु० [सं० श्वसुरालय] श्वसुरालय, आत्म-पद। ~मैके रहै जाय नहिं **ससुरे**, सांईं संग न सोवै। →सब० १९८-६।

ससै—संज्ञा पु० [सं० शश] खरगोश, मन। ~बन कै **ससै** समंद घर कीया, मंछा बसै पहाड़ी। →सब० ३०-३।

सहंस—संज्ञा पु० [सं० स + हंस] हंस के सहित अर्थात् 'हं सः' का श्वास-प्रश्वास के द्वारा अजपा जप। प्रत्येक व्यक्ति में एक मिनट में १५ बार श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती है। इस प्रकार एक दिन में १५ × ६० × २४ = २१६०० श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया होती है और प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में 'हं सः' की ध्वनि होती है। इस प्रकार जीव बिना किसी कृत्रिम जप के, आप से आप 'हंसः' का दिन भर में २१६०० जप करता रहता है। इसे अजपा-जप कहते हैं। ~**सहंस** इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै। →सब० ३४-६।

सहज—वि० [सं०] स्वभावतः विद्यमान, परम तत्त्व। ~**सहज** समाधें सुख में रहिबो, कोटि कल्प बिसराम। →सब० १३-२।

सहज—वि० [सं०] अपने भीतर सहज रूप से विद्यमान, आत्मतत्त्व। ~**सहज** कै पांवड़ै पगु धरि लीजै। → सब० ३-२।

सहज समाधि—समाधि दो प्रकार की होती है—यत्न साध्य समाधि और सहज समाधि। यत्न साध्य समाधि कुछ समय के लिए ही हो सकती है। इसके टूटने पर मन अपनी विकल्पात्मक अवस्था में आ जाता है, किन्तु जब मन राम में अत्यधिक रत हो जाता है तब वह समाधि (संयोग) स्वाभाविक हो जाती है। मन प्रभु में निरन्तर युक्त रहता है। यही सहज-समाधि है। ~ **सहज समाधि** उनमुनी जागै; सहज मिलै रघुराई। → पद २९५-५।

सहज समाधि—चित्त का आन्तरिक, स्वाभाविक स्थिति में लीन हो जाना सहज समाधि है। इसका एक साधन है—इड़ा और पिंगला के तुल्य बल हो जाने पर कुंडलिनी का जागरण और उसका सहस्रार में मिलन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तान्त्रिक सहजयानियों और नाथ पंथियों की यही विशेष साधना पद्धति है। ~सहज समाधि बिरिख यहु सीचा, धरती जलहरु सोखा। →सब० ११६-७।

सहज सुंनि—संज्ञा पु० [सं० सहज+शून्य] ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर, सहस्रार। ~गंग जमुन उर अंतरै, **सहज सुंनि** लौ घाट। →सा० लै० (१०) ३-१।

सहज सुंनि—यौ० [सं० सहज-शून्य] वह सहजावस्था, जो सभी पदार्थों से रहित है, सब ज्ञेय से परे है। ~**सहज सुंनि** की नैहरो, गगन मंडल सिरमौर। →पद ३४२-७।

सहजि—वि० [सं० सहज] स्वाभाविक रूप से विद्यमान प्रभु में। ~कहैं कबीर सुख **सहजि** समावउँ, आप न डरउँ न और डरावउँ। →सब० २०-८।

सहनां—संज्ञा पु० [अ० शिहनः] साक्षी पुरुष, आत्मा। ~नित उठि कलंक लगावै **सहनां**। →सब० ५७-२।

सहर—संज्ञा पु० [फा० शहर] नगर, शरीर। ~ **सहर** जरै पहरू सुख सोवै, कहै कुसल घर मेरा। →सब० १५७-५।

सहस तार—वि० [सं० सहस्र+तारक] हजारों नाड़ियाँ। ~**सहस तार** लै पूरिन पूरी, अजहूँ बिनव कठिन है दूरी। →र० २८-३।

साँई—संज्ञा पु० [सं० स्वामी] प्रत्यगात्मा, शुद्ध चैतन्य। ~**साँई** के संग सासुर आई। →पद ३१२-१।

साँठो—संज्ञा स्त्री० [हि० गाँठ] पूंजी, धन, बुद्धि। ~ बड़ै बौहरै **साँठो** दीन्हौं, कलतर काढ्यो खोटै। →पद २१७-३।

साँपिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० सर्पिणी] विषय। ~ उलटि मूसै **साँपिनि** गिली, यहु अचरजु भाई। →सब० ५१-४।

साउज—संज्ञा पु० [हि० सावज] जंगली पशु-पक्षी, काम-क्रोध। ~ घर घर **साउज** खेलै अहेरा, पारथ ओटा लेई। →पद ३२३-२।

साखा—संज्ञा स्त्री० [सं० शाखा] नाड़ी-मंडल। ~तलि करि **साखा** उपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल। →सब० ४८-६।

साखा पत्र—[यौ०] वासनाएँ। ~मध्य कि डार चारि फल लागा, **साखा पत्र** गिनै को वाका। →पद २८६-३।

साध साषीभूत—साक्षी भूत साधु। साधारण जीव में चेतना, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान की त्रिपुटी में ही कार्य करती रहती है। जीव के भीतर जो प्रत्यगात्मा है, वह इन तीनों का साक्षी है। सुषुप्तावस्था में जब अंतःकरण की वृत्तियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं, उस अवस्था की भी चेतनता प्रत्यगात्मा में विद्यमान रहती है। वही प्रत्यगात्मा 'साक्षी' है। साधारण जीव को साक्षी का भान नहीं होता। जो योगी प्रत्यगात्मा से युक्त हो जाता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, वही 'साक्षीभूत साधु' है। → सा० साधसा० (२६) ।

सायर—संज्ञा पु० [सं० सागर] सागर, शरीर। ~**सायर** जरै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै। →सब० ४४-६ ।

सायर—संज्ञा पु० [सं० सागर] सागर, भवसागर, संसार। ~बगुली नीर बिटालिया, **सायर** चढ़ा कलंक।→ सा० माया० (१६) ३०-१, सब० ६४-७ ।

सायर—संज्ञा पु० [सं० सागर] सागर, हृदय। ~नीर पियावत क्या फिरै, घर घर **सायर** बारि। →सा० बिर्क० (३७) ७-१ ।

सायर—संज्ञा पु० [सं० सागर] समुद्र, मानस। ~दौं लागी **सायर** जला, पंखी बैठे आइ। →सा० ज्ञान वि० (४) ६-१ ।

सायर—संज्ञा पु० [सं० सागर] सागर, माया। ~नलनी **सायर** घर किया, दव लागी बहुतेन। →सा० माया० (१६) २२-१ ।

सायर बारि—संज्ञा पु० [सं० सागर वारि] आत्म-स्वरूप। ~ नीर पियावत क्या फिरै, घर घर **सायर बारि**। → सा० बिर्क० (३७) ७-१ ।

सार्दुल—संज्ञा पु० [सं० शार्दूल] व्याघ्र, मन। ~सिंह **सार्दुल** एक हर जोतिन, सीकस बोइन धाना। → सब० १५५-२ ।

सावज—संज्ञा पु० [सं० शावक] मृग, संकल्प विकल्पात्मक मन। ~ संसे **सावज** बसै सरीरा, ते खायो अनबेधा हीरा। →र० १८-३, ४ ।

साषीभूत—संज्ञा पु० [सं० साक्षीभूत] मानव चेतना की चार अवस्थाएँ हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के द्वारा हमारा सांसारिक जीवन चलता रहता है। इन तीनों की चेतना मनोवैज्ञानिक अहं की (Psychological Self) चेतना है। इसी के द्वारा हम संसार के सारे जीवन का निर्वाह करते हैं। इन तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा 'तुरीय' चेतना है। 'तुरीय' शब्द का अर्थ है—चतुर्थ। यह तीनों अवस्थाओं से परे है। इसीलिये इसका नाम 'तुरीय' है। यह चौथी अवस्था अन्य तीनों अवस्थाओं की साक्षी है। यह मानव का तात्विक अहं (Meta-physical Self) है। यही हमारा वास्तविक आत्मा है। वह काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेष आदि में लिप्त नहीं होता। उनका केवल साक्षी होता है। इसीलिए उसे 'साक्षि चैतन्य' कहते हैं। →सा० साषी० (२६) ।

सास—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] बोध। ~ **सास** दुरासनि पीव डराऊँ। → सब० २३४-२ ।

सासु—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] अस्मिता, मैं हूँ पन। ~**सासु** की दुखी ससुर की पिआरी जेठ कै तरसि डरउँ रे। →पद २३२-३ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सासु—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] अविद्या। ~सासु ननद मिलि अदल चलाई, मादरिया ग्रिह बैंठी जाई। →सब० १५१-२।

सासु—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] माया। ~सासु ननद पटिया मिलि बँधलौं, भसुरहिं परलौ गारी।→पद २२२-२, कहरा (३) १-२५।

सासुर—संज्ञा पु० [सं० श्वसुरालय] श्वसुरालय, संसार। ~साँई के संग सासुर आई। →पद ३१२-१।

सासुरे—संज्ञा पु० [सं० श्वसुरालय] ससुराल, संसार। ~मैं सासुरे पिय गौहनि आई।→पद २३८-१।

सासुहि—संज्ञा स्त्री० [सं० श्वश्रु] प्रवृत्ति। ~भाई के संग सासुर गौनी, सासुहि सावत दीन्हा। → पद २६०-४।

साहु—संज्ञा पु० [सं० साधु] महाजन, प्रभु, ईश्वर। ~कबीर पूंजी साहु की तूं जनि खोवै ख्वार।→सा० साँच० (२२) १-१।

सिंघ—संज्ञा पु० [सं० सिंह] जीव। दे० 'सिंघहि'। ~मच्छ सिकारी रमैं जंगल मैं सिंघ समुंदर झूलै। → सब० २८-४, सब० ८६-५, पद ३३१-५।

सिंघ—संज्ञा पु० [सं० सिंह] अहंकार। ~डांइन डारै सुनहाँ डोरै, सिंघ रहै बन घेरे।→सब० ४४-३।

सिंघहि[1]—संज्ञा पु० [सं० सिंह] जीवात्मा। ~अचरज एक देखहु हो संतो, हस्ती सिंघहि खाय। →र० १२-८।

सिंघहि[2]—संज्ञा पु० [सं० सिंह] सिंह, जीव, आत्मा। दे० 'सिंह[2]'।~संतो अचरज देखहू, हस्ती सिंघहि खाय। →र० ७२-६।

सिंह[1]—संज्ञा पु० [सं०] सिंह, जीव। ~जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि। →सा० पर० (५) ४६-२, सब० ४८-२, पद १५५-२।

सिंह[2]—संज्ञा पु० [सं०] अहंकार। ~जब लगि सिंह रहै बन मांहि, तब लगि यहु बन फूलै नाहिं। → सब० ५३-५।

सिंह[3]—संज्ञा पु० [सं०] जीवात्मा। ~नित उठि सिंह सियार सों डरपे, अद्भुत कथो न जाई। →पद १६६-६।

सियार—संज्ञा पु० [सं० शृगाल] सियार, भ्रम। ~नित उठि सिंह सियार सों डरपे, अद्भुत कथो न जाई। →पद १६६-६।

सियार—संज्ञा पु० [सं० शृगाल] वंचक या धूर्त गुरु। ~भूंकि भूंकि कुकुर मरि गयऊ, काज न एक सियार से भयऊ।→र० १२-६।

सियार—संज्ञा पु० [सं० शृगाल] शृंगाल, मन। ~उलटि सियार सिंह कौं खाइ, तव यहु फूलै सभ बनराइ।→सब ५३-६।

सिव—संज्ञा पु० [सं० शिव] पिंगला। ~ सिव सक्ती दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।→सा० पर० (५) ४६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिव-सत्ती—संज्ञा [सं० शिव + शक्ति] पुरुष-स्त्री। ~ बहुत जतन करि बाहर आया, तब **सिव-सत्ती** नाम धराया। →र० २६-४।

सिषर—संज्ञा पु० [सं० शिखर] शून्य-शिखर, ब्रह्मरन्ध्र। ~जन कबीर का **सिषर** घर, बाट सलैली सैल। →सा० सू० मा० (१४) ७-१।

सिषराँह—संज्ञा पु० [सं० शिखर] शिखर पर, ब्रह्मरंध्र में। ~पार ब्रह्म बड़ मोतियाँ, झड़ि बाँधी **सिषराँह**। →सा० निगु० (५५) ३-१।

सीकस—संज्ञा पु० [दे०] ऊसर भूमि, संसार। ~सिंह सार्दुल एक हर जोतिन, **सीकस** बोइन धाना। → सब० १५५-२।

सीतल छाया—संज्ञा स्त्री० [सं० शीतल छाया] प्रभु का अनुग्रह। ~ **सीतल छाया** सघन फल, पंखी केलि करंत। → सा० सजी० (४७) ६-२।

सीस—संज्ञा पु० [सं० शीर्ष] आपा, अहं, खुदी। ~कबीर पीवन दुलभ है, माँगै **सीस** कलाल। →सा० रस० (६) २-२, सा० सूरा० (४५) १६-२।

सीह—संज्ञा पु० [पु० सिंह] अहंकार। दे० 'सिंह'[२]। ~ जिहि बन **सीह** न संचरै, पंखि उड़ै नहिं जाइ। → सा० लै० (१०) १-१।

सुंदरि—संज्ञा स्त्री० [सं० सुन्दरी] ईश्वर की भक्ति करने वाली प्रिया रूपी जीवात्मा। ~कबीर **सुंदरि** यौं कहै, सुनियो कंत सुजांन। → सा० सुन्द० (५२) १-१।

सुंदरी—संज्ञा स्त्री [सं०] जीवात्मा, साधक। ~तब सुख पावै **सुंदरी**, ब्रह्म झलक्कै सीसि। →सा० मन० (१३) २०-२।

सुआसिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० सुवासिनी] सौभाग्यवती, वंचक गुरुआ लोगों की वाणी। ~अरघा दे लै चली **सुआसिनि**, चौके राँड भई संग साँई। →पद ३१२-६।

सुत—संज्ञा पु० [सं०] पुत्र, मन। ~ घर का **सुत** जो होय अयाना, ताके संग न जाहिं सयाना र० २६-५।

सुनहाँ—संज्ञा पु० [सं० शुन] श्वान, मन। ~डांइन डारै **सुनहाँ** डोरै, सिंघ रहै बन घेरे। →सब० ४४-३।

सुन्न—संज्ञा पु० [सं० शून्य] आकाश, सर्वव्यापी, विभु, तत्व सम्बन्धी; शून्य अवस्था ही सहज अवस्था है। इसी का 'समरस' अवस्था कहा गया है। ~ **सुन्न** सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक जोति।→र० ६-६।

सुन्नि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] शून्य, शीर्ष के ऊपरी भाग में एक रंध्र होता है जो स्थूल इन्द्रियों से परे है। यह रंध्र सुषुम्ना के भीतर से होता हुआ मूलाधार तक चला गया है। इसी रंध्र के ऊपर सहस्र दल कमल स्थित है। इसे ब्रह्म रंध्र कहते हैं। इसी के ऊपर शून्य शिखर है। ~हद छाड़ि बेहद गया, किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुन्नि असनान। →सा० पर० (५) ११-१।

सुन्नि—संज्ञा पु० [सं० शून्य] ब्रह्मरंध्र पर स्थित सहस्रदल कमल, शून्यचक्र। ~तपनि गई सीतल भया, जब **सुन्नि** किया असनान। →सा० पर० (५) ३२-२।

सुन्नि सिखर—संज्ञा पु० [सं० शून्य+शिखर] शून्य शिखर, सहस्रार। ~कबीर मोती नीपजै, **सुन्नि सिखर** गढ़ माँहि। →सा० पर० (५) ८-२।

सुरतां—संज्ञा स्त्री० [सं० सु+रति] सुरति के द्वारा, प्रेमपूर्ण ध्यान। ~तरवर एक अनंत मूरति, **सुरतां** लेहु पिछानी। →सब० १२-३।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्यगात्मा। ~पंचतत्त तत्तहि मिले, **सुरति** समाना मंन। →सा० उप० (३४) ४-२।

सुरति—संज्ञा स्त्री [सं० सु+रति] चित्त का वह अवधान (Attention) जिससे साधक अनाहत नाद को सुनता रहता है और वह सुमिरन जिससे वह प्रभु का प्रेम-रस पीता रहता है। ~कबीर सूषिम **सुरति** का, जीव न जानैं जाल। →सा० सूपि० ज० (१५) १-१।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [सं० सु+रति] 'रति' शब्द रम् धातु का संज्ञा पद है। रम् के दो अर्थ हैं–रमण करना, आनन्द लेना तथा रुक जाना, ठहर जाना। सुरति शब्द का अर्थ हुआ–किसी पदार्थ में इतने रस, इतने आनन्द का अनुभव करना कि चित्त की चंचलता; चित्त के क्षोभ का उपरम (रुक जाना) और उपशम (शांत) हो जाय। प्रेमानुरक्त ध्यान और स्मरण। ~ **सुरति** समानी निरति में, निरति रही निरधार। → सा० पर० (५) २२-१।

सुरभी भच्छन—[सं०] हठयोग प्रदीपिका (तृतीयोपदेश-श्लोक ४७; ४८) में कहा गया है कि जो नित्य गोमांस का भक्षण करता है और वारुणी का पान करता है उसे मैं कुलीन समझता हूँ, अन्य कुल घातक हैं। यहाँ 'गो' शब्द का अर्थ 'जिह्वा' है। उसका तालु में प्रवेश करना गोमांस भक्षण है। यह भक्षण महापाप नाशक है। ~ **सुरभी भच्छन** करत वेद मुख, घन बरिसै तन छीजै। →सब० १४४-५।

सुरही—सज्ञा स्त्री० [सं० सुरभी] गाय, भक्ति। ~**सुरही** चूषै बछतलि, बछा दूध उतारै। → सब० ५१-७।

सुरुज—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] दाहिने नासारंध्र से चलने वाली नाड़ी। इसे पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। ~महि अकास दुइ गाड़ खँदाया, चाँद **सुरुज** दुइ नरी बनाया। →र० २८-२।

सुवटा[१]—संज्ञा पु० [सं० शुक्र] शुक, ज्ञानेंद्रियाँ। ~ पंच **सुवटा** आइ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बैठै, उदै भई बनराइ। →सब० ४५-८।

सुवटा[२]—संज्ञा पु० [सं० शुक] तोता, जीव। दे० 'सुवा'। ~ **सुवटा** डरपत रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत बिलाई। → पद ३२०-१, सब० ३३८-१।

सुवा—संज्ञा पु० दे० 'सुवटा'[२]।

सुहागिनि—संज्ञा स्त्री० [हि० सुहाग + इन (प्रत्य०)] सौभाग्यवती, माया। ~**सुहागिनि** जगत पियारी। →सब० ४६-१।

सूत-कुसूत— संज्ञा पु० [सं० सूत्र + कु + सूत्र] शुभ एवं अशुभ कर्म। ~कहहिं कबीर करम सो जोरी, **सूत-कुसूत** बिनै भल कोरी। → र० २८-४।

सूति—संज्ञा पु० [सं० सूत्र] जीवन-सूत्र, जीवन रूपी धागा। ~जोगी फेरी फिल करौं, यौं बिननां वै **सूति**। →सा० मन० (१३) ३-२।

सूर[१]—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] पिंगला नाड़ी। ~उलटी गंग समुद्रहिं सोखै, ससिहर **सूर** गरासै। → सब० ३२-३, सब० १५८-४; पद ३४२-३।

सूर[२]—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] सूर्य, सूर्यनाड़ी, पिंगला, दाहिनी नाड़ी। ~**सूर** समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक। →सा० पर० (५) १०-१।

सूर[३]—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] सूर्य, ज्ञान। ~उदया **सूर** निस किया पयांना, सौवत थैं जब जागा। → सब० १३-६।

सूर[४]—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] सूर्य, ज्ञान की ज्योति। ~कबीर कंवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल **सूर**। →सा० पर० (५) ४३-१।

सूरज—संज्ञा पु० [सं० सूर्य] पिंगला नाड़ी। दे० 'सूर[१]'। ~जहाँ धरनि बरसै गगन भीजै, चंद **सूरज** मेल। →सब० ४५-५।

सैंयाँ—संज्ञा पु० [सं० स्वामी] स्वामी, जीव। ~अपने **सैंयाँ** के बांधौं पाट, लै बेचौंगी हाटै हाट। →वसंत (४) ६-४।

सोनहा—संज्ञा पु० [सं० शुन] कुत्ता; अज्ञानी। ~ अचरज एक देखल संसारा, **सोनहा** खेदे कुंजर असवारा। →सब० ६२-३।

सोरह—वि० [सं० षोडश] विशुद्धाख्य चक्र (इसमें सभी स्वर होते हैं—अ से अः तक)। ~**सोरह** मंझै पवन झकोरै; आकासै फरु फरिया। → सब० ११६-६।

सोवनहार—संज्ञा स्त्री० [हि० सोना + हार (प्रत्य०)] सोनेवाली, कुण्डलिनी। ~चली जात वह बाटहि बाटा, **सोवनहार** के ऊपर खाटा। →र० ७३-२।

सोवैंगा—क्रि० [सं० शयन] सोवेगा, मर जाएगा। ~तेल घटै बाती बुझै, (तब) **सोवैंगा** दिन राति। → सा० सुमि० (२) १०-२।

सौदा—संज्ञा पु० [अ०] क्रय-विक्रय की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्तु, माल, सत्कर्म । ~कबीर गुदरी बीखरी, **सौदा** गया बिकाइ । →सा० अपा० (४८) ३-१ ।

सौरी—संज्ञा स्त्री० [दे० सौंड़, सौंड़ा] चादर, रजाई, शरीर । ~ जाड़न मरै सपेदी **सौरी**, खसम न चीन्है घरनि भौ बोरी । →र० ७३-३ ।

स्यंभ दुवार—संज्ञा पु० [सं० शंभु द्वार] शंभु द्वार, ब्रह्मरंध्र ।~सुरति निरति परचा भया, तब खूले **स्यंभ दुवार** । →सा० पर० (५) २२-२ ।

स्यार—संज्ञा पु० [सं० शृगाल] तृष्णा । ~नित उठि **स्यार** सिंघ सौं जूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै । → सब० ८६-५ ।

स्यारि—संज्ञा पु० [सं० शृगाल] सियार, संकल्प-विकल्प । ~मूस तौ मंजार खायौ **स्यारि** खायौ स्वांनां । →पद ३४३-५ ।

स्वांनां—संज्ञा पु० [सं० श्वान] कुत्ता, निर्विकल्प । ~मूस तौ मंजार खायौ स्यारि खायौ **स्वांनां** । → पद ३४३-५ ।

स्वान—संज्ञा पु० [सं० श्वान] कुत्ता, अज्ञान । ~ **स्वान** बापुरो धरनि ढाकनो, बिल्ली घर की दासी । → पद ३००-६ ।

स्वान—संज्ञा पु० [सं० श्वान] कुत्ता, काल या मृत्यु । ~मेढक सर्प रहत एक संगे, बिलिया **स्वान** बियाही । →पद १६६-५ ।

स्वामी—संज्ञा पु० [सं०] शरीर का स्वामी, जीव । ~वोछी मति चंदा गो अथई, त्रिकुटी संगम **स्वामी** बसई । →र० १३-६ ।

स्वेत—वि० [सं० श्वेत] सत्व प्रधान । ~पुरता में राती है गइया, **स्वेत** सींग है भाई । →पद २०६-६ ।

ह

हंस—संज्ञा पु० [सं०] जीवात्मा । दे० 'हंसिनी' । ~जोरी बिछुरी **हंस** की, पड़े बगाँ कै हाथि । →सा० अपा० (४८) १-२, र० ४२-६ ।

हंस—संज्ञा पु० [सं०] जीव, शुद्ध आतमा । ~पूरब दिसा **हंस** गति होई, है समीप सँधि बूझै कोई । → र० ५-६ ।

हंस—संज्ञा पु० [सं०] हंस 'अहं सः' का संक्षिप्त रूप है । इसमें 'अ' और 'सः' के विसर्ग का लोप हो गया है । 'अहं सः' का तात्पर्य है—जीव में इस ज्ञान का होना कि मैं ब्रह्म हूँ, मेरी चेतना भागवती है । ~हरिजन **हंस** दसा लिएं डोलै । →पद ३३४-१ ।

हंस—संज्ञा पु० [सं०] हंस, मुक्त आतमा । ~और पखेरू पी गए, **हंस** न बोरै चंच । → सा० माया० (१६) ३०-२ ।

हंसा—संज्ञा पु० [सं० हंस] जीव । ~ मानसरोवर सुभर जल, **हंसा** केलि कराहिं । →सा० पर० (५) ३६-१ ।

हंसा—संज्ञा पु० [सं० हंस] ज्ञानी या विवेकशील जीव । ~बगुला मंझ न जांनई, **हंसा** चुनि घुनि खाइ । → सा० पारि० (४६) २-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हंसा—संज्ञा पु० [सं० हंस] शुद्ध जीवात्मा। ~ताका जल कोई **हंसा** पीवै, बिरला आदि बिचारि। → सा० पर० (५) ४५-२।

हंसिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवात्मा। ~सरवर तटि **हंसिनी** तिसाई। → पद ३११-१।

हजारी क सूत—यौ० [हि०] सूक्ष्म या बारीक वस्त्र, नाना प्रकार के कर्म। ~मैं कातौं **हजारी क सूत**। →पद २३५-१।

हट्ट—संज्ञा पु० [सं०] हाट, बाजार, संसार। ~पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आँवौं **हट्ट**। →सा० गुरु० (१) १२-२।

हर—संज्ञा पु० [हि० हल] हल, काम्य-कर्म।~सिंह सार्दुल एक **हर** जोतिन सीकस बोइन धाना। → सब० १५५-२।

हरिजल—यौ० [हि०] परमानन्द। ~ जुगति बिनाँ **हरिजल** पिया न जाई। →सब० ३११-२।

हरिनि—संज्ञा पु० [सं० हरिण] मृग, तृष्णा। ~ गाइ नाहर खाइओ **हरिनि** खायौ चीता। → पद ३४३-३।

हस्ति—संज्ञा पु० [सं० हस्तिन्] मन। ~धरती उलटि अकासै जाई, चिऊँटी के मुख **हस्ति** समाई। → सब० १५२-२।

हस्ती—संज्ञा पु० [सं० हस्तिन्] हाथी, ब्रह्मज्ञान। ~चिउँटा के पग **हस्ती** बांधे, छेरी बीगर खावै। →पद १६६-३।

हस्ती—संज्ञा पु० [सं०] हाथी, माया। ~संतो अचरज देखहू, **हस्ती** सिंघहि खाय। →र० ७२-६, सब० ५१-२।

हस्ती—संज्ञा पु० [सं०] माया, मन। ~अचरज एक देखहु हो संतो, **हस्ती** सिंघहि खाय। →र० १२-८।

हस्ती—संज्ञा पु० [सं०] जीव। ~गुरु परसादि सुई कै नाकै, **हस्ती** आवैं जांही। →सब० ३०-८।

हाकिम—संज्ञा पु० [अ०] स्वामी, जीवात्मा। ~उठि गया **हाकिम** लुटि गया डेरा। →सब० ५७-८।

हाट—संज्ञा पु० [सं० हट्ट] बाजार, योनि। ~अपने सैंयाँ के बाँधौं पाट, लै बेचौंगी हाटै **हाट**। → वसत (४) ६-४।

हाट—संज्ञा पु० [सं० हट्ट] बाजार, शरीर। ~बिना **हाट** हटवाई लावै करै बयाई लेखा। →सब० ६०-३।

हाट-बाट—संज्ञा पु० [सं० हट्ट + वाट] बाजार, संसार। दे० 'हाटि'। ~ जा दिन किरतम नां हता, नहीं **हाट** नहिं **बाट**। →सा० पर० (५) २८-१।

हाटि—संज्ञा पु० [सं० हट्ट] बाजार, संसार। ~ एक अचंभा देखिया, हीरा **हाटि** बिकाइ। →सा० अपा० (४८) २-१।

हाड़ी—संज्ञा पु० [हि० हरना > हारी (हरने वाला) > हाड़ी] डाकू, क्रोध, काम, लोभ आदि। ~चौहटै चिंतामणि चढ़ी, **हाड़ी** मारत हाथि। →सा० पर० (५) १६-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हार—संज्ञा पु० [सं०] माला, ईश्वरोन्मुखी वृत्ति । ~मेरो **हार** हिराँनौं मैं लजाऊँ । →पद २३४-१ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] चैतन्य, आत्मा । ~अनंत कोटि मन **हीरा** बेध्यौ, फिटकी मोल न पाई हो । → कहरा (३) १०-११ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] परमतत्व । ~पुहुप पत्न जहँ **हीरा** मनीं, कहै कबीर तहँ त्रिभुवन धनी । → सब० ५४-८ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] ज्ञान । ~कबीर **हीरा** बनिजिया, मानसरोवर तीर । →सा० गुरु० (१) २६-२ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] आत्मतत्व । ~**हीरा** खोया हाथ तैं, जनम गँवाया बादि । →सा० कामी न० (२०) १८-२ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] भक्ति । ~कबीर **हीरा** बनजिया, महँगे मोल अपार । →सा० सूरा० (४५) २८-१ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] प्रभु की भक्ति । ~एक अचंभा देखिया **हीरा** हाटि बिकाइ । → सा० अपा० (४८) २-१ ।

हीरा—संज्ञा पु० [सं० हीरक] हीरा, आत्मज्योति, आत्मदर्शन । ~ तौ मुख तैं मोती झरैं, **हीरा** अनंत अपार । →सा० उप० (३४) ८-२ ।

हीरै—संज्ञा पु० [सं० हीरक] हीरा ही, परम तत्व ।~सायर माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्थ । →सा० पर० (५) ३४-२ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संख्यावाची शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

: १ :

एक—वि० [सं०] अन्तरात्मा । ~छत्री सो जो कुटुम से जूझै, पाँचो मेटि एक कै बूझै । →र० ८३-३ ।

एक—वि० [सं०] मोक्ष । ~एक दूरि चाहै सभ कोई, जतन जतन कहु बिरले पाई ।→सब० ८८-५ ।

एकै कुवां—संज्ञा पु० [सं० एक+कूप] एक कुआँ, प्राणमय कोश । ~एकै कुवां पाँच पनिहारी । → सब० ५७-३ ।

: २ :

खूँटै दोऊ—संज्ञा पु० [हि० दो+खूँटा] ज्ञान और भक्ति । ~ ग्वाड़ा मांहैं आनंद उपनौं, खूँटै दोऊ बाँधी रे । → सब० २७-६ ।

जुग—संज्ञा पु० [सं० युग] दो—साक्ष्य-चैतन्य तथा मन । ~ ससिहर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग **जुग** तारी । →पद २०१-४ ।

दुइ दुख—संज्ञा पु० [सं० द्विदुःख] दो दुःख—जन्म व मरण सम्बन्धी ।~ तेहि साहब के लागहु साथा; **दुइ दुख** मेटिके रहहु सनाथा ।→र० ७५-१ ।

दुई—वि० [हि० दो] राग, द्वेष ।~ जना पाँच कोखिया मिलि रखलों, और **दुई** औ चारी ।→पद २२२-४ ।

पुरुष दुइ—संज्ञा पु० [हि० दो पुरुष] ज्ञान, वैराग्य । ~नारी एक **पुरुष दुइ** जाए, बूझो पंडित ज्ञानी ।→पद ३०१-२ ।

फल दुइ—संज्ञा पु० [सं० द्विफल] दो फल—सुख-दुःख । ~छव छत्री पत्री जुग चारी, **फल दुइ** पाप पुन्य अधिकारी ।→र० ८२-२ ।

: ३ :

खूंटा तीन—संज्ञा पु० [हि० खूंटा+तीन] इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना ।~ लम्बी पुरिया पाई छीन, सूत पुराना **खूँटा तीन** । →बसंत (४) ३-२ ।

तिनि डारा—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन+डार] तीन शाखाएँ—सत्व, रजस्, तमस् ।~बिरवा एक सकल संसारा; पेड़ एक फूलल **तिनि डारा** । → पद २८६-२ ।

तिरगुन—संज्ञा पु० [सं० त्रिगुण] त्रिगुणात्मक—सत्त्व, रजस्, तमस् । दे० 'त्रिगुन' ।~**तिरगुन** फांसि लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ।→ पद २२७-२, पद ३२४-२ ।

तिरदेवा—संज्ञा पु० [सं० त्रिदेव] ब्रह्मा, विष्णु, महेश । ~षट दरसन मिलि पंथ चलायो, **तिरदेवा** अधिकारी । →सब० १५६-३, पद ३१६-४ ।

तिरबिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिविध] तीन अवस्थाएँ—बाल, युवा, वृद्ध । ~**तिरबिधि** रहौं सभनि मां बरतौं, नाम मोर रमुराई हो ।→कहरा(३) १०-७ ।

तिहाई—संज्ञा पु० [हि०] त्रिताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक । ~ दिव की बेठ खसम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौं बरकस तापर लगी तिहाई ।→ पद २७१-७ ।

तीन—वि० [सं० त्रीणि] धर्म, अर्थ, काम । ~निगम रिसाल चारि फल लागे, तामे **तीन** समाई । → सब० ८८-४ ।

तीन देव—संज्ञा पु० [सं० त्रिदेव] ब्रह्मा, विष्णु, महेश । दे० 'तिरदेवा' । ~**तीन देव** प्रतखि तोरहि करहि किसकी सेव । →पद २११-१० ।

तीनिउं सांझ—संज्ञा स्त्री०[सं० त्रि संध्या] तीन संध्या—प्रातः, मध्याह्न, सायं । ~बैल बियाइ गाइ भई बांझ, बछ-रहि दूहै **तीनिउं सांझ** । →सब० ८६-३ ।

तीनि गाऊँ—संज्ञा पु० [हिं०] तीन गाँव; प्र० त्रयलोक्य—ब्रह्मलोक, शिवलोक और विष्णुलोक, भूः, भुवः स्वः । ~हरिहर ब्रह्मा महतो नाऊँ तिन्ह पुनि **तीनि बसावल गाऊँ** । → र० २-४ ।

तीनि गुन—संज्ञा पु० [सं० त्रिगुण] तीन गुण—भक्ति, मुक्ति और ज्ञान । ~ नारि नसावै **तीनि गुन**, जेहि नर पासैं होइ । → सा० कामी० (२०) १०-१ ।

तीनि जगाती—संज्ञा पु० [हिं० तीन+ जगात+ई (प्रत्य०)] तीन तत्व—सत्व, रजस्, तमस् । दे० 'त्रिगुन' । ~**तीनि जगाती** करत रारि, चल्यौ बनिजारा हाथ झारि । → पद २३६-६ ।

तीनि दण्ड—संज्ञा पु० [सं० त्रिदण्ड] तीन ताप—दैहिक, दैविक और भौतिक । ~जों तोहिं करता बरन बिचारा,जन्मत **तीनि दण्ड** अनुसारा । →र० ६२-१ ।

तीनि भवन—संज्ञा पु० [सं० त्रि भवन] तीन कोष—अन्नमय, प्राणमय, मनो-मय । ~ **तीनि भवन** मैं एकै जोगी, कहौ कहाँ बसै राजा । → सब० ११२-८ ।

तीनि लोक—संज्ञा पु० [सं० त्रिलोक] स्वर्ग, मर्त्य, पाताल । ~छौ चारि चौदह सात इकइस **तीनि लोक** बनाय । →हिंडोला (८) १-१० ।

तीनि लोक—संज्ञा पु० [सं० त्रिलोक] भू, भुव, स्व । ~तब अष्टंगी रची कुमारी, **तीनि लोक** मोहिनि सभ झारी । →र० २७-४ ।

तीनि लोक—संज्ञा पु० [सं० त्रिलोक] भू, भुव और स्व नामक तीन लोक । ~ **तीनि लोक** जाकै हहि भारा, सो काहे न करै प्रतिपारा । → सब० १६-४ ।

तीनि लोक—संज्ञा पु० [सं० त्रिलोक] तीन लोक—स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक, पाताल लोक । अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोष । भू, भुव, स्व लोक । ~ **तीनि लोक** यों आय के; छूटि न काहु कि आस । → र० ५३-६ ।

तीनि सनेही—संज्ञा पु० [सं० त्रि + स्नेहिन्] तीन इष्ट—सुतैषणा, वित्तै-षणा और लोकैषणा । ~ तीनि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सनेही बहु मिलै, चौथे मिलै न कोइ। → सा० गु० सि० हे० (४३) ९-१ ।

तीनो लोक—संज्ञा पु० [सं० त्रिलोक] तीन लोक—पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग । ~ कामिनि काली नागिनी, **तीनो लोक** मँझारि । → सा० कामी न० (२०) १-१ ।

तीन्यूँ ताप—संज्ञा पु० [सं० त्रिताप] त्रिताप—दैहिक, दैविक, भौतिक । ~आपा जांनि उलटिलें आप, तौ नहि ब्यापै **तीन्यूँ ताप** । → सब० २०-६ ।

त्रिगुन—संज्ञा पु० [सं० त्रिगुण] सत्व, रजस्, तमस् । दे० 'त्रिविध' । ~ग्यान गाड़ लै रोपिया, **त्रिगुन** लियो है हाथ । → चाँचर (५) १-१८ ।

त्रिविध—वि० [सं०] तीन प्रकार का, त्रिगुणात्मक, सत्व, रजस्, तमस् । ~माया तरुवर **त्रिविध** का, साखा दुख संताप । → सा० माया० (१६) २०-१ ।

: ४ :

खानी—संज्ञा स्त्री० दे० 'चारी खानि' ।

चारि अवस्था—वि० स्त्री० [सं०] चार अवस्थाएं—बाल्य, कैशोर्य, युवा और वृद्ध । ~**चारि अवस्था** सपनै कहई, झूठी फुरो जानत रहई । → र० २४-२ ।

चारिउ जुग—संज्ञा पु० दे० 'युग चारी' ।

चारि खूँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चार+खूँटा] मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार । ~**चारि खूँटी** दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियो चलाई । → पद २१५-३ ।

चारि जुग—संज्ञा पु० दे० 'युग चारी' ।

चारि दिग—संज्ञा स्त्री० [हि० चारि+सं० दिक्] चार दिशाएँ । यहाँ तात्पर्य है शरीर के चार अंग—नाभि, कंठ, हृदय और त्रिकुटी । ~**चारि दिग** महि मंड रचो है, रूम साम बिच डिल्ली । → सब० ६४-१५ ।

चारि पदारथ—संज्ञा पु० [हि० चार+सं० पदार्थ] अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष । ~कहै कबीर तुम समरथ दाता, **चारि पदारथ** देत न बार । → सब० १४८-६ ।

चारि फल—संज्ञा पु० [हि० चार+सं० फल] धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । ~निगम रिसाल **चारि फल** लागे, तामे तीन समाई । → सब० ८८-४, पद २८६-३ ।

चारि बरन—संज्ञा पु० [सं० चत्वारि वर्ण] चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । ~नाना रूप बरन यक कीन्हा, **चारि बरन** उन्ह काहु न चीन्हा । → र० ८३-१ ।

चारि बृक्ष—संज्ञा पु० [हि० चार+सं० वृक्ष] चार वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्वण । ~**चारि बृक्ष** छव साखा वाके, पत्र अठारह भाई । → पद २०६-५ ।

चारी खानि—संज्ञा स्त्री० [सं० चत्वार+खानि] उत्पत्ति के आधार पर चार प्रकार के जीव—अण्डज,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वेदज, जरायुज और उद्भिज। ~ एकै पुरुष एक है नारी, ताते रचेउ **खानि भौ चारी** →र० । २७-६, हिंडोला (८) १-११ ।

चौमास—संज्ञा पु० [सं० चातुर्मास्य] वर्षा ऋतु के चार महीने—आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन। ~रच्यो हिंडोला अहो निसि चारि जुग **चौमास**। →हिंडोला (८) २-४ ।

जुग चारी—संज्ञा पु० [सं० युग+हि० चार] सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। ~कहते मोहि भये **जुग चारी**, काके आगे कहों पुकारी। → र० १४-१२, र० ८२-२, वसंत (४) ५-२, हिंडोला (८) २-४।

: ५ :

पंच—वि० [सं०] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अथवा काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ। ~मन नहिं मारा मन करि, सके न **पंच** प्रहारि। →सा० मन० (१३) १५-१ ।

पंच किसानां—संज्ञा पु० [सं० पञ्च+ कृषक] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—चक्षु, घ्राण, श्रवण, रसना और त्वचा। ~नगर एक तहँ जीव धरम हत, बसै जु **पंच किसानां**। →सब० १०-३ ।

पंच कुसंगी—संज्ञा पु० [सं० पञ्च+ कु+सगी] पंचेन्द्रियाँ, अथवा काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह। दे० 'पाँच कुटुम्बी'। ~कहै कबीर कैसे तिरूँ, **पंच कुसंगी** संग। →सा० मन० (१३) २१-२ ।

पंच चोर—संज्ञा पु० [सं०] पंचेन्द्रियाँ अथवा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह। दे० 'पंच पियादे'। ~कबीर पट्टन कारिवाँ, **पंच चोर** दस द्वार। → सा० चिता० (१२) ७-१, पद २२३-४, पद ३३६-३ ।

पंचतत्व—संज्ञा पु० [सं०] पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु। ~ काया कसौं कमान ज्यौं, **पंचतत्व** करि बांन। →सा० मन० (१३) ३०-१, सब० १४६-३ ।

पंचनि—संज्ञा पु० [सं० पंच] काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ। ~इन **पंचनि** मिली लूटी हूँ, कुसंग आहि विदेसा। →सब० १७-२ ।

पंच पियादे—संज्ञा पु० [सं० पंच+ फा० प्यादा] मन की पाँच मुख्य प्रवृत्तियाँ—काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ। दे० 'पंच चोर'। ~**पंच पियादे** पारि कै, दूरि करै सब दूज। →सा० सूरा० (४५) ३-२ ।

पंच पियारियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] पञ्च प्राण—प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान। दे० 'पाँच पनिहारी। ~झूलें **पंच पियारियाँ**, तहँ झूले जीय मोर। →पद ३४२-४ ।

पँच सँगी—संज्ञा पु० [सं० पंच+संग +ई (प्रत्य०)] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ- नेत्र, कर्ण, घ्राण, स्पर्श, रसना। ~**पँच सँगी** पिव पिव करै, छठा जु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुमिरै मंन । →सा० सुमि० (२) ७-१ ।

पंचूं किसानाँ—संज्ञा पु० [सं० पंच+ कृषक] पाँचों यम—अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । ~साती बिरही मेरे नीपजै, **पंचूं मोर किसानाँ** । →सब० १७-४ ।

पांचउ तत्त—संज्ञा पु० दे० 'पंच तत्व' ।

पाँचउ लरिके—संज्ञा पु० [सं० पंच√ लड़+क] काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह । दे० 'पंच पियादे' । ~**पाँचउ लरिके** पटकि कै, रहै राँम लौ लाइ । →सा० गु० सि० हे० (४३) ४-२ ।

पाँच कुटुम्बी—संज्ञा पु० [सं० पंच कुटुम्बिन्] पञ्च विकार—काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह । ~**पाँच कुटुम्बी** महा हरांमीं अम्रित मैं बिख घोलै । →पद २१४-५ ।

पांच जनां—संज्ञा पु० [सं० पञ्च जन] पञ्च तत्व—क्षिति, पवन, जल, पावक, गगन । दे० 'पंचतत्व' । ~**पांच जनां** मिलि मंडप छायौ चारि जनां मिलि लगन लिखाई । →पद २३८-३ ।

पाँच ढोटा—संज्ञा पु० [सं० पंच दुहितृ] पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, त्वचा और रसना तथा उनके विषय—रूप, शब्द, गंध, स्पर्श, रस । ~राति दिवस मिलि उठि उठि लागै, **पाँच ढोटा** एक नारी । → पद २९६-२ ।

पाँच पनिहारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] पानी भरने वाली, पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान और ब्यान अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ । दे० 'पाँचौं पवना' । ~एकै कुवां **पाँच पनिहारी** । →सब० ५७-३ ।

पाँच भुवंगा—संज्ञा पु० [सं० पञ्च भुजंग] पाँच सर्प, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । ~एक ही दादुल खायौ **पाँच हूँ भुवंगा** । →पद ३४३-७ ।

पांचौं नाग—संज्ञा पु० [सं० पंच नाग] पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, रसना, त्वक् । दे० 'पाँच ढोटा' । ~**पांचौं नाग** पचीसौं नांगिनि सूंघत तुरत मरी । →पद ३२७-४ ।

पांचौं पवना—संज्ञा पु० [सं० पञ्च पवन] पञ्च प्राण—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान । ~मन **पवनां पांचौं** बसि किया तिन या राह सँवारी । →पद ३१४-२ ।

बनिजारे पाँच—संज्ञा पु० [हि० बनिज +हारा+पाँच] पाँच व्यापारी—पञ्च तत्व—पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु । दे० 'पंच तत्व' । ~ नाइकु एकु **बनिजारे पाँच**, बरध पचीस क संगु कांच । →पद २३९-३ ।

: ६ :

छव दरसन—संज्ञा पु० [सं० षड् दर्शन] १. छः दर्शन—न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य और योग,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. जोगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण । ~तिन्ह पुनि रचल पिंड ब्रह्मंडा, **छव दरसन** छानवे पाषडा । →र० २-५ ।

छव साखा—यौ० छः वेदाङ्ग—व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द, शिक्षा, कल्प । ~चारि वृक्ष **छव साखा** वाके, पत्र अठारह भाई । →पद २०६-५ ।

छह दरसन—संज्ञा पु० दे० 'षट दरसन' ।

छौ—(छः शास्त्र) वि० दे० 'षट दरसन ।

षट आश्रम—संज्ञा पु० [सं०] छः आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ; संन्यास, हंस, परमहंस । ~**षट आश्रम** षट दरसन कीन्हा; षटरस वास षट वस्तुहिं चीन्हा । →र० २२-४ ।

षट करमां—संज्ञा पु० [सं० षट्कर्म] १. नित्य षट् कर्म—स्नान, संध्या, पूजा, तर्पण, जप, होम । २. योगियों के षट् कर्म—धोती, नेती, बस्ति, न्योली, त्राटक, कपालभाती । ३. ब्राह्मणों के षट् कर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह । ~संध्या गायत्री अरु **षट करमां**, तिन थैं दूरि बतावा । →पद २२०-४ ।

षट कर्म—संज्ञा पु० [सं०] यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह । ~जेहि जल नाद विंदु को भेदा, **षट कर्म** सहित उपानेउ बेदा । →सब० १०७-२ ।

षट कर्म—संज्ञा पु० [सं०] स्नान, संध्या, पूजा, तर्पण, जप और होम । ~हंड़िया हाड़ हाड़ थारी मुख, अब **षट कर्म** बनेऊ । →सब० १६५-४, र० ३५-२ ।

षट कर्मा—संज्ञा पु० दे० 'षट कर्म' ।

षट चक्र—संज्ञा पु० [सं०]

चक्र	**स्थान**	**कमलदल (आकार)**
मूलाधार	जननेन्द्रिय के नीचे मेरुदण्ड का प्रदेश	४ दल ।
स्वाधिष्ठान	जननेन्द्रिय के ऊपर मेरुदण्ड का प्रदेश	६ दल ।
मणिपूर	नाभि का प्रदेश	१० दल ।
अनाहत	हृदय का प्रदेश	१२ दल ।
विशुद्ध	कंठ के नीचे	१६ दल ।
आज्ञा	भ्रू मध्य का प्रदेश	२ दल ।

~**षट चक्र** कंवल बेधा जारि उजारा कीन्हा । →सब० १००-५; सब० ११-३ ।

षट दरसन—संज्ञा पु० [सं०] संतों के छः दर्शन—योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, बाह्मण । ~**षट दरसन** मिलि पंथ चलायो, तिरदेवा अधिकारी । → सब० १५६-३; हिंडोला (८) १-१२ ।

षट दरसन—संज्ञा पु० [सं० षट् दर्शन] छः दर्शन—न्याय, वैशेषिक, सांख्य; योग, मीमांसा और वेदान्त ।~षट आश्रम **षट दरसन** कीन्हा, षटरस वास षट वस्तुहिं चीन्हा । → र० २२-४, सा० मधि० (३१) ११-२; पद २०८-४, हिंडोला (८) १-१० ।

षड रस—संज्ञा पु० [सं० षट् रस] छः रस–मधुर, लवण, तिक्त, अम्ल,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कटु; कषाय। ~षड रस भोजन बिंजना बहु पाक मिठाई। →पद ३४५-११, र० २२-४।

: ७ :

सात दीप—संज्ञा पु० [सं० सप्त द्वीप] सात द्वीप—जम्बू, कुश, प्लक्ष, क्रौंच, शक, पुष्कर और शाल्मलि। ~ब्रह्मा को दीन्हो ब्रह्मण्डा, **सात दीप** पुहुमी नव खण्डा। →र० २७-१।

सात समुंदा—संज्ञा पु० [सं० सप्त + समुद्र] सात समुद्र—दुग्ध, दधि, घृत, क्षार, इक्षुरस, मद्य और जल। ~घट ही भीतरि बनखंड गिरिवर, घटि ही **सात समुंदा**। →सब० ३३-३।

सात सूत—संज्ञा पु० [सं० सप्त सुत] सात पुत्र, सात धातुएँ—रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि, शुक्र। ~**सात सूत** मिलि बनिज कीन, करम भांवनीं संगि लीन। →पद २३९-५, पद २७१-४।

सातो—वि० [सं० सप्त] सात स्वर (संगीत के)—सा, रे, ग, म, प, ध, नी। दे० 'सातौ सबद'। ~ई **सातो** औरो हैं सातो नौ औ चौदह भाई। →सब० २०६-७।

सातो—वि० [सं० सप्त] सात पोषक तत्व—रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि, शुक्र। ~ई सातो औरो हैं **सातो**, नौ औ चौदह भाई। →पद २०६-७।

सातो बीज—संज्ञा पु० [सं० सप्तबीज] सात मूलतत्व—पाँच तन्मात्राएँ—रूप, रस, गंध, स्पर्श, श्रवण तथा बुद्धि और अहंकार। ~मास असाढ़े सीतल बिरहुली, बोइनि **सातो बीज** बिरहुली। →बिरहुली (७) ४।

सातौं सायर—संज्ञा पु० [सं० सप्त सागर] सात सागर—दुग्ध, दधि, घृत, क्षार, इक्षुरस, मद्य, जल। ~अष्ट कुली परबत जाके पग की रैनां, **सातौं सायर** अंजन नैनां। →पद २८३-३।

सातौ बिरही—संज्ञा पु० [सं० सप्त व्रीहि] ज्ञान की सात भूमियाँ—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, परार्थभाविनी और तुर्यगा। ~**सातौं बिरही** मेरे नीपजै, पंचूं मोर किसानां। →सब० १७-४।

सातौ सबद—संज्ञा पु० [सं० सप्त शब्द] संगीत के सात स्वर—सा, रे, ग, म, प, ध, नी। ~**सातौ सबद** जु बाजते, घरि घरि होते राग। →सा० चिता० (१२) ४-१।

: ८ :

अठ सिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ट सिद्धि] **आठ सिद्धियाँ**—१. अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व। २. **पुराणों की आठ सिद्धियाँ**—अंजन, गुटका, पादुका, धातुभेद, बोताल, बज्र, रसायन, योगिनी। ३. **सांख्य**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में **आठ सिद्धियाँ**—तार, सुतार, तारतार, रम्यक, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक। ~मानौ **अठ सिधि** नउ निधि ताकै सहजि सहजि जसु बोलै। →पद २५४-२।

अष्टंगी कुमारी—वि० स्त्री० [सं०] सुंदर चारु अंगों वाली कन्या, अर्थात् आद्या प्रकृति। उसके आठ अंग हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार। दे० 'अष्ट गगन'। ~तब **अष्टंगी** रचो **कुमारी** तीनि लोक मोहिनि सभ झारी। →र० २७-४।

अष्ट—वि० [सं०] १. आठ सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। २. अष्टांग योग। दे० 'सिद्धि'। ~बाँधे **अष्ट** कष्ट नौ सूता, जम बाँधे अजनी के पूता। →र० ६-१।

अष्ट गगन—संज्ञा पु० [सं०] आठ दिशाएँ अथवा अष्टधा प्रकृति—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। दे० 'अष्टंगी कुमारी'। ~साखा पत्र कछू नहिं वाकै, **अष्ट गगन** मुख बागा। →सब० ३७-४।

अस्ट कमल—संज्ञा पु० [सं० अष्ट कमल] मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्रदल और सुरति कमल। ~**अस्ट कमल** होइ पुहमी आया, छूति कहाँ से उपजै। →सब० १६६-४।

आठ मिथुन—संज्ञा पु० [सं० अष्ट+ मिथुन] आठ प्रकार के भोग—भोग आठ प्रकार से होता है—मन, बुद्धि, अहंकार और पाँच इन्द्रियाँ भोग की साधन हैं। ~तबही बिस्नु कहा समुझाई, **मिथुन आठ** तुम जीतहु जाई। →र० १३-७।

सिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की आठ सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। ~जन के कहे जनै रहि जाई, नवौ निद्धि **सिद्धि** तिन पाई। →र० ६४-३।

: ९ :

नउ घर—संज्ञा पु० [सं० नव+गृह] नौ तत्त्व (अंतःकरण चतुष्टय और पंच प्राण)—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। ~**नउ घर** देखि जु कामिनि भूली, बस्तु अनूपु न पाई। →सब० ११-७।

नउ निधि—संज्ञा स्त्री० दे० 'नवनिधि'।

नउ बहियाँ—संज्ञा पु० दे० 'नौ बहिया'।

नऊँ दुवार—संज्ञा पु० [सं० नवद्वार] दो नेत्र, दो कान, दो नासाद्वार, मुख और मल-मूत्र के द्वार। ~**नऊँ दुवार** नरक धरि मूंदे दुरगंधि ही के बेढ़े। →सब० १०२-२।

नव खण्डा—संज्ञा पु० [सं] नव खण्ड—भारत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश। ~ब्रह्मा को दीन्हो ब्रह्मण्डा, सात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीप पुहुमी **नव खण्डा**। →र० २७-१, सब० ६३-६, र० ३-४।

नव गज—यौ० संज्ञा पु० [सं०] नव द्वार— दो नेत्र, दो कान, दो नासाछिद्र, मुख, गुदा, लिंग। दे० 'नऊँ दुवार'। ~गज **नव गज** दस गज उनइस की पुरिया एक तनाई। →पद २७१-३।

नवग्रह—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। ~नित्त अमावस नित संक्रान्त, नित नित **नवग्रह** बैंठे पाँत। →सब० १६५-४; सब० १६०-३, सब० १२८-६।

नवनिधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व। ~कहै कबीर राजा रांम भजन सौं **नवनिधि** होइगी चेरी। →सब० १६०-७, र० ६४-३, सब० १८३-५, पद २५४-२।

नवौ निधि—संज्ञा स्त्री० दे० 'नव निधि'।

नौ—वि० [सं० नव] नव ग्रह—सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु। ~**नौ** हू मूवा दस हू मूवा मूवा सहस अठासी। →पद २६३-७।

नौ—वि० [सं० नव] १. नौ निधियाँ-पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व; २. नवधा भक्ति—श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पाद-सेवन, अर्चन, बंदन, सख्य, दास्य और आत्म निवेदन। दे० 'नौ निधि'। ~बांधे अष्ट कष्ट **नौ** सूता, जम बाँधे अजनी के पूता। →र० ६-१।

नौ—वि० [सं० नव] नौ व्याकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनी, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती। दे० 'नौ व्याकरनां'। ~ई सातो औरो हैं सातो, **नौ** औ चौदह भाई। →पद २०६-७।

नौधा—अव्य० संज्ञा स्त्री० [सं० नवधा] नवधा भक्ति—नौ प्रकार की भक्ति-श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य, आत्म-निवेदन। ~**नौधा** वेद कितेब है, झूठे का बाना। →सब० १३५-६।

नौ नारी—संज्ञा स्त्री० [सं० नव+नाड़ी] १. इड़ा (चन्द्र नाड़ी), २. पिंगला (सूर्य नाड़ी); ३. सुषुम्ना (मध्य नाड़ी), ४. गांधारी (दाहिने नेत्र की नाड़ी), ५. हस्ति जिह्वा (बाएँ नेत्र की नाड़ी), ६. पृषा (दाहिने कान की नाड़ी), ७. पयस्विनी (बाएं कान की नाड़ी), ८. लकुहा (गुदा नाड़ी) ९. अलंबुषा (लिंग नाड़ी)। इन्हीं नौ नाड़ियों से विषयों का भोग किया जाता है। ~**नौ नारी** को पानि पियतु है, तृखा न तेउ बुझाई। →पद २०६-२, वसंत (४) २-४, सब० ५७-४।

नौ निधि—संज्ञा स्त्री० दे० 'नवौ निधि'।

नौ बहिया—संज्ञा पु० [सं० नव+

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाहक] नौ वाहक—यहाँ तात्पर्य है चार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) + पांच प्राण [प्राण, अपान; समान; उदान, व्यान] दे० 'नउ घर'। ~नौ बहिया दस गोनि हो रमैया राम। →बेलि (६) १-२२, पद २३९-४।

नौ व्याकरनां—संज्ञा पु० [सं० नव व्याकरण] इन्द्र; चन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन; पिशालि; पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती। ~चारि वेद अरु सुंम्रित पुरानां, **नौ व्याकरनां** मरम न जानां। →सब० १६२-३।

बज्र कैंवार—संज्ञा पु० [सं० वज्र + कपाट] शरीर के नौ द्वार—दो नासा छिद्र, दो नेत्र, दो कान, मुख, गुदा, लिंग—योगी ध्यान करने पर इनको बंद कर लेता है। ~कोठ बहत्तर औ लौ लावै, **बज्र कैंवार** लगाई। →पद २०६-३।

: १० :

दस—वि० दे० 'दसौ अवतार'।

दस गोंनि—संज्ञा स्त्री० [सं० दस + गोणी] दस बोरिया, दस इन्द्रियाँ आँख; कान; नाक; रसना; त्वचा, हाथ, पाँव, गुदा, लिंग; मुख। ~ नउ बहियां **दस गोंनि** आहि, कसनि बहत्तरि लागि ताहि। →पद २३९-७।

दस द्वार—संज्ञा पु० [सं० दश द्वार] शरीर के दस छिद्र—दो नेत्र, दो कान, दो नासिका विवर, एक मुख, एक मलद्वार, एक मूत्र छिद्र; ब्रह्मरन्ध्र। ~कबीर पट्टन कारिवाँ, पंच चोर **दस द्वार**। →सा० चिता० (१२) ७-१; सा० सुमि० (२) २६-२, पद २०१-४, वसंत (४) ३-६।

दसहूँ द्वार—संज्ञा पु० दे० 'दस द्वार'।

दसों दुवार—संज्ञा पु० दे० 'दस द्वार'।

दसो दिसा—संज्ञा स्त्री० [सं० दश दिशा] दश-दिशाएँ—पूर्व, पश्चिम, उत्तर; दक्षिण, वायव्य, ईशान; नैर्ऋत, आग्नेय, ऊपर और नीचे। ~रहिगौ पंथ थकित भौ पौना, **दसो दिसा** उजारि भौ गौना। → र० ४५-४; सब० १३-४; सब० १०६-९।

दसौं दिस—संज्ञा स्त्री० दे० 'दसो दिसा'।

दसौ अवतारा—संज्ञा पु० [सं०] दस अवतार—मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह; वामन, परशुराम, राम, कृष्ण; बुद्ध, कल्कि। ~मथुरा मरिगो कृस्न गुवारा, मरि मरि गए **दसौ अवतारा**। →र० ५४-२, पद २९३-७।

दह दिसि—संज्ञा स्त्री० दे० 'दसो दिसा'।

: १४ :

चौदह—वि० दे० 'चौदह भुवन'।

चौदह—वि० [सं० चतुर्दश] चौदह विद्या—ब्रह्म ज्ञान, रस ज्ञान, कर्म काण्ड, संगीत, व्याकरण, ज्योतिष, धनुर्विद्या, जलतरन; न्याय, कोक, अश्वारोहण, नाट्य, कृषि, वैद्यक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दे० 'चौदह विद्या' । ~ई सातो औरौं हैं सातो, नौ औ **चौदह** भाई । →पद २०६-७ ।

चौदह चंदा—संज्ञा पु० [सं० चतुर्दश चन्द्र] द्वितीया से पूर्णिमा तक १४ दिन चाँदनी के होते हैं। यहाँ तात्पर्य है—१४ विद्याएँ—ब्रह्मज्ञान, रस ज्ञान, कर्मकाण्ड, संगीत; व्याकरण, ज्योतिष, धनुर्विद्या; जलतरन, न्याय; कोक; अश्वारोहण; नाट्य; कृषि, वैद्यक। अथवा ६ वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, छन्द, ज्योतिष। ४ वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्वण तथा मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण। दे० 'चौदह विद्या'।~चौसठि दीवा जोइ करि, **चौदह चंदा** माँहि। →सा० गुरु० (१) १७-१।

चौदह ठहर--संज्ञा पु० [सं० चतुर्दश स्थल] चौदह भुवन—भूः, भुवः; स्वर्ग, जन, तप, मह, सत्य, अतल, वितल, तल, सुतल; महातल; रसातल और पाताल। दे० 'चौदह भुवन'।~बाखरि एक विधातैं कीन्हा, **चौदह ठहर** पाट सो लीन्हा। → र० २-३।

चौदह भुवन--संज्ञा पु० [सं० चतुर्दश भुवन] १. सात स्वर्ग—भूः, भुवः, स्वर्ग, जन, तप, मह, सत्य। २. सात पाताल—अतल; वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल। ~**चौदह भुवन** चौधरी मरिहै काकी धरिऐ आसा। →पद २६३-६, हिंडोला (८) १-१०।

चौदह विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्दश विद्या] चौदह विद्याएँ—छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त; छन्द, ज्योतिष); चार वेद (ऋक्, यजु, साम; अथर्वण) और मीमांसा न्याय, धर्मशास्त्र; पुराण। ~**चौदह विद्या** पढ़ि समुझावै, अपने मरन की खबरि न पावै। →र० ४३-३।

: १६ :

कला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह आध्यात्मिक कलाएँ—१. पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, २. पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ३. पञ्च प्राण; ४. मन। ~**कला** अतीत आदि निधि निरमल, ताको सदा बिचारत रहिए। →पद ३०५-२।

नवसत--वि० [सं० नव + सप्त] सोलह, यहाँ सोलह श्रृंगार से तात्पर्य है। दे० 'सोलह सिंगार'। ~**नव सत** साजे कामिनी, तन मन रही सँजोइ। →सा० भेष० (२४) २३-१।

सोलह--वि० [सं० षोडश] पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पंच प्राण और मन। दे० 'कला'। ~ **सोलह** मंझै पवन झकोरैं, आकासे फल धरिया। →सब० १२-६।

सोलह सिंगार--संज्ञा पु० [सं० षोडश श्रृंगार] १. उबटन लगाना, २. स्नान करना, ३. वस्त्र धारण करना, ४. बाल सँवारना, ५. अंजन लगाना; ६. सिन्दूर भरना, ७. महावर लगाना, ८. भाल पर तिलक लगाना, ९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठोढ़ी पर तिलक बनाना, १०. मेंहदी रचाना, ११. सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग, १२. आभूषण पहनना, १३. पुष्पहार पहनना, १४. पान खाना, १५. होंठ रंगना, १६. मिस्सी लगाना। ~का काजल सिंदूर कै दीयैं, सोलह सिंगार कहा भयौ कीमैं। →सब० १३०-४।

: १८ :

पत्र अठारह—संज्ञा पु० [सं० पत्र अष्टादश] अठारह पुराण–विष्णु, वामन, वाराह, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कण्डेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कन्द, कूर्म, गरुड़। ~ चारि वृक्ष छव साखा वाके **पत्र अठारह** भाई। →पद २०६-५।

: १९ :

उनइस गज—संज्ञा पु० [हि०] सूक्ष्म शरीर–१. पाँच प्राण–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। २. पाँच तन्मात्रा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। ३. पाँच सूक्ष्मइन्द्रिय शक्तियाँ। ४. अन्तःकरण चतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। ~गज नव गज दस गज **उनइस** की पुरिया एक तनाई। → पद २७१-३।

: २१ :

इकइस—वि० [सं० एकविंशत्] चौदह भुवन—सात स्वर्ग—भू, भुव, स्व, जन, तप, मह, सत। सात पाताल—अतल, वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल। सात दीप—जंबु, कुश, प्लक्ष, क्रौंच, शाक, पुष्कर, शाल्मलि। ~ छौ चारि चौदह सात **इकइस** तीनि लोक बनाय। →हिंडोला (८) १-१०।

: २५ :

पचीसो—वि० [सं० पंचविंशति] प्रकृति के तत्व—१. आकाश के—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय। २. वायु के—चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन। ३. अग्नि के—क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन। ४. जल के—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य। ५. पृथ्वी के—हाड़, माँस, त्वचा, नाड़ी, रोम। दे० 'पचीसौं नागिनि'। ~ पाँच **पचीसो** दसहूँ द्वार सखी पाँच तहँ रची धमार। → वसंत (४) ३-६।

पचीसौं नागिनि—[सं० पंचविंशति नागिन] पाँच तत्वों से निःसृत पचीस मानसिक और शारीरिक विकार—आकाश से—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय = ५, अग्नि से—क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन = ५, वायु से–चलन, बलन, धावन, पसारन, संकोचन = ५, जल से—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य = ५, और पृथ्वी से–हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम = ५। इस प्रकार कुल २५ प्रकृतियाँ। दे० 'बरध पचीस'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

~ पाँचौं जाग **पचीसौं नागिनि**; सूंघत तुरत मरी। → पद ३२७-४।

बरध पचीस—संज्ञा पु० [सं० बलद पंच-विंशति] पचीस बैल अर्थात् पचीस प्रकृतियाँ–१. आकाश की–काम, क्रोध, लोभ, मोह, तम। २. वायु–चलन, बलन, धावन, प्रसारण, संकोचन। ३. अग्नि की—क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन। ४. जल की—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य। ५. पृथ्वी की—अस्थि, माँस, त्वचा, नाड़ी, रोम। दे० 'पचीसौं नागिनि'। ~ नाइकु एकु बनिजारै पांच, **बरध पचीस** क संगु कांच। → पद २३६-३।

: ३४ :

चौंतिस अक्षर—वि० [सं० चतुस्त्रिंशत् अक्षर] चौंतिस अक्षर व्यञ्जन = ५ वर्ग (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग पवर्ग); य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ॐ। ~ **चौंतिस अक्षर** से निकलै जोई, पाप पुन्य जानैगा सोई। → र० २४-५।

: ३६ :

राग छतीसौ—संज्ञा पु० [सं० षट्त्रिंशत् राग] संगीत में छः रागों की छत्तीस रागिनियाँ होती हैं। १. श्री राग—मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधु माधवी, पहाड़ी। २. बसंत राग-देशी, देव गिरि, वैराठी, टौरीका, ललित, हिंडोल। ३. पंचम राग—विभास, भूपाली, कर्णाटी, पटहंसिका, मालवी, पट मंजरी। ४. भैरव राग–भैरवी, बंगाली, सेंधवी, रामकली, गुर्जरी, गुणंकरी। ५. मेघ राग—मल्लारी, सैरिटी, सावेरी, कैशिकी, गांधारी, हर श्रृंगार। ६. नटनारायण राग—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी, हम्मीरी। ~ एक सबद मँह **राग छतीसौ**, अनहद बानी बोलै ! → सब० १०६-३।

: ६४ :

चौसठि दीवा—संज्ञा पु० [सं० चतुःषष्ठि दीपक] चौसठ दीपक अर्थात् चौसठ कलाएँ–१. गीत, २. वाद्य, ३. नृत्य, ४. चित्रकारी, ५. भोजपत्र के पत्तों को तिलक की आकृति में काटना, ६. पूजन के लिए चावल और रंग-बिरंगे फूलों को सजाना, ७. घर या कमरों को फूलों से सजाना, ८. शरीर, कपड़ों और दाँतों पर रंग चढ़ाना, ९. फर्श पर मणियों का बिछाना, १०. शय्या की रचना, ११. उदक-वाद्य, १२. जलघात; १३. मंत्र-तंत्रों के प्रयोग, १४. माला गूंथना, १५. शिर के आभूषणों को उचित रूप से धारण करना, १६. अपने को या दूसरों को वस्त्रालंकार से सजाना, १७. हाथी दाँत, शंख से अलंकारों को बनाना, १८. सुगंधित द्रव्य तैयार करना, १९. आभूषणों से मणियाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सजाना; २०. इंद्रजाल की क्रीड़ाएँ करना, २१. बाजीकरण प्रयोग, २२. हाथ की सफाई, २३. भोजन बनाने का कौशल, २४. पेय पदार्थों को बनाने का कौशल, २५. सिलाई, २६. सूत से चित्र बनाना, २७. वाद्य-वादन, २८. पहेलियाँ बुझाना, २९. अन्त्याक्षरी, ३०. कठिन श्लोक कहना ३१. पुस्तक-वाचन, ३२. नाटकादि का ज्ञान, ३३. कविता द्वारा समस्यापूर्ति, ३४. बेंत और सरकंडे की वस्तुएँ बनाना, ३५. मीनाकारी व पच्चीकारी, ३६. बढ़ईगिरी, ३७. गृह निर्माण कला; ३८. मणियों और रत्नों की परीक्षा; ३९. धातुशोधन, ४०. मणियों को रँगना; ४१. वृक्षायुर्वेद, ४२. भेड़ा-मुर्गा आदि लड़ाना, ४३. तोता-मैना पढ़ाना; ४४. शरीर की मालिश की कला, ४५. सांकेतिक अक्षरों का अर्थ-ज्ञान, ४६. गुप्त भाषा विज्ञान, ४७. विभिन्न देशों की भाषाओं का ज्ञान, ४८. फूलों से रथ-गाड़ी आदि बनाना, ४९. शकुन विचार; ५०. स्वचालित यंत्रों को बनाना; ५१. स्मरण शक्ति बढ़ाने की कला, ५२. याद किए गए श्लोकों को दुहराना, ५३. विक्षिप्त अक्षरों से श्लोक बनाना, ५४-५५. शब्द कोशों और छंदों का ज्ञान, ५६. काव्यालंकार का ज्ञान, ५७. बहुरूपियापन, ५८. वस्त्रधारण की कला, ५९. द्यूत क्रीड़ा की कला, ६०. पासा खेलना, ६१. बच्चों के खेलों का ज्ञान, ६२. आचारशास्त्र; ६३. विजय दिलाने वाली विद्याएँ, ६४. व्यायाम विद्या। ~ **चौसठि दीवा** जोइ करि; चौदह घंदा माँहि। → सा० गुरु० (१) १७-१।

: ७२ :

कोठ बहत्तर—संज्ञा पु० [कोष्ठ द्विसप्तति] शरीर की बहत्तर ग्रन्थियाँ; जिनसे सम्पूर्ण शरीर बँधा रहता है। दे० 'पुरुष बहत्तरि'। ~ **कोठ बहत्तर** औ लौ लावै, बज्र केंवार लगाई। → पद २०६-३।

पुरुष बहत्तरि—संज्ञा पु० [सं० पुरुष द्विसप्तति] शरीर में ७२ ग्रन्थियाँ (१६ कण्डराएँ, १६ जाल, ४ रज्जु; ७ सेवनी; १४ अस्थि संघात, १४ सीमन्त, १ त्वचा) इनसे शरीर बँधा रहता है। ~ अनहद बाजा रहल पूरि, **पुरुष बहत्तरि** खेलैं धूरि। → वसंत (४) २-५।

: ९६ :

छानबे पाषंडा—संज्ञा पु० [सं० षण्णवति पाषंड] छानवे सम्प्रदाय—बारह योगी; अट्ठारह जंगम, चौबीस शेवड़ा, दस संन्यासी, चौदह दरवेश, अट्ठारह ब्राह्मण। ~ तिन्ह पुनि रचल पिंड ब्रह्मण्डा, छव दरसन **छानवे पाषंडा**। → र० २-५, पद २०८-४।

छ्यानबे पाषंड—संज्ञा पु० दे० 'छानबे पाषंडा'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्दर्भ और अन्तर्कथाएँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ

अंबरीष—संज्ञा पु० [सं०] इक्ष्वाकु की २८वीं पीढ़ी में उत्पन्न अयोध्या के राजा नाभाग के पुत्र; भगवान् के प्रसिद्ध भक्त। इनके कारण विष्णु भगवान् ने दुर्वासा ऋषि के ऊपर चक्र चलाया था। यह मन्त्र-द्रष्टा थे। ~**अंबरीष** औ जाग जनक जड़, सेस सहस मुख पाना। →पद ३०३-७।

अंकूर—संज्ञा पु० [सं० अक्रूर] ये स्वफल्क के पुत्र थे। इनकी माता का नाम गांदिनी था। ये श्रीकृष्ण के चाचा लगते थे। श्रीकृष्ण और बलराम इन्हीं के साथ मथुरा गए थे। सत्राजित् की स्यमंतक मणि लेकर यह काशी चले गए थे। ~ माते सुकदेव ऊधो अंकूर, हनुमत माते लै लंगूर। →वसन्त (४) १०-६, पद ३१०-५।

अकूरु—संज्ञा पु० दे० 'अंकूर'।

अजामेल—संज्ञा पु० [सं० अजामिल] कान्यकुब्ज देश का एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण, जो बाद में दासी के प्रेम में बंध गया था। उसी के पाश में बंधकर उसने अपनी पत्नी को भी छोड़ दिया और निन्दित जीविका से जीवन-निर्वाह करने लगा। उसके दासी से दस पुत्र थे। सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण था। मरते समय उसने नारायण को पुकारा। इससे वह सभी पापों से मुक्त हो गया। ~**अजामेल** गज गनिका पतित करम कीन्हें। →पद २७५-५।

अहीलहि—संज्ञा स्त्री० [सं० अहल्या] मुद्गल ऋषि की पुत्री, गौतम ऋषि की पत्नी। इंद्र इसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गए और गौतम का रूप धारण कर गौतम की अनुपस्थिति में इसके साथ रमण किया। ~सुरपति जाय **अहीलहि** छरी; सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी। →र० ८१-३।

आ

आदम—संज्ञा पु० [अ०] सामी अर्थात् मुसलमानी, यहूदी और क्रिस्तानी मतों के अनुसार सृष्टि का सबसे पहला पुरुष आदम है। कहा जाता है कि खुदा ने फरिश्तों से मिट्टी मँगवाकर एक पुतला बनाया और उसमें जान (रूह) फूंक दी और उसे स्वर्ग में रहने की आज्ञा दी। उसने पाप-पुण्य रूपी वृक्ष के फल का स्वाद न लेने के लिए आदम को चेतावनी दे दी। परन्तु शैतान रूपी सर्प के बहकाने से कौतूहलवश उसने फल को चख लिया, जिसके कारण वह स्वर्ग से नीचे गिरा दिया गया। ~**आदम** आदि सुद्धि नहिं पाई; मामा हौवा कहां ते आई। →र० ४०-१।

इ

इन्द्र—संज्ञा पु० [सं०] वैदिक देवता, देवताओं के राजा। इनकी पत्नी का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाम शची, वाहन का नाम ऐरावत और अस्त्र का नाम वज्र है। जयन्त इनका पुत्र है। इनकी राजधानी अमरावती है। एक बार यह गौतम की पत्नी अहल्या पर कामासक्त हो गये थे। इसीलिए गौतम ने इन्हें शाप दे दिया था। ~इन्द्र कृस्न द्वारे खड़े, लोचन ललचि लचाय। →चांचर (५) १-२४।

उ

उपनिषद—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक वाङ्-मयका अंतिम क्रम जिनमें आत्मा, परमात्मा आदि अध्यात्म-तत्त्व का निरूपण किया गया है। दस मुख्य उपनिषदों पर शंकराचार्य आदि ने भाष्य लिखा है। ~तत्तुमसी इन्हके उपदेसा, ई **उपनिषद** कहैं संदेसा। →र० ८-१।

ऊ

ऊधो—संज्ञा पु० दे० 'ऊधौ'।

ऊधौ—संज्ञा पु० [सं० उद्धव] वृहस्पति के एक शिष्य; वृष्णियों के मंत्री और श्रीकृष्ण के सखा। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर यह गोकुल गए थे और गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया था। यादव सभा के सभासद। श्रीकृष्ण के अनेक उप-देशों को सुनकर इन्होंने बदरिकाश्रम को अपना निवास स्थान बनाया, जहाँ इनके जीवन के शेष दिन बीते थे। ~उहै राम वशिष्ठ मिलि गाई; उहै क्रिस्न ऊधौ समुझाई। →र० ८-५, वसंत (४) १०-६, पद ३१०-५।

ए

एक समै ··· ··· पाई—राम ने बालि का वध छिपकर किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि द्वापर में बालि ने व्याध रूप में विष्णु के दूसरे अव-तार कृष्ण का वध किया। ~**एक समै ऐसी** बनि आई, उनहूँ **औसर पाई**। →सब० ४-६।

क

कंसा—संज्ञा पु० [सं० कंस] मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र। वह काल-नेमि दानव का अवतार था। जरासंध की पुत्री उसकी पत्नी थी। उसने अपने पिता को कैद करके राज्य अपने हाथ में ले लिया। उसने अपनी बहन देवकी का विवाह वसुदेव से किया। किंतु यह आकाशवाणी सुन कर कि वह देवकी के पुत्र द्वारा ही मारा जायगा, उसने देवकी को मार डालने का निश्चय किया। वसु-देव-देवकी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उसने बहन को छोड़ तो दिया, किन्तु दोनों को कारागार में डाल दिया। कारागार में ही देवकी के छः शिशुओं की उसने हत्या कर दी। अन्त में वह भगवान् श्री कृष्ण के द्वारा मारा गया। ~हिरनाकुस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रावन औ कंसा, कृस्न गए सुर नर मुनि बंसा। →र० ४५-१; वसंत (४) ६-२।

कच्छ—संज्ञा पु० [सं० कच्छप] विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक। इन्होंने महिषासुर को मारा था और समुद्र-मन्थन के समय अपनी पीठ पर मंदराचल को धारण किया था। ~मच्छ कच्छ औ ब्राह सरूपी, बावन नाम धराया। →पद २५२-५; र० ७५-८।

कछ—संज्ञा पु० दे० 'कच्छ'।

कबीर—संज्ञा पु० [अ०] 'कबीर मंसूर' में बताया गया है कि सत्यपुरुष समस्त जगत् का उत्पन्न कर्ता है। वह कभी गर्भ में नहीं आता—सबसे अतीत,सबसे परे, सबसे ऊपर। कबीर साहब उसी सत्यपुरुष के अनागत वक्ता (भविष्य वक्ता) हैं। इनमें सब वे ही गुण हैं, जो उस सत्यपुरुष में हैं। वस्तुतः वे उससे अभिन्न हैं और संसार के त्राणकर्त्ता हैं। यही कबीर साहब सत्ययुग में 'सुकृति' नाम से, त्रेता युग में 'मुनीन्द्र' नाम से, द्वापर में 'करुणामय स्वामी' नाम से और कलिकाल में 'कबीर' नाम से अवतीर्ण हुए हैं।~कोउ काहु को हटा न माना, झूठा खसम कबीर न जाना।→र० १४-८; ६।

कस्यप—संज्ञा पु० [सं० कश्यप] ये ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इनकी सात पत्नियाँ थीं, भागवत् के अनुसार दक्ष प्रजापति की तेरह पुत्रियों से इनका विवाह हुआ था। इनकी पत्नी दिति से दैत्य; अदिति से देवता, विनता से गरुड़ तथा अन्य पक्षी और कद्रू से सर्प आदि पैदा हुए थे। कश्यप और अदिति ने घोर तप करके भगवान् से यह वर प्राप्त किया था कि वह उनके पुत्र रूप में जन्म लें। त्रेता में कश्यप-अदिति ही दशरथ-कौसल्या हुए, जिनसे राम का जन्म हुआ। ~ हनुमत कस्यप जनक बालि, ई सभ छेकल जम के द्वार। →वसंत (४) ६-५।

कुन्ती—संज्ञा स्त्री [सं०] शूरसेन यादव की पुत्री तथा वसुदेव की बहन। राजा कुन्तिभोज ने कुंती को गोद लिया था। इनका विवाह पाण्डु से हुआ था। युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन इन्हीं के वीर पुत्र थे। इनका पहला नाम पृथा था, किंतु कुन्तिभोज द्वारा पालित होने के कारण बाद में इनका नाम कुन्ती पड़ा। दुर्वासा ऋषि की इन्होंने बड़ी सेवा की जिससे प्रसन्न होकर ऋषि ने इन्हें एक विद्या दी जिसके प्रभाव से वह किसी देवता का आवाहन कर पुत्र उत्पन्न कर सकती थी। मंत्र की परीक्षा लेने के लिये कौमार्यावस्था में ही इसने सूर्य का आवाहन किया जिससे कर्ण का जन्म हुआ। बाद में इनका विवाह पांडु से हुआ। महाभारत-युद्ध के पश्चात ये धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ वन चलीं गईं। ~ गये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडु कुन्ती सी रानी, सहदेवहु जिन-बुधि मति ठानी। → र० ५५-३; र० ८१-४।

क्रुस्न—संज्ञा पु० [सं० कृष्ण] भोज-वंशी देवक की पुत्री देवकी के गर्भ से उत्पन्न यदुवंशी वसुदेव के पुत्र। देवक के भाई उग्रसेन का पुत्र कंस इनस शत्रुभाव रखता था, क्योंकि देवकी के विवाह के अवसर पर आकाशवाणी हुई थी कि उसके आठवें पुत्र से कंस का वध होगा। कंस ने वसुदेव व देवकी को कारागार में डाल दिया था। वहीं इनका जन्म हुआ। गोकुल में नंद, यशोदा ने इनका पालन-पोषण किया था। इन्होंने कस का वध भी किया था। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पाण्डवों की बहुत सहायता की थी। रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, सत्या, कालिन्दी, माद्री; मित्रविन्दा, भद्रा आदि इनकी आठ पत्नियाँ थीं। इन्होंने द्वारका में यादवों का राज्य स्थापित किया था। महाभारत युद्ध के पूर्व इन्होंने अर्जुन को उप-देश दिया था, जो श्रीमद्भगवद्-गीता के नाम से प्रसिद्ध है। अन्त में एक बहेलिए के द्वारा ये मारे गए। ~ इन्द्र **क्रुस्न** द्वारे खड़े, लोचन ललचि लचाय। → चाँचर (५) १-२४, र० ५४-२, र० ८-५।

कौरव—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रवंशी राजा कुरु के वंशज। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र 'कौरव' नाम से प्रसिद्ध हैं। ~ जात **कौरवहिं** लागु न बारा; गये भोज जिन साजल धारा। → र० ५५-२।

क्रिस्न—संज्ञा पु० दे० 'क्रुस्न'।

ग

गज—संज्ञा पु० [सं०] एक हाथी, जो ग्राह के चंगुल में फँस जाने पर प्रभु-नाम के स्मरण से ग्राह के चंगुल से मुक्त हो गया था। ~अजामेल **गज** गनिका पतित करम कीन्हें। →पद २७५-५।

गनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गणिका] विदेह की पिंगला नामक वेश्या, जो नित्य वेश्या-वृत्ति से जीविका चलाती थी। एक दिन बहुत प्रतीक्षा के बाद भी कोई ग्राहक नहीं आया। उसे अपने कर्म पर बड़ी ग्लानि हुई। वह उसे छोड़कर भगवत् भजन करने लगी। इससे वह मुक्त हो गई। ~ अजामेल गज **गनिका** पतित करम कीन्हें। →पद २७५-५।

गायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जो गान या उपासना करने वाले की रक्षा करे—'गातारं त्रायते इति गायत्री'। कबीर ने इच्छा को 'गायत्री' कहा है। गायत्री शब्द रूप है और कबीर के मत से शब्द से सृष्टि हुई है, इसीलिए इच्छा का नाम गायत्री है। इच्छा रूपी नारी की उत्पत्ति तथा उसके 'गायत्री' नाम का उल्लेख 'देवी भागवत' में भी मिलता है— "एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि नः। महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिख्यया। दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया। इच्छा परात्मनः कामं नित्याऽनित्यस्वरूपिणी।' ~ इच्छा रूप नारि अवतरी, तासु नाम **गायत्री** धरी। →र० १-२।

गोपीचंद—संज्ञा पु०[सं०गोपीचन्द्र] बंगाल स्थित रङ्गपुर नामक स्थान के राजा, जो भर्तृहरि की बहन मैंनावती के पुत्र थे और उन्हीं के उपदेश से नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे। ये जलन्धर नाथ के शिष्य थे। योगी लोग इनके बनाए गीत सारंगी बजाकर गाते हैं। ~**गोपीचंद** भल कीन्ह जोग, रावन मरिगौ करतै भोग।→ वसंत (४) ६-६, सब० १४३-७।

गोपीचंदा—संज्ञा पु० दे० 'गोपीचंद'।

गोबरधन—संज्ञा पु० [सं० गोवर्धन] श्री वृन्दावन का एक पर्वत। पुराणानुसार एक बार बहुत अधिक वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने अपने भक्तों की रक्षा के लिए इसे अपनी कनिष्ठिका पर उठाया था। ~नहिं **गोबरधन** कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया। → र० ७५-७।

गोरख—संज्ञा पु० दे० 'गोरखनाथ'।

गोरखनाथ—संज्ञा पु० [हि० गोरक्षनाथ] गोरखनाथ मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये विक्रम की दसवीं शताब्दी में विद्यमान थे। इनका जन्मस्थान विवादग्रस्त है। इनके नाम से हिन्दी तथा संस्कृत में अनेक पुस्तकें मिलती हैं। इन्होंने सदाचार पर बहुत बल दिया है। इनकी साधना पद्धति को हठयोग कहते हैं। इनके सिद्धान्तों का प्रभाव भारत के अतिरिक्त अफगानिस्तान, लंका आदि पर भी पड़ा और वहाँ भी इनके अनेक अनुयायी हो गए। गोरखपुर में इनका प्रसिद्ध मंदिर है। ~ साखी **गोरखनाथ** ज्यौं, अमर भये कलि माँहि। ~ सा० साधसा० (२६) १२-२, र० ५४-४, सब० १४३-७, चाँचर (५) १-१४, पद ३०३-५, सा० मन० (१३) १०-१।

च

चंदा गो अथई—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि थे। अत्रि के नेत्रों से चन्द्रमा का जन्म हुआ। चन्द्रमा ने बलपूर्वक बृहस्पति की पत्नी तारा को हर लिया। देवगुरु बृहस्पति ने अपनी पत्नी को लौटा देने के लिए उनसे बार बार याचना की, परन्तु वे इतने मतवाले हो गए थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नी को नहीं लौटाया। ऐसी परिस्थिति में देवताओं और दानवों में संग्राम छिड़ गया। तदनन्तर अंगिरा ऋषि ने ब्रह्मा जी के पास जाकर युद्ध बन्द कराने की प्रार्थना की। ब्रह्मा जी ने चंद्रमा को बहुत डाँटा-फटकारा और तारा को उसके पति बृहस्पति के हवाले कर दिया। तारा गर्भवती हो गई थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उससे बुध का जन्म हुआ। ~वोछी मति **चंदा गो अथई**, त्रिकुटी संगम स्वामी बसई। →र० ३-६।

चित्रगुप्त—संज्ञा पु० [सं०] चौदह यमराजों में से एक, जो प्राणियों के पाप और पुण्य का हिसाब रखते हैं। ये ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुए थे। काया से उत्पन्न होने के कारण इन्हें कायस्थ कहा जाता है। जन्म के समय इनके हाथ में कलम-दावात थी, इसीलिए ब्रह्मा ने इन्हें प्राणियों का लेखा-जोखा रखने का कार्य सौंपा।~मन मारि अगमपुर लीया, **चित्रगुप्त** परे डेरा कीया। ↦पद २०५-७।

चौपर—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पट] चौसर का खेल। यह बिसात पर चार गोटियों से खेला जाता है। गोटी को ही पासा कहते हैं। शरीर के अन्दर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के द्वारा खेल होता रहता है। जीव सकल्प-विकल्प का पासा डालता है। ~**चौपर** खेल होत घट भीतर, जनम का पासा डारा। →सब० ६४-१३।

ज

जगनाथ—संज्ञा पु० [सं० जगन्नाथ] जगन्नाथ की एक मूर्ति जो पुरी नामक स्थान में स्थापित है। यह मूर्ति सुभद्रा और बलराम के साथ है। इन मूर्तियों में पैर बिल्कुल नहीं हैं और हाथ बिना पंजे के हैं। ~ द्वारावती सरीर न छाड़ा, लै **जगनाथ** पिंड नहिं गाड़ा। → र० ७५-६, सब० ४-८।

जड़ (**भरत**)—संज्ञा पु० [सं०] ऋषभ के पुत्र। यह संसार की वासना से बचने के लिए जड़वत् रहते थे। ~ अंबरीष औ जाग जनक **जड़**, सेख सहस मुख पाना। ↦पद ३०३-७।

जनक—संज्ञा पु० [सं०] मिथिला के राजवंश की एक उपाधि। सीता इसी कुल में उत्पन्न बाईसवें राजा सीरध्वज की पुत्री थीं। इस वंश के सभी राजा परम ज्ञानी थे। शुकदेव और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि-मुनियों ने भी ब्रह्म-ज्ञान के सम्बन्ध में इनसे संवाद किया था। ~हनुमत कस्यप **जनक** बालि, ई सभ छेकल जम के द्वार। ↦वसंत (४) ६-५, र० ८-४।

जरासिंधु—संज्ञा पु० [सं० जरासंध] यह विप्रचिति नामक दानव के अंश से उत्पन्न मगधराज बृहद्रथ का पुत्र था। यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ था। मगधराज के घर में जरा नामक राक्षसी की पूजा होती थी। उसने प्रसन्न होकर दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया था। अतः बालक का नाम जरासंध पड़ा। भीमसेन ने इसका वध किया था। ~**जरासिंधु** सिसुपाल संहारा, सहस अरजुन छल ते मारा। →र० ४७-१।

जागबलिक—संज्ञा पु० [सं० याज्ञवल्क्य]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैशम्पायन के शिष्य एवं प्रसिद्ध ऋषि। राजा जनक के दरबार में इन्होंने दार्शनिक विवाद में भाग लिया था। मैत्रेयी और गार्गी इनकी पत्नियाँ थीं। यह योगीश्वर याज्ञवल्क्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह एक प्रसिद्ध स्मृतिकार भी थे। ~ **जागबलिक** औ जनक संवादा, दत्तात्रेय उहै रस स्वादा। →र० ८-४; पद ३०३-७।

जैदेउ—संज्ञा पु० दे० 'जैदेव'।

जैदेव—संज्ञा पु० [सं० जयदेव] 'गीतगोविंद के प्रसिद्ध रचइता, संत जयदेव बंगाल के सेन वंशीय राजा लक्ष्मणसेन के सभा कवि थे। इनका समय १२वीं शताब्दी माना जाता है। नाभादास ने भक्तमाल में इनकी प्रशंसा की है। 'गुरुग्रन्थ-साहब' में इनके दो पद पाए जाते हैं। ये उड़ीसा के निवासी बताए जाते हैं। कुछ लोग इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय का और कुछ लोग विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का अनुयायी बताते हैं। ~ संकर जागै चरन सेव, कलि जागे नांमां **जैदेव**। →पद ३१०-६; सब० १४८-५।

ठ

ठग्यो त्रिपुरारी—शिव का मोहित होना। जब भगवान् शंकर ने सुना कि हरि ने स्त्री रूप धारण करके असुरों को मोहित कर लिया और देवताओं को अमृत पिला दिया, तब वह सती देवी के साथ बैल पर सवार होकर समस्त भूतगणों को लेकर वहाँ गए, जहाँ भगवान् मधुसूदन निवास करते हैं और उनसे प्रभु के स्त्री रूप में अवतार के दर्शन की प्रार्थना की। उनके कहने पर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गए और थोड़ी देर बाद शिव ने देखा कि सामने एक उपवन है, उसमें एक अद्भुत सुन्दरी स्त्री गेंद खेल रही है। भगवान् शिव उसके अपूर्व सौन्दर्य पर काम मोहित हो गए और सती के सामने ही कामातुर होकर उसके पीछे दौड़े और बलपूर्वक उसका आलिगन करने लगे। वास्तव में यह सुन्दरी भगवान् की रची हुई माया ही थी।

कुछ समय बाद भगवान् पुनः प्रकट हो गए और कहने लगे कि मेरी माया अपार है। वह ऐसे हाव-भाव रचती है कि अजितेन्द्रिय पुरुष तो किसी प्रकार उससे छुटकारा पा ही नहीं सकते। भला आपके अतिरिक्त ऐसा कौन पुरुष है जो एक बार मेरी माया के फन्दे में फँस कर फिर स्वयं उससे निकल सके (श्रीमद्भागवत, ८/१२/३६-३६)। ~ ब्रह्महि ठग्यो नाग कहँ जारी, देवन सहित **ठग्यो त्रिपुरारी**। →र० ११-२।

त

तारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुषेण की पुत्री, बालि की पत्नी। अंगद इसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का पुत्र था। बालि का बध होने पर उसने अपने देवर सुग्रीव से विवाह कर लिया।~ऊ जे सुनी मन्दोदरि **तारा**; तिन घर जेठ सदा लगवारा। →र० ८१-२।

तिरविक्रम—संज्ञा पु० [सं० त्रिविक्रम] ऋग्वेद में विष्णु का एक नाम त्रिविक्रम मिलता है। विष्णु के तीन पद, सूर्य की तीन अवस्थाओं—उदय, मध्याह्न और अस्त के द्योतक हैं। अन्य पौराणिक कथा के अनुसार विष्णु ने राजा बलि को छलने के लिए वामन के रूप में पाँचवाँ अवतार लिया था और तीन पगों में समस्त ब्रह्माण्ड नाप डाला था। इसलिए उन्हें त्रिविक्रम कहते हैं। ~पृथु गये पृथिमी के राव, **तिरविक्रम** गए रहे न काव।→वसंत (४) ६-३।

द

दत्त—संज्ञा पु० दे० 'दत्तात्रेय'।

दत्ता—संज्ञा पु० दे० 'दत्तात्रेय'।

दत्तात्रेय—संज्ञा पु० [सं०] एक प्राचीन ऋषि, जो चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं। यह परम योगी तथा सिद्ध थे। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार एक ब्राह्मण को जीवित कर देने के उपलक्ष्य में सती अनुसूया को देवताओं से वर मिला था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसके गर्भ से जन्म लेंगे। तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर और शिव ने दुर्वासा के रूप में अनुसूया के गर्भ से जन्म लिया। यह बड़े योगी थे, सदा योग साधन किया करते थे।~जागबलिक औ जनक संवादा, **दत्तात्रेय** उहै रस स्वादा। → र० ८-४, र० ६६-४, चाँचर (५) १-१४, र० ५४-४।

दसरथ—संज्ञा पु० [सं० दशरथ] इन्दुमती के गर्भ से उत्पन्न महाराज अज के पुत्र तथा इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न अयोध्या के राजा थे। ये पूर्व जन्म में स्वायम्भुव मनु थे। श्री राम इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र थे। ~ **दसरथ** कुल अवतरि नहीं आया, नहिं लंका के राव सताया। → र० ७५-२।

दुरजोधन—संज्ञा पु० [सं० दुर्योधन] कुरुवंशीय धृतराष्ट्र और गांधारी के सौ पुत्रों में से सबसे ज्येष्ठ। यह कुरुकुल को कलंकित करने वाला, दुर्बुद्धि तथा खोटे विचारों वाला था। यह गदा युद्ध में प्रवीण था। पाण्डवों से यह हमेशा वैरभाव रखता था। इसने पाण्डवों का राज्यांश न देने की योजना बनाते हुए उन्हें मार डालने के अनेक उपाय किये। इसी के कारण महाभारत का युद्ध हुआ। अंत में वह भीमसेन द्वारा गदा-युद्ध में मारा गया। ~ **दुरजोधन** अभिमानहिं गैऊ, पंडव केर भेद नहिं पैऊ। → र० ४७-३, वसंत (४) ६-२।

देवकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री, वसुदेव की पत्नी और भगवान् श्रीकृष्ण की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माता। यह कंस की चचेरी बहन थी। इनके विवाह के समय आकाशवाणी हुई थी कि इनके आठवें गर्भ से कंस का विनाश होगा। भादों कृष्णाष्टमी की आधी रात को इनके गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ और उसी रात को यशोदा को एक पुत्री हुई। योग माया के प्रभाव से सभी प्रहरी सो गए थे और वसुदेव रातों-रात कृष्ण को यशोदा के यहाँ रख आये और यशोदा की पुत्री को लाकर देवकी के पास सुला गए। कंस ने उसे पत्थर पर पटक दिया। ~नहीं **देवकी** के गर्भहिं आया, नहीं जसोदै गोद खेलाया। →र० ७५-३।

द्वारावती—श्रीकृष्ण की राजधानी, द्वारका। यहाँ भोज और वृष्णि वंश के लोग रहते थे। यहीं इनकी मृत्यु हुई थी। ~**द्वारावती** सरीर न छाड़ा, लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा। →र० ७५-६।

ध

धू—संज्ञा पु० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव'।

ध्रुव—संज्ञा पु० [सं०] राजा उत्तानपाद के पुत्र। इनकी माता का नाम सुनीति था। अपनी विमाता सुरुचि के अपमानजनक व्यवहार के कारण इन्हें बड़ी ग्लानि हुई। अतः पाँच वर्ष की आयु में ही यमुना तट पर मधुवन में तप करने चले गए। इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने इन्हें अचल पद दिया। ~**ध्रुव** प्रहलाद बिभीखन माते, माती सेवरी नारी। →पद ३०३-६, सब० १४३-५।

न

नंद—संज्ञा पु० [सं०] गोकुल के गोपों के मुखिया, जिन्होंने श्रीकृष्ण का पालन-पोषण किया था। यशोदा इनकी पत्नी थीं। ~लोका तुम ज कहत हौ, **नंद** कौ नंदन नंद कहौ धूँ काकौ रे। →पद २८२-१।

नाग—संज्ञा पु० [सं०] सर्प; साँप (तक्षक)। एक बार परीक्षित आखेट के लिये गए हुए थे। प्यास लगने पर वह शमीक ऋषि के आश्रम में गए। वह तप-निरत थे। उनके न बोलने पर परीक्षित ने उनके गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया और चले आये। शमीक के पुत्र श्रृंगी ऋषि ने पिता के गले में साँप देखकर शाप दे दिया कि जिसने उनके पिता के गले में सर्प डाला हो वह आज के सातवें दिन तक्षक साँप द्वारा ही कालकवलित हो। इस प्रकार परीक्षित सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हुए।

उनके पुत्र जनमेजय को जब मंत्रियों ने पिता की मृत्यु का समाचार दिया, तब उन्होंने पिता की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय करके नागयज्ञ किया, जिसमें सहस्रों सर्प जलकर मर गए। ~ब्रह्महि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठग्यो नाग कहँ जारी; देवन सहित ठग्यो त्रिपुरारी। →र० ११-२।

नाथ मछंदर—संज्ञा पु० [सं० नाथ मत्स्येन्द्र] प्रसिद्ध नाथपंथी योगी। उनके अन्य नामों में मीनपाल, मीन-नाथ, मच्छेन्द्रया, मच्छन्दरनाथ आदि प्रसिद्ध हैं। इन्हें जाति का मछुवा कहा जाता है। यह कामरूप के निवासी थे। कहा जाता है कि मछली के उदर में लालन-पालन होने के कारण इनका नाम मच्छन्दर नाथ पड़ा। ये नाथ सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका समय नवीं-दसवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने संस्कृत में चार पुस्तकें—कौल ज्ञान निर्णय, अकुल-वीरतंत्र, कुलानन्द; ज्ञानकारिका लिखी हैं। इन्हें डॉ० प्रबोधचंद्र बागची ने सम्पादित कर प्रकाशित कराया है। हिन्दी में इनके कुछ पदों का संकलन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में किया है। ~**नाथ मछंदर** बाँचे नहीं, गोरखदत्त औ व्यास। → र० ५४-४।

नांमां—संज्ञा पु० दे० 'नामां'।

नामां—संज्ञा पु० [सं० नामदेव] महा-राष्ट्र में नामदेव नामक छः संत हुए हैं। उनमें सर्वाधिक लोकप्रिय नाम-देव वह थे जिन्होंने उत्तर भारत में कबीर के पहले भागवत धर्म का प्रचार किया था और हिंदी में भी काव्य रचना की थी। इनका जन्म सं० १३२७ में सतारा जिले के नरसी वमनी नामक गाँव में हुआ था। ये प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे और संत विसोबा खेचर के शिष्य थे। 'गुरु ग्रंथ साहब' में इनके ६१ पद पाए जाते हैं। इनकी उपलब्ध रचनाओं को डॉ० भगीरथ मिश्र ने 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' नाम से प्रकाशित कराया है, जिसमें २३० पद और १३ साखियाँ हैं। ~जैदेउ **नामां** विप्र सुदामां, तिनकौं क्रिपा भई है अपार। →सब० १४८-५, वसंत (४) १०-७, पद ३१०-६।

नारद—संज्ञा पु० [सं०] एक देवर्षि, जो ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं। ये ही कालान्तर में देव गंधर्व होकर कश्यप द्वारा 'मुनि' के गर्भ से उत्पन्न हुए। इन्होंने ३० लाख श्लोकों वाला महाभारत देवताओं को सुनाया था। इन्होंने दक्ष के पुत्रों को सांख्य-ज्ञान का उपदेश दिया था, जिससे वे सबके सब विरक्त होकर घर से निकल गए थे। ~**नारद** कब बन्दूक चलाई, व्यासदेव कब बंब बजाई। →र० ६९-५, र० ८-३।

नारद मोह—संज्ञा पु० [सं०] एक बार नारद को मोहवश अहंकार हो गया कि उन्होंने काम को वश में कर लिया है। उन्होंने विष्णु भग-वान् के समक्ष यह तथ्य प्रकट कर दिया। विष्णु ने उनका मोहभंग करने के लिए मार्ग में एक सुन्दर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नगर, उसके सम्राट् तथा राजा की परम रूपवती कन्या का निर्माण किया। उस कन्या के स्वयंवर के अवसर पर देवर्षि उसी मार्ग से निकले। राजा ने नारद से कन्या का भविष्य पूछा। अपूर्व सुन्दरी नृप-बाला को देखकर नारद काम के वशीभूत हो गए और उससे विवाह का निश्चय करके विष्णु से उनका रूप माँगा। विष्णु ने उन्हें बंदर की आकृति दे दी। स्वयंवर में निराश होने पर नारद ने विष्णु भगवान् को शाप दिया कि जिस स्त्री के कारण उन्हें अपमानित होना पड़ा है, उसी स्त्री-वियोग का दुःख विष्णु को भी भोगना पड़ेगा। रामावतार में राम को सीता का वियोग झेलना पड़ा। ~**नारद मुनि को बदन छिपायो,** कीन्हो कपि को रूपा। →सब० ४-७।

निकलंकी—संज्ञा पु० [सं० कल्कि] विष्णु के दसवें अवतार जो कलियुग के अन्त में विष्णु यश की पत्नी सुमति के गर्भ से उत्पन्न होंगे। वह कलियुग के अत्याचारी राजाओं का वध करेंगे, धर्म की स्थापना करेंगे और तब सत्ययुग का प्रारम्भ होगा। ~केतेहि बौद्ध भए **निकलंकी,** तिन्ह भी अन्त न पाया। →पद २५२-६।

प

पंडव—संज्ञा पु० [सं० पाण्डु] दे० 'पंडु'।

पंडु—संज्ञा पु० [सं० पाण्डु] प्राचीन काल के एक प्रसिद्ध राजा; जो पाण्डव वंश के आदि पुरुष थे। विचित्रवीर्य क्षयरोग के कारण युवावस्था में ही मर गए थे। उनकी माता सत्यवती की आज्ञा तथा भीष्म की अनुमति से व्यास जी ने विचित्रवीर्य की विधवाओं-अम्बिका तथा अम्बालिका से पाण्डुवंश की वृद्धि के लिए नियोग किया। अम्बालिका व्यास के उग्र रूप को देखकर डर गई। अतः उसके गर्भ से पीले रंग का पुत्र हुआ जिसका नाम पाण्डु पड़ा। इनके पुत्र—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। ये पाण्डव के नाम से विख्यात थे। महाभारत युद्ध में पांडवों की विजय हुई थी। अंत में इन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। ~गये **पंडु** कुन्ती सी रानी; सहदेवहुं जिन बुधि मति ठानी। →र० ५५-३, र० ४७-३।

परसुराम—संज्ञा पु० [सं० परशुराम] राजा प्रसेनजित् की पुत्री रेणुका के गर्भ से उत्पन्न जमदग्नि ऋषि के पुत्र। इन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था। यह ईश्वर के सोलहवें अवतार माने जाते हैं। ~**परसुराम** छत्री नहिं मार्‌यो, ई छल माया कीन्हा। →पद २६२-११।

पारबती—संज्ञा स्त्री० [सं० पार्वती] पार्वती के दो पुत्र थे—गणेश और कार्तिकेय। दोनों अयोनिज थे। मत्स्य पुराण के अनुसार ये पार्वती के शरीर के मैल तथा उबटन से पैदा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुए थे। कार्तिकेय के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब पार्वती शिव का वीर्य धारण न कर सकीं, तब क्रमशः पृथ्वी, अग्नि और गंगा ने उस वीर्य को धारण किया। जब गंगा जी भी उस वीर्य को धारण न कर सकीं तो उसे हिमालय के निकट शरवन में फेंक दिया। वहीं कार्तिकेय का जन्म हुआ। ~पारबती को बांझ न कहिए, ईस न कहिए भिखारी।→सब० ४-६।

पृथु—संज्ञा पु० [सं०] वेणु के पुत्र और परम धार्मिक सम्राट्। इन्होंने पृथ्वी को प्रोथित (समतल) किया था, इसीलिए इनका नाम पृथु पड़ा। इन्होंने कृषि का आविष्कार किया था। ~पृथु गए पृथिम के राव, तिरविक्रम गए रहे न काव।→ वसंत (४) ६-३।

प्रहलाद—संज्ञा पु० [सं० प्रह्लाद] हिरण्यकशिपु के पुत्र। दैत्यराज के पुत्र होते हुए भी बाल्यकाल से ही भगवद्भक्त। हिरण्यकशिपु ने उन्हें भक्ति से विचलित करने के लिए नाना प्रकार की यातनाएँ दीं, पर वह अपने निश्चय में अडिग रहे। अन्त में भगवान् ने नृसिंह रूप में अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का वध किया और अपने भक्त की रक्षा की। ~ ध्रू प्रहलाद विभीखन सेखा, तन भीतर मन उनहूँ न पेखा।→सब १४३-५।

ब

बराह—संज्ञा पु० [सं० वाराह] भगवान् विष्णु का एक अवतार। इन्होंने जलमें डूबी पृथ्वी का उद्धार किया था और हिरण्याक्ष का वध किया था। ~ होय बराह धरनि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्र न करिया। →र० ७५-६, पद २५२-५।

बलि—संज्ञा पु० [सं०] दैत्य जाति का एक राजा। इनके पिता का नाम विरोचन तथा माता का नाम सुरुचि था। ये प्रह्लाद के पौत्र थे। इनकी तीन पत्नियाँ थीं—अशना, विंध्यावली तथा सुदेष्णा। इनके बाण आदि सौ पुत्र तथा शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ थीं। एक बार नर्मदा के उत्तरी तट पर जब बलि भृगुकच्छ में अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, तब विष्णु वामन-रूप में वहाँ गए। बलि ने उनसे कुछ दान लेने की प्रार्थना की। उन्होंने केवल तीन पग भूमि माँगी। बलि से तीन पग भूमि मिल जाने पर वामन ने अपना विश्वरूप प्रकट किया और दो पग में पृथ्वी और आकाश नाप लेने के पश्चात् तीसरा पग रखने के लिए स्थान माँगा। बलि ने अपना मस्तक सामने रख दिया। इसी पर हरि ने उसे पाताल भेज दिया। ~प्रिथिमी रवन दवन नहीं करिया, पैठि पताल नहीं बलि छलिया। →र० ७५-४, वसंत (४) ६-२; पद २६२-६।

बलिराज—संज्ञा पु० [सं० बालि] वानर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाति का किष्किन्धा का राजा, सुग्रीव का ज्येष्ठ भ्राता तथा अंगद का पिता ।~नहीं बलिराज से माँड़ी रारी, नहिं हरिनाकुस बधल पछारी। →र० ७५-५ ।

बसिष्ठ—संज्ञा पु० [सं० वसिष्ठ] एक प्राचीन ऋषि, मित्र और वरुण के पुत्र । ये ब्रह्मा के भी मानस पुत्र माने जाते हैं । इनका उल्लेख लगभग सभी प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में मिलता है । इनकी पत्नी का नाम अरून्धती था । ये ऋग्वेद के कई ग्रन्थों के द्रष्टा भी माने गए हैं । ये दशरथ के गुरु थे । ~बसिष्ठ स्रेष्ठ विद्या सम्पूरन, राम ऐसे सिख साखा।→ पद २८६-६, र० ८-५ ।

बालमीकि—संज्ञा पु० [सं० वाल्मीकि] प्रचेता के वंशज, प्रसिद्ध मुनि, रामायण के रचयिता, आदि कवि । इनका आश्रम तमसा नदी के तट पर माना जाता है । ~बालमीकि बन बोइया, चुनि लीन्ह सुखदेव ।→पद२४८-२ ।

बावन—संज्ञा पु० [सं० वामन] विष्णु का पाँचवाँ अवतार, जो बलि को छलने के लिए अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । राजा बलि बड़े दानी थे । यज्ञ के अवसर पर वामन ने ब्राह्मण का रूप धारण कर तीन पग पृथ्वी माँगी थी । उन्होंने दो ही पगों में समस्त पृथ्वी नाप ली और तीसरे पग के लिए राजा बलि ने अपनी पीठ नपवा दी । ~ मच्छ कच्छ औ ब्राह सरूपी,**बावन** नाम धराया। → पद २५२-५; र० १४-२ ।

बुद्ध—संज्ञा पु० [सं०] कलियुग के प्रारम्भ में विष्णु के बीसवें अवतार। पूरा नाम गौतम बुद्ध । ये माया देवी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । इन्होंने युवावस्था में ही घर-परिवार छोड़ कर घोर तप किया । इनके नाम से बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ । ~ वै करता नहिं बुद्ध कहावै, नहीं असुर संहारा । → पद २६२-१७; पद २५२-६ ।

बेनु—संज्ञा पु० [सं० वेणु] यह राजा अंग के पुत्र और बहुत अत्याचारी थे । इनके अत्याचार को ऋषियों ने रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु जब उन्होंने ऋषियों का कहना नहीं माना तो उन्होंने अपने तेज से उन्हें नष्ट कर दिया । पृथु इन्हीं के पुत्र थे । ~गए बेनु बलि गए कंस, दुरजोधन गए बूड़ो बंस । → वसंत (४) ६-२ ।

बौद्ध—संज्ञा पु० दे० 'बुद्ध' ।

ब्रह्महि ठग्यो—ब्रह्मा की आसक्ति—ब्रह्मा की कन्या सरस्वती अत्यन्त सुकुमारी और मनोहर थी । ब्रह्मा जी उसे देखकर एक बार मोहित हो गए । उन्हें ऐसा धर्म के विरुद्ध आचरण करते देख उनके पुत्र मरीचि आदि ऋषियों ने समझाया कि आप मन में उत्पन्न काम के वेग को न रोक कर पुत्री-गमन जैसा पाप करने का संकल्प कर रहे हैं । यह सर्वथा अनु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चित है (श्रीमद्भागवत, ३/१२/३०-३१)। ~ ब्रह्महि ठग्यो नाग कहँ जारी, देवन सहित ठग्यो त्रिपुरारी। → र० ११-२।

ब्रह्मा—संज्ञा पु० [सं०] सृष्टि के देवता। मनुस्मृति के अनुसार स्वयम्भू भगवान् ने जल की सृष्टि करके उसमें जो बीज फेंका उसी से ज्योतिर्मय अण्ड उत्पन्न हुआ जिसके भीतर से ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। भागवत आदि पुराणों के अनुसार भगवान् ने योग-निद्रा में पड़कर जब शयन किया तब उनकी नाभि से एक कमल निकला, जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक कल्प का एक ब्रह्मा होता है। ~ मरि गये **ब्रह्मा** नभ के वासी, सीव सहित मुए अविनासी। →र० ५४-१, र० १-३, पद २२४-५; चाँचर (५) १-८।

ब्रह्मा धिया नसाई—सृष्टि के देवता ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती पर आसक्त होकर बाद में उसे अपनी पत्नी बना लिया। दे० 'ब्रह्महि ठग्यो'। ~देव चरित्र सुनहु रे भाई, सो तो **ब्रह्मा धिया नसाई**। → र० ८१-१।

ब्राह—संज्ञा पु० दे० 'बराह'।

भ

भरथरी—संज्ञा पु० [सं० भर्तृहरि] विक्रमादित्य के छोटे भाई, बाद में संसार से विरक्त हो गए थे। ~ गोरख **भरथरी** गोपीचंदा, ता मन सौं मिलि करैं अनंदा। → सब० १४३-७।

भोज—संज्ञा पु० [सं०] मालवा के परमारवंशी एक राजा जो संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् थे। इन्होंने व्याकरण, अलंकार आदि से सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखी हैं। ~ जात कौरवहिं लागु न बारा, गये **भोज** जिन साजल धारा। → र० ५५-२।

म

मंदोदरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मय दानव की पुत्री, रावण की पटरानी। रावण की मृत्यु के उपरान्त विभीषण ने इसे अपनी पत्नी बना लिया।~ ऊ जे सुनी **मंदोदरि** तारा, तिन घर जेठ सदा लगवारा।→र० ८१-२।

मगहर—संज्ञा पु० [हि०] बस्ती जिले का एक कस्बा, गोरखपुर से साढ़े तेरह मील की दूरी पर स्थित। इसे अपवित्र स्थान माना जाता है, किन्तु मृत्यु निकट आने पर कबीर वहीं चले गए थे। इसी नगर के पूर्व में आमी नदी के तट पर नवाब बिजली खाँ ने कबीर की समाधि बनवाई थी। वहाँ हिन्दू-मुसलमान दोनों जाते हैं। उसी के निकट कबीर की दूसरी समाधि है, जहाँ केवल हिन्दू जाते हैं। ~ क्या कासी क्या **मगहर** ऊसर ह्रिदै राम जौ होई।→पद २८५-६।

मच्छ—संज्ञा पु० [सं० मत्स्य] विष्णु के दस अवतारों में से प्रथम, जो सत्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युग में हुआ था। इसका नीचे का अंग रोहू मछली के समान तथा ऊपर का अंग मनुष्य के समान था। अत: इसे मत्स्यावतार कहते हैं। इसके सिर पर सींग, चार हाथ तथा सारे शरीर पर कमल के चिह्न थे। ~ **मच्छ** कच्छ औ ब्राह सरूपी, बावन नाम धराया। → पद २५२-५, र० ७५-८।

मछ—संज्ञा पु० 'दे० मच्छ'।

महेश—संज्ञा पु० [सं०] प्रमुख तीन देवताओं में से एक। इन पर सृष्टि के संहार का भार है। इनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा तथा तीसरा नेत्र, गले में सर्प और नर-मुण्ड की माला, शरीर में भस्म, परिधान व्याघ्रचर्म तथा साथ में पार्वती हैं। इनका निवास स्थान कैलास है। 'दे० शिव'। ~तेहि नारि के पुत्र तिन भयऊ, ब्रह्मा विष्णु **महेश** नाम धरेऊ। →र० १-३।

मानिकपुर—संज्ञा पु० इलाहाबाद से झाँसी जाने के मार्ग में एक रेलवे जंक्शन तथा कस्बा। कबीर दास वहाँ कुछ दिन रहे थे। ~ **मानिक-पुरहि** कबीर बसेरी, मद्दति सुनी सेख तकी करी। → र० ४८-१।

माया—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया के दो रूप हैं—आवरण और प्रक्षेप। आवरण से चैतन्य स्वरूप आत्मा के ऊपर अज्ञान का पर्दा पड़ जाता है और प्रक्षेप के द्वारा सभी तत्वों का निर्माण होता है। आदर, मान, विषय, स्वाद आदि की तृष्णा, जप-तप का दिखावा और स्त्री-पुत्र आदि का मोह आवरण के कारण होता है। जल-थल, आकाशादि प्रक्षेप के परिणाम हैं। माया जल थलि माया आकासि, **माया** व्यापि रही चहुँ पासि। → पद २२६-६।

य

यसोदै—संज्ञा स्त्री० [सं० यशोदा] नंद गोप की पत्नी, जिन्होंने कृष्ण का लालन-पालन किया था। ~ नहीं देवकी के गर्भहिं आया, नहीं **यसोदै** गोद खेलाया। → र० ७५-३।

र

राम—संज्ञा पु० [सं०] त्रेता युग में कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न अयोध्या नरेश दशरथ के ज्येष्ठपुत्र, जो विष्णु के अवतार (ब्रह्म) माने जाते हैं। इनकी कथा का आदि स्रोत वाल्मीकि रामायण है। ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध मतावलम्बियों ने रामकथा को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। ~ गये **राम** औ गये लछमना, संग न गई सीता अस धना। → र० ५५-१; र० ८-५।

राव—संज्ञा पु० दे० 'रावणा'।

रावणा—संज्ञा पु० [सं० रावण] लंका का प्रसिद्ध राजा जिसे राम ने युद्ध में मारा था। विष्णु से पराजित हो कर राक्षस गण पाताल भाग गए थे जिनमें सुमाली नामक एक राक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी था जिसके कैकसी या निकषा नामक एक पुत्री थी। रावण पुलस्त्य-पुत्र विश्रवा का लड़का था, जो इसी कैकसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके दस सिर थे और रूप अत्यन्त विकराल तथा स्वभाव अत्यन्त क्रूर था। रावण ने अपने सौतेले भाई कुबेर की समता करने की इच्छा से भाइयों सहित दस हजार वर्षों तक तपस्या की। इसके घोर तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वरदान दिया कि नर-वानर को छोड़कर अन्य किसी के द्वारा इसका वध न हो सकेगा। सुमाली की सहायता से इसने कुबेर की लंका पर अधिकार कर लिया। इसने राम की पत्नी सीता का हरण किया। फलस्वरूप बन्धु-बांधवों सहित राम द्वारा मारा गया। ~ अपनी करि गो **रावणा**; अपनी दसरथ नाथ। → र० ५५-६, र० ४५-१, र० ७५-२।

रावन—संज्ञा पु० दे० 'रावणा'।

राहु ग्रास—संज्ञा पु० [सं०] पौराणिक कथा के अनुसार समुद्र मंथन के बाद अमृत पीने के लिए राहु देवताओं की पंक्ति में बैठ गया था। वह थोड़ा अमृत पी चुका था तभी सूर्य, चंद्र ने विष्णु को संकेत कर दिया। विष्णु ने अपने चक्र से उसका मस्तक छिन्न कर दिया। तभी से राहु चन्द्र और सूर्य को ग्रसता है। ~ नित्त अमावस नित्त ग्रहन ह्वै; **राहु ग्रास** नित दीजै। → सब० १४४-४।

ल

लंका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारत के दक्षिण का एक टापू जहाँ रावण का राज्य होने के पहले कुबेर का आधिपत्य था। ऐसा कहा जाता है कि रावण के समय में यह टापू सोने का था। पहले यह कुबेर के अधीन था और कुबेर धन के मालिक कहे जाते हैं। अतः यह टापू निश्चय ही धन-धान्य से परिपूर्ण रहा होगा। शायद सोने की लंका का यही तात्पर्य हो। ~दसरथ कुल अवतरि नहिं आया; नहिं **लंका** के राव सताया। → र० ७५-२, र० ५५-४।

लछमना—संज्ञा पु० [सं० लक्ष्मण] राजा दशरथ के चार पुत्रों में से तृतीय, जो सुमित्रा के गर्भ से पैदा हुए थे। इनका विवाह सीरध्वज जनक की पुत्री उर्मिला से हुआ था। ये शेष-नाग के अवतार माने जाते हैं। ये बहुत तेजस्वी, वीर और शुद्ध चरित्र सम्पन्न थे। ~गये राम औ गये **लछमना**, संग न गई सीता अस धना। → र० ५५-१।

व

वसिष्ठ—संज्ञा पु० दे० 'बसिष्ठ'।

विभीखन—संज्ञा पु० [सं० विभीषण] कैकसी के गर्भ से उत्पन्न, रावण का अनुज, भगवद्भक्त। रावण से अप-मानित होकर राम की शरण में आए। ~ध्रू प्रहलाद **विभीखन**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेखा, तन भीतर मन उनहूँ न पेखा। →सब० १४३-५।

विष्णु—संज्ञा पु० [सं०] हिन्दुओं के प्रमुख तीन देवताओं में से एक। इनके ऊपर सृष्टि की रक्षा का भार है। प्रजापति कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई है। यह सृष्टि के कल्याण के लिए प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं। ~तेहि नारि के पुत्र तिन भयऊ, ब्रह्मा, **विष्णु**, महेश नाम धरेऊ। → र० १-३।

व्यास—संज्ञा पु० [सं०] पराशर ऋषि के पुत्र श्री कृष्णद्वैपायन जिन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और सम्पादन किया था। कहा जाता है कि अठारहों पुराण, भागवत, महाभारत, वेदान्त सूत्र आदि की रचना इन्होंने ही की थी। नदी के बीच एक द्वीप में जन्म होने के कारण इन्हें 'द्वैपायन', काला होने के कारण 'कृष्ण' और वेदों का संग्रह, विभाग और सम्पादन इत्यादि करने के कारण 'व्यास' कहा जाता है। इन्होंने हिमालय की पवित्र तलहटी में पर्वतीय गुफा के भीतर स्नानादि से निवृत्त होने के बाद कुशासन पर बैठकर ध्यान योग में स्थित हो महाभारत के स्वरूप पर विचार किया था। ये उत्तमव्रतधारी, निग्रहानुग्रह समर्थ एवं सर्वज्ञ माने जाते हैं। कहा जाता है कि अठारहों पुराण, भागवत, महाभारत और वेदान्त-सूत्र की रचना इन्होंने ही की थी। परम भक्त होने के नाते इन्होंने भक्ति की विशद व्याख्या भी की है। एक अन्य मत से व्यास कोई व्यक्ति विशेष नहीं थे, बल्कि ये प्रत्येक द्वापर में हुआ करते हैं। व्यास एक उपाधि या पदवी होती है। वेद वृत्त में जो सीधा निकल जाये वह वेदव्यास है। सभी व्यास वेद और पुराण के विज्ञ थे। ~नाथ मछंदर बाँचे नहीं, गोरख दत्त औ **व्यास**। →र० ५४-४, र० ६६-५, पद ३०३-५, चांचर (५) १-१४।

स

संखासुर—संज्ञा पु० [सं० शंखासुर] एक पराक्रमी दैत्य, जो ब्रह्मा के पास से सभी वेद चुराकर समुद्र के भीतर अपने घर में छिप गया था। विष्णु ने मत्स्यावतार लेकर वेदों का उद्धार किया था। ~क्या मकसूद मच्छ कछ होना, **संखासुर** न संहारा। → पद २६२-३।

सनक सनंदन—संज्ञा पु० [सं०] सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ब्रह्मा के चार मानस पुत्र माने गए हैं। योग शास्त्र में ये चारों लक्षण आत्मा के बताए गए हैं; सनक = अनादि; सनन्दन = शाश्वत आनन्द से युक्त; सनातन = अमर और सनत्कुमार = चिर युवा, अजर। आत्मा के जो ये चार लक्षण बताए गए हैं, वही श्री-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मद्भागवत का चैतन्यपुरुष, उपनिषद् का प्रत्यगात्मा और अरविन्द का Psychic Being है। ~अच्छर पढ़ि गुनि राह चलाई, **सनक सनंदन** के मन भाई। →र० ५-४, पद २२४-५, चाँचर (५) १-१५, पद २०६-११।

सनकादिक—संज्ञा पु० दे० 'सनक-सनंदन'।

सहदेव—संज्ञा पु० [सं०] राजा पाण्डु का कनिष्ठतम पुत्र। इनका जन्म दुर्वासा ऋषि के बतलाए गए मंत्र के प्रभाव से तथा अश्विनीकुमारों के योग से हुआ था। इन्हें अपनी बुद्धि पर बड़ा गर्व था। हिमालय पर गल कर इनकी मृत्यु हुई। ~गये पंडु कुन्ती सी रानी, **सहदेवहु** जिन बुधि मति ठानी। →र० ५५-३।

सहस अरजुन—संज्ञा पु० [सं० सहस्रार्जुन] हैहय नरेश कृतवीर्य का पुत्र था। इसका पूरा नाम कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन था। इसने ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था। परशुराम के द्वारा इसका वध किया गया। ~जरासिंधु सिसुपाल संहारा, **सहस अरजुन** छल ते मारा। → र० ४७-१।

सालिगराम—संज्ञा पु० [सं० शालग्राम] काले और गोल पत्थर, जो गंडकी नदी में मिलते हैं। इसे लोग भगवान् विष्णु की मूर्ति मानते हैं। ~गण्डक **सालिगराम** न सीला, मच्छ कच्छ होय जल नहीं हीला। →र० ७५-८; सा० भ्रवि० (२३) ५-१।

सिव—संज्ञा पु० [सं० शिव] हिन्दुओं की त्रिमूर्ति के एक देवता, सृष्टि के संहार-कर्ता, निवास स्थान कैलाश। शंङ्कर, महादेव, हर, त्रिपुरारि, महेश्वर, रुद्र, आशुतोष आदि इनके अनेक नाम हैं। इनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा, गले में साँप, शरीर पर भस्म रहता है। इनके तीन नेत्र हैं और पार्वती इनकी पत्नी हैं। गणेश व कार्तिकेय इनके पुत्र हैं। इनके धनुषाकार त्रिशूल का नाम पिनाक और धनुष का नाम अजगव है। इन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया था। इसलिए इन्हें कामारि कहते हैं। समुद्र मंथन के समय इन्होंने उससे निकला विष पी लिया था, इसीलिए इन्हें नीलकण्ठ कहते हैं। इन्होंने परशुराम को अस्त्र-विद्या की शिक्षा दी थी। एक बार जब विष्णु ने दैत्यों को छलने के लिए मोहिनी का रूप धारण किया था, तो यह उन पर आसक्त हो गए थे। बाद में विष्णु ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। ~**सिव** माते हरि चरन सेव, कलि माते नामा जयदेव। →वसन्त (४) १०-७, र० ५४-१।

सींगी रिखि—संज्ञा पु० [सं० शृंगी ऋषि] विभाण्डक ऋषि के पुत्र तथा कश्यप के पौत्र। वह राजा रोमपाद के राज्य में एक जंगल में रहते थे और निरन्तर अपने पिता की सेवा में लगे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहते थे । एक बार रोमपाद के राज्य में कई वर्षों तक वर्षा नहीं हुई । पण्डितों ने बताया कि यदि श्रृंगी ऋषि नजर में आ जाएँ और राजा अपनी पुत्री शान्ता से उनका विवाह कर दें, तो वर्षा हो सकती है । राजा ने चतुर वेश्याओं के द्वारा श्रृंगी ऋषि को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर अपने राज्य में बुला लिया । राजा ने अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दिया । इसके पश्चात् वहाँ काफी वर्षा हुई । ~**सींगी रिखि** औ गुर कनफूँका बाधिनि सभै मरोरी । →पद ३१३-६ ।

सीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदानुसार कृषि की अधिष्ठात्री देवी । मिथिला नरेश सीरध्वज जनक की पुत्री भी सीता हैं, जो राम की पत्नी थीं । इनकी उत्पत्ति पृथ्वी से मानी जाती है । यज्ञ के लिए जमीन जोतते समय राजा जनक को ये मिली थीं । इन्हें लक्ष्मी का अवतार माना जाता है । राम ने शिव का धनुष तोड़ कर इनसे विवाह किया था । लव और कुश इनके दो पुत्र थे । अन्त में ये पृथ्वी में समा गईं । ~गये राम औ गये लछमना, संग न गई **सीता** अस धना । →र० ५५-१ ।

सीव—संज्ञा पु० दे० 'सिव' ।

सिसुपाल—संज्ञा पु० [सं० शिशुपाल] महाभारत के अनुसार चेदि देश का राजा, दमघोष का पुत्र । जन्म के समय इसके तीन नेत्र और चार हाथ थे । उस समय आकाशवाणी हुई थी कि जिसकी गोद में जाने से इसकी तीसरी आँख और दो भुजाएँ विलीन हो जायँगी, उसी के हाथ इसकी मृत्यु होगी । श्री कृष्ण की गोद में जाने से उसकी आँख और हाथ विलीन हो गए । उन्हीं के द्वारा वह मारा गया । ~**सिसुपाल** की भुजा उपारिन, आपु भए हरि ठूँठा । →सब० ४-८, र० ४७-१ ।

सुक—संज्ञा पु० दे० 'सुखदेव' ।

सुकदेव—संज्ञा पु० दे० 'सुखदेव' ।

सुकादि—संज्ञा पु० दे० 'सुखदेव' ।

सुखदेव—संज्ञा पु० [सं० शुकदेव] कृष्ण द्वैपायन व्यास के पुत्र का नाम, जो पुराणों के बड़े ज्ञाता माने जाते हैं । इनका उपनयन संस्कार स्वयं महादेवजी ने किया था और देवराज इद्र ने इन्हें कमण्डलु तथा आसन दिया । इन्होंने राजा परीक्षित को मृत्यु के पहले मोक्ष-धर्म का उपदेश दिया था, जो इन्होंने अपने पिता और महाराज जनक से सीखा था । ~ कब दत्तै मावासी तोरी, कब **सुकदेव** तोपची जोरी । → र० ६९-४, साध सा० (२९) ११-२, र० ८-३, पद ३०३-५, वसंत० (४) १०-६ ।

सुदामां—सज्ञा पु० [स० सुदामा] श्रीकृष्ण के सहपाठी, दरिद्र ब्राह्मण, जो उनके मित्र थे । उन्हीं की कृपा से सम्पन्न भी हो गए । ~जैदेउ नामां विप्र **सुदामां**, तिनकौं क्रिपा भई है अपार । →सब० १४८-५ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी—वृहस्पति की पत्नी का नाम तारा था। चंद्रमा ने उसकी इच्छा से उसे अपनी पत्नी बना लिया। इस पर दोनों में युद्ध हुआ। अंत में ब्रह्मा ने वृहस्पति को तारा वापस दिला दिया। ~सुरपति जाय अहीलहिं छरी; **सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी**। →र० ८१-३।

सेख—संज्ञा पु० [सं० शेष] शेषनाग। ये नारायण के स्वरूप माने जाते हैं। नागराज अनन्त का नाम। भगवान् विष्णु के शय्या रूप। इनकी धर्म में अटल श्रद्धा थी। ~ अंबरीख औ जाग जनक जड़, **सेख** सहस मुख पाना। → पद ३०३-७, सब० १४३-५।

सेख अकरदी, सेख सकरदी—संज्ञा पु० [अ०] सूफी सम्प्रदाय के साधु। कबीर से इनका संवाद हुआ था। ~ **सेख अकरदी, सेख सकरदी**, मानहु वचन हमार।→र० ४८-६।

सेख तकी—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रसिद्ध सूफी संत। ये इलाहाबाद के पास झूंसी में रहते थे। सिकन्दर लोदी के गुरु थे। कबीर से इनका सत्संग हुआ था। ~ मानिकपुरहि कबीर बसेरी; मद्दति सुनी **सेख तकी** केरी। →र० ४८-१।

सेखा—संज्ञा पु० दे० 'सेख'।

सेवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शबरी] मतंग-ऋषि की शिष्या, प्रसिद्ध राम भक्त। ~ध्रुव प्रहलाद विभीखन माते, माती **सेवरी** नारी।→पद ३०३-६।

ह

हणवंत—संज्ञा पु० दे० 'हनुमत'।

हनुमत—संज्ञा पु० [सं०] प्रसिद्ध रामभक्त, अंजनी के गर्भ से उत्पन्न वायु-पुत्र। इन्हें शङ्कर-सुवन और केसरी का भी पुत्र माना जाता है। इन्द्र के वज्र-प्रहार से इनकी ठुड्ढी थोड़ी टेढ़ी हो गई थी, इसीलिए इनका नाम हनुमान पड़ा। इन्होंने राम-रावण-युद्ध के समय अद्भुत पराक्रम दिखाया था, इसीलिए यह राम-भक्तों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं और इनकी पूजा पूरे देश में होती है। ~**हनुमत** कस्यप जनक बालि, ई सभ छेकल जम के द्वार। → वसंत (४) ६-५, पद ३१० ५।

हरिनाकुस—संज्ञा पु० दे० 'हिरनाकुस'।

हरीचन्द—संज्ञा पु० [सं० हरिश्चन्द्र] इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशंकु के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सत्यवती था। ये दान और सत्यपालन के लिए विशेष प्रसिद्ध थे। इन्होंने राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। ये याचकों के माँगने पर पाँच गुना अधिक धन देते थे। इन्द्र ने ईर्ष्यावश इनकी परीक्षा ली, जिसके लिए ऋषि विश्वामित्र चुने गए। दक्षिणा चुकाने के लिए उन्हें सपरिवार बिकना पड़ा। स्त्री ने दासी का कार्य स्वीकार किया। वे स्वयं चाण्डाल के यहाँ श्मशान की रखवाली करने को बाध्य हुए। राजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होते हुए भी इन्हें नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़े। इतना सब होने पर भी ये अपने व्रत से विचलित नहीं हुए। अन्त में परीक्षा में सफलता प्राप्त कर सपरिवार स्वर्ग को चले गए। ~**हरीचन्द** सत कारने, घर घर गये बिकाय। → र० ४७-८।

हिरनाकुस—संज्ञा पु० [सं० हिरण्यकशिपु] प्रजापति कश्यप द्वारा दिति के गर्भ से उत्पन्न परम पराक्रमी आदि दैत्य था। इसे ब्रह्मा जी द्वारा वरदान प्राप्त था कि वह अस्त्र-शस्त्रादि के द्वारा नहीं मारा जा सकता। त्रिभुवन में इसके द्वारा उत्पात किए जाने पर नृसिंह द्वारा वध किया गया। उसका पुत्र प्रह्लाद परम भगवद्भक्त था। ~**हिरनाकुस** रावन गौ कंसा, कृस्न गए सुर नर मुनि वंसा। → र० ४५-१, र० ७५-५, पद २६२-८।

हौवा—संज्ञा स्त्री० [अ०] आदम के साथ उत्पन्न की गई स्त्री। शैतान ने सर्प के रूप में पहले हव्वा को बहकाया कि इसका फल बहुत स्वादिष्ट है। स्त्री के स्वाभाविक कौतूहलवश हव्वा ने फल चखने के लिए हठ किया। फल चखने के परिणामस्वरूप आदम और हव्वा स्वर्ग से ढकेल दिए गए। →आदम आदि सुद्धि नहिं पाई, मामा **हौवा** कहाँ ते आई। → र० ४०-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी—वृहस्पति की पत्नी का नाम तारा था। चंद्रमा ने उसकी इच्छा से उसे अपनी पत्नी बना लिया। इस पर दोनों में युद्ध हुआ। अंत में ब्रह्मा ने वृहस्पति को तारा वापस दिला दिया। ~सुरपति जाय अहीलहिं छरी; **सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी**।→र० ८१-३।

सेख—संज्ञा पु० [सं० शेष] शेषनाग। ये नारायण के स्वरूप माने जाते हैं। नागराज अनन्त का नाम। भगवान् विष्णु के शय्या रूप। इनकी धर्म में अटल श्रद्धा थी। ~ अंबरीख औ जाग जनक जड़, **सेख** सहस मुख पाना। → पद ३०३-७, सब० १४३-५।

सेख अकरदी, सेख सकरदी—संज्ञा पु० [अ०] सूफी सम्प्रदाय के साधु। कबीर से इनका संवाद हुआ था। ~ **सेख अकरदी, सेख सकरदी,** मानहु वचन हमार।→र० ४८-६।

सेख तकी—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रसिद्ध सूफी संत। ये इलाहाबाद के पास झूंसी में रहते थे। सिकन्दर लोदी के गुरु थे। कबीर से इनका सत्संग हुआ था। ~ मानिकपुरहि कबीर बसेरी; मद्दति सुनी **सेख तकी** केरी। →र० ४८-१।

सेखा—संज्ञा पु० दे० 'सेख'।

सेवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शबरी] मतंग-ऋषि की शिष्या, प्रसिद्ध राम भक्त। ~ध्रुव प्रहलाद विभीखन माते, माती **सेवरी** नारी।→पद ३०३-६।

ह

हणवंत—संज्ञा पु० दे० 'हनुमत'।

हनुमत—संज्ञा पु० [सं०] प्रसिद्ध रामभक्त, अंजनी के गर्भ से उत्पन्न वायु-पुत्र। इन्हें शङ्कर-सुवन और केसरी का भी पुत्र माना जाता है। इन्द्र के वज्र-प्रहार से इनकी ठुड्ढी थोड़ी टेढ़ी हो गई थी, इसीलिए इनका नाम हनुमान पड़ा। इन्होंने राम-रावण-युद्ध के समय अद्भुत पराक्रम दिखाया था, इसीलिए यह राम-भक्तों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं और इनकी पूजा पूरे देश में होती है। ~**हनुमत** कस्यप जनक बालि, ई सभ छेकल जम के द्वार। → वसंत (४) ६-५, पद ३१० ५।

हरिनाकुस—संज्ञा पु० दे० 'हिरनाकुस'।

हरीचन्द—संज्ञा पु० [सं० हरिश्चन्द्र] इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशंकु के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सत्यवती था। ये दान और सत्यपालन के लिए विशेष प्रसिद्ध थे। इन्होंने राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। ये याचकों के माँगने पर पाँच गुना अधिक धन देते थे। इन्द्र ने ईर्ष्यावश इनकी परीक्षा ली, जिसके लिए ऋषि विश्वामित्र चुने गए। दक्षिणा चुकाने के लिए उन्हें सपरिवार बिकना पड़ा। स्त्री ने दासी का कार्य स्वीकार किया। वे स्वयं चाण्डाल के यहाँ श्मशान की रखवाली करने को बाध्य हुए। राजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होते हुए भी इन्हें नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़े। इतना सब होने पर भी ये अपने व्रत से विचलित नहीं हुए। अन्त में परीक्षा में सफलता प्राप्त कर सपरिवार स्वर्ग को चले गए। ~**हरीचन्द** सत कारने, घर घर गये बिकाय। → र० ४७-८।

हिरनाकुस—संज्ञा पु० [सं० हिरण्यकशिपु] प्रजापति कश्यप द्वारा दिति के गर्भ से उत्पन्न परम पराक्रमी आदि दैत्य था। इसे ब्रह्मा जी द्वारा वरदान प्राप्त था कि वह अस्त्र-शस्त्रादि के द्वारा नहीं मारा जा सकता। त्रिभुवन में इसके द्वारा उत्पात किए जाने पर नृसिंह द्वारा वध किया गया। उसका पुत्र प्रह्लाद परम भगवद्भक्त था। ~**हिरनाकुस** रावन गौ कंसा, कृस्न गए सुर नर मुनि बंसा। →र० ४५-१; र० ७५-५, पद २६२-८।

हौवा—संज्ञा स्त्री० [अ०] आदम के साथ उत्पन्न की गई स्त्री। शैतान ने सर्प के रूप में पहले हव्वा को बहकाया कि इसका फल बहुत स्वादिष्ट है। स्त्री के स्वाभाविक कौतूहलवश हव्वा ने फल चखने के लिए हठ किया। फल चखने के परिणामस्वरूप आदम और हव्वा स्वर्ग से ढकेल दिए गए। →आदम आदि सुद्धि नहिं पाई, मामा **हौवा** कहाँ ते आई। →र० ४०-१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu